रूपेश

ज्योतिष प्रश्न कुण्डली विचार

लेखक : डा. सुरकान्त झा 'सुमन'




ज्योतिष प्रश्न कुण्डली विचार

॥श्रीः॥

ज्योतिष-प्रश्न-कुण्डली-विचार

[ज्यौतिष के सिद्धान्त, संहिता और होरास्कन्धों के महत्त्वपूर्ण विषयों से युक्त, चमत्कारिक संहिता व जातकफलों और प्रश्नशास्त्र पर आधारित अनेक आश्चर्यचकित करने योग्य बृहद् व विशिष्ट सामग्रियों से सम्पन्न और अनुपम एवं सबके लिए संग्रहणीय ग्रन्थ]

लेखक—
डॉ० एस. के. झा 'सुमन'
ज्यौतिषशास्त्राचार्य
शिक्षाशास्त्री
(पी-एच. डी.)

प्रकाशक—
श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार
कचौड़ीगली, वाराणसी २२१००१

सन् २००९] [मूल्य १५०/-

प्रकाशक—
श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार
कचौड़ीगली, वाराणसी
दूरभाष : २३९२५४३
२३९२४७१

लेखक—
डॉ० एस. के. झा 'सुमन'

मुद्रक—
भारत प्रेस, वाराणसी

भूमिका

भारतीय मान्यता के अनुसार 'जो कुछ वेद में है, वही अन्यत्र भी है, जो वहाँ नहीं, वह अन्यत्र भी नहीं'। यथा— 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तद् क्वचित्' मनुस्मृति के अनुसार मनुष्य जीवन के कर्म का आधार वेद है— वेदोऽखिल: कर्ममूलम्। वह वेद 'अणोरणीयान्महतोमहीयान्' स्वरूप परमात्मा का नि:श्वासभूत है, जो प्राणियों को आधिभौतिक, आध्यात्मिक व आधिदैविक त्रिविध दुखों से उबारने वाला तथा उनके पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) की प्राप्ति का अतिशय सुन्दर पथप्रदर्शक है; उस वेद में संसार के समस्त विज्ञान भी सन्निहित हैं। उसी वेद के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला षड्वेदाङ्गशास्त्र हैं, जिनमें सन्निहित व समुपासित ज्ञान वेद के साथ ही या विराट वेदपुरुष के रूप में हमारे समक्ष प्रकट हुये और जिन्हें महर्षियों ने अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से लोक कल्याणार्थ प्रवर्त्तित किये, उनके नाम हैं—१. व्याकरण, २. ज्यौतिष, ३. निरुक्त, ४. कल्प, ५. शिक्षा और ६. छन्द।

भारतीय त्रिस्कन्धात्मक ज्यौतिषशास्त्र की उपस्थिति को ऋग्वेद काल से ही अनुभव किया जा सकता है; लेकिन इस कथन के साथ, इस सत्य को भी स्वीकार करना चाहिए कि वेद की ऋचाओं में उत्कृष्ट ज्यौतिष ज्ञान का केवल तत्समकालीन व्यावहारिक रूप समुपलब्ध होता है, उससे ज्यौतिषशास्त्र के तत्समकालीन उत्कृष्टतम ज्ञान का सूक्ष्म प्रत्यक्षीकरण होता है। लेकिन ब्राह्मणों में अत्यन्त सूक्ष्म चिन्तन भी सुलभता से अनभव किया जा सकता है। उनका अध्ययन कर कोई भी चकित हुए विना नहीं रह सकता, क्योंकि उनमें उत्कृष्टतम सूक्ष्म ज्यौतिष ज्ञान, अपना स्वरूप विस्तारित कर अत्यन्त सामान्य रूप में सम्यक्तया दिखाई देता है।

इस प्रकार यह तो माना ही जा सकता है कि वेद की ऋचाओं का अध्ययन, मनन, चिन्तन, याज्ञिकमीमांसा, प्रक्रियानिदर्शन आदि जहाँ भी हुआ है, वहाँ ज्योतिष तत्त्वज्ञान की परिचर्चा भी अवश्य हुई है। जहाँ वेदों में ज्योतिष तत्त्वों की उपस्थिति दर्श, पौर्णमास, वासर, नक्षत्र, मुहूर्त्त, पक्ष, मास (सावन, चान्द्र-नाक्षत्र), वर्ष (सावन-चान्द्र-नाक्षत्र-सौर), ऋतु, अयन आदि के रूप में प्रयोजन वश ही रहा है। इस आधार पर इन प्रायोजनिक विषयों को प्रधान और आदि ज्ञान कहना अनुचित नहीं होगा और यह कहना भी उचित ही होगा कि ज्यौतिषशास्त्रीय विषयों का विचार ऋग्वेद काल से ही हुआ है।

इन वेदाङ्ग शास्त्रों में ज्यौतिष को अतिमहत्त्वपूर्ण माना गया है। महर्षि लगध ने इसे 'कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि' के अनुसार कालज्ञान या कालविधानशास्त्र भी कहा है। वस्तुतः इसका प्रधान प्रतिपाद्य विषय 'काल' ही है। नारदसंहिता के अनुसार ज्यौतिषशास्त्र के 'सिद्धान्त-संहिता होरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्' अर्थात् सिद्धान्त संहिता और होरा तीन स्कन्ध प्रसिद्ध हैं।

वाराहमिहिर ने भी 'ज्योतिषशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्' कह कर ज्योतिष शास्त्र के अनेक भेदों में प्रमुख उक्त तीन भेदों को ही स्वीकार किया है। सम्प्रति उक्त भेदों में से सिद्धान्त व संहिता की तुलना में होरा स्कन्ध की परम्परा सर्वसुलभ होने से अर्थात् सम्पूर्ण प्राणिमात्र के व्यक्तिगत स्तर पर समस्या निष्कृति याने निदान की भावना के कारण विकासोन्मुख भासित हो रही है।

ज्यौतिषशास्त्र के प्रवर्त्तकों के अठारह या उन्नीस नामों की चर्चा 'गणक तरङ्गिणी' नामक ग्रन्थ में सुधाकर द्विवेदी ने किया है। वे नाम हैं—१. सूर्य, २. पितामह, ३. व्यास, ४. वशिष्ठ, ५. अत्रि, ६. पराशरं, ७. कश्यप, ८. नारद, ९. गर्ग, १०. मरीचि, ११. मनु, १२. अङ्गिरा, १३. लोमश, १४. पौलिश, १५. च्यवन, १६. यवन, १७. भृगु, १८. शौनक और १९. पुलस्त्य।

इन मनीषियों ने अपनी अतीन्द्रिय दृष्टि के बल पर इस शास्त्र के ज्ञान को उच्चतमशिखर पर सुस्थापित करने में सफल रहे हैं और वह ज्ञान आज एक आम आदमी की भी अनिवार्य आवश्यकता है।

प्रायः सभी लोगों को विदित है कि भारतीय ज्यौतिषशास्त्र आज विश्वजनमानस का अभिन्न अंग-सा हो गया है। उस ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख तीन अंग हैं— सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। इन स्कन्धों में होरा स्कन्ध के अन्तर्गत जातक, ताजिक, मुहूर्त एवं प्रश्नज्योतिष का भी समन्वय हैं। इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

१. सिद्धान्त स्कन्ध—जिस स्कन्ध में त्रुटि से लेकर प्रलय पर्यन्त की कालगणना, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्रादि कालमानों का भेद, ग्रहों की गति एवं स्थिति का परिचय, पृथ्वी एवं नक्षत्रों की स्थिति का वर्णन, वेधादि कार्यों की सिद्धि हेतु यन्त्रादि वर्णन, गणित प्रक्रिया का उपपत्ति सहित विवेचनादि होता है, उसे 'सिद्धान्त स्कन्ध' कहते हैं।

२. संहिता स्कन्ध—संहितास्कन्ध में ग्रहादिचारफल, वायसविरूत, शिवारूत,

मृगचेष्टित, श्वचेष्टित, अश्वचेष्टित, हस्तिचेष्टित, शकुन, वायु, वृष्टि वर्णन एवं इन सबके संसार पर होने वाले समष्टिगत फल का वर्णन दिया रहता है।

३. होरा स्कन्ध—होरा स्कन्ध मुख्य रूप से व्यष्टिपरक फलादेश से सम्बन्धित है। इसमें जातक विशेष के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का और उनके शुभाशुभत्व का विचार किया जाता है।

ज्योतिषशास्त्र के होरा स्कन्ध का महत्व—ज्योतिषशास्त्र के तीनों स्कन्ध परस्पर पूरक का कार्य करते हैं। संहिता एवं होरा स्कन्ध, सिद्धान्तस्कन्ध पर आधारित है। संहिता एवं होरास्कन्ध के बिना सिद्धान्तस्कन्ध भी अपूर्ण है। इसी प्रकार संहिता एंव होरा भी परस्पर आश्रित है; परन्तु जब व्यष्टिपरक फल अर्थात् जातक विशेष के बारे में विचार किया जाता है तब अन्य दोनों स्कन्धों की अपेक्षा होरास्कन्ध महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

इस स्कन्ध में जन्मकालीन ग्रहस्थिति से व्यक्ति विशेष के सन्दर्भ में जीवन सम्बन्धी शुभाशुभ फल का विचार किया जाता है।

वस्तुत: किस समय में उत्पन्न प्राणियों को शरीर, रूप, शील, धन, पुत्र, व्यवसाय, विद्या, भाग्य आदि से सुख या दु:ख प्राप्त होगा? किसके लिए कौन-सा समय उपयुक्त या अनुपयुक्त रहेगा? कौन व्यक्ति अपने जीवन में कितना सफल होगा? इन सभी विषयों का ज्ञान होरास्कन्ध से ही सम्भव है।

विद्वानों का मत है कि यदि मनुष्य को पूर्व में ही ज्ञात हो जाए कि कौन-सा समय उसके लिए अनुकूल या प्रतिकूल है तो वह उस अनुकूल समय में अपने आवश्यक कर्म को पूरा कर लेता है तथा प्रतिकूल समय में अशुभ फल से बचने के लिए सतर्क रहकर उपाय भी कर सकता है।

शास्त्रों के अनुसार यह समस्त संसार ग्रहों की स्थिति से ही प्रेरित होते हैं। सृष्टि, रक्षण एवं संहार इन तीनों के ज्योतिषशास्त्रोक्त ग्रहों द्वारा प्रभावित होने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि यह शास्त्र जीवन में हमारी सर्वाधिक सहायता करता है।

उपरोक्त अपेक्षाओं के साथ समसामयिक आवश्यकता के अनुकूल प्रस्तुत पुस्तक 'ज्योतिष प्रश्न कुण्डली विचार' आपकी सेवा के लिए अपनी कई अन्य विशेषताओं सहित प्रकाशक श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार के सहयोग से कम मूल्य पर उपलब्ध है।

अन्त में यह कि ग्रन्थ प्रलेखनादि व प्रूफादिशोधन के समय जिन महानुभावों का मुझे सहयोग प्राप्त हुआ और जिनके ग्रन्थ या पाण्डुलिपियों से सहयोग मिला, उन लोगों का हृदय से आभार व्यक्त करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। विशेषकर प्रकाशक महोदय की मैं मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए उनकी चिरायु की कामना करता हूँ, जिनके सत्प्रयास से ही यह ग्रन्थ आप विज्ञजनों की सेवा में प्रस्तुत हो सका है। साथ ही अंकिता कम्प्युटर का मैं किन शब्दों में आभार व्यक्त करुँ, जिन्होंने कठिन मुद्रण कार्य को भी साध्य बनाया।

वैसे मैंने ग्रन्थ के प्रूफादि शोधन करने में निश्चय ही प्रमाद रहित प्रयास किया है। फिर भी यदि कहीं अशुद्धि रह गई हो, तो गलती करना मानवस्वभाव मान कर विद्वान् पाठक उसे सुधार कर पढ़ेंगे और सूचित भी करेंगे, तो बड़ी कृपा होगी।

शरद पूर्णिमा-वि.सं. २०६६
वाराणसी

अधीतग्रन्थसूची

१.	सूर्यसिद्धान्त	–	प्रो० रामचन्द्रपाण्डेय
२.	आर्यभट्टीयम्	–	डॉ० सुरकान्त झा
३.	ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त	–	ब्रह्मगुप्त
४.	सिद्धान्त शिरोमणि	–	भास्कराचार्य
५.	सर्वार्थचिन्तामणि	–	डॉ० सुरकान्त झा
६.	बृहत्पाराशर होराशास्त्र	–	देवचन्द्र झा
७.	बृहज्जातक	–	सीताराम झा
८.	होरारत्न	–	बलभद्र
९.	बृहत्संहिता	–	डॉ० सुरकान्त झा
१०.	मुहूर्त्त चिन्तामणि	–	रामाचार्य
११.	मुहूर्त्तमार्तण्ड	–	केशवाचार्य
१२.	धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-४	–	डा. काणे
१३.	कालपञ्चाङ्ग विवेक		सीताराम झा का सङ्कलन
१४.	बृहज्ज्यौतिषसार	–	सुरकान्त झा
१५.	अभिनव सामुद्र विज्ञान	–	डॉ० सुरकान्त झा
१६.	जातक पारिजात	–	बैद्यनाथ
१७.	फलदीपिका	–	मन्त्रेश्वर
१८.	सारावली	–	डॉ० सुरकान्त झा
१९.	मानसागरी	–	प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय
२०.	यंत्रचिन्तामणि	–	डॉ० सुरकान्त झा
२१.	हस्तसंजीवनम्	–	डॉ० सुरकान्त झा
२२.	लघुपाराशरी	–	डॉ० सुरकान्त झा
२३.	केशवी जातकपद्धति	–	डॉ० सुरकान्त झा

२४. नवनीत भारतीय कुण्डली विज्ञान – डॉ० सुरकान्त झा
२५. बाल्मीकि रामायण – गीता प्रेस
२६. शब्दकल्पद्रुम (कोश) – राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली
२७. श्रीमद्भागवतमहापुराण – गीता प्रेस
२८. श्रीमद्भागवत् गीता – बालगंगाधर तिलक
२९. शिल्पदीपक – डा. श्री कृष्ण 'जुगनु'
३०. ज़्योतिर्विज्ञान शब्दकोष – डॉ० सुरकान्त झा
३१. भगण समीक्षा – दामोदर झा
३२. पद्मपुराण – ....
३३. भविष्यपुराण – ....
३४. गरुड़पुराण – ....
३५. स्कंदपुराण – ....
३६. जातकाभरण – अच्युतानन्द झा हिन्दी व्याख्या
३७. चरकसंहिता – ....
३८. भावप्रकाश – ....
३९. सुश्रुत संहिता – ....
४०. भारतीय ज्योतिष विज्ञान डॉ० सुरकान्त झा
४१. ज्यौतिष सर्वस्व – डॉ० सुरकान्त झा
४२. जन्म कुण्डली रचना एवं फल विचार – डॉ० सुरकान्त झा
४३. अंक ज्योतिष – डॉ० सुरकान्त झा
४४. नक्षत्र विज्ञान – डॉ० सुरकान्त झा
४५. प्रश्नमार्ग – डॉ० सुरकान्त झा
४६. सामुद्रिक दीपिका – डॉ० सुरकान्त झा
४७. हस्तरेखा लक्षण शास्त्र – डॉ० सुरकान्त झा
४८. ओरायन – बालगंगाधर तिलक

विषयानुक्रमणिका



विषय-प्रवेश

साम्प्रतिक त्रिस्कन्धात्मक अर्थात् सिद्धान्त, संहिता और होरा रूपात्मक भारतीय ज्यौतिषशास्त्र से सम्बन्धित आर्ष व पौरूष ग्रन्थ, जो सम्प्रति प्रचलित व प्रसिद्ध हैं, उनमें से प्रमुखतर ग्रन्थ हैं—पञ्चसिद्धान्तिका, सूर्यसिद्धान्त, ब्राह्म-सिद्धान्त, आर्यभट्टीयम्, सिद्धान्त शिरोमणि, सिद्धान्त तत्त्वविवेक, बृहत्संहिता (वाराही संहिता), नारद संहिता, बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, बृहज्जातक, सारावली, सर्वार्थचिन्तामणि, जातक पारिजात, होरारत्न, प्रश्नभूषण, षट्पञ्चाशिका, प्रश्नज्ञान, प्रश्नमार्ग, प्रश्नसिन्धु आदि। पूर्वोक्त ग्रन्थों में से प्राय: बृहत्पाराशरहोराशास्त्र आदि ग्रन्थ ज्यौतिषशास्त्र के होरास्कन्ध का सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान करने वाले ग्रन्थ हैं। ये महर्षियों या उनके अनुयायियों द्वारा प्रणीत होने के कारण ही मनुष्य (प्राणि) के जीवन में होने वाली सम्पूर्ण घटनाओं का सत्यवाचन करने में पूर्ण समर्थ हैं। इस बात में लेशमात्र भी शंका नहीं है।

उपरोक्त होरास्कन्ध को ही होराशास्त्र या जातकशास्त्र आदि कहा जाता है। प्राणी मात्र के उत्पत्ति समय (जन्म या प्रश्न कुण्डली) के आधार पर उसके जीवन के शुभाशुभ घटनाओं का सत्य वाचन करना जातकशास्त्र का प्रतिपाद्य है। लेकिन यहाँ उसके होराशास्त्र नाम की सार्थकता कैसे समझी जा सकती है। इसका उत्तर यह है कि—एक अहोरात्र के अन्तर्वर्ती काल में जो द्वादश राशियों का उदय द्वादश लग्न के रूप में होता है, उन्हीं लग्नों के आधार पर जातकशास्त्र प्राणि के शुभाशुभ फल का वाचन (कथन) करता है। उस लग्न का अपर नाम 'होरा' है । अत: जातकशास्त्र को होराशास्त्र भी कहा जाता है। दूसरी बात यह भी कहा जाता है कि—'अहोरात्र' शब्द के पूर्व वर्ण (अ) तथा परवर्ण (त्र) का लोप करने से स्वत: 'होरा' शब्द निष्पन्न हो जाता है। अत: अहोरात्र अन्तर्वर्ती काल में उदित होने वाली राशियों को होरा (लग्न) कहा जाने लगा। 'सारावली' ग्रन्थ के द्वितीय-अध्याय में इस प्रकार कहा गया है—

आद्यन्तवर्णलोपाद् होराशास्त्रं भवत्यहोरात्रात् ।
तत्प्रतिबद्धश्चायं ग्रहभगणश्चिन्त्यते यस्मात् ॥

वाराहमिहिर ने अपनी कृति 'बृहज्जातक' के प्रथम अध्याय में उपरोक्त को इस प्रकार व्यक्त किया है उसके साथ यह भी कहा है कि पूर्व आदि जन्मार्जित कर्म के फलों को भी वह होराशास्त्र स्पष्टतया बताता है, जिन्हें दैवज्ञ जातक की कुण्डली द्वारा अभिव्यञ्जित या प्रकाशित करता है।

होरेत्यहोरात्र विकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात् ।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत् तस्य पंक्ति समभिव्यनक्ति ।।

यह होराशास्त्र मनुष्यों को धनादि अर्जन करने में सहायक, विपत्ति रूप समुद्र में नौका (जहाज) और यात्रा के समय मन्त्री सिद्ध होता है। जैसाकि सारावली में कहा गया है—

अर्थार्जने सहाय पुरुषाणामापदर्णवे पोत: ।
यात्रासमये मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपर: ।।

यह प्राणियों के पूर्वजन्मार्जित अच्छे-बुरे कर्म को प्रारब्धादि कर्मफल के रूप में प्रदान करता है। जिस प्रकार अन्धकार में पड़ी वस्तु का ज्ञान दीपक के प्रकाश से सम्भव होता है, उसी प्रकार प्राणी के जीवन में आनेवाले शुभ वा अशुभ काल या क्षण का ज्ञान होराशास्त्र से होता है। जैसा लघुजातक में कहा गया है—

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मण: पङ्क्तिम् ।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ।।

इसी प्रकार सारावली में भी कहा गया है कि प्राणिमात्र के ललाट (मस्तक) पर विधाता ने जो कुछ शुभाशुभ सुख-दु:ख लिख दिया है, उसे होराशास्त्र को जानने वाले दैवज्ञ अपने निर्मल दृष्टि से स्पष्टत: पढ़ लेते हैं। यथा—

विधात्रा लिखिता याऽसौ ललाटेऽक्षरमालिका ।
दैवज्ञस्तां पठेद्व्यक्तं होरा निर्मलचक्षुषा ।।

अन्यत्र शम्भुहोराप्रकाश में भी—

वर्णावली तु लिखिता भूवि मानवानां
धात्रा ललाटपटले किल दैववित्ताम् ।।

उपरोक्त के अनुशीलन से और मनुस्मृति के 'वेदोऽखिलो कर्ममूलम्' वचनस्वरशात् यह तो स्पष्ट ही है कि भारतीय वैदिक दर्शन में 'कर्मवाद' अर्थात् 'पुनर्जनमवाद' का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसे इस प्रकार भी कहने में किसी प्रकार की बाधा नहीं आनी चाहिए कि 'कर्मवाद-पुनर्जन्मवाद' वैदिक दर्शन का मूलभूत आधार है। इसके आधार पर महर्षियों और मनीषियों ने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में कहा है कि आत्मा ही एकमात्र कर्त्ता है' अर्थात् मन-बुद्धि आदि द्वारा सम्पादित कर्म का कर्त्ता एक आत्मा ही है। अत: कहा जाता है—'आत्मा एव कर्त्ताऽस्ति।' आत्मा द्वारा जन्मजन्मान्तरों में निष्पादित अशुभ या शुभाशुभ कर्मों का प्रतिफल है, उसका पुनर्जन्म अर्थात् बार-बार जन्म लेने का कारण एकमात्र स्वकृत कर्म के फलों की प्राप्ति करना है। इसी बात को गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रकार सहज भाव में कह दिया है कि—

कर्मप्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करिहि सो तस फल चाखा॥

वह कर्म फल इस जीवन में किस क्रम में, कब-कब, कहाँ-कहाँ, किस किस प्रकार तथा क्या-क्या प्राप्त हो सकेगा, उन समस्त विषयों को जानने का एकमात्र विश्वास योग्य साधन (कुण्डली) 'ज्योतिषशास्त्र' ही है। जैसाकि उपरोक्त आचार्यों के कथनों के अनुशीलन से संज्ञापित भी होता है। अत: कह सकते हैं कि जीवन के समस्त घटनाचक्र पूर्व-पूर्व जन्मों में निष्पादित कर्मों का ही फल या परिणाम है, जिसे जानने का एकमात्र उपकरण 'ज्यौतिषशास्त्र' है।

अस्तु ! वैदिक दर्शन के अनुसार जन्म-जन्मान्तरों में निष्पादित किये गए कर्मों की तीन श्रेणीयाँ हैं—१. सञ्चित २. प्रारब्ध और ३. क्रियमाण। इन तीन प्रकार के कर्मों के फलों को जानने के लिए ज्यौतिषशास्त्र के प्रवर्त्तकों पराशर, गर्ग, जैमिनी, नारद इत्यादि ने प्राय: तीन प्रमुख प्रविधियाँ आविष्कृत और सुविकसित की। यथा सञ्चित कर्म फल जानने के लिए योगपद्धति, प्रारब्ध कर्म फलज्ञान के लिए दशा पद्धति और क्रियमाण कर्म फल ज्ञानार्थ गोचरपद्धति। इस प्रकार यह 'ज्यौतिष (होरा) शास्त्र कुण्डली के ग्रहस्थितिवश बने ग्रहयोगों से सञ्चित कर्म फलों का, दशान्तर्दशादि से प्रारब्ध (कर्म) फलों का और गोचर (दैनन्दिनी ग्रह संचार) वश क्रियमाणकर्म फलों का विचार करता है।

यहाँ यह स्मरण योग्य है कि 'होरा' ज्यौतिषशास्त्र जातक के शुभाशुभ फल का निरुपण जन्म या प्रश्न समय के कुण्डली के अनुसार करता है। यह कुण्डली जातक के पूर्वादि जन्म के सञ्चित कर्मों का मूर्त्तिमान् रूप है अथवा इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह पूर्वादि जन्मों के कर्मों को जानने की 'कुंजी' है। जिस प्रकार एक विशाल वट वृक्ष का समावेश उसके बीज में होता है, उसी प्रकार प्रत्येक जातक के पूर्वादि जन्मों के कृत्कर्म कुण्डली में सन्निहित या अंकित होता है।

इस प्रकार जो आस्तिक है, आत्मा को नित्य पदार्थ मानते हैं, वे इस बात को स्वीकारने से इन्कार नहीं कर सकते कि सञ्चित व प्रारब्ध कर्मों के फल को जातक अपनी वर्तमान जीवन नौका में बैठकर क्रियमाण कर्म रूपी पतवार के द्वारा संशोधन व परिवर्द्धन करते हुए उपभोग करता है, अतएव कुण्डली से जातक के भाग्य का ज्ञान किया जाता है। सारांश में इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि क्रियमाण कर्मों के बल से पूर्व सञ्चित अदृष्ट में न्यूनाधिक करने की सम्भावना भी प्राप्त रहती है।

यह पहले भी कहा जा चुका है कि ज्यौतिष का प्रधान सदुपयोग अपने अदृष्ट को ज्ञात कर उसमें सुधार करने का प्रयास करना है। यदि हम पहले से अपने

भाग्य को जानकर सजग हो, तो प्रतिकूल परिणामात्मक भाग्य को पलटने का प्रयास भी कर सकते हैं। लेकिन यहाँ भी जब प्रबल या तीव्र अदृष्ट का उदय होता है, तो वह कत्तई टाला नहीं जा सकता, उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। इस प्रकार उपरोक्त चिन्तन के अनुशीलन से नि:स्सरित होता है कि 'ज्योतिष द्वारा अमुक व्यक्ति का भाग्य अमुक प्रकार का बताया गया है, अत: अमुक व्यक्ति अमुक प्रकार का होगा ही', इस प्रकार के कथन को गलत मानना ही पड़ेगा। क्योंकि ऐसी स्थिति में यदि क्रियमाण कर्म का पलड़ा भारी हो गया, तो अदृष्ट (सञ्चित कर्म) अपना फल प्रदान करने में असमर्थ सिद्ध होगा। यहाँ पर यदि क्रियमाण कर्म यथार्थ रूप में सम्पन्न नहीं किया जाय, तो वह अदृष्ट अपना फल प्रदान करेगा ही, अर्थात् उपरोक्त कथन सत्य हो सकेगा।

अस्तु, उपरोक्त चिन्तन के अनुशीलन से यह ज्ञात हुआ कि ज्यौतिष द्वारा कुण्डली का जिस प्रकार फलादेश किया जाता है, वह कभी ठीक भी हो सकता है, कभी अन्यथा भी जा सकता है। अत: जातक को सदा पुरुषार्थ पूर्ण जीवन जीना ही श्रेयस्कर है अर्थात् जीवन को उन्नतिशील बनाने एवं अपने क्रियमाण कर्म द्वारा अपने भविष्य को सुधारने के लिए ज्यौतिषशास्त्र का अनुसरण तो अवश्य करते रहना चाहिए। कुण्डली फलादेश से अवगत होने के लिए प्रत्येक क्षण प्रयास करना चाहिए। साथ ही जातक को अपने क्रियमाण कर्म अर्थात् वर्तमान में साधन किये जा रहे कर्मों की समीक्षा भी करनी चाहिए, जिससे जातक अपने जीवन को पूर्णता प्रदान करने के अपने ही लक्ष्य से भटक नहीं सके। इन्हीं बातों को स्मरण कराते हुए भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन का आत्मा की स्वतंत्रता या स्वावलम्बन करने का उपदेश इस प्रकार से किया है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन:।।

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह अपना उद्धार आप ही करे, निराश होकर वह अपनी अवनति स्वयं न करे, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मवश स्वयं अपना बन्धु या हितैषी या मित्र है और स्वकर्मवश ही स्वयं अपना शत्रु या नाश करने वाला है।

इस प्रकार उपरोक्त के अनुशीलन से यह भी मानना पड़ता है कि मनुष्य को कुण्डली के फलाफल का विचार करते हुए अपने क्रियमाण कर्म से सम्बन्धित अपने नियोजित पुरुषार्थ का यथार्थपरक अधिकतर दोहन या शोषण करना चाहिए; जो ज्यौतिष के मार्गदर्शन से निश्चय ही सम्भव है।

अतएव प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह ज्यौतिषशास्त्रीय उस कुण्डली

विषयक ज्ञान का सद्‌दोहन करते हुए पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हों; क्योंकि यही सनातन वैदिक परम्परा है तथा प्रत्येक काल में सत्य का दर्शन कराने वाला, अंधविश्वासों से दूर रखने वाला तथा किसी भी प्रकार की कुण्ठा से मुक्त करने वाला ज्यौतिष होरा स्कन्ध का कुण्डली के रूप में एक कर्मसूचक यंत्र है, जो हमें सुधरने या सुधारने का अवसर प्रदान करता है।

आगे उपरोक्त कुण्डली विषयक ज्ञान को सहजता व सरलता से ज़ानने के लिए ज्यौतिषशास्त्र के अग्रलिखित विषयों को प्रस्तुत ग्रन्थ में स्थान दिया गया है, जो प्राय: विषय सूची से स्पष्ट भी होता है, का सम्यक् अध्ययन के लिए अब प्रस्तुत हो जाना चाहिए।।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में सर्वप्रथम ज्योतिष शास्त्र का स्वरूप और फिर क्रमश: इसके अधिकारी दैवज्ञ का लक्षण तथा जातक एवं प्रश्न के फल में समानता का निरूपण किया गया।

तत्पश्चात् दैवज्ञ एवं पृच्छक का कर्तव्य, आरूढ़ विधि तथा प्रश्न के समकालीन शकुनों का विचार किया गया है।

फिर उसके बाद यात्रा के समय मार्ग के शकुन, प्रश्नकालीन एवं प्रवेशकालीन शकुनों को कहा गया तथा तत्पश्चात् चक्रलेखन विधि, पूजा एवं आरूढ़ लेखन आदि बतलाया गया है।

तदुपरान्त लग्न आदि का साधन, फिर त्रिस्फुट सूत्र और फिर अष्टमंगल और फिर आरूढ़, लग्न एवं चन्द्रमा का फल कहा गया।

तत्पंश्चात् प्रश्न एवं जन्मकालीन ग्रहों से आयु का निरूपण तथा इसी प्रकार आगे पहले जातक और बाद में प्रश्न से मृत्युकाल का विचार किया गया।

फिर उसके आगे पहले रोगों के कारण, प्रश्नशास्त्रानुसार मृत्युदायक रोग और बाद में जातक के अनुसार मृत्यु के स्थान का विचार किया गया।

तत्पश्चात् व्याधि, रोग एवं शत्रु के भेद तथा कुछ राशियों से उनकी चिकित्सा बतलाई गई। उसके उपरान्त रोग का प्रारम्भ एवं समाप्तिकाल, रोग का कारण और उसकी शान्ति बतलायी गई।

उसके आगे भाव एवं भावस्थित ग्रह से फल कहा गया। फिर उसके आगे दैवानुकूल्य से शत्रु पीड़ा तक की शान्ति और रोग शान्ति बतलाई गई।

तथा विवाह लक्षण का प्रतिपादन और विवाह प्रश्न का विचार किया गया है। तत्पश्चात् सन्तति प्रश्न तथा जातक से सन्तति विचार किया गया।

तदनन्तर जातक से विवाह विचार, मेलापक विचार, गोचर विचार और कर्मविपाक बतलाया गया है।

इन सब के पश्चात् देवप्रश्न, युद्धप्रश्न एवं मृगयां प्रश्न बतलाया गया तथा दृष्टिप्रश्न एवं कूपप्रश्न का विचार किया गया।

इसी तरह आगे भोजनप्रश्न तथा प्रवासी के आगमन का विचार किया गया और रतिप्रश्न और नष्टप्रश्न का विचार किया गया।

फिर स्वप्न तथा अन्त में अष्टकवर्ग का विचार किया गया। इस प्रकार यह सम्पूर्णता को प्राप्त हुई है।

इस प्रकार उपरोक्त ग्रन्थगत विषयों को जानने में सहायक प्रारम्भिक विषय-वस्तुओं को आगे पाठक की सुविधार्थ दिया जा रहा है। इस क्रम में सर्वप्रथम ग्रह परिचय और राशि परिचय प्रस्तुत करते हैं।

ग्रह-परिचय

ग्रहों की राजा आदि संज्ञा

रवि व चन्द्रमा राजा, बुध राजकुमार, मंगल सेनापति, बृहस्पति व शुक्र मन्त्री और शनि भृत्य ग्रह हैं। जन्म समय में जो ग्रह बली हो वह अपने सत्व को करता है।

दिशा स्वामी

पूर्व दिशा का स्वामी सूर्य, अग्निकोण का शुक्र, दक्षिण का मंगल, नैऋत्य कोण का राहु, पश्चिम का शनि, वायव्य का चन्द्रमा, उत्तर का बुध और ईशान दिशा का स्वामी बृहस्पति है।

शुभाशुभ ग्रह

बुध, बृहस्पति व शुक्र ये शुभ ग्रह तथा सूर्य, मंगल व शनि ये पाप ग्रह (नैसर्गिक) हैं एवं पाप ग्रहों से युक्त बुध और क्षीण चन्द्रमा भी पाप ग्रह कहा गया है।

ग्रहों की संज्ञा

सूर्य की संज्ञा हेलि-भानु, चन्द्रमा की शशी-चन्द्र, मंगल की क्रूराक्ष-क्षितिनन्दन-आर-रक्त तथा वक्र, बुध की हेम्न विद् ज्ञ तथा बोधन, बृहस्पति की ईड्य- अङ्गिरा तथा जीव, शुक्र की स्फुजित सित-भृगु, शनि की मन्द-कोण-यम तथा कृष्ण संज्ञा है और भी संज्ञा लोक व्यवहार से जानना चाहिये।

ग्रहों के वर्ण, देवता और उनका प्रयोजन

ताम्र वर्ण का सूर्य, श्वेत का चन्द्रमा, लाल का मंगल, हरित का बुध, पीत

का बृहस्पति, विचित्र का शुक्र और कृष्ण वर्ण का स्वामी शनि है तथा सूर्य का अग्निदेव, चन्द्रमा का जल, मंगल का कार्तिकेय, बुध का केशव, बृहस्पति का इन्द्र, शुक्र का इन्द्राणि तथा शनि का ब्रह्मा स्वामी है।

प्रयोजन—ग्रह पूजा में ग्रह के देवता का पूजन करना चाहिये तथा यात्रा में भी ग्रह के देवता का पूजन करके ग्रहोक्तदिशा में यात्रा करना चाहिये। अर्कादि ग्रह के देवता के मन्त्र से उस दिशा में पूजा करके यात्रा करने से राजा शीघ्र शत्रुओं से सुवर्ण आदि धन तथा घोड़ा-हाथी आदि वाहनों की प्राप्ति करता है।

ग्रहों की स्त्री-पुरुष जाति और तत्त्व

चन्द्रमा व शुक्र स्त्री संज्ञक, बुध व शनि नपुंसक और बृहस्पति, सूर्य व मंगल पुरुष ग्रह हैं।

ब्राह्मण वर्ण का बृहस्पति व शुक्र; क्षत्रिय वर्ण का सूर्य व मंगल, वैश्य का चन्द्रमा, शूद्र का बुध और अन्त्यज वर्णों का शनि स्वामी है।

अग्नि तत्त्व का स्वामी मंगल, भू का बुध, आकाश का बृहस्पति, जल का शुक्र और वायु तत्त्व का शनि स्वामी है।

ग्रहों के रस-स्थान-वस्त्र-द्रव्यकालर्तुप्रभुत्व

सूर्य से कटुरस, चन्द्रमा से नमकीन, मंगल से तिक्त, बुध से मिश्रित (षट्रस मिश्रित), बृहस्पति से मधुर, शुक्र से खट्टा, शनि से कषाय रस का निर्देश करना चाहिये। इसका प्रयोजन—आधान काल में अथवा भोजनाश्रय प्रश्न में बलवान् ग्रह सम्बन्धि भोजन का रस कहना चाहिये।

एवं यदि सूर्य बलवान् हो तो देवस्थान, चन्द्रमा से जल स्थान, मंगल से अग्नि स्थान, बुध से क्रीडा स्थान, बृहस्पति से कोश स्थान (भण्डारगृह), शुक्र से शयन स्थान और शनि से उसर भूमि आदेश करना चाहिये।

एवं सूर्य से स्थूल (मोटा) वस्त्र, चन्द्रमा से नवीन वस्त्र, मंगल से जला हुआ वस्त्र, बुध से जल से भिंगा हुआ वस्त्र तथा शनिश्चर से फटे हुए वस्त्र का आदेश करना चाहिये। इसका प्रयोजन सूतिका के वस्त्र तथा उपरोक्त से सूतिका के भोजन तथा स्थान का आदेश करना चाहिये।

सूर्य से ताम्र, चन्द्रमा से मणि, मंगल से सुवर्ण, बुध से मिश्रित (कास्यादि धातु), बृहस्पति से चाँदी (तथा बृहस्पति स्व स्थान का हो तो सुवर्ण), शुक्र से मुक्ता, शनि से लोहा, (रांगा वगैरह) भी आदेश करना चाहिये। इसका प्रयोजन नष्ट द्रव्यादि के प्रश्न में इसका विचार करने हेतु होता है।

सूर्य से अयन, चन्द्रमा से मुहूर्त्त, मंगल से दिन, बुध से ऋतु, बृहस्पति से मास, शुक्र से पक्ष, शनि से वर्ष का आदेश करना चाहिये।

एवं शनि से शिशिर, शुक्र से वसन्त, मंगल से ग्रीष्म, चन्द्रमा से वर्षा, बुध से शरद्, बृहस्पति से हेमन्त तथा रवि से भी ग्रीष्म ऋतु का आदेश करना चाहिये।

ग्रहों के अयनादि काल का प्रयोजन

शत्रु का पराजय, गर्भ सम्बन्धि या कार्य सम्बन्धि प्रश्न में समय का आदेश लग्नाधिपति से अथवा लग्नं गत नवांश तुल्य अयनादि समय में नवांशपति के अधीन करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त श्लोक १७ में ग्रहों के जो काल कहे गये हैं, प्रश्न के समय उसका निर्णय प्रश्नलग्न के स्वामी से करना चाहिए, यहाँ विशेष यह कहा गया कि प्रश्न लग्न में जो नवांश हो, उसकी संख्या तुल्य नवांशेश के समय में उक्त प्रश्न सम्बन्धी सफलता मिलेगी, कहना चाहिए।

वेदों के स्वामी ग्रह

ऋग्वेद का बृहस्पति, यजुर्वेद का शुक्र, सामवेद का मंगल और अथर्ववेद का स्वामी बुध है।

ग्रहों के देवलोक आदि

देव लोक का बृहस्पति, मनुष्य (मर्त्य) लोक का चन्द्रमा, पितृ लोक का शुक्र, सूर्य व मंगल और तिर्यक् (पशुपक्षी) व नरक लोक का स्वामी बुध व शनि है।

बृहज्जातकानुसार—

'दिनकर शशिवीर्याधिष्ठितात्त्र्यंश नाथात् प्रवर सम निकृष्टास्तुङ्गह्रासादनूके' ॥

सूर्यस्वरूप

विरल तथा कुटिल (घूँघराले) केश, चातुर्यपूर्णबुद्धि, मुख्य स्वरूप तथा स्वर, मध्य काद, मधु तथा पिङ्गल वर्ण युक्त सुन्दर नेत्र, शूर, तेजस्वी, स्थिर, रक्त-श्याम मिश्रित वर्ण, निगूढ पाद, पितृ प्रकृति, हड्डीसार युक्त, महान् गम्भर, चतुष्कोण, विपुल बाहु युक्त और पीताम्बर धारी, एवं भूत सूर्य का स्वरूप है।

चन्द्रस्वरूप

चन्द्रमा सौम्य, सुन्दर नेत्रयुक्त, मृदुभाषी, गौरवर्ण, कृशित, युवा, उन्नत, सूक्ष्म तथा सरल काले-काले बालों से युक्त, प्राज्ञ, मृदु, सात्त्विक, सुन्दा, वात-कफ प्रकृति युक्त, मित्रप्रिय, रक्तसारयुक्त, दयावान्, वृद्धस्त्री में लीन, अत्यन्त सुन्दर तथा श्वेताम्बर धारी स्वरूप वाला है।

भौमस्वरूप

मंगल छोटा क़द, पिङ्गल नेत्रों से युक्त, दृढ शरीर, ज्वलित अग्नि के सदृश

कान्ति से युक्त, चल (चञ्चल), मज्जायुक्त, लाल अम्बर (वस्त्र)धारी, अत्यन्त चतुर, शूर, वाग्मी, ह्रस्व तथा सुन्दर (घूँघराले) केश से युक्त, युवा, पित्त प्रकृति, तामसी (तमोगुणी), साहसी, घात कुशल तथा लाल गौरवर्ण युक्त स्वरूप वाला होता है।

बुधस्वरूप

बुध रक्त तथा लम्बी आँख से युक्त, मृदुभाषी, दूर्वा दल के सदृश श्यामवर्ण, चर्मसार से युक्त, अत्यन्त रजोधिक, स्पष्ट वक्ता, वात-पित्त तथा कफ तीनों प्रकृति से युक्त, पुष्ट, मध्यम स्वरूप युक्त, सुन्दर, निपुण, शिरादि से आवृत (आच्छादित), वेष व वचन से सब का अनुकरण करने वाला तथा पलाश सदृश वस्त्र धारी है।

गुरुस्वरूप

बृहस्पति किञ्चित् पिङ्गल वर्ण के नेत्र व कान से युक्त, सिंह गर्जन तुल्य शब्दवाला, स्थिर, बलवान्, विशुद्ध स्वर्ण सदृश वर्ण वाला, मोटा तथा उन्नत स्थल से युक्त, ह्रस्वकाय, धर्म में लीन, विनीत, चतुर, तीक्ष्ण दृष्टि वाला, क्षमावान्, पीताम्बरधारी, कफ प्रकृति से युक्त और मेदा प्रधान शरीर वाला होता है।

शुक्रस्वरूप

शुक्र सुन्दर लम्बे बाहुओं से युक्त, वृहत् छाती तथा मुख वाला, वीर्याधिक, कान्तिमान्, काले कुटिल पतले लम्बे बालों से युक्त, दूर्वादल सदृश श्याम वर्ण, कामी, वात-कफ प्रकृति वाला, अत्यन्त सुन्दर, चित्र (छिट)-विचित्र वर्ण का वस्त्र धारी, राजस प्रकृति युक्त, लीला (क्रीडा) करने वाला, बुद्धिमान्, विशाल नेत्र युक्त, और स्थूल स्कन्ध प्रदेश से युक्त स्वरूप वाला होता है।

शनिस्वरूप

शनि पिङ्गल वर्ण तथा निम्न (धसी हुई) आँख से युक्त, कृशशरीर, दीर्घ, सिरा युक्त, आलसी, कृष्ण वर्ण, वायु प्रकृति युक्त, अत्यन्त शठ, स्नायु युक्त, निर्दय, मूर्ख, स्थूल नख-दांत से युक्त, अत्यन्त मलिन, कान्ति रहित, अपवित्र, तामस प्रवृत्ति युक्त, भयङ्कर, क्रोध में निरन्तर लीन, वृद्धावस्था युक्त तथा कृष्ण वस्त्र धारी है।

ग्रहों के मित्र-शत्रु

सूर्यादि ग्रहों के गुरु-भौम-चन्द्र, सूर्य-बुध,सूर्य-चन्द्र-गुरु, सूर्य-शुक्र, चन्द्रमा-सूर्य-मंगल, शनि-बुध, शुक्र-बुध क्रम से मित्र हैं। उन ग्रहों के शुक्र-शनि, कोई भी नहीं, बुध, चन्द्र, शुक्र-बुध, सूर्य-चन्द्र, सूर्य-चन्द्र-मंगल क्रम से शत्रु हैं। मित्र व शत्रु से इतर ग्रह (अवशिष्ट ग्रह) सूर्यादि ग्रहों के क्रम से सम (न शत्रु, न मित्र) होते हैं।

पञ्चधा मित्रामित्र

अपने स्थित स्थान से परस्पर २।३।४।१२।११।१० स्थानों में स्थित ग्रह तात्कालिक मित्र तथा १।५।६।७।८।९ स्थानों में परस्पर स्थित ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं। नैसर्गिक मित्रामित्र सम तथा तात्कालिक मित्रामित्र के वश अधिमित्रादि निर्णय करते हैं। नैसर्गिक मित्र सम शत्रु ग्रह यदि तत्काल में मित्र हों, तो वे क्रम से अधिमित्र, मित्र तथा सम हो जाते हैं। एवं नैसर्गिक शत्रु सम मित्र ग्रह यदि तत्कालिक शत्रु हों, तो वे क्रम से अधिशत्रु, शत्रु, सम हो जाते हैं।

आरूढ़ लग्न ज्ञानार्थ भूमिचक्र

ईशान कोण	पूर्व		अग्नि कोण
मीन	मेष	वृक्ष	मिथुन
कुम्भ	दैवज्ञ		कर्क
मकर			सिंह
धनु	वृश्चिक	तुला	कन्या
वायव्य कोण	पश्चिम		नैॠत्य कोण

उत्तर (बायीं ओर) — दक्षिण (दायीं ओर)

ग्रह दृष्टि

सभी ग्रह तृतीय दशम को १ चरण की दृष्टि से, नवम पञ्चम स्थान को २ चरण की दृष्टि से, चतुर्थ अष्टम को ३ तीन चरण की दृष्टि से तथा सप्तम स्थान को सम्पूर्ण दृष्टि से देखते हैं फल भी दृष्टि क्रम-से ही होता है तथा विशेषतया शनि तृतीय-दशम को, बृहस्पति नवम-पञ्चम को, मंगल चतुर्थ-अष्टम को एवं सूर्य, चन्द्रमा, बुध व शुक्र सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

ग्रहों के स्थानादि बल

सभी शुभाशुभ फल निर्णय के लिये स्थान बल, दिग्बल, कालबल तथा चेष्टा बल का विचार करना आवश्यक है, अतएव चारों बलों को कहता हूँ। इन बलों से रहित ग्रह दुर्बल होता है।

(१) दिग्बल—बुध बृहस्पति लग्न में (पूर्व में), सूर्य मंगल दशम (दक्षिण) में, शनि सप्तम (पश्चिम) में तथा चन्द्रमा शुक्र चतुर्थ (उत्तर) में बली होते हैं। इस बल को दिग्बल कहते हैं।

(२) स्थान बल—सभी ग्रह स्वोच्च, स्वमूलत्रिकोण, स्वराशि, मित्रराशि, मित्र व स्वनवांश में तथा शुभग्रह की दृष्टि से बलवान् होते हैं और चन्द्रमा शुक्र

स्त्रीराशि (सम राशि) में तथा शेष ग्रह नरराशि (ओज राशि) में बलिष्ठ होते हैं। यह स्थान बल है।

(३) कालबलम्—बृहस्पति-सूर्य-शुक्र दिन में, शनि-चन्द्रमा-मंगल रात्रि में तथा बुध अहर्निश पूर्ण बली होता है।

(४) चेष्टाबलम्— संग्राम में विजयी हो, वक्रगति हो, जो ग्रह सम्पूर्ण किरणों से युक्त हो, वे सभी उत्तर दिशा में स्थित ग्रह चेष्टाबल करके पूर्ण बली होते हैं। तथा शुक्र मंगल सूर्य तथा नृहस्पति उत्तरायण में, चन्द्रमा शनि दक्षिणायन में और बुध स्ववर्ग स्थित होकर दोनों अयन में पूर्णबली होते हैं (यह चेष्टाकृत बल है)।

द्रेष्काण-त्र्यंशबल

पुरुष ग्रह राशि के प्रथम द्रेष्काण में, स्त्री ग्रह मध्य द्रेष्काण में और नपुंसक ग्रह तृतीय द्रेष्काण में पूर्णबली होते हैं।

अथ त्र्यंश बल को कहते हैं—रात्रि के प्रथम भाग में चन्द्रमा, रात्रि के द्वितीय भाग में शुक्र, तृतीय भाग मंगल में और दिन के प्रथम भाग (प्रातः काल) में बुध, द्वितीय भाग (मध्याह्न) में सूर्य, सायं काल में शनि और बृहस्पति अहर्निश पूर्णबली होता है, यही त्र्यंश बल है।

निसर्गबल

शनि से मंगल, मंगल से बुध, बुध से गुरु, गुरु से शुक्र, शुक्र से चन्द्रमा, चन्द्रमा से भी सूर्य बलिष्ठ होता है। यह स्वाभाविक बल है। इसे बुद्धिमानों को बल साम्य होने पर विचार करना चाहिए।

इस प्रकार दिक्-स्थान-चेष्टा आदि सात प्रकार के ग्रहों के जो बल उपरोक्त प्रकार से कहे गए हैं, उनसे युक्त रहने पर ग्रह बलवान् होता है। यदि ग्रह को कोई भी बल प्राप्त न हो, तो वह शून्य बलवान् होता है। अल्पबल में ग्रह को अल्पबली जानना चाहिए।

अशुभ ग्रह से पीड़ित, शत्रु से पराजित, नीचराशिस्थ, नीचांशस्थ, दुष्ट चेष्टा ब्रली, ६-८-१२वें भाव में स्थित, मलिन-रूक्ष, बलहीन आदि ग्रह शुभाशुभ फल से रहित होता है।

ग्रहों के दीप्तादि अवस्था और उसका फल

दीप्त, स्वस्थ, मुदित, शान्त, शक्त, पीड़ित, भीत, विकल तथा खल ये नव प्रकार की अवस्था ग्रहों की होती है।

यथा—स्वोच्च स्थित ग्रह दीप्त, स्वराशि स्थित ग्रह स्वस्थ, मित्र राशिस्थ ग्रह मुदित, शुभ ग्रह के वर्ग में स्थित ग्रह शान्त, स्फुट किरण (सम राशि स्थित) ग्रह

शक्त, सूर्य सान्निध्य वश अस्त ग्रह की विकल, ग्रहों से पीड़ित ग्रह की निपीडित, पाप ग्रह के वर्ग में स्थित ग्रह की खल और अपनी नीच राशि में स्थित ग्रह की भीत अवस्था होती है।

दीप्तावस्था ग्रह की दशा में पुरुष अपनी प्रताप के प्रचण्ड निज तेज द्वारा शत्रुओं का नाश करता हुआ, लक्ष्मी से सुशोभित होता हुआ और मदमाती हस्तिओं के मद से भींगीं भू पृष्ठ पर विचरता है।

स्वस्थ ग्रह की दशा में मनुष्य को रत्न प्राप्ति, सुख प्राप्ति, सुवर्णादि की प्राप्ति, राजा से सेनापतित्व पद की प्राप्ति तथा गृह धन धान्य और कुटुम्ब की वृद्धि होती है।

मुदित अवस्था गत ग्रह की दशा में पुरुष हर्ष से सुशोभित, युवति तथा सुवर्णादि रत्नों से परिपूर्ण, सम्पूर्ण शत्रुओं का नाशकर्त्ता और समस्त सुखों का भोक्ता होता है।

शान्त ग्रह की दशा में पुरुष शान्त चित्त, सुख धन का भोक्ता, राजा का मन्त्री, विद्वान्, परोपकारी तथा धर्म में लीन होता है।

शक्त ग्रह की दशा में पुरुष स्त्रीजन वस्त्र माला सुगन्धादि पदार्थों से सुशोभित, यशस्वी तथा सर्व साधारण जनों का स्वामी और प्रसिद्ध होता है।

पीड़ित ग्रह की दशा में पुरुष रोग तथा शत्रु इत्यादि के दुःखों से परिपीड़ित तथा बन्धुजनों के वियोग से संतप्त होकर देश-देशान्तर में भ्रमण करता है।

भीत ग्रह की दशा में मनुष्य बहुत साधन रहते हुए भी बलहीन होकर शत्रु से पीड़ित तथा पराजित होता है और अत्यन्त दीनता को प्राप्त होता है।

विकल ग्रह की दशा में स्थान परिभ्रष्ट, क्लेशित, मलिन, परदेशवासी और बल रहित तथा शत्रु के भय से शंकित रहता है।

खल संज्ञक ग्रह की दशा में पुरुष स्त्री हरण के दुःख से तप्त, समस्त धन नाश आदि होने के कारण कलुषित होकर कभी भी शोक रहित नहीं होता है।

उच्चादि स्थान स्थित ग्रह के विशेष फल

यदि ग्रह स्वोच्च में हो अथवा वक्री हो, तो उस का फल अकाट्य होता है। समय के अधिक भोग होने के कारण स्वोच्च तथा वक्री श्रेष्ठ बली होते हैं।

स्वोच्च का ग्रह उत्तम बली व स्वगृह अथवा मूल त्रिकोण स्थित ग्रह मध्यबली और शुभग्रह या मित्र ग्रह से दृष्ट या मित्र गृह में स्थित ग्रह कनिष्ठ बली होता है।

चन्द्रफल में विशेष

शुक्ल पक्ष के प्रतिपद् से १० दशमी पर्यन्त चन्द्रमा मध्य बली तथा ११ से कृष्णा ५ पञ्चमी तक पूर्ण बली और ५ पञ्चमी से अमावस्या तक अल्प बली होता है।

यदि चन्द्रमा षोडशकला परिपूर्ण प्रसन्न श्रेष्ठ बली जन्म में हो, तो अक्षय बल को करता है अर्थात् जातक राजा के सदृश बलशाली होता है।

राशि स्वामी के फल में विशेष

चन्द्रमा की राशि का स्वामी अथवा जन्म लग्न का स्वामी अथवा बृहस्पति भी जिसके जन्म के समय केन्द्र में हो, उस को मध्यावस्था में सुख की प्राप्ति होती है।

राशीश्वर के बली होने पर नक्षत्र भेद से भी फल कल्पना करनी चाहिये। यदि एक ही समय में फलद्वय की प्राप्ति हो तो वहाँ बलाबल के अनुसार एक ही फल की कल्पना करनी चाहिए।

लग्न तथा ग्रह के बल साम्य होने पर निसर्गज बल का विचार करना चाहिये। लग्न का बल लग्नाधिपतितुल्य होता है।

ग्रहों की एक राशि में उच्चादि स्थान

कन्या राशि में पन्द्रह (१५) अंश पर्यन्त बुध का उच्च, तथा सोलह (१६) से बीस (२०) अंश पर्यन्त त्रिकोण तथा शेष दस (१०) अंश स्वराशि है।

चन्द्रमा का वृष में तीन (३) अंश पर्यन्त उच्च तथा शेष चार (४) से तीस (३०) अंश पर्यन्त मूल त्रिकोण है। मंगल का मेष में १२ अंश पर्यन्त मूल त्रिकोण तथा शेष १८ अंश स्वगृह है।

बृहस्पति का धनु राशि में दश १० अंश पर्यन्त मूल त्रिकोण तथा शेष २० अंश स्वराशि है। शुक्र का तुला में ५ अंश पर्यन्त मूल त्रिकोण शेष २५ अंश स्वगृह है।

सूर्य का सिंह में २० अंश पर्यन्त मूल त्रिकोण शेष १० अंश स्वगृह है एवं शनि का कुम्भ में २० अंश पर्यन्त मूल त्रिकोण शेष १०अंश स्वगृह है।

स्वोच्चादिस्थ ग्रहों के फल

स्वोच्च राशि में स्थित ग्रह पूर्ण शुभ फल करता है, नीच राशि स्थित ग्रह शुभ फल का नाश तथा शत्रु राशि में स्थित ग्रह किञ्चित् शुभ फल करता है, एवं मित्र गृह में स्थित ग्रह चतुर्थांश, स्वगृह में अर्द्ध और मूल त्रिकोण में पादोन शुभ फल को देता है।

एवं यदि ग्रह पाप फलद होकर नीच राशि में हो तो पूर्ण पाप फल, शत्रु की

राशि में कुछ कम अशुभ फल होता है तथा उच्च राशि में हो तो नाम मात्र भी अशुभ फल नहीं होता है। एवं मित्र गृह में रहने से पादोन स्वगृह में अर्द्ध त्रिकोण में चतुर्थांश अशुभ फल देता है।

औत्पातिक, अस्त, कान्ति रहित नीच राशि स्थित तथा शत्रु राशि स्थित और युद्ध में पराजित ग्रह, यावत् शुभ फल है, उसका नाश और यावत् अशुभ फल है, उसकी सम्यक् वृद्धि करते हैं।

उच्चादि ग्रहों में स्थित ग्रहों के फल

उच्च बल से युक्त ग्रह अति ऐश्वर्य का साधन करता है तथा त्रिकोण बल से युक्त ग्रह पुरुष को सेनापति अथवा मन्त्री करता है।

स्वराशि के बल से युक्त ग्रह हर्ष युक्त, धनधान्य सम्पदा से युक्त करता है एवं मित्र बल से युक्त ग्रह यशस्वी बनाता है।

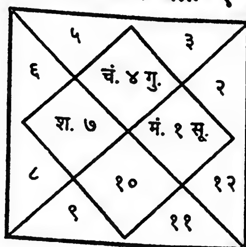
तथा निज (स्व) होरा के बल से युक्त ग्रह पुरुष को अत्यन्त तेजस्वी, सुन्दर, स्थिर विभव युक्त तथा राजा से धन की प्राप्ति और पुरुषार्थी करता है।

द्रेष्काणादिबल युक्त ग्रहों के फल

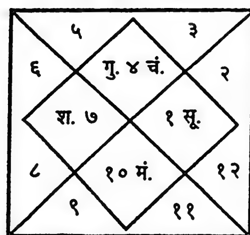
स्व द्रेष्काण बल से युक्त ग्रह पुरुष को गुण ग्राही और स्व नवांश बल से युक्त ग्रह पुरुष को प्रसिद्ध करता है।

स्व सप्तमांश बल से युक्त ग्रह पुरुष को साहसी, कीर्तिवान् तथा धनाढ्य करता है। स्व द्वादशांश बल से युक्त ग्रह कार्य में लीन और परोपकारी बनाता है।

कारक योग चक्र-१



कारक योग चक्र-२



त्रिंशाश बल से युक्त ग्रह सुखी और गुणवान् करता है एवं शुभ ग्रह की दृष्टि बल से युक्त ग्रह पुरुष को प्रसिद्ध, धनाढ्य, यशस्वी, प्रधान, श्रेष्ठ,सौभाग्यवान् और सुखी करता है।

तथा पुंस्त्री भवन के बल से युक्त ग्रह पुरुष को लोकमान्य, कला में चतुर, प्रसन्नचित्त, सुन्दर और आस्तिक बनाता है।

स्थानादिबल युक्त ग्रहों का फल

स्थान बल से युक्त ग्रह स्थिति, सौख्य, मित्र, भाग्य आदि से युक्त, स्थिर चित्त वाला और मनुष्य को स्वतन्त्र कर्म करने वाला करता है।

दिशा बल से युक्त ग्रह पुरुष को स्व दिशा में ले जाकर वस्त्र, भूषण, वाहन तथा सुख से युक्त करता है।

अयन बल से युक्त ग्रह अपने दिशा में विविध अर्थ को देता है।

चेष्टा बल से युक्त ग्रह कभी राज्य, कभी पूजा, कभी द्रव्य, कभी यश चित्र-विचित्र प्रकार से देता है।

वक्रादि ग्रहों का फल

शुभ ग्रह वक्री होने पर अत्यन्त बलवान् होते हैं और पुरुष को राज्य प्रदान करते हैं एवं पापग्रह वक्री होने पर पुरुष के लिए व्यसनप्रद और व्यर्थ भ्रमणकर होते हैं।

स्फुट रश्मि युक्त युद्ध में विजयी ग्रह पुरुष को स्वस्थ शरीर युक्त सम्पूर्ण शुभता को प्रदान करते हैं तथा राज्य व शत्रुओं से विजयी करते हैं।

दिवा-रात्रि जनित बल से युक्त ग्रह भूमि, हाथी, घोड़े आदि का लाभ व ऐश्वर्य की वद्धि कर व शत्रु पक्ष को मलिन कर लक्ष्मी की वृद्धि करता है।

वर्षेश से द्विगुणित मासेश, मासेश से द्विगुणित दिवाधीश एवं दिवाधीश से द्विगुणित होराधीश अपनी-अपनी दशा में सुख, धन तथा यश को देते हैं।

पक्षादि बल युक्त ग्रहों का फल

पक्ष बल से युक्त ग्रह शत्रुओं का नाश, रत्न, वस्त्र, हस्ति, सम्पद, सुवर्ण, भूमि का लाभ तथा अत्यन्त उज्ज्वल कीर्ति को देता है तथा सम्यक् बल युक्त ग्रह सर्वदा राज्य व सौख्य तथा मनोरथ से भी अधिक देता है।

यदि शुभ ग्रह बलयुक्त हों तो पुरुष आचार, सत्य, कल्पाण और पवित्रता से युक्त सुन्दर, तेजस्वी, कृतज्ञ, देवता-ब्राह्मणों का भक्त, माला-वस्त्र, सुगन्ध, जल तथा भूषण का प्रिय होता है।

यदि पाप ग्रह बल युक्त हों, तो पुरुष लोभी, कुकर्म में लीन, स्वकार्य साधन में तत्पर, साधुओं का द्वेषी व कलह तथा अज्ञान युक्त क्रूर, सदा हिंसा में तत्पर, मलिन, कृशित, परनिन्दक और कुरुप होता है।

ग्रहों के मित्रादि स्थान सम्बन्ध से अवस्था

स्व राशि अथवा मित्र राशि स्थित ग्रह की बाल संज्ञा, स्वत्रिकोण गत ग्रह की कुमार संज्ञा, स्वोच्च संस्थित ग्रहों की युवराज संज्ञा; शत्रु क्षेत्र संस्थित ग्रह की वृद्ध संज्ञा और नीच राशि संस्थित ग्रह की मरण संज्ञा है।

अपने-अपने फल युक्त ग्रहों की दशा होती है। बाल संज्ञक ग्रह की दशा

में सुखी, कुमार में सुशील, यौवन में राजा, वृद्ध में व्याधि, ऋण की वृद्धि और मरण की दशा में मरण तथा व्यय होता है।

स्त्री-पुरुष राशिस्थ ग्रह का फल

यदि शुभ ग्रह विषम राशि में स्थित हों, तो पुरुष धीर बलवानों से युद्धकांक्षी निचेष्ट, कठिन, चित्त वाला, क्रूर तथा मूर्ख होता है।

तथा यदि शुभ ग्रह सम राशि में स्थित हों, तो पुरुष मृदु, सङ्ग्राम में भीरु (डरपोक), जल, पुष्प-वस्त्र में लीन, सौम्य तथा सुन्दर और अपने जनों से सदा हृष्ट (प्रसन्न) रहता है।

ग्रहों का पारस्परिक कारकत्व

जन्मादि चक्र में जो ग्रह स्वक्षेत्र, स्वमूल त्रिकोण, स्वोच्च में स्थित हो कर यदि केन्द्र में हों, तो परस्पर वे कारक ग्रह होते हैं। ये ग्रह यदि लग्न से केन्द्र ही में हों, तो परस्पर कारक संज्ञक होती है, यह मत हरिनाम के आचार्य का है।

यथा कर्क लग्न में चन्द्रमा-बृहस्पति, तुला में शनि, मेष में मंगल और रवि हों, तो ये परस्पर कारक ग्रह कथित हैं। यह ग्रह स्थिति उदाहरणार्थ बताया गया है।

कुछ विद्वानों के मत के अनुसार कारक ग्रह के उदाहरण हैं।

तथा चाणक्य का मत है कि स्वोच्च, स्वमित्र, स्वगृह, स्वनवांश में स्थित ग्रह हों, तो परस्पर चतुर्थ-दशम स्थित ग्रह कारक होता है। उसको प्रधान न मानकर स्वोच्चादि स्थित ग्रह-लग्न केन्द्र को छोड़कर अन्यत्र भी परस्पर चतुर्थ-दशम स्थित ग्रह कारक होते हैं। यह चाणक्य का मुख्य मत है। तथा विशेषत: दशम स्थित सूर्य प्रधान कारक होता है।

लग्न स्थित, चतुर्थ संस्थित तथा दशम स्थित ग्रह सभी कारक होते ही हैं तथा किसी आचार्य का मत है कि एकादश स्थान संस्थित ग्रह भी कारक होते हैं। परञ्च यह मत मुनि संमत नहीं प्रतीत होता है।

इसका तात्पर्य ऐसा भी लिया जाता है कि स्वोच्चादि से भिन्न भी ग्रह लग्न, चतुर्थ, दशम आदि भावों में स्थित हो कर कारक होते हैं। एकादशभाव स्थित ग्रह भी कारक होते हैं, लेकिन इसे गौण माना गया है।

इस प्रकार जिसके जन्म समय में पूर्वोक्त कारक ग्रह हों, वह नीच वंशोत्पन्न मनुष्य भी प्रधानता को प्राप्त करता है तथा जो राजकुलोत्पन्न है, वह तो राजा होता ही है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए।

योगों में कारक वेध बलवान् तथा प्रधान है। ऐसा हरिनाम के आचार्य द्वारा कहा गया है। अतएव योग कारक के वेधादि से फल निर्देश करना चाहिये।

दिवस आदि के स्वामी ग्रह

रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि ये दिनादि दिन-मास-वर्ष-होरा आदि के स्वामी होते हैं तथा आश्विनादि मास व वर्ष में प्रथम दिन का स्वामी मासेश व वर्षेश होता है। दिनेश से क्रम से चतुर्थ ग्रह वर्षेश होते हैं तथा दिनाधिप से छठवाँ २ ग्रह क्रम से काल होरा का स्वामी होता है। जैसाकि वशिष्ठ का कथन है—

"वारप्रवृत्तेर्गदिता दिनेशात्कालाख्य होरापतयः क्रमेण।
सार्धेन नाड़ी द्वितयेन तष्टः षष्ठश्च षष्ठश्च पुनः पुनः स्यात्"॥

एवं प्रत्येक अहोरात्र में २४ काल होरा होता है, इसके विशेष जानकारी के लिये 'मू.चि.पीयूष धारा टीका' देखना चाहिए। अब मासेश कहते हैं—प्रत्येक मासादि पूर्वमासादि से इकतीसवें दिन होता है, गतमास को ३० से गुणा कर सात से भाग दे। शेष दिनादि होता है, इसे वर्षेश से गिने, जो दिनादि हो वह मासेश होता है।

चैत्रादि शुक्ल प्रपिपद् से एकतीसवें दिन प्रत्येक मास का शुक्ल प्रदिपद् होता है एवं मेषादि राशियों की भी ३१वें अंश पर प्रवृत्ति होती है।

इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि आकाशीय ग्रह कक्षा क्रम पूर्वाचार्यों ने इस प्रकार बताया है—शनि-गुरु-मंगल-सूर्य-शुक्र-बुध-चन्द्रमा 'मन्दादधः क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपाः' (सूर्यसिद्धान्त अ० १२, श्लो ७८) इससे ही होरेश, दिनेश, मासेस व वर्षेश का निर्धारण किया गया है। इसके अनुसार ही शनि से चन्द्र पर्यन्त सात होरेश उनकी त्रिरावृत्ति से प्रत्येक दिन उसकी २४ होरा व्युत्पन्न होती हैं। यहाँ शनि से सूर्य चौथा, सूर्य से चन्द्र चौथा, चन्द्र से मंगल चौथा, मंगल से चौथा बुध, बुध से चौथा गुरु, गुरु से चौथा शुक्र, शुक्र से चौथा शनि क्रम से रवि आदि सात वार व्युत्पन्न होते हैं। इन सात दिनों के सूर्योदय काल से जो प्रथम होरा होता है, उस वार का वारेश वही होता है। यथा—रविवार का प्रथम होरा रवि का अर्थात् वार का नाम हुआ रविवार और वारेश हुआ रवि; इस तरह अन्यत्र भी जानना चाहिए। इस तरह वर्ष के आरम्भ में जो सूर्यादि वारेश, वही वर्षेश और मासारम्भ में जो वारेश वही मासेश एवं दिवसारम्भ में ज़ो होरेश, वही वारेश होता है।

उपरोक्त में कहा गया है कि—प्रथम वर्षेश से, रव्यादि वार क्रम में, चौथा वारेश दूसरे वर्ष का वर्षेश होता है। इसी तरह इससे चौथा तीसरे वर्ष का वर्षेश होता है। अन्यत्र भी इसी तरह जानें। दिनरात के २४ घण्टे, जहाँ १ घण्टा = २/३०

घट्यादि, अर्थात् ६० घटी के दिनरात में २४ होरेशों का ज्ञान प्रथम होरा स्वामी से छठवाँ-छठवाँ रव्यादिवारक्रम में होता है। प्रथम से षष्ठ-द्वितीय, द्वितीय से षष्ठ-तृतीय, तृतीय से षष्ठ-चतुर्थ होरेश का ज्ञान होता है। इसी तरह आगे भी जानना चाहिए।

इस तरह शुभाशुभ फल ज्ञानार्थ होरा, दिवस, मास व वर्ष चार कालखण्डों का व्यवहार किया जाता है, जिनमें सबसे सूक्ष्म 'होरा' ही होता है। इनके ज्ञान की विधि साररूप में बालबोधार्थ पुनः दे दी जा रही है—

प्रथम वर्ष के ज्ञात स्वामी यदि मंगल हो, तो द्वितीय वर्ष का स्वामी उससे चौथा शुक्र हुआ। इसी तरह शुक्र से चौथा चन्द्र तृतीय वर्ष का स्वामी, चन्द्र से चौथा गुरु चतुर्थ वर्ष का स्वामी आदि जानना चाहिए। यह रवि आदि सप्तवार क्रम में जानें।

इस प्रकार एक सावन वर्ष में ३६० दिन; अतः द्वितीय वर्ष में आरम्भ दिन तक ३६१ दिन होते हैं। ३६१ में ७ से भाग देने पर लब्धि ५१ और शेष ४ होते हैं। इस प्रकार द्वितीय वर्ष का स्वामी (द्वितीय वर्षेश) प्रथम से चौथा ग्रहण करना चाहिए।

मासेश ज्ञानार्थ-प्रथम मास का ज्ञात स्वामी चन्द्र हो, तो उससे छठे मास का स्वामी जानने के लिए गतमास संख्या ५ को ३० से गुणा किया, तो १५० हुआ; इसमें छठे मास की एक दिन की संख्या जोड़ा तो १५१ हुआ, इसमें ७ से भाग देने पर २१ लब्धि और ४ शेष होने से चन्द्र से चतुर्थ गुरु षष्ठम मास का स्वामी या मासेश हुआ।

वारेश (दिवसेश) अभीष्ट दिन सूर्योदयकालिक प्रथम होरेश ही वोरश होता है। जैसे चन्द्र वार को प्रथम होरेश चन्द्र होता है, अतः वही वारेश भी हुआ।

होरेश का ज्ञान 'होरेशाः सूर्यतनयाद् अधोऽधः क्रमशस्तथा' (सूर्यसिद्धान्त अ-१२, श्लो-७९) या आरम्भ में बताये अनुसार करना चाहिए।

भावोक्त कर्म साधन काल

जिस ग्रह का जो भाव हो उस भाव का कर्म (कार्य) उस ग्रह की राशि में करना चाहिये अथवा उस ग्रह की राशि से राशि उपचय स्थान में ग्रह के रहने पर अथवा उसकी राशि के लग्न में रहने पर उस कार्य को करे।

जो कार्य जिस ग्रह के दिन में कथित हो, वह कार्य उस ग्रह के होरा, वर्ष, मास तथा मूहूर्त में करना चाहिये तथा चरण की वृद्धि से क्रमशः भावोक्त कर्म फल की सिद्धि होती है।

व्यवहारार्थ पदार्थ स्वामी

सर्प, उर्ण (ऊन), पर्वत, सुवर्ण, शस्त्र, विष, अग्नि, औषध, नृप म्लेच्क्ष, समुद्र, तार (मोती-रजत), जङ्गल, काष्ठ तथा मन्त्र का स्वामी सूर्य है।

कवि, पुष्प,भोज्य, मणि, रजत (चाँदी), शङ्ख, नमकीन, जल, वस्त्र, भूषण, स्त्री, घृत, तिल, तेली तथा निन्द्रा के स्वामी चन्द्रमा है।

लाल कमल, ताम्र, सुवर्ण, रक्त, पारा, मन, शिलादिपत्थर, भूमि, नृप, अधोपत्तन, मूर्च्छा, पित्त सम्बन्धी विकार तथा चोरों का स्वामी मंगल है।

वेद लेख, चित्रकारी, वैद्यक, नैपुण, मन्त्री, दूत, विदूषक, पक्षी, युग्म, ख्याति (प्रसिद्धि) वनस्पति तथा सुवर्ण का स्वामी बुध है।

माङ्गल्यकार्य, धर्म, पौष्टिक (यज्ञ), गौरव, शिक्षा, आवश्यककार्य, पुर, राष्ट्र, वाहन, आसन, शय्या, सुवर्ण, धान्य, गृह तथा सन्तान का स्वामी बृहस्पति है।

वज्र, मणि, रत्न, भूषण, विवाह, गन्ध (सुगन्धित द्रव्य), सुन्दर माला, युवती, गोबर, निदान, विद्या, निधि, वन तथा रजत का स्वामी शुक्र है।

लाह, शीशा, काल, लोह, कुधान्य, मृत बन्धु, मन्द, सेवक (अल्प वेतन पाने वाले नौकर), नीच, स्त्री, पण्यक, दास, दरिद्र तथा दीक्षा के स्वामी शनि है।

ग्रहों के जन्म स्थान

सूर्य कलिङ्ग देश में, यवन देश (अरब, काबुल) में चन्द्रमा, उज्जैन में मंगल, मगध देश में बुध, सैन्धव देश में बृहस्पति, समदेश में शुक्र, सौराष्ट्र में शनि और द्राविड़ देश में राहु व केतु का जन्म जानना चाहिए।

गर्भाधान

उत्पति के विना राश्यादि फल विभाग किस का किया जाय ? अतएव समस्त प्राणियों का कारणभूत आधान (गर्भाधान) का विवेचन किया जाता है।

स्त्री के जन्म राशि से अनुपचय राशि (१/२/४/५/७/८/९/१२) में चन्द्रमा, मंगल से दृष्ट हो, तो प्रतिमास में आर्त्तव होता है, ऐसा किसी आचार्य का मत है।

चन्द्रमा जल का स्वामी तथा भौम अग्नि का स्वामी है तथा जल रुधिर स्वरूप और अग्नि पित्त स्वरूप है, एवं जब रक्त पित्त से क्षुभित होता है, तब प्रतिमास में रजोदर्शन होता है।

एवं जो रजोदर्शन होता है, वह गर्भाधान के हेतु होता है तथा यदि चन्द्रमा उपचय (३/६/१०/११) स्थान में स्थित हो, तो उस समय का रजोदर्शन व्यर्थ होता है।

पुरुष के जन्म स्थान से यदि चन्द्रमा उपचय स्थान में बृहस्पति अथवा वह शुभ ग्रह से दृष्ट हो, तो उसकी स्त्री पति के साथ सम्भोग (मैथुन) को प्राप्त होती है। विशेष करके शुक्र दृष्ट हो, तो अवश्य संयोग प्राप्त करती है।

यदि वह चन्द्रमा मंगल से दृष्ट हो, तो वह रजस्वला वैश्य से, रवि से दृष्ट हो, तो राजपुरुष से, शनि से दृष्ट हो, तो नौकर के साथ संयोग को प्राप्त करती है।

वह दृष्टि फल एक ही ग्रह की दृष्टि हो तो कहा जाता है। अधिक ग्रहों की दृष्टि से नहीं तथा यदि उस चन्द्रमा को भौमादि सभी पाप ग्रह देखतें हों, तो स्त्री गृह को छोड़ वेश्या पद को प्राप्त करती है। बादरायण के अनुसार—

पुरुषोपचयगृहस्थो गुरुणा यदि दृश्यते हिममयूषः।
स्त्री-पुरुष संप्रयोगं तदा वदेदन्यथा नैव इति ॥

ग्रहों की अवस्था

ग्रहों की अवस्थाओं के कई प्रकार आचार्यों ने बताए हैं। ग्रहों की इन अवस्थाओं का विचार दशाफल, गोचर विचार व जन्मपत्री फल विचार से सर्वत्र करना चाहिए। अवस्था को ध्यान में रखकर फल कहने से चमत्कारिक फल घटित होता है।

दीप्तादि अवस्थाएँ

दीप्त, स्वस्थ, मुदित, शान्त, शक्त, निपीड़ित (अतिदुःखी) भीत, विकल व खल ये नौ अवस्थाएँ विभिन्न ग्रन्थों में थोड़े बहुत भेद से बताई गई हैं।

अपनी उच्च राशि में स्थित ग्रह **दीप्त** कहलाता है। अपनी राशि में स्वस्थ होता है। अपने अतिमित्र की राशि में मुदित होता है तथा निसर्ग मित्र के घर में शान्त होता है। कुछ विद्वान् शुभ ग्रहों के वर्गों में होने पर शान्त मानते हैं।

उदित अर्थात् अस्त न हो वह ग्रह 'शक्त' अर्थात् फल देने में समर्थ होता है।

ग्रह युद्ध में पराजित ग्रह निपीड़ित या अति दुःखी माना जाता है।

अपनी नीच राशि में स्थित ग्रह भीत अर्थात् डरा हुआ और अस्त अर्थात् सूर्य के साथ होने से जो दिखाइ न दे वह ग्रह विकल कहलाता है।

अधिक पापवर्गों में स्थित खल अवस्था में बताया गया है।

उक्त मत सारावली पर आधारित है। ग्रन्थान्तरों में थोड़ा बहुत भेद बताया गया है, जैसे जिस स्थिति को सारावली ग्रन्थ 'विकलावस्था' बताती है तो दूसरे ग्रन्थ कोपी अवस्था बताते हैं। इसी रतह कोई युद्ध में पराजित होने पर खल अवस्था कहते हैं। हमें सारावली का मत अधिक ठीक प्रतीत होता है। इनमें शुभ नाम वाली

अवस्थाएँ—दीप्त, स्वस्थ, शान्त अवस्थाएं सामान्य शुभ फलप्रद होती हैं, तथा अशुभ नामों की अवस्थाएं अशुभ फल देती हैं। दशा फल विचार में इन अवस्थाओं का विचार अवश्य करना चाहिए।

बालादि अवस्थाएँ

बाल, कुमार, युवा, वृद्ध, मृत अवस्थाएं एवं स्वप्न जाग्रत, सुषुप्ति अवस्थाओं का विवेक हम पहले ग्रह प्रकरण में कर चुके हैं। इनमें बालवस्था में ग्रह अपना थोड़ा-सा फल दे पाता है, कुमार आधा फल, युवा सम्पूर्ण शुभ फल, वृद्ध एवं मृतावस्था वाला ग्रह अशुभ फल देता है। इसी तरह जाग्रत अवस्था कार्य साधन कराने वाली, स्वप्न मध्यम फल वाली व सुषुप्ति निष्फल जाननी चाहिए। ये अवस्थाएँ स्वरशास्त्र में बताई गई हैं, अत: इनके आधार पर दशाफलादि का विशेष विचार नहीं करना चाहिए। इनका केवल सांकेतिक विचार करें।

अभिलाषी व असूर्यगावस्था

जो ग्रह अपने उच्च में पहुँचना ही चाहता हो तो वह उच्चाभिलाषी, मूल त्रिकोण में पहुँचने ही वाला 'मूलत्रिकोणाभिलाषी' एवं स्वक्षेत्र में पहुँचने को उद्यत ग्रह 'स्वक्षेत्राभिलाषी' होता है। ऐसे ग्रह जितने ही अधिक अपनी उच्चादि राशियों के निकट होते हैं उतना ही अच्छा फल वैसे ही देते हैं, मानो वे सचमुच उच्चादि में ही हों।

इसी प्रकार सभी उच्चादि ग्रह यदि सूर्य की अधिष्ठित राशि से आगे होंगे तो विशेष फल देंगे। इसके विपरीत सूर्य की राशि की ओर बढ़ता हुआ ग्रह जितना सूर्य के निकट पहुँचता जाएगा उतना ही उसका सारा शुभ फल क्रमिक रूप से कम होता जाएगा। ऐस ग्रहों को क्रमशः असूर्यग व सूर्यग कहते हैं। इन बातों का विचार सभी फल प्रकारों में करना चाहिए। लेकिन ध्यान रखिए कि बुध व शुक्र यदि सूर्य की ओर बढ़ रहे हों या बुध सूर्य के साथ हो तो विशेष दोषप्रद नहीं होता है। इसी प्रकार मंगल यदि शत्रु क्षेत्र में हो तो विशेष फल हानि नहीं करता है।

लज्जितादि अवस्थाएँ

लज्जित, गर्वित, क्षुधित, तृषित, मुदित व क्षोभित ये ६ अवस्थाएँ पूर्वोक्त से भिन्न हैं। ये भी फल विवेक में विचारणीय हैं। इनमें से गर्वितावस्था पूर्वोक्त 'दीप्तावस्था' का ही प्राय: दूसरा नाम है। अर्थात् ग्रह अपनी उच्च या मूल त्रिकोण राशि में गर्वित कहलाता है। इसी प्रकार पहले अधिमित्र की राशि में मुदित बताया गया था। यहाँ मित्र क्षेत्र में व बृहस्पति के साथ होने से मुदित होगा। ये अच्छा फल देते हैं। भावफल व दशा फल को पुष्ट करते हैं।

पंचम स्थान में राहु तथा केतु के साथ स्थित ग्रह अथवा सूर्य, शनि, मंगल से युक्त ग्रह, किसी भी भाव में हो तो लज्जित होता है। ऐसा ग्रह पंचम में हो तो पुत्रनाशक अथवा जिस भाव में हो, उस भाव के फल को घटाता है।

शत्रुक्षेत्री, शत्रुदृष्ट, शत्रुयुत, शनि युत या दृष्ट ग्रह 'क्षुधित' कहलाता है। सूर्य के साथ बैठकर पापयुक्त दृष्ट हो तो 'क्षोभित' कहलाता है। ये दोनों ग्रह जहाँ बैठते हों, भाव का नाश करते हैं। यदि दशम भाव में ये ग्रह हों तो व्यक्ति निश्चय से कामचोर व दरिद्री होता है।

यदि जल राशियों में बैठा ग्रह शत्रु युक्त या दृष्ट हो तथा शुभ ग्रहों से न देखा जाता हो तो वह 'तृषित' कहलाता है।

ये क्षोभित, क्षुधित व तृषित ग्रह केन्द्र व त्रिकोणों में बहुत खराब होते हैं। सातवें हों तो पत्नी घातक योग, लग्न में हों तो आत्मनाश योग, चतुर्थ में हों तो सुख का लेश भी नहीं मिलेगा, एवं ५-९ में हों तो विशेषतया धन, पुत्र व भाग्य में बाधक होते हैं। दशाफलादि विवेक में इन अवस्थाओं का भी समन्वय करना चाहिए।

स्नानादि अवस्थाएँ

स्नान आदि २७ अवस्थाएँ होती हैं। इनका साधन यदि हो सके तो अवश्य करें तथा दशाफल कहने के समय विशेषकर ध्यान में रखें। इनका फल रामबाध की तरह अमोघ है।

साधन विधि

जन्मलग्न की राशिसंख्या में ग्रह की अधिष्ठित राशि की संख्या जोड़ लें।। इस योगफल को दुगुना करें तथा फिर ग्रह के विंशोत्तरी दशा वर्षों से गुणा कर लें। गुणनफल में २७ का भाग दें तो शेष संख्या तुल्य 'स्नानादि अवस्थाएँ' क्रमशः होती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. स्नान	२. वस्त्र धारण	३. आमोद
४. पूजारम्भ	५. प्रार्थना	६. पूजा
७. यज्ञारम्भ	८. प्रभुध्यान	९. उपवेश
१०. प्रदक्षिणा	११. भावना	१२. अतिथि सत्कार
१३. भोजन	१४. जल सेवन	१५. क्रोध
१६. ताम्बूल भक्षण	१७. वसति	१८. किरीट धारण
१९. मन्त्र	२०. विलम्ब	२१. शयन
२२. मद्यपान	२३. मिष्ठान्न पान	२४. धनागम
२५. किरीट त्याग	२६. शयन	२७. रति

उदाहरणार्थ कर्क लग्न में शुक्र कुम्भ राशि में हो तो लग्न संख्या ४ + शुक्र राशि ११ = १५ × २ = ३० × २० शुक्रदशा वर्ष = ६०० ÷ २७ शेष ६। अत: छठी अवस्था पूजा में शुक्र है। इन अवस्थाओं का फल यहाँ संकेत मात्र से बताया जा रहा है।

फल निर्णय

स्नानावस्था में मान-सम्मान, परिवार-सुख व सफलता होती है।

वस्त्रधारण में उत्तम वस्त्राभूषण पहनने की सामर्थ्य।

आमोद में विदेश लाभ और कीर्ति।

पूजारम्भ में भूमिलाभ, वाहन व मान।

प्रार्थना में राजभय, कष्ट, बदनामी व हानि।

पूजा में आदर, सम्पत्ति।

यज्ञारम्भ में पित्तविकार, कष्ट व विद्या।

प्रभुध्यान में शत्रुनाश व भूमि से लाभ।

उवेश में वाहन सुख, मधुर वाणी।

प्रदक्षिणा में लांछन, दस्त व जिगर तिल्ली के कष्ट। भावना में सफलता व पिरवार सुख।

अतिथि सत्कार में अभिमान वृद्धि व गड़े धन की प्राप्ति।

भोजन में कपट, रोग, हीनाचरण, बहिष्कार।

जलसेवन में दुराचरण, खराब भोजन।

क्रोध में बदनामी होती है।

ताम्बूल में गुप्त विद्या, जय व धन प्राप्त होता है।

मन्त्र में तन्द्रा, मिथ्याचरण व मीठी वाणी होती है।

विलम्ब में विद्धत्ता लेकिन असावधानी व आलस्य होता है।

शयन में क्रूरता, रोग व परिवार में उपद्रव होता है।

मद्यपान में प्रमाद, मित्रद्रोह, तिरस्कार व संहार बुद्धि प्राप्त होती है।

मिष्टान्न में अच्छी सन्तान, रूपवती भार्या, स्वास्थ्य व दोस्तों का प्यार प्राप्त होता है।

धनागम में विनीतता तथा व्यापार में धनलाभ होता है।

किरीट त्याग में उपेक्षा अपने लोगों से कष्ट व धन नाश होता है।

शयन में राजनीति व दीर्घ रोग होता है।

रति में कुलटा से प्रेम, अविश्वास, मन में बेचैनी, पाप रति, दुर्बुद्धि व शत्रुता होती है।

जन्म कुण्डली में अवस्था का फल निर्णय कर, उस ग्रह की दशा में विशेषतया उक्त फलों की प्राप्ति या उदय बताना चाहिए।

शयनोपवेशनादि अवस्थाएँ

ये संख्या में बारह होती हैं तथा इनका साधन कई घड़ियों में होता है। ये हैं—

१. शयन	२. उपवेशन	३. नेत्रपाणि
४. प्रकाश	५. गमन	६. आगमन
७. सभानिवास	८. आगम	९. भोजन
१०. नृत्य लिप्सा	११. कौतुक	१२. निद्रा

(१) साधनार्थ, ग्रह की नक्षत्र संख्या को ग्रह की सूर्यादि क्रम से १।२।३।४ आदि संख्या से गुणा करें।

(२) उक्त गुणनफल को ग्रह जिस नवांश में हो उस नवांश संख्या से गुणा जोड़ लें। योगफल में १२ का भाग देने से शेष अवस्था होती है।

(३) उक्त गुणनफल में इष्ट घटी संख्या, जन्मनक्षत्र संख्या, लग्न संख्या को जोड़ लें। योगफल में १२ का भाग देने से शेष अवस्था होती है।

(४) शेष संख्या को उसी संख्या से गुणा करके उसमें नामाक्षरांक जोड़कर १२ का भाग दें। तब शेष में सूर्यादि क्रमशः ५।२।२।३।५।३।३ जोड़ें व ३ का भाग दें। शेष १ हो तो दृष्टि, २ हो तो चेष्टा व ० शेष हो तो विचेष्टा होती है।

यदि दृष्टिगत अवस्था हो तो अवस्था का फल साधारण, चेष्ट में अवस्था का व्यापक फल व विचेष्टा में साधारण फल मिलता है। इन अवस्थाओं का विस्तृत फल 'बृहत्पाराशर होराशास्त्र' के सम्बद्ध प्रकरण में देख लेना चाहिए।

नामाक्षर स्वरांक बोधक चक्र

स्वरांक	स्वर (अक्षर)					
१	अ	क	छ	ड	ध	भ	व
२	इ	ख	ज	ढ	न	म	श
३	उ	ग	झ	त	प	य	ष
४	ए	घ	ट	थ	फ	र	स
५	ओ	च	ठ	द	ब	ल	ह

कल्पित उदाहरण में सूर्य ९.११°.२०' है तथा सुभाष नामक व्यक्ति की कुण्डली में जन्म लग्न कर्क, जन्म नक्षत्र आर्द्रा है। सूर्य के नक्षत्र श्रवण की संख्या २२ × ग्रह संख्या १ = २२ में सूर्य के अधिष्ठित्र नवांश की संख्या ४ से गुणा किया तो ८८ + इष्ट घटी २५ + जन्म नक्षत्र ६ + लग्न ४ = १२३ ÷ १२ = शेष ३ अर्थात् तीसरी नेत्रपाणि अवस्था हुई।

शेष ३ × ३ = ९ + नामाक्षर ४ = १३ ÷ १२ = शेष १ में जोड़ा सूर्य का अंक ५ = ६ ÷ ३ = शेष ० अर्थात् विचेष्टा हुई। अत: अवस्था का जो भी शुभाशुभ फल होगा वह मामूली रहेगा।

शयनाद्यवस्थाओं के विशेष फल नियम

(१) सामान्यत: शयनावस्थागत ग्रह जहाँ बैठे, उस भाव के फल को बढ़ाता है। दशमस्थान में हानिकारक है।

(२) भोजनावस्था का ग्रह, विशेषतया पाप, सदैव भाव का नाश करता है।

(३) निद्रावस्था का ग्रह सप्तम स्थान में व पंचम स्थान में सदैव शुभ है।

(४) मृत्यु स्थान में निद्रा या शयनावस्था ग्रह दुर्घटनापूर्ण मृत्यु का सूचक है।

(५) उक्त शुभ फल में शुभ ग्रह दृष्टि योग से वृद्धि व पापदृष्टि योग से पापफल में वृद्धि हो जाती है।

(६) दशम स्थान में भोजन, शयनावस्था, निद्रावस्था का ग्रह बहुत खराब है।

(७) दशम स्थान में चन्द्रमा कौतुक या प्रकाशनावस्था में हो तो अच्छा राजयोग होता है।

मुख्य ग्रह सात हैं—सूर्य्य, चन्द्न्मा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि। राहु और केतु छाया ग्रह हैं। इन नवों ग्रहों का संक्षिप्त वर्णन अलग-अलग इस प्रकार किया जाता है।

(१) सूर्य—यह सिंह राशि का स्वामी, मेषराशि में उच्च और तुला में नीच कहलाता है। मेष के १० अंश में परमोच्च और इसी कारण तुला के १० अंश में परम नीच होता है। सिंह का २० अंश तक इसका मूलत्रिकोण शेष में यह स्वगृही कहलाता है। इसको पापग्रह कहते हैं। कालपुरुष का यह आत्मा है। इससे लाली गोराई का बोध होता है। यह पूर्व दिशा का स्वामी और पुरुष ग्रह कहलाता है। प्रकृति में पित्त का बोध कराता है। सूर्य आत्मा, स्वभाव, आरोग्यता, राज्य और देवालय का सूचक तथा पितृकारक है। जातक के पितृविषयक बातों के जानने में सूर्य से विचार किया जाता है। नेत्र, केलजा, मेरुदंड और स्नायु आदि अवयवों पर सूर्य का प्रभाव

होता है। यह शुष्क ग्रह है। लग्न से दशम स्थान में बली होता है और मकर से ६ राशि पर्यन्त इसे चेष्टाबल होता है। ७वें स्थान पर इसकी पूर्णदृष्टि होती है। रेफल आदि (Raphal and others) अंग्रेज ज्योतिषियों का कथन है कि पुरुष कुंडली में सूर्य से दाहिने नेत्र एवं स्त्री कुंडली में बाम नेत्र का विचार होता है।

(२) चन्द्रमा—यह कर्कराशि का स्वामी, वृष में उच्च और वृश्चिक में नीच कहलाता है। बृष के ३ अंश पर परमोच्च तथ वृश्चिक के ३ अंश पर परम नीच है। वृषराशि में ३ अंश के बाद ३० पर्यन्त चन्द्रमा का मूल त्रिकोण है। षष्टी कृष्ण पक्ष से दशमी शुक्ल तक क्षीणज्योति रहने के कारण पापग्रह और एकादशी शुक्ल से पंचमी कृष्ण तक पूर्ण ज्योति रहने के कारण शुभग्रह कहलाता है। काल-पुरुष का चन्द्रमा मन है तथा इससे जातक के मन का विचार किया जाता है। यह रंग में स्वेत तथा पश्चिमोत्तर दिशा का स्वामी है। यह स्त्रीग्रह है तथा जलग्रह भी कहलाता है। बातश्लेषमा इसका धातु है और यह रक्त (लहू) का स्वामी है। यह ग्रह माता, चित्तवृत्ति, शारीरिक पुष्टि राजानुग्रह, सम्पत्ति और चतुर्थ स्थान का कारक है। चन्द्रमा सूर्य के साथ निष्फल होता है। मातृविषयक बातें, राजानुग्रह और मनुष्य के मेधावी आदि होने का विचार चन्द्रमा से होता है। सातवें स्थान पर इसकी पूर्ण दृष्टि होती है। यह जड़ ग्रह है। चतुर्थ स्थान में बली होता है। मकर से ६ राशि में इसे चेष्टा बल होता है। जातक के नेत्र, मस्तिष्क, उदर और मूत्रस्थली का भी विचार चन्द्रमा से किया जाता है। योरोपीय विद्वानों का मत है कि स्त्री कुंडली में इससे दाहिना नेत्र का विचार किया जाता है।

(३) मंगल—यह मेष और वृश्चिक राशियों का स्वामी है। मकर में उच्च और कर्क में नीच कहलाता है। किसी के अनुसार मेष में १८ अंश तक इसका मूलत्रिकोण (देखो चक्र ५) परन्तु जातक पारिजात, साराबली इत्यादि के अनुसार १२ अंश तक और बाद में ३० अंश तक स्वक्षेत्र है। मकर के २८ अंश पर परमोक्ष और कर्कट के २८ अंश पर परमनीच होता है। स्वभावतः पापग्रह है तथा धैर्य और पराक्रम का स्वामी है। रंग में अति लाल होता है। मनुष्य मंगल के प्रभाव से रक्तगौर होता है। यह दक्षिण दिशा का स्वामी तथा पुरुष ग्रह कहलाता है। पंचभूत में अग्नि का बोध कराता है। यह पित्त प्रकृति का होता है तथा शरीर में मज्जा का स्वामी है। शक्ति, भूसम्पत्ति, कृषि, धैर्य, रोग, भ्रात, (अनुज) पराक्रम, अग्नि, सेनापति तथा राजशत्रु का कारक है। तीसरे एवं छठे स्थान का कारक है। यह द्वितीय स्थान में निष्फल होता है। जातक के शरीर के पट्ठा की पुष्टता और निर्बलता इस ग्रह पर बहुत निर्भर करती है। यह शुष्क ग्रह है तथा दशम स्थान में दिग्वली होता है। बक्री अथवा ग्रहयुद्ध में पराजय

करने पर अथवा चन्द्रमा के साथ रहने पर इसे चेष्टा बल होता है। अपने स्थान से मंगल चौथे, सातवें एवं आठवें स्थान पर पूर्णदृष्टि डालता है। यह लंका से उत्तर कृष्णा नदी पर्य्यन्त देशों का स्वामी है।

(४) बुध—मिथुन और कन्या का स्वामी है। कन्या में उच्च तथा मीन में नीच होता है। कन्या के १५ अंश पर परमोक्ष और मीन के १५ अंश पर परमनीच होता है। किसी के अनुसार कन्या में १६ से २० अंश तक इसका मुलत्रिकोण (देखो चक्र ५) परन्तु जातकपारिजात एवं शम्भुहोरा प्रकाश के अनुसार १६-२५ अंश तक मूलत्रिकोण और २६ से ३० अंश तक स्वक्षेत्र होता है। बुध स्वाभावतः न पाप है न शुभ है। पापग्रह अथवा क्षीण चन्द्रमा के साथ पापग्रह हो जाता है और इसके अतिरिक्त शुभ होता है। लग्न में रहने से बली होता है। बक्री अथवा चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टाबल होता है। सूर्य से २९ अंश पर रहने से बुध को ज्योति रहती है और यह वाणी का स्वामी है। इसका रंग हरा है। बुध के प्रभाव से जातक का रंग श्यामवर्ण होता है। यह उत्तर दिशा का स्वामी है। यह नपुंसक ग्रह है और पंचभूत में पृथ्वी है। बात-पित्त-कफ (त्रिदोष) धातु-कारक है। ज्योतिषविद्या, चिकित्सा शास्त्र, मामू, राजकुमार, वाचाशक्ति, गणितविद्या, लेखन कलादि-शास्त्र, शिल्प, वकालत (कानून), वाणिज्य आदि तथा चतुर्थ एवं दशम स्थान का कारक है। परन्तु चतुर्थ स्थान में यह निष्फल होता है। मानव के जिह्वा और उच्चारण के अवयवों का बुध से विचार होता है। यह शुष्कग्रह है तथा अपने स्थान से सप्तम स्थान को पूर्णदृष्टि से देखता है। यह विन्ध्या पर्वत से उत्तर गंगा नदी पर्यन्त देशों का स्वामी है।

(५) बृहस्पति—धन और मीन राशि का स्वामी, कर्क में उच्च तथा मकर में नीच होता है। कर्क के ५ अंश पर अति उच्च और मकर के ५ अंश पर अति नीच है। किसी के अनुसार धन का १३ अंश तक बृहस्पति का मूल-त्रिकोण होता है। जो चक्र ५ में दिखलाया गया है। परन्तु जातकपारिजात, शम्भूहोराप्रकाश के अनुसार १-२० अंश तक। स्वभावतः यह शुभग्रह है तथा सुख तथा ज्ञान का सूचक है। इसका रंग पीत और जातक का रंग काँचनवर्ण बनाता है। पूर्वोत्तर दिशा का स्वामी तथा पुरुष-ग्रह है। पंचभूत में आकाश सूचक है। लग्न में बली तथा बक्री वा चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टाबली होता है, यह ग्रह चर्बी तथा कफ धातु की वृद्धि करनेवाला है। धर्म, कर्म, देव, ब्राह्मण, गृह, पुत्र, बन्धु, पौत्र, पितामह, सत्वगुण, मित्र, मंत्री, धनागार, विद्या, उदर, तथा देश का कारक है। ५वें स्थान में निष्फल होता है। ५,९,१० एवं ११ स्थानों का कारक है। यह पुरुषग्रह है तथा पंचम, सप्तम और नवम स्थानों को पूर्णदृष्टि से देखता देखता है। गौतमिका नदी से विन्ध्यगिरि पर्यन्त देशों का स्वामी है।

(६) शुक्र—वृष और तुला का स्वामी, मीन में उच्च और कन्या में नीच होता है। मीन के २७ अंश पर परमोच्च और कन्या के २७ अंश पर परमनीच होता है। किसी के अनुसार तुला के १० अंश तक यह मूल त्रिकोणस्थ और शेष में स्वगृही कहलाता है। (चक्र ५) परन्तु जातकपारिजात में २० अंश तक और शम्भुहोरा प्रकाश में १५ अंश तक मूलत्रिकोण होना लिखा है। स्वभावत: शुभग्रह है। काल पुरुष की काम चेष्टा का सूचक है। यह अनेक तरह के रंग का बोध कराता है। इस ग्रह के प्रभाव से जातक का रंग ध्यान-गौर होता है दक्षिण-पूर्वी दिशा का स्वामी है। छठे स्थान में निष्फल तथा सातवें स्थान में अनिष्टकर होता है। वक्री होने से वा चन्द्रमा के साथ रहने पर चेष्टाबली होता है। यह स्त्रीग्रह और पंचभूत में जल सूचक है। अतः इसको जलग्रह भी कहते हैं। यह कफ और वीर्य, धातु का कारक है। कलत्र, कामसम्बन्धी कार्यकलाप, सुख, गानविद्या, काव्य, पुष्प, आभरण, नेत्र, वाहन, शय्या, विभव, कविता, राज्ययोग और स्त्री आदि का कारक है। दिन में जन्म होने से कभी २ शुक्र से माता का भी विचार होता है। सांसारिक सुख का विचार इसी ग्रह से किया जाता है। यह सप्तम स्थान का कारक तथा अपने स्थान से सप्तम पर इसकी पूर्ण दृष्टि है। कृष्णा और गौतमी नदियों के बीच के देशों का स्वामी है।

(७) शनि—मकर और कुम्भ का स्वामी है। तुला में उच्च और मेष में नीच होता है। तेला के २० अंश पर परमोच्च और मेष के २० अंश पर परम नीच है। कुम्भ का २० अंश तक उसका मूलत्रिकोण और उसके बाद स्वगृह है। स्वभावतः पापग्रह और दु:ख-सूचक है। इसका वर्ण कृष्ण है तथा पश्चिम दिशा का स्वामी है। सप्तम स्थान में बली और वक्री वा चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टा बली होता है। यह नपुंसक ग्रह कहलाता है तथा पंचभूत में वायु, सूचक और बातश्लैष्मिक धातुकारक है। इसका प्रभाव स्नायु पर पड़ता है। म्लेक्षजाति, शल्य, शूल, रोग, दासदासी, दु:ख, आयु, मृत्यु, विपद और अंग्रेजी विद्या का कारक है। जिस जातक का जन्म-समय रात्रि है उसके लिये शनि मातृ और पितृ-कारक भी होता है। यह शुष्क ग्रह है तथा सम्तम स्थान में निष्फल होता है। यह अष्टम और द्वादश भाव-कारक है। तीसरे, दशवें तथा सातवें स्थानों को शनि पूर्ण दृष्टि से देखता है। गंगानदी से उत्तर हिमालय पर्यन्त देशों का अधिपति है।

(८) राहु—यह वृष में उच्च और वृश्चिक में नीच होता है। कर्क इसका मूलत्रिकोण है। यह स्वभावत: पापग्रह है। इसका रंग कृष्ण है। पश्चिम दक्षिण दिशा

का स्वामी है। यह वायुधातु, सर्प, निद्रा, मुख, पितामह एवं मोक्ष का कारक है। मतान्तर से कन्या राशि का स्वामी है। राहु मिथुन में उच्च कहा जाता है।

(९) **केतु**—यह वृश्चिक में उच्च और वृष में नीच होता है। मकर और तुला इसका मूलत्रिकोण है। यह स्वभावत: पापग्रह है। इसका रंग कृष्ण है तथा यह चर्मरोग, मातामह हस्त, पाद, नीचजाति, क्षुधाजनित कष्ट और मोक्ष का कारक है। मतान्तर से मीन का स्वामी और धन में उच्च होता है। मिथुन में केतु का नीच होना भी कहा जाता है।

(१०) बृहस्पति और शुक्र दोनों शुभ ग्रह ही हैं पर शुक्र से सांसारिक और व्यवहारिक सुखों का तथा बृहस्पति से पारलौकिक एवं आध्यात्मिक सुखों का विचार किया जाता है। शुकजनित अधिकार से आत्मोन्नति नहीं होकर मनुष्य की अन्यान्य सांसारिक उन्नति होती है। परन्तु बृहस्पति सम्पूर्ण आत्म-उन्नति का कारक और पारलौकिक बुद्धि की उत्तजना देनेवाला है। शुक्र के प्रभाव से मनुष्य स्वार्थी और बृहस्पति के प्रभाव से परमार्थी होता है।

शनि और मंगल दोनों पाप-ग्रह हैं। पर दोनों में अन्तर यही है कि शनि यद्यपि बहुत क्रूर ग्रह कहा जाता है तथापि उसका अन्तिम परिणाम सुखद होता है। जैसे अग्नि स्वर्ण को जला कर स्वच्छ कर देता है उसी प्रकार शनि मनुष्य को दुर्भाग्य और दु:ख यन्त्रणा में पेड़ कर शुद्ध बना देता है। परन्तु मंगल उत्तेजना देनेवाला, उमंग और तृष्णा से परिपूर्ण कर देने के कारण सर्वदा दु:खदायक होता है।

(११) फलित ज्योतिष में ग्रहों के बलाबल पर फल निर्णय पूर्णरीति से किया जाता है। परन्तु बलावल साधन, विधि अत्यन्त उलझावे का है और इस पुस्तक में गणित के ऐसे विषय को लिखना अनुचित समझ कर केवल थोड़ी-सी आवश्यक बातें लिख दी जाती हैं। ग्रहों के बल का छ: प्रकार से निर्णय किया जाता है। (१) स्थानबल—(१) स्थानबल जो ग्रह उच्च, स्वगृही, मित्रगृही, मूलत्रिकोणस्थ, स्वनवांशस्थ अथवा द्रेष्काणस्थ है या जिस ग्रह को अष्टवर्ग विधि से चार शुभ रेखायें से अधिक मिलती है, उसे स्थानबल मिलता है। (२) दिग्बल—बु. एवं बृ. लग्न में रहने से; शु. एवं चं. चतुर्थ में रहने से; श. सप्तम में सू. एवं मं. दशम स्थान में रहने से दिग्बली होता है। (३) कालबल—चं. श. मं. को रात्रि में; सू. बु. शुं. को दिन में एवं बु. को सर्वदा कालबल होता है। (४) नैसर्गिक बल—श. मं. बु. वृ. शु. चं. और सू. ये सब शनि से आरम्भ कर उत्तरोत्तर बली होते हैं। (५) चेष्टाबल—मकर

से मिथुन पर्यन्त किसी राशि में रहने से सू. और चं. को चेष्टाबल होता है। तथा मं. बु. वृ. शु. श. को चन्द्रमा के साथ रहने में चेष्टाबल होता है। (६) दृग्बल— शुभदृष्टग्रह दृग्बली होता है। अत्यन्त संक्षिप्तरूप से काम-चलाऊ बातें ये ही हैं।

महर्षि जैमिनि के मतानुसार बलाबल जानने में गणित का उलझावा नहीं है। उनके कथनानुसार साधारणतया इसकी विधि यों है। आत्मकारक ग्रह के साथ अथवा उससे चतुर्थ, सप्तम वा दशम स्थान में जो ग्रह हो वह पूर्ण बली होता है। उससे द्वितीय, पंचम, अष्टमवा एकादश स्थान में रहन से अर्द्धबली होता है। इसी प्रकार तृतीय, षष्ठ, नवम वा द्वादशस्थान में जो ग्रह हो, वह दुर्बल होता है। राशियों का बलाबल बतलाते हुए उनका कथन है कि ग्रहरहित राशि से ग्रहसहित वाली राशि बलवती है। यदि दोनों में ग्रह हों तो अधिक-संख्यक ग्रह वाली राशि बलवती होगी और यदि संख्या भी बराबर हो तो जिसमें उच्च, स्वगृही या मित्रगृही ग्रह हो वही राशि बलवती होती है। इत्यादि।

राशि परिचय

राशियों के नाम व स्वरूप

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन, ये क्रमशः राशि के नाम हैं।

जिनमें कुम्भ कन्धे पर घड़ा लिये हुए पुरुष सदृश, मिथुन गदा सहित पुरुष व वीणा सहित स्त्री परस्पर संसक्त सदृश, परस्पर मुख-पुच्छ संसक्त मीन सदृश मीन राशि, धनुराशि धनुषधारी अश्वजघन पुरुष सदृश, मकर राशि मृगास्य पुरुष सदृश, कन्या राशि नौका पर स्थित हाथ में आग ली हुई कुमारी सदृश और तुला राशि तराजू धारण किये हुए पुरुष सदृश तथा शेष राशि मेष, वृष, कर्क, सिंह और वृश्चिक स्व-स्व नाम सदृश आकृति के जीव हैं।

काल पुरुष के शीर्षादि अङ्ग

मेषादि राशियाँ काल पुरुष के क्रम से शीर्षादि अवयव के रूप में लोक व्यवहार के लिये कल्पित हैं। जैसे—मेष-शिर, वृष-मुख, मिथुन-बाहु, कर्क-हृदय, सिंह-उदर, कन्या-कटि, तुला-वस्ति (नाभि तथा लिङ्ग का अन्तर्भाग), वृश्चिक-लिङ्ग, धनु-उरुद्वय, मकर-जानुद्वय, कुम्भ-जङ्घाद्वय और मीन पादद्वय के रूप में प्रसद्धि है।

इसका प्रयोजन यह है कि जन्म काल में जो अवयव पाप ग्रह से युक्त हो,

उसे कुछ विकार युक्त तथा जो अवयव शुभ ग्रह से युक्त हो, उसे पुष्ट कहना चाहिये, जैसे—मेष पाप ग्रह युक्त हो, तो शिर में विकृति तथा शुभ ग्रह युक्त हो, तो पुष्ट व सुन्दर कहना चाहिये।

राशियों के समानार्थक शब्द

मेषादि राशियों के ये क्रम से पर्यायवाचक शब्द हैं—क्रिय, तावुरु, जुतुम, कुलीर, लेय, पाथोन, जूक, कौर्पिक, तौक्ष (तौक्षिक) आकोकेर हृद्रोग तथा अन्त्य एवं राशि की संज्ञा भवन, ऋक्ष, राशि, क्षेत्र और भ प्राचीन मुनियों से तुल्य अर्थ के लिये कल्पना की गई है।

राशियों के भगण और उसका प्रयोजन

द्वादश (बारह) राशियों का १ भगण होता है उस में सिंह आदि ६ राशियों का रवि तथा कर्क से विलोम ६ राशियों का चन्द्रमा स्वामी है तथा उन दोनों स्थान से और ग्रह भी स्वामी होते हैं, यथा सिंह का सूर्य, कन्या का बुध तथा कर्क का चन्द्रमा, मिथुन का बुध एवं अनुलोम प्रतिलोमादि स्थानों के स्वामी शुक्रादि ग्रह होते हैं जैसा कि आगे कथित है।

जन्म समय सूर्य के भाग में (सिंहादि क्रम से ६ राशियों में) ग्रह हों, तो जातक शूर (वीर), तेजस्वी, साहसी और कर्कादि ६ राशियों में हो तो कोमल, सौम्य तथा सौभाग्य युक्त होता है।

राशियों और नवांश के स्वामी ग्रह

मेष राशि का स्वामी मंगल, वृष का शुक्र, मिथुन का बुध, कर्क का चन्द्रमा एवं सिंहादि राशियों का स्वामी क्रम से सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, शनि व बृहस्पति हैं।

मेषादि राशियों में क्रम से मेष, मकर, तुला व कर्क से नवांश प्रारम्भ होता है। एवं मेष, सिह, धनु राशि में मेष से, वृष कन्या मकर में मकर से, मिथुन तुला कुम्भ में तुला से तथा कर्क वृश्चिक मीन राशि में कर्क से नवांश प्रारम्भ होता है।

राशि स्वामियों के वश से जातक शास्त्र में सभी शुभाशुभ फल कहा गया है, अतएव इसके ज्ञान विना कुछ भी ज्ञात नहीं हो सकता है।

राशियों की संक्षिप्त विशेषता

(१) मेष—यह चर, क्रूर, पुरुष, अग्नितत्व, पूर्व दिशा का स्वामी, मस्तक का बोध करानेवाला पृष्ठोदय, उग्रप्रकृति, रक्तवर्ण एवं पादजलराशि कहलाता है। यह

पित्त-प्रकृति कारक है तथा इसका स्वामी मंगल है। सूर्य इसमें उच्च और शनि इसमें नीच होता है। इस राशि का प्राकृतिक स्वभाव साहसी, अभिमानी और मित्रों पर कृपा रखने वाला है। पहिले नवांश में अर्थात् १ अंश ३१/३ तक अपने प्राकृतिक स्वभाव को विशेषरूप से प्रकट करता है। पाटल देश (वर्तमानकालीन कौन देश है पता नहीं) का स्वामी है।

(२) वृष—स्थिर, सौम्य, स्त्री, पृथ्वीतत्व, दक्षिण दिशा का स्वामी, पृष्ठोदय, श्वेतवर्ण, शरीरका मुख, वायु-प्रकृति-कारक और अर्द्धजल-राशि कहलाता है। इसका स्वामी शुक्र है। चन्द्रमा इसमें उच्च होता है तथा ४ से ३० अंश तक चन्द्रमा मूल-त्रिकोण में कहा जाता है। राहु इसमें उच्च और केतु नीच होता है। इसका प्राकृतिक स्वभाव स्वार्थी, समझ बूझ कर काम करने वाला, परिश्रमी और सांसारिक कार्य में दक्ष होना है। पंचम नवमांश अर्थात् १३१/३ से १६२/३ अंश तक अपने स्वभाव को पूर्णरूप से दिखलाता है। करनाटक (मैसूर) आदि देशों का स्वामी है।

(३) मिथुन—द्विस्वभाव, क्रूर, पुरुष, वायुतत्व, पश्चिमदिशा, शरीर का अंग, बाहु (अंग्रेजज्योतिषियों के अनुसार कंधा और बाहु), शौर्षोदय, कफ—वायु-पित्त (त्रिदोष) विशिष्ट और दुर्वारंग कारक है। इसको निर्जल राशि कहते हैं। बुध इसका स्वामी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव विद्याध्ययनी और शिल्पी है। अपने नवम अंश अर्थात् २६२/३ से ३० अंश तक अपने प्राकृतिक स्वभाव को पूर्णरूप से दिखलाता है और चेरा (वर्तमान कौन देश मालूम नहीं) देश का स्वामी है।

(४) कर्क—चर, सौम्य, स्त्री जलतत्व, उत्तरदिशा, अंग में वक्षस्थल, पृष्ठोदय और लाली गोराई का कारक कहलाता है। यह पूर्णजलराशि कही जाती है। इसका स्वामी चन्द्रमा है। मंगल इसमें नीच होता है। यह राहु का मूलत्रिकोण है। प्राकृतिक स्वभावसे सांसारिक उन्नति में प्रवृत्तिवान, लज्जावान, कार्य करने में स्थिरता और समयानुयायी का सूचक है। यह पहिले नवांश तथा १ से ३१/३ अंश तक प्राकृतिक स्वभाव को पूर्णरूप से प्रगट करता है। यह चोला देश का स्वामी कहा जाता है।

(५) सिंह—स्थिर, क्रूर, पुरुष, अग्नित्त्व, पूर्वदिशा शरीर में हृदय शीर्षोदय, पीतवर्ण, पित्तप्रकृति, परिभ्रमणप्रिय कारक कहलाता है। यह निर्जल राशि है तथा सूर्य इसका स्वामी है। १ से २० अंश तक सूर्य का मूलत्रिकोण और शेष स्वगृह कहलाता है। प्राकृतिक स्वभाव मेष के ऐसा है परन्तु स्वतन्त्रता का प्रेमी और चित्त की उदारता

का लक्षण रखता है। यह पाँचवें नवांश में अर्थात् १३१/३ से १६२/३ अंश तक अपने प्राकृतिक स्वभाव को पूर्णरूप से दिखलाता है। और पांड्यदेश (वर्तमान त्रिचनापली, मदुरा, तंजोर, भिजगापटम आदि प्रदेश) का स्वामी है।

(६) **कन्या**—द्विस्वभाव, सौम्य, स्त्री पृथ्वीतत्व, दक्षिण दिशा, अंग में पेट, शीर्षोदय पाण्डुवर्ण और वायु-प्रकृति कारक है। यह निर्जल राशि है। बुध इसका स्वामी है। बुध इसमें १५ अंश तक उच्च, १६ से २५ अंश तक मूलत्रिकोणस्थ और शेष में स्वगृही होता है। इसका प्राकृतिक स्वभाव मिथुन के जैसा है। परन्तु अपनी उन्नति और मान पर पूर्णध्यान रखने के अभिलाषी का सूचक है। यह नवें नवमांश अर्थात् २६२/३ से ३० अंश पर्यन्त प्राकृतिक स्वभाव को पूर्णरूप से प्रगट करता है। यह केरल देश (ट्रावनकोर) का स्वामी है।

(७) **तुला**—चर, क्रूर, पुरुष, वायुतत्व, पश्चिम दिशा, शरीर में नाभी के नीचे का स्थान, शीर्षोदय, त्रिदोष और श्यामवर्ण कारक है। यह पादजल राशि है और इसका स्वामी शुक्र है। सूर्य इसमें नीच तथा शनि उच्च होता है। इसमें २० अंश तक शुक्र का मूलत्रिकोण और शेष स्वगृह होता है। केतु मित्रराशि है। इस का प्राकृतिक स्वभाव विचारशील, ज्ञानप्रिय, कार्य-सम्पन्न और राजनीतिज्ञ है। यह पहिले नवांश में अर्थात् १ से ३१/३ अंश तक पूर्णरीति से अपने स्वभाव को प्रगट करता है। यह कोल्लास देश का स्वामी है।

(८) **वृश्चिक**—स्थिर, सौम्य, स्त्री, जलतत्व, उत्तरदिशा, शरीर का जननेन्द्रिय (लिंगादि) शीर्षोदय श्वेतवर्ण, कांचनवर्ण और कफ प्रकृति कारक कहलाता है। इसे अर्द्धजल राशि कहते हैं। मंगल इसका स्वामी और चन्द्रमा का यह नीच स्थान है। केतु का इस राशि में उच्च होना भी कहा जाता है और राहु नीच होता है प्राकृतिक स्वभाव से यह दम्भी, हठी, दृढ़प्रतिज्ञ, स्पष्टवादी और निर्मलचित्त का होता है। पंचम नवांश में अर्थात् १३१/३ से १६१/३ अंश तक प्राकृतिक स्वभाव की पूर्णरूप से दिखलाता है। मलय देश (त्रिचनापल्ली और कोयम्बटूर) का स्वामी है।

(९) **धन**—द्विस्वभाव, क्रूर, पुरुष, अग्नितत्व, पूर्वदिशा, शरीर के पैरों की संधि तथा जंघा, पृष्ठोदय, कांचनवर्ण और पित्त प्रकृति कारक कहलाता है। यह अर्द्धजल राशि कही जाता है। बृहस्पति इसका स्वामी है। २० अंश तक इसमें बृहस्पति का मूलत्रिकोण और शेष स्वक्षेत्र होता है। प्राकृतिक स्वभाव से अधिकारप्रिय, करुणामय, और मर्यादा का इच्छुक होता है। नवें नवांश अर्थात् २६२/३ से ३०

अंश पर्यन्त अपने प्राकृतिक स्वभाव को पूर्णरूप से प्रगट करता है। यह सैंधव (सिंध) देश का स्वामी है।

(१०) मकर—चर, सौम्य, स्त्री, पृथ्वीतत्व, दक्षिणदिशा, शरीर के पैरों की गाँठ तथा घुटना, पृष्ठोदय, वायु प्रकृति और पिंगलवर्ण कारक है। यह पूर्णजलराशि कहीं जाती है। शनि इसका स्वामी, बृहस्पति इसमें नीच और केतु मूलत्रिकोण में होता है। स्वभावत: उच्चपदाभिलाषी होता है। यह पहिले नवांश में प्राकृतिक स्वभाव को पूर्ण रूप से दिखलाता है। यह उत्तर पांचाल (युक्त प्रदेश का मध्यभाग) देश का स्वामी है।

(११) कुम्भ—स्थिर, क्रूर, पुरुष वायुतत्व पश्चिम दिशा, शरीर की फिल्ली, शीर्षोदय, विचित्रवर्ण, जलराशि तथा त्रिदोष कारक है। यह अर्द्धजलराशि है। शनि इसका स्वामी है। इसमें २० अंश तक शनि का मूलत्रिकोण और शेष स्वक्षेत्र होता है। प्राकृतिक स्वभाव से विचारशील, शान्त चित्त से नयी बातें पैदा करने वाला और धमारूढ़ होता है। पाँचवें नवांश अर्थात् १३१/३ से १८२/३ अंश तक अपने प्राकृतिक स्वभाव को पूर्णरूपेण दिखलाता है। यह यवन देश (काश्मीर से काबुल तक) का स्वामी है।

(१२) मीन—द्विस्वभाव, सौम्य, स्त्री, जलतत्व, उत्तरदिशा, शरीर के अंग का पैर और सुपती, उभयोदय, कफ प्रकृति और पिंगलवर्ण कारक है। यह पूर्णजलराशि कही जाती है। बृहस्पति इसका स्वामी तथा बुध इसमें नीच होता है। प्राकृतिक स्वभाव से उत्तम स्वभाव वाला, दानी और कोमलचित्त का होता है। नवम नवांश अर्थात् २६२/३ से ३० अंश तक अपने स्वभाव को पूर्णरूपसे दिखालाता है। कोमल देशका स्वामी है। प्राचीन काल में संयुक्त प्रदेश के पूर्व भाग को कोशल देश कहा जाता था जिसकी राजधानी अयोध्या थी।

वर्गोत्तम नवांश द्वाददांश द्रेष्काण होरा आदि विचार

चर राशि (मेष, कर्क, तुला व मकर) में प्रथमनवांश; स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक व कुम्भ) में पञ्चम नवांश और द्विस्वभाव राशि (मिथुन, कन्या, धनु व मीन) में नवम नवमांश वर्गोत्तम नवांश है अर्थात् प्रत्येक राशि में स्वकीय नवमांश वर्गोत्तम है) यदि जन्म समय वर्गोत्तम नवांश हो, तो जातक अपने कुल में प्रधान होता है।

अत: प्रत्येक राशि में द्वादशांश स्वराशि से प्रारम्भ होता है।

राशि त्रिभाग १० अंश परिमित को द्रेष्काण कहते हैं। जिस द्रेष्काण का

विचार करते हैं, वह यदि प्रथम विभाग में हो, तो उसी राशि का स्वामी, यदि दूसरे द्रेष्काण में हो, तो उस राशि से पञ्चम राशि का स्वामी एवं यदि तृतीय द्रेष्काण में हो, तो उससे नवम राशि का स्वामी द्रेष्काणपति होता है।

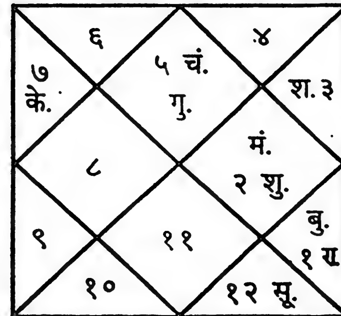
राश्यर्द्ध को होरा कहते हैं, विषम राशि में १५ अंश तक सूर्य की होरा, उसके बाद चन्द्रमा की होरा, एवं समराशि में १५ अंश तक चन्द्रमा की, तदनन्तर ३० अंश पर्यन्त सूर्य की होरा होती है।

।। अथ सगतिका सूर्यादि स्पष्टग्रह तालिका ।।

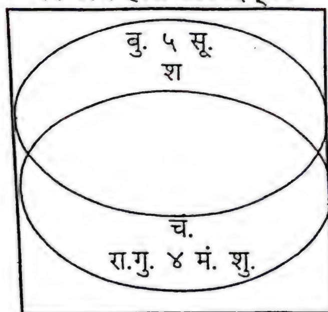
ग्रह	राशि	अंश	कला	विकला	गति-कलादि	मार्गी	अवस्थाः	कारकाः
सूर्य	११	१९	३२	३८	५९/११	मार्गी	कुमार	अमात्य
चन्द्र	४	१७	५६	९	७८८/२३	मार्गी	युवा	मातृ
मंगल	१	१४	२९	१७	३६/२०	मार्गी	युवा	पितृ
बुध	०	६	२२	३८	६१/५४	मार्गी	कुमार	ज्ञाति
गुरु	४	२०	११	३३	५/४८	वक्री	वृद्ध	आत्म
शुक्र	१	४	२३	३२	५४/४१	मार्गी	मृत	स्त्री
शनि	२	१३	१८	१६	२/१६	मार्गी	युवा	पुत्र
राहु	०	१८	४७	७	३/११	वक्री	वृद्ध	भ्रातृ
केतु	६	१८	४७	७	३/११	वक्री	वृद्ध	=



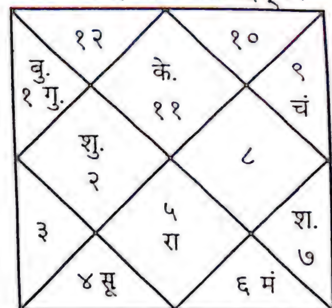
।। अथ राश्यङ्गचक्रमिदम् ।।



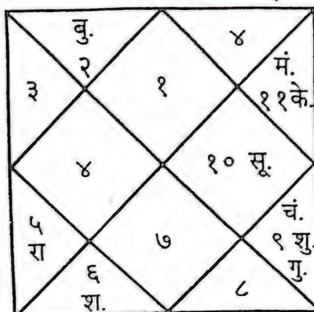
।। अथ होराचक्रमिदम् ।।



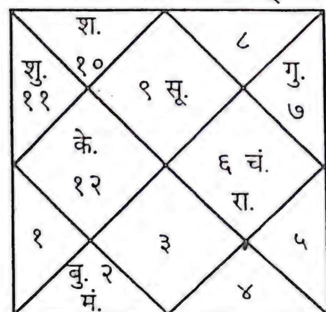
।। अथ द्रेष्काणचक्रमिदम् ।।



।। अथ सप्तमांशचक्रमिदम् ।।



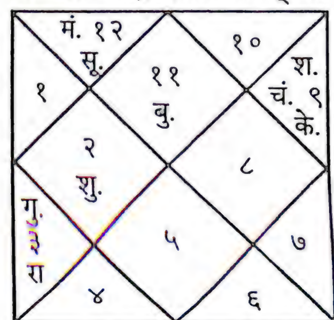
।। अथ नवमांशचक्रमिदम् ।।



।। अथ द्वादशांशचक्रमिदम् ।।



।। अथ त्रिंदशांशचक्रमिदम् ।।



सप्तवर्ग चक्र बनाना

जन्माङ्ग होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश चक्र से षड्वर्ग और उनके साथ सप्तमांश चक्र को रखने पर सप्तवर्ग होता है।

१. जन्माङ्ग चक्र

इस चक्र को बनाने के लिये बारह खानों के आकाशीय रेखाचित्र में ऊपर से ठीक मध्य में स्पष्ट लग्न की राशि संख्या को रखकर अन्य खानों में क्रम से उससे आगे-आगे की राशि संख्यायें लिखी जाती हैं। तदनन्तर स्पष्ट ग्रहों को जो-जो राशि प्राप्त हो, उनको उस उस राशि में रख देने से जन्माङ्ग चक्र तैयार हो जाता है। जैसे पहले ही स्पष्ट लग्न (कुम्भ) की ११वीं राशि संख्या से अन्य राशियों की संख्यायें रखकर ग्रहों को भी उनकी-उनकी राशियों में रख देने से यह चक्र बनायी गई है।

इस चक्र के साथ-साथ **राशिचक्र** भी बनाया जाता है। यह चक्र जन्मराशि को लग्न स्थान में रखकर पूर्ववत् ग्रहों को उनकी-उनकी राशियों में रखने से राशि चक्र तैयार हो जाता है। प्रसङ्गवश बालपाठक के बोध के लिए यहाँ यह भी उल्लेख करना अनुचित नहीं है कि जन्म के समय जो नक्षत्र रहता है, उसे जन्म नक्षत्र और उस नक्षत्र से प्राप्त राशि जन्म राशि होती है। उपरोक्त चक्र में चन्द्र को जन्मराशि की संख्या वाली खाना में रखा गया है।

२. होरा चक्र

प्रत्येक राशि में पन्द्रह-पन्द्रह अंश की दो होरा होती है। विषम राशि में प्रथम सूर्य तथा द्वितीय चन्द्र की होरा रहती है। समराशि में प्रथम चन्द्र तथा द्वितीय सूर्य की होरा रहती है।

कुम्भ जन्म लग्न व लग्नराशि विषम है और १५ अंश से अल्प है। अत: लग्न में सूर्य की होरा होगी। होरा चक्र में केवल दो ही राशि रहती हैं—सिंह तथा कर्क। अत: सिंह राशि लग्न होगी, तब कर्क उसके सम्मुख रहेगी।

सूर्य मीन राशि के १५ अंश से अधिक है। अत: समराशि की दूसरी होरा सिंह राशि में सूर्य रहेगा और चन्द्र सिंह राशि के उत्तरार्ध में है, अत: विषमराशि की दूसरी होरा कर्क में चन्द्र रहेगा। इस तरह अन्य ग्रहों का भी स्थापन करना चहिये।

३. द्रेष्काण चक्र

एक राशि के तृतीयांश को द्रेष्काण कहा जाता है अर्थात् एक राशि में ३ द्रेष्काण रहते हैं। एक-एक द्रेष्काण दस-दस अंश का रहेगा। उनमें प्रथम द्रेष्काण उसी राशि का; दूसरा उससे पञ्चम राशि का तथा तीसरा पहले से नवीं या दूसरे से पञ्चम राशि का रहता है। अर्थात् तीनों द्रेष्काण एक-दूसरे से पञ्चम राशि के रहते हैं।

जन्मलग्न कुम्भ राशि के प्रथम दस अंश में है। अत: लग्न का द्रेष्काण कुम्भ राशि होगी।

सूर्य ११/१९/३२/३८ है। यह द्वितीय द्रेष्काण में है। अत: कर्क राशि के द्रेष्काण में सूर्य रहेगा। चन्द्र ४/१७/५६/५४ सिंह के दूसरे द्रेष्काण (सिंह से पाँचवीं राशि) धनु राशि का रहेगा। इसी प्रकार और ग्रहों का भी साधन करना चाहिये।

४. सप्तमांश चक्र

३० अंश में ७ का भाग देने से अंशादि ४/१७/८ लब्धि प्राप्त होता है। अत: ४/१७ का एक-एक भाग मानकर सात खण्ड किये; उनमें विषमराशि में प्रथमादि खण्ड अपनी राशि से प्रारम्भ होता है और समराशि में प्रथमादि खण्ड अपनी राशि से सप्तम राशि से प्रारम्भ होता है।

लग्न १०/९/५४/९ है। कुम्भ के तीसरे सप्तमांश में आता है। अत: लग्न का सप्तमांश मेष हुआ। सूर्य ११/१९/३२/३८ है। यह मीन के पाँचवें सप्तमांश में है। अत: सूर्य का सप्तमांश (मीन से सप्तम कन्या राशि और इससे पाँचवाँ सप्तमांश) १० राशि हुआ। चन्द्र ४/१७/५६/५४ है। अत: चन्द्र का सप्तमांश सिंह से पाँचवाँ सप्तमांश हुआ। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी जान लेना चाहिये।

५. नवांश चक्र

३० अंश में ९ का भाग देने से अंशादि ३/२० लब्धि प्राप्त होता है। इसी लब्धि तुल्य एक राशि में ९ खण्ड होंगे। मेष, सिंह, धनु राशि में नवमांश का प्रारम्भ मेष से होगा। वृषभ, कन्या व मकर राशि में नवमांश का प्रारम्भ मकर से मिथुन, तुला व कुम्भ राशि में नवमांश का प्रारम्भ तुला से तथा कर्क, वृश्चिक व मीन राशि में नवमांश का प्रारम्भ कर्क से होगा।

लग्न १०/९/५४/९ है। यह कुम्भ के ३ नवमांश में पड़ा। अत: लग्न का नवमांश धनु हुआ। सूर्य ११/१९/३२/३८ है। यह मीन के ६ नवमांश में पड़ा। अत: धनु के नवमांश में सूर्य है। तथा चन्द्र ४/१७/५६/५४ है। यह सिंह के ६ नवमांश में है। अत: चन्द्र कन्या में मेषादि से गिनने पर है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी समझ लेना चाहिये।

६. द्वादशांश चक्र

३० अंशों में १२ का भाग देने से अंशादि २/३० लब्धि प्राप्त होता है। अर्थात् एक राशि में २/३० अंशादिलब्धितुल्य १२ विभाग रहेंगे। उनमें अपनी राशि से ही द्वादशांश का प्रारम्भ होता है।

लग्न १०/९/५४/९ है। यह कुम्भ राशि के चौथे द्वादशांश में वृष राशि का हुआ। अत: लग्न का द्वादशांश वृष राशि हुई। सूर्य ११/१९/३२/३८ मीन राशि के ८वें द्वादशांश में तुला राशि का है। अत: सूर्य तुला के द्वादशांश का हुआ। चन्द्र ४/१७/५६/५४ सिंह राशि के ८वें द्वादशांश मीन का है। अत: चन्द्र मीन राशि के द्वादशांश में रहेगा। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी समझना चाहिये।

७. त्रिंशांश चक्र

विषमराशि में ५, ५, ८, ७, ५ इन अंशों के पांच खण्ड त्रिंशांश में होते हैं। इन खण्डों के स्वामी क्रमश: मंगल, शनि, गुरु, बुध तथा शुक्र हैं और सम राशि में इनके विपरीत खण्ड तथा स्वामी रहते हैं अर्थात् ५/७/८/५/५ इन खण्डों के क्रमश: शुक्र, बुध, गुरु, शनि तथा मंगल स्वामी हैं। खण्ड स्वामियों की दो-दो राशियाँ होती हैं। अत: विषम राशि में उस ग्रह की विषम राशि का त्रिशांश होगा और सम राशि में उस ग्रह की समराशि का त्रिंशाश जानें।

लग्न १०/९/५४/९ विषम राशि के दूसरे खण्ड (शनि) में है। अत: शनि की विषम राशि ११ लग्न की त्रिंशांश हुई। सूर्य ११/१९/३२/३८ समराशि के तीसरे खण्ड (गुरु) में है। अत: गुरु की समराशि १२ सूर्य त्रिंशांश हुई। तथा चन्द्र ४/१७/५६/५४ विषम राशि के तीसरे खण्ड (गुरु) के त्रिशांश में है। अत: गुरु की विषमराशि ९ चन्द्र की त्रिंशांश हुई। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी त्रिशांश निकालना चाहिए।

अथ षड्वर्गचक्रसंज्ञापिकातालिका

	अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
होराचक्र	१-१५	५ र.	४ चं.	५ र.	४ चं.	५ र.	४ चं.	५ र.	४ चं.	५ र.	४ चं.	५ र.	४ चं.
	१६-३०	४ चं.	५ र.	४ चं.	५ र.	४ चं.	५ र.	४ चं.	५ र.	४ चं.	५ र.	४ चं.	५ र.
द्रेष्काण चक्रम्	१-१०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
	११-२०	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
	२१-३०	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
सप्तमांश चक्र	४-१७	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ बृ.	७ शु.	२ शु.	९ बृ.	४ चं.	११ श.	६ बु.
	८-३४	२ शु.	९ बृ.	४ चं.	११ श.	६ बु.	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ बृ.	७ शु.
	१२-५१	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ वृ.	७ शु.	२ शु.	९ बृ.	४ चं.	११ श.	६ बु.	१ मं.	८ मं.
	१७-९	४ चं.	११ श.	६ बु.	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ बृ.	७ शु.	२ शु.	९ बृ.
	२१-२६	५ र.	१२ बृ.	७ शु	२ शु	९ बृ.	४ चं.	११ श.	६ बु.	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.
	२५-४३	६ बु.	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ बृ.	७ शु.	२ शु.	९ बृ.	४ चं.	११ श.
	३०-०	७ शु.	२ शु.	९ बृ.	४ चं.	११ श.	६ बु.	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ बृ.

नवमांशचक्र

राशि	३-२०	६-४०	१०	१३-२०	१६-४०	२०	२३-२०	२६-४०	३०
मेष, सिंह, धनु	१	२	३	४	५	६	७	८	९
वृष, कन्या, मकर	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६
मिथुन, तुला, कुम्भ	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३
कर्क, वृश्चिक, मीन	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

विषम त्रिशांश   समत्रिंशांश

त्रिंशांश चक्र											
	विषम	५	५	८	७	५	सम	५	७	८	५	५
	अं.	५	१०	१८	२५	३०	अं.	५	१२	२०	२५	३०
	ग्र.	मं.	श.	बृ.	बु.	शु.	ग्र.	शु.	बु.	बृ.	श.	मं.
	रा.	१	११	९	३	७	रा.	२	६	१२	१०	८

द्वादशांशचक्र

१.	२-३०	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	१२ श.	१२ बृ.
२.	५-०	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ वृ.	१ मं.
३.	७-३०	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ वृ.	१० श.	११ श.	१२ वृ.	१ मं.	२ शु.
४.	१०-०	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ बृ.	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.
५.	१२-३०	५ सू.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ वृ.	१० श.	११ श.	१२ वृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.
६.	१५-०	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ वृ.	१० श.	११ श.	१२ वृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.
७.	१७-३०	७ शु.	८ मं.	९ वृ.	१० श.	११ श.	१२ वृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.
८.	२०-०	८ मं.	९ वृ.	१० श.श.	११	१२ वृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.
९.	२२-३०	९ वृ.	१० श.	११ श.	१२ वृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.
१०.	२५-०	१० श.	११ श.	१२ वृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ वृ.
११.	२७-३०	११ श.	१२ वृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ वृ.	१० श.
१२.	३०-०	१२ वृ.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ वृ.	१० श.श.	११

दशवर्ग परिचय

सप्तवर्ग में दशांश, षोडशांश तथा षष्ट्यंश चक्र जोड़ने से दस वर्ग कुण्डली बन जाती है।

दशांशचक्र

विषम राशि में अपनी राशि से तथा सम राशि में अपने से नौवीं राशि से दशांश के स्वामी होते हैं। एक दशांश में ३ अंश होते हैं।

दशांशचक्र

मे	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	अंश
१	१०	३	१२	५	२	७	४	९	६	११	८	३
२	११	४	१	६	३	८	५	१०	७	१२	९	६
३	१२	५	२	७	४	९	६	११	८	१	१०	९
४	१	६	३	८	५	१०	७	१२	९	२	११	१२
५	२	७	४	९	६	११	८	१	१०	३	१२	१५
६	३	८	५	१०	७	१२	९	२	११	४	१	१८
७	४	९	६	११	८	१	१०	३	१२	५	२	२१
८	५	१०	७	१२	९	२	११	४	१	६	३	२४
९	६	११	८	१	१०	३	१२	५	२	७	४	२७
१०	७	१२	९	२	११	४	१	६	३	८	५	३०

षोडशांश चक्र

चर राशि में मेष से, स्थिर राशि में सिंह से तथा द्विस्वभाव राशि में धनु से षोडशांश का प्रारम्भ होता है। प्रत्येक राशि का सोलहवाँ भाग एक षोडशांश होता है। एक षोडशांश १ अंश ५२ कला ३० विकला का रहता है।

षष्ट्यंशचक्र

३० कला का एक षष्ट्यंश होता है। अत: ग्रह स्पष्ट की राशि को छोड़कर उसके अंश को द्विगुणित करके कला में ३० का भाग देकर लब्धि को उसमें मिला दें। यह लब्ध संख्या गत षष्ट्यंश होगी। उसमें एक मिलाने से वर्तमान षष्ट्यंश होता है। षष्ट्यंश के ६० देवता पठित हैं। विषम राशि के देवता के क्रम को उलट देने से सम राशि के षष्ट्यंश के देवता होते हैं।

अभीष्ट षष्ट्यंश की राशि जानने के लिये १२ से भाग देकर शेष राशि अभीष्ट षष्ट्यंश की होगी। राशि गणना का प्रारम्भ स्वराशि से ही होता है।

इस प्रकार जन्माङ्ग, होरा से त्रिशांश तक चक्र बनाने से सप्तवर्गी कुण्डली का स्वरूप तैयार हो जाता है। सप्तवर्गी कुण्डली में दशांश चक्र, षोड्शांश चक्र और षष्ट्यंश चक्र बना देने से वह दशवर्गीय कुण्डली हो जाता है। इसमें अन्य ६ चक्रों को मिलाने से षोडशवर्गीय कुण्डली भी तैयार कर ली जा सकती है। इसे ग्रन्थान्तर से जानना चाहिए। ग्रन्थविस्तार भय से उन्हें यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

षोडशांशचक्र

षो.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
स्वा.	ब्र.	वि.	ह.	सू.	ब्र.	वि.	ह.	सू.	ब्र.	वि.	ह.	सू.	ब्र.	वि.	ह.	सू.
अं.	१	३	५	७	९	११	१३	१५	१६	१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०
क.	५२	४५	३७	३०	२२	१५	७	०	५२	४५	३७	३०	२२	१५	७	०
वि.	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०
मे.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
वृ..	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
मि.	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
क.१		२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
सिं.	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
क.९		१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
तु.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
वृ.	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
ध.	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
म.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
कुं.	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
मी.	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

षष्ट्यंशचक्र

	मे.	मि.	सिं.	तु.	ध.	कु.	वृ.	क.	क.	वृ.	म.	मी.	
१. घोरांश	१	३	५	७	९	११	२	४	६	८	१०	१२	इन्दुरेखांश
२. राक्षसांश	२	४	६	८	१०	१२	१	३	५	७	९	११	भ्रमणांश
३. देवांश	३	५	७	९	११	१	१२	२	४	६	८	१०	पयोध्यंश
४. कुबेरांश	४	६	८	१०	१२	२	११	१	३	५	७	९	सुधांश
५. यक्षोगणांश	५	७	९	११	१	३	१०	१२	२	४	६	८	शीतलांश
६. किन्नरांश	६	८	१०	१२	२	४	९	११	१	३	५	७	अशोभनांश
७. भ्रष्टांश	७	९	११	१	३	५	८	१०	१२	२	४	६	शुभाकरांश
८. कुलघ्नांश	८	१०	१२	२	४	६	७	९	११	१	३	५	निर्मलांश
९. गरलांश	९	११	१	३	५	७	६	८	१०	१२	२	४	दण्डायुधांश
१०. अग्न्यांश	१०	१२	२	४	६	८	५	७	९	११	१	३	कालाग्न्यंश
११. मायांश	११	१	३	५	७	९	४	६	८	१०	१२	२	प्रवीणांश
१२. प्रेतपुरीशांश	१२	२	४	६	८	१०	३	५	७	९	११	१	इन्दुमुखांश
१३. वरुणांश	१	३	५	७	९	११	२	४	६	८	१०	१२	द्रंष्ट्राकरालांश
१४. देवगणेशांश	२	४	६	८	१०	१२	१	३	५	७	९	११	शीतलांश
१५. कालांश	३	५	७	९	११	१	१२	२	४	६	८	१०	मृद्वंश
१६. अहिभागांश	४	६	८	१०	१२	२	११	१	३	५	७	९	सौम्यांश
१७. अतृतांश	५	७	९	११	१	३	१०	१२	२	४	६	८	कालांश
१८. चन्द्रांश	६	८	१०	१२	२	४	९	११	१	३	५	७	पातकांश
१९. मृद्वंश	७	९	११	१	३	५	८	१०	१२	२	४	६	वंशक्षयांश
२०. कोमलांश	८	१०	१२	२	४	६	७	९	११	१	३	५	कुलघ्नांश
२१. पञ्चभागांश	९	११	१	३	५	७	६	८	१०	१२	२	४	विषप्रदग्धांश
२२. लक्ष्मीकांश	१०	१२	२	४	६	८	५	७	९	११	१	३	परिपूर्णचन्द्रांश
२३. वागीशांश	११	१	३	५	७	९	४	६	८	१०	१२	२	अमृतांश
२४. दिग्वरांश	१२	२	४	६	८	१०	३	५	७	९	११	१	सुधांश
२५. देवांश	१	३	५	७	९	११	२	४	६	८	१०	१२	कण्टकांश
२६. आर्द्रांश	२	४	६	८	१०	१२	१	३	५	७	९	११	आमयांश
२७. कलिनाशांश	३	५	७	९	११	१	१२	२	४	६	८	१०	घोरांश
२८. क्षितीश्वरांश	४	६	८	१०	१२	२	११	१	३	५	७	९	दावाग्न्यंश
२९. कमलाकरांश	५	७	९	११	१	३	१०	१२	२	४	६	८	कालांश

षष्ट्यंशचक्र

	मे.	मि.	सिं.	तु.	ध.	कु.	वृ.	क.	क.	बु.	म.	मी.	
३०. मन्दात्मजांश	६	८	१०	१२	२	४	९	११	१	३	५	७	मृत्युकरांश
३१. मृत्युकरांश	७	९	११	१	३	५	८	१०	१२	२	४	६	मन्दात्मजांश
३२. कालांश	८	१०	१२	२	४	६	७	९	११	१	३	५	कमलाकरांश
३३. दावाग्न्यंश	९	११	१	३	५	७	६	८	१०	१२	२	४	क्षितिश्वरांश
३४. घोरांश	१०	१२	२	४	६	८	५	७	९	११	१	३	कलिनाशांश
३५. आमयांश	११	१	३	५	७	९	४	६	८	१०	१२	२	आर्द्रांश
३६. कण्टकांश	१२	२	४	६	८	१०	३	५	७	९	११	१	देवांश
३७. सुधांश	१	३	५	७	९	११	२	४	६	८	१०	१२	दिग्वरांश
३८. अमृतांश	२	४	६	८	१०	१२	१	३	५	७	९	११	वागीशांश
३९. परिपूर्णचन्द्रांश	३	५	७	९	११	१	१२	२	४	६	८	१०	लक्ष्मीशांश
४०. विषप्रदग्धांश	४	६	८	१०	१२	२	११	१	३	५	७	९	पद्मभागांश
४१. कुलघ्नांश	५	७	९	११	१	३	१०	१२	२	४	६	८	कोमलांश
४२. वंशक्षयांस	६	८	१०	१२	२	४	९	११	१	३	५	७	मृद्वंश
४३. पातकांश	७	९	११	१	३	५	८	१०	१२	२	४	६	चन्द्रांश
४४. कालांश	८	१०	१२	२	४	६	७	९	११	१	३	५	अमृतांश
४५. सौम्यांश	९	११	१	३	५	७	६	८	१०	१२	२	४	अहिमागांश
४६. मृद्वंश	१०	१२	२	४	६	८	५	७	९	११	१	३	कालांश
४७. शीतलांश	११	१	३	५	७	९	४	६	८	१०	१२	२	देवगणेशांश
४८. दंष्ट्राकरालाश	१२	२	४	६	८	१०	३	५	७	९	११	१	वरुणांश
४९. इन्दुमुखांश	१	३	५	७	९	११	२	४	६	८	१०	१२	प्रेतपुरीशांश
५०. प्रवीणांश	२	४	६	८	१०	१२	१	३	५	७	९	११	मायांश
५१. कालाग्न्यंश	३	५	७	९	११	१	१२	२	४	६	८	१०	अग्न्यंश
५२. दण्डायुधांश	४	६	८	१०	१२	२	११	१	३	५	७	९	गरलांश
५३. निर्मलांश	५	७	९	११	१	३	१०	१२	२	४	६	८	कुलघ्नांश
५४. शुभाकरांश	६	८	१०	१२	२	४	९	११	१	३	५	७	भ्रष्टांश
५५. अशोभनांश	७	९	११	१	३	५	८	१०	१२	२	४	६	किन्नरांश
५६. शीतलांश	८	१०	१२	२	४	६	७	९	११	१	३	५	यक्षोगणांश
५७. सुधांश	९	११	१	३	५	७	६	८	१०	१२	२	४	कुबेरांश
५८. पयोध्यंश	१०	१२	२	४	६	८	५	७	९	११	१	३	देवांश
५९. भ्रमणांश	११	१	३	५	७	९	४	६	८	१०	१२	२	राक्षतांश
६०. इन्दुरेखांश	१२	२	४	६	८	१०	३	५	७	९	११	१	घोरांश

होरादिषड्वर्गचक्ररचनार्थ तालिका

	अंश	२	३	४	५	६	७	८	१०	१२	१२	१२	१३	१५	१६	१७	१७	१८	२०	२१	२२	२३	२५	२५	२६	२७	३०
	कला	३०	२०	१७	०	४०	३०	३४	०	०	३०	५१	२०	०	४०	८	३०	०	०	२५	३०	२०	०	४२	४०	३०	०
	विकला	०	०	८	०	०	०	१७	०	०	०	२५	०	०	०	३४	०	०	०	४२	०	०	०	५१	०	०	०
० मेष	हो.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
	द्रे.	१	१	१	१	१	१	१	१	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	९	९	९	९	९	९	९	९
	स.	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७
	न.	१	१	२	२	२	३	३	३	४	४	४	४	५	५	६	६	६	६	७	७	७	८	८	८	९	९
	द्वा.	१	२	२	२	३	३	४	४	५	५	६	६	६	७	७	७	८	८	९	९	१०	१०	११	११	११	१२
	त्रिं.	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७
१ वृषभ	हो.	४	४	४	४	३	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
	द्रे.	२	२	२	२	२	२	२	२	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
	स.	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	२
	न.	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	३	३	३	३	४	४	४	५	५	५	६	६
	द्वा.	२	३	३	३	४	४	५	५	६	६	७	७	७	८	८	८	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१२	१
	त्रिं.	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८
२ मिथुन	हो.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
	द्रे.	३	३	३	३	३	३	३	३	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	११	११	११	११	११	११	११	११
	स.	३	३	३	४	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९
	न.	७	७	८	८	८	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	२	२	२	३	३
	द्वा.	३	४	४	४	५	५	६	६	७	७	८	८	८	९	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१	१	१	२
	त्रिं.	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७

होरादिषड्वर्गचक्ररचनार्थ तालिका

	अंश	२	३	४	५	६	७	८	१०	१२	१२	१२	१३	१५	१६	१७	१७	१८	२०	२१	२२	२३	२५	२५	२६	२७	३०
	कला	३०	२०	१७	०	४०	३०	३४	०	०	३०	५१	२०	०	४०	८	३०	०	०	२५	३०	२०	०	४२	४०	३०	०
	विकला	०	०	८	०	०	०	१७	०	०	०	२५	०	०	०	३४	०	०	०	४२	०	०	०	५१	०	०	०
३ कर्क	हो.	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
	द्रे.	४	४	४	४	४	४	४	४	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
	स.	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४
	न.	४	४	५	५	५	६	६	६	७	७	७	७	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	११	११	११	१२	१२
	द्वा.	४	५	५	५	६	६	७	७	८	८	९	९	९	१०	१०	१०	११	११	१२	१२	१	१	२	२	२	३
	त्रिं.	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८
४ सिंह	हो.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
	द्रे.	५	५	५	५	५	५	५	५	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	१	१	१	१	१	१	१	१
	स.	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११
	न.	१	१	२	२	२	३	३	३	४	४	४	४	५	५	६	६	६	६	७	७	७	८	८	८	९	९
	द्वा.	५	६	६	६	७	७	८	८	९	९	१०	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१	१	२	२	३	३	३	४
	त्रिं.	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७
५ कन्या	हो.	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
	द्रे.	६	६	६	६	६	६	६	६	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	२	२	२	२	२	२	२	२
	स.	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६
	न.	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	३	३	३	३	४	४	४	५	५	५	६	६
	द्वा.	६	७	७	७	८	८	९	९	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१२	१	१	२	२	३	३	४	४	४	५
	त्रिं.	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८

होरादिषड्वर्गचक्ररचनार्थ तालिका

	अंश	२	३	४	५	६	७	८	१०	१२	१२	१२	१३	१५	१६	१७	१७	१८	२०	२१	२२	२३	२५	२५	२६	२७	३०
	कला	३०	२०	१७	०	४०	३०	३४	०	०	३०	५१	२०	०	४०	८	३०	०	०	२५	३०	२०	०	४२	४०	३०	०
	विकला	०	०	८	०	०	०	१७	०	०	०	२५	०	०	०	३४	०	०	०	४२	०	०	०	५१	०	०	०
६ तुला	हो.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
	द्रे.	७	७	७	७	७	७	७	७	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	३	३	३	३	३	३	३	३
	स.	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१
	न.	७	७	८	८	८	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	२	२	२	३	३
	द्वा.	७	८	८	८	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१२	१	१	१	२	२	३	३	४	४	५	५	५	६
	त्रिं.	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७
७ वृश्चिक	हो.	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
	द्रे.	८	८	८	८	८	८	८	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	४	४	४	४	४	४	४
	स.	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७	७	८	८	८
	न.	४	४	५	५	५	६	६	६	७	७	७	७	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	११	११	११	१२	१२
	द्वा.	८	९	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१	१	१	२	२	२	३	३	४	४	५	५	६	६	६	७
	त्रिं.	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८
८ धनु	हो.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
	द्रे.	९	९	९	९	९	९	९	९	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	५	५	५	५	५	५	५	५
	स.	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३
	न.	१	१	२	२	२	३	३	३	४	४	४	४	५	५	६	६	६	६	७	७	७	८	८	८	९	९
	द्वा.	९	१०	१०	१०	११	११	१२	१२	१	१	२	२	२	३	३	३	४	४	५	५	६	६	७	७	७	८
	त्रिं.	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७

होरादिषड्वर्गचक्ररचनार्थ तालिका

	अंश	२	३	४	५	६	७	८	१०	१२	१२	१२	१३	१५	१६	१७	१७	१८	२०	२१	२२	२३	२५	२५	२६	२७	३०
	कला	३०	२०	१७	०	४०	३०	३४	०	०	३०	५१	२०	०	४०	८	३०	०	०	२५	३०	२०	०	४२	४०	३०	०
	विकला	०	०	८	०	०	०	१७	०	०	०	२५	०	०	०	३४	०	०	०	४२	०	०	०	५१	०	०	०
९ मकर	हो.	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
	द्रे.	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	६	६	६	६	६	६	६	६
	स.	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०
	न.	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	३	३	३	३	४	४	४	५	५	५	६	६
	द्वा.	१०	११	११	११	१२	१२	१	१	२	२	३	३	३	४	४	४	५	५	६	६	७	७	८	८	८	९
	त्रिं.	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८
१० कुम्भ	हो.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
	द्रे.	११	११	११	११	११	११	११	११	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	७	७	७	७	७	७	७	७
	स.	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	५	५	५
	न.	७	७	८	८	८	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	२	२	२	३	३
	द्वा.	११	१२	१२	१२	१	१	२	२	३	३	४	४	४	५	५	५	६	६	७	७	८	८	९	९	९	१०
	त्रिं.	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७
११ मीन	हो.	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
	द्रे.	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	८	८	८	८	८	८	८	८
	स.	६	६	६	७	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२
	न.	४	४	५	५	६	६	६	६	७	७	७	७	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	११	११	११	१२	१२
	द्वा.	१२	१	१	१	२	२	३	३	४	४	५	५	५	६	६	६	७	७	८	८	९	९	१०	१०	१०	११
	त्रिं.	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८

होरादिषड्वर्ग चक्र रचना विधि

सामने तालिका के बांयी ओर राशि और ऊपर अंश-कला-विकला है। जिस किसी लग्न स्पष्ट या ग्रह स्पष्ट के जिस किसी वर्ग के ज्ञान के लिए तालिका में सबसे बायीं ओर कोष्ठक में स्थित वर्ग से नाम सारिणी में ज्ञात कर उसके सामने कोष्ठकस्थ संख्या उस वर्ग की राशि संख्या होगी।

त्रिशांश

विषम राशि में प्रथम ५ अंश का स्वामी मंगल, तदनन्तर ५ अंश का शनि, तदनन्तर ८ अंश का गुरु, तदन्तर ७ अंश का स्वामी बुध तथा शेष ५ अंश का स्वामी शुक्र है एवं सम राशि में प्रथम ५ अंश का स्वामी शुक्र, ५ अंश से १० अंश तक का बुध, १८ अंश तक का बृहस्पति, तदनन्तर २५ अंश पर्यन्त का शनि एवं शेष ५ अंश का मंगल त्रिशांशाधिपति होता है।

सप्तांशाधिपति

मेषादि राशि में मेष, वृश्चिक, मिथुन, मकर, सिंह, मीन, तुला, वृष, धनु, कर्क, कुम्भ व कन्या पूर्वक राशियों के स्वामी सप्तांशाधिपति होते हैं, यथा—मेष राशि में प्रथम सप्तांश का स्वामी मंगल, दूसरे का शुक्र, तीसरे का बुध, चौथे का चन्द्रमा, पञ्चम का सूर्य, छठवें का बुध, सातवें का शुक्र एवं वृष राशि में वृश्चिकराशि का स्वामी मंगल प्रथम सप्तांश का, दूसरे सप्तांश का गुरु, तृतीय का शनि इत्यादि के क्रम से जानना उचित है, तात्पर्य यह है कि विषम राशि में स्वयं से याने उसी राशि से और समराशि में स्वयं से सातवीं याने अपने स्थान से सातवीं स्थान की राशि से सप्तमांश की गणना करनी चाहिए।

राशियों के वर्ग भेद

होरा या राशि में जहाँ तीस (३०) अंश होते हैं, वहाँ १ अंश में ६० कलायें भी होती हैं। इस तरह ३० अंश में १८०० कलायें सिद्ध हो जाती हैं। इन १८०० कलाओं के परिवर्तन द्वारा अपने-अपने स्थान से १२ राशियों के षड्वर्ग भेद ७२ होते हैं। इसी प्रकार सप्तवर्गसाधन करने पर १२ राशियों के ये वर्गभेद १२ × ७ = ८४ होते हैं।

इष्ट वर्ग साधन और उसका प्रयोजन

लग्न का अथवा किसी ग्रह का यदि वर्ग (अर्थात् गृह होरा द्रेष्काण आदि) आनयन करना हो, तो उसका पहले कला कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् जिस वर्ग को साधन करना हो, उसकी संख्या से गुणाकर १८०० से भाग दे, तब अभीष्टांश की सिद्धि होती है। जैसे कि मान लिया, हमें लग्न में देखना है कि कौन-सा सप्तांश

वर्तमान है, अतएव मान लिया लग्न राश्यादि ०।१५।३० । इसका कला किया = ९३०, इसलिए इसे ७ से गुणा किया, गुणनफल में १८०० से भाग दिया = ९३०×७/१८०० = ६५१०/१८०० = ल० ३, अतएव ज्ञात हो गया कि ३रा सप्तांश व्यतीत हो चुका, चौथा वर्तमान है एवं औरों को भी जानना चाहिये।

इस गृह होरादि वर्ग का शुभाशुभ फल नष्ट जातकाध्याय में कहा गया है, क्योंकि गृहहोरादि के शुभाशुभ फल ही से नष्टजन्मपत्र का निर्णय किया जाता है।

राशियों के क्रूरसौम्य चरादिविभाग और गण्डान्त

मेषादि राशि क्रमशः क्रूर-शुभ, क्रूर-शुभ (मेष क्रूर, वृष सौम्य, मिथुन क्रूर, कर्क सौम्य इत्यादि); पुरुष-स्त्री (मेषादि विषम राशि पुरुष संज्ञक वृषादि सम राशि स्त्री संज्ञक); चर-स्थिर-द्विस्वभाव (मेष चर, वृष स्थिर, मिथुन द्विस्वभाव एवं कर्कादि राशियां भी चरादि संज्ञक हैं); कर्क, वृश्चिक व मीन राशियों के अन्त के सन्धि को गण्डान्त (लग्न गण्डान्त) कहते हैं। इस गण्डान्त में जायमान जातक की मृत्यु शीघ्र ही होती है तथा वह बालक माता तथा स्वकुल का नाशकर्त्ता होता है। जैसाकि नारदजी का कथन है—

कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः।
गण्डान्तमन्तरालं स्याद्घटिकार्द्धं मृतिप्रदम्॥

यदि दैव वश वह जीवित रह जाय, तो बहुत घोड़े व हाथियों से युक्त राजा होता है।

राशियों की दिशा व राशि बल

यात्रादि कार्य में मेष, सिंह, धनु पूर्व दिशा के लिये; वृष; कन्या; मकर दक्षिण दिशा के लिये; मिथुन; तुला; कुम्भ पश्चिम दिशा के लिये और कर्क; वृश्चिक तथा मीन उत्तर दिशा के लिये उत्तम है।

नरराशि (मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ तथा धनु का पूर्वार्द्ध) पूर्व दिशा में, चतुष्पद (मेष, वृष, सिंह, धनु का उत्तरार्द्ध, पूर्वार्द्ध मकर) दक्षिण दिशा में, वृश्चिक राशि पश्चिम दिशा में एवं कर्क, मीन और मकर का उत्तरार्द्ध उत्तर दिशा में बलवान् होता है एवं पशु राशि (मेष, वृष सिंह धनु) रात्रि में तथा मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ (नर राशि) दिन में और कर्क, वृश्चिक, मकर, मीन सन्ध्या समय में बली होता है।

राशियों के दिनरात्रि बल और पृष्ठोदयादि संज्ञा

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु तथा मकर ये राशियाँ रात्रि में, सिंह, कन्या,

तुला, वृश्चिक, कुम्भ और मीन ये राशियाँ दिन में बलवान् होती हैं। मिथुन सहित जो राशियाँ हैं उनमें मिथुन को छोड़कर अर्थात् मेष, वृष, कर्क, धनु और मकर ये पृष्ठोदय संज्ञक तथा शेष राशि अर्थात् मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक अैर कुम्भ ये शीर्षोदय एवं मीन उभयोदय संज्ञक राशि है।

भाव या राशि बल

जो-जो भाव या राशि अपने-अपने स्वामी अथवा राशीश के मित्र ग्रहों से, बुध तथा बृहस्पति से युक्त-दृष्ट हो; वह बली होता है। पूर्वोक्त ग्रह को छोड़ यदि अन्य ग्रहों से युक्त दृष्ट हो तो बली नहीं होता है।

लग्नादि भावों से और उनकी संज्ञा

लग्नादि भाव से क्रमशः देह, धन, भ्रातृ, बन्धु-समूह (परिवार), पुत्र, शत्रु, स्त्री, मृत्यु, पुण्य, कर्म, आय और व्यय का विचार करना चाहिये।

तथा लग्नादि भावों की संज्ञा क्रमशः शक्ति, धन, पौरुष, गृह, प्रतिभा, व्रण, काम, देहविवर (छिद्र), गुरु, मान, भव और व्यय हैं।

भावों की चतुरस्रादि संज्ञा

चतुर्थ व अष्टम की चतुरस्र, नवम की तप तथा लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम की चतुष्टय, कण्टक और केन्द्र संज्ञा है।

एवं चतुर्थ की सुख, जल, पाताल, बन्धु, हिबुक तथा दशम की कर्म, आज्ञा, मेषूरण, गगन संज्ञा (पर्याय वाचक नाम) है।

नवम व पञ्चम की त्रिकोण, केवल पञ्चम की धी और नवम की त्रित्रिकोण तथा सप्तम की द्यून, जाया, अस्त व जामित्र संज्ञा है।

षष्ठ की षट्कोण, तृतीय की दुश्चिक्य, द्वादश की रि:फ और द्वितीय की कुटुम्ब संज्ञा है।

केन्द्र के बाद के भावों की पणफर तदनन्तर भावों की आपोक्लिम संज्ञा होती है (अर्थात् लग्न १।४।९।१० की केन्द्र, २।५।८।११ की पणफर, ३।६।९।१२ की आपोक्लिम संज्ञा है) केन्द्र स्थित ग्रह बाल अवस्था में ही, पणफरस्थ ग्रह युवावस्था और आपोक्लिमस्थ ग्रह वृद्धावस्था में शुभाशुभ फल देते हैं।

भावों की उपचयादि संज्ञा

३।६।१०।११ की उपचय संज्ञा है, शेष भावों अनुपचय संज्ञा जाननी चाहिए। द्वितीय की स्व, लग्न की तनु, चतुर्थ की सुख, पञ्चम की सुत, सप्तम की अस्त, नवम की तप, अष्टम की छिद्र तथा द्वादश की व्यय संज्ञा है।

ग्रहों का मूल त्रिकोणादि

सूर्य का सिंह, चन्द्रमा का वृष, मंगल का मेष, बुध का कन्या, बृहस्पति का धनु, शुक्र का तुला और शनि का कुम्भ क्रम से मूल त्रिकोण राशि है।

सूर्यादि ग्रहों का क्रम से मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन, तुला उच्च राशि है तथा अपने-अपने उच्च राशि में सूर्यादि ग्रहों का क्रम से १०।३।२८।१५।५। २७।२०वां अंश परमोच्च है (यथा मेष में १०वां अंश का सूर्य, वृष में तृतीय अंश का चन्द्रमा एवं मकरादि में इसी क्रम से मंगलादि ग्रह का परमोच्चांश होता है) तथा प्रत्येक ग्रहों का स्वोच्च से सप्तम नीच राशि है और नीच राशि में पूर्व पठितांश क्रम से परमनीचांश है।

।। उच्चनीच चक्रम् ।।

उच्चम् परमोच्चांशम्	ग्र०	सू०	चं०	मं०	बु०	वृ०	शु०	श
	रा०	मेष	वृष	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला
	अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
नीचम परमनीचांशम्	रा०	तुला	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष
	अं०	१०	३	२८	१५	५	२७	२०

राशियों के ह्रस्वादि संज्ञा और उसका फल

मीन, वृष, मेष व कुम्भ ह्रस्व संज्ञक; मिथुन, कर्क, धनु व मकर समसंज्ञक और सिंह, कन्या, तुला व वृश्चिक दीर्घसंज्ञक राशि हैं।

जैसी राशि लग्नादि में वर्त्तमान हो, शिर आदि प्रभृति अंगों की आकृति होती है (अर्थात् यदि जन्म लग्न में दीर्घ संज्ञक राशि वर्त्तमान हो, तो शिर की आकृति दीर्घ, ह्रस्व संज्ञक हो, तो लघु तथा यदि सम संज्ञक राशि हो, तो सम एवं द्वितीयादि भाव से मुख आदि की भी आकृति को कहना चाहिये) तथा लग्नादि भावों में स्थित ग्रहों से भी शिर आदि अवयव का विचार करना चाहिये।

राशियों के प्लव और उसका

सभी राशियों के स्व स्वामी की दिशा प्लव दिशा है (यथा मेष व वृश्चिक का दक्षिण, वृष व तुला का अग्नि कोण, मिथुन व कन्या का उत्तर, कर्क का वायव्य, सिंह का पूर्व, धन व मीन का ईशान और मकर व कुम्भ का पश्चिम दिशा प्लव दिशा है) उस दिशा में स्थित राजा शत्रुओं का शीघ्र नाश करता है।

राशियों के वर्ण और उसका प्रयोजन

मेष का रक्त, वृष का श्वेत, मिथुन का शुक की तरह हरित, कर्क का कुछ

कालिमा युक्तलाल, सिंह का धूम्र तथा पाण्डु, कन्या का चित्र, तुला का कृष्ण, वृश्चिक का सुवर्ण सदृश, धनु का पीत, मकर का कर्बुर (शुक्ल तथा कपिल मिश्रित), कुम्भ का नकुल सदृश और मीन का स्व सदृश स्वच्छ वर्ण है।

प्रयोजनम्—जन्म लग्न तथा राशि का जो वर्ण हो, उसके देवता की प्रतिमा (मूर्ति) का पूजा करने से वह देवता सभी कष्टों को हरण (नाश) करते हैं। जिस तरह इन्द्र की सेना राक्षसों का सर्वनाश करती है।

काल पुरुष के आत्मादिकारक ग्रह

काल पुरुष का आत्मा सूर्य, मन चन्द्रमा, सत्व मंगल, वाणी बुध, ज्ञान तथा सुख बृहस्पति व शुक्र मद और राहु शनि दुःख स्वरूप है या ज्ञान बृहस्पति, सुख शुक्र, मद राहु और दुःखस्वरूप शनि है।

जन्म समय ग्रह के बली होने से आत्मादि अवयव बली होता है (जैसे सूर्यबलयुक्त हो, तो उस पुरुष का आत्मा पुष्ट होगा एवं चन्द्रादि ग्रह बली हो, तो मन इत्यादि भी बली होता है) दुर्बल ग्रह से क्षीण तथा शनि का विपरीत फल होता है।

दृश्यादृश्य अङ्ग

जन्माङ्ग चक्र में तात्कालिक लग्न से बांये तरफ सप्तम के भोग्यांश से लग्न के भुक्तांश पर्यन्त को दृश्य (उदित) तथा निर्बल जातक का वाम अङ्ग एवं दाहिने तरफ (लग्न के भोग्यांश से सप्तम के भुक्तांश पर्यन्त) को अदृश्य (अनुदित) तथा सबल जातक का दक्षिण भाग कहते हैं।

द्रेष्काणवश शरीराङ्ग

लग्न के प्रथम द्रेष्काण में जन्म हो, तो शिर, लोचन, कर्ण, नासिका, कपोल, हनु व मुख ये अंग विभाग हैं तथा द्वितीय द्रेष्काण में कण्ठ, स्कन्ध, भुज, पार्श्व, हृदय, उदर व नाभि एवं तृतीय द्रेष्काण में वस्ति, लिङ्ग, गुदा, वृषणद्वय, जानुद्वय, जङ्घाद्वय और पादद्वय अंग विभाग लग्न से उदित और अनुदित के क्रम से वाम तथा दक्षिण भाग कल्पना करना चाहिये (तद्यथा—लग्न के प्रथम द्रेष्काण में जन्म हो तो लग्न भाव शिर, द्वितीय भाव दक्षिण आँख व द्वादश भाव बाईं आँख, तृतीय भाव दक्षिण श्रवण (कान) व एकादश भाव वाम श्रवण, चतुर्थ भाव दक्षिण नासिका व दशम भाव वाम नासिका, पञ्चम-नवम भाव क्रम से दक्षिण-वाम कपोल, षष्ठ-अष्टम भाव दक्षिणवाम हनु तथा सप्तम भाव मुख एवं द्वितीय-तृतीय द्रेष्काण में भी ग्रीवादि तथा वस्ति आदि की कल्पना करनी चाहिये) जिस भाग में पाप ग्रह स्थित हों, उस विभाग में व्रण तथा जिसमें शुभ ग्रह हों, उसमें माशा, तिल आदि चिह्न होता

है। यदि ग्रह स्व नवांश, स्व राशि में हो, तो जन्मकाल से मशकादि चिह्न वा व्रण होता है। अन्यथा किन्हीं कारणादि से स्व दशाकाल में आगन्तुक व्रण, मशकादि चिह्न का आदेश करना चाहिये।

दशवर्गैक्य या सप्तवर्गैक्य चक्र

जन्म पत्रियों में प्राय: सप्तवर्गैक्य चक्र लिखा जाता है। हम यहाँ प्रसंगवश दशवर्गैक्य चक्र का निर्माण पूर्वोक्त उदाहरण के प्रसंग में कर रहे हैं। इसमें से दशमांश, षोडशांश व षष्ट्यंश को निकाल लेने से सप्तवर्गैक्य चक्र रह जाता है। सप्तवर्गैक्य चक्र को ही जन्मपत्रियों में लिखने की प्रथा है।

इसमें विशेष जानकारी यह होती है कि एक ही स्थान पर ग्रहों के वर्ग कुण्डली स्थानों को लिखकर यह बता दिया जाता है कि दस या सप्त वर्गों में ग्रह कितने शुभ वर्गों या पाप वर्गों में गया है।

पूर्वोक्त उदाहरण का वर्गैक्य चक्र प्रस्तुत है। इसमें केवल स्वक्षेत्र, उच्च व निसर्ग शुभ वर्गों व नीच व निसर्ग पाप वर्गों को पाप मानकर लिखा गया है। यही परिपाटी आजकल अधिक प्रचलित है।

नियमत: स्वक्षेत्र, मूल, त्रिकोण, उच्च, वर्गोत्तम नवांश, अधिमित्र, मित्र, निसर्ग शुभ ग्रहों की राशियों में पड़ने वाले ग्रहों की शुभ व शेष की अशुभ वर्गों में गणना करते हैं। अथवा निसर्ग शुभ ग्रहों की राशि को शुभ वर्गों में माना जाता है। विशेष विवेचन आगे दिया जा रहा है।

षड्वर्गशुद्धि

गृहादि षड्वर्गों की कुण्डलियों में जो ग्रह अपने घर, मूलत्रिकोण, वर्गोत्तम, उच्च या अधिमित्र के अधिक वर्गों में गया है। वह षड्वर्ग शुद्ध ग्रह कहलाता है। इसमें निसर्ग शुभ या पाप वर्ग की विचारणा नहीं होती है।

उदाहरणार्थ पूर्वोक्त अपने उदाहरण में सूर्य लग्न में स्वराशि में, होरा में मित्र राशि में, द्रेष्काण में उच्च राशि में, नवमांश में अधिमित्र की राशि में, द्वादशांश में मित्र की राशि में व त्रिंशांश में नीच राशि में है। इनमें से स्वराशि, उचच राशि, अधिमित्र की राशि में सिंति है। शेष तीन स्थानों पर वह दो में मित्र राशि में है। तथा एक स्थान पर नीच में है। अत: अच्छे षड्वर्गों में जाने से अच्छा फल देगा।

कोई भी षड्वर्ग शुद्ध ग्रह (मित्र राशि मं सम) वैसा ही फल देता है जैसा कि उच्च या मूलत्रिकोणादि गत ग्रह फल देगा। अत: लग्न में अशुभ राशियों में होने पर भी षड्वर्ग शुद्ध ग्रह शुभ फलद ही होता है।

पारिजातादि दशवर्ग

पूर्वोक्त दस वर्गों की कुण्डलियों में जो ग्रह अपने उच्च, स्व, मूलत्रिकोण या अधिमित्र की राशि में गया हो उससे पारिजातादि दस वर्गों का निर्णय होता है।

दो कुण्डलियों (वर्गों) में उक्तप्रकार से हो तो 'पारिजात', तीन स्थानों पर 'उत्तम', चार स्थानों पर 'गोपुर', पाँच स्थानों पर वैसा होने से 'सिंहासन', छः स्थानों पर वैसा होने से 'पारावर्त', सात स्थानों पर उक्त प्रकार से होने पर 'देवलोक', आठ स्थानों पर वैसा होने से 'ऐरावत' एवं दस स्थानों पर वैसा होने से 'वैशेषिकांश' में होता है। वैशेषिकांश का ही दूसरा नाम 'श्रीधामांश' है।

ध्यान रखिए, दस वर्गों में होरा का भी ग्रहण है तथा प्रचलित परिपाटी वाला या वर्णित होरा चक्र तथा त्रिंशांश चक्र मोनं तो सूर्य व चन्द्र का त्रिंशांश नहीं होता है, तथा मंगलादि ग्रहों की होरा नहीं होती है। अतः सूर्य व चन्द्रमा दोनों ही शनि व शुक्र के शत्रु होने से शनिं व शुक्र कभी भी दस वर्गों में विशिष्ट नहीं हो सकते हैं तथा सूर्य व चन्द्रमा का त्रिंशांश न होने वसे षडवर्ग में पंचवर्ग शुद्धि ही बनती है।

पारिजातादि वर्गों का नाश

यदि कोई ग्रह लग्न से ६।८।१२ भावों में हो, अस्त या नीचगत, मरणावस्था में या षड्बल से रहित हो तो पारिजातादि वर्गों में होने पर भी निष्फल ही होता है।

अतः लग्न कुण्डली की शुभ स्थिति सर्वत्र निर्णायक रहेगी। इसके साथ ही एक बात और ध्यान रखनी है कि लग्न, द्रेष्काण व नवांश इन तीनों में स्वराशि, मूत्रत्रिकोण व उच्चादि राशि में ग्रह विशिष्ट हो तथा अन्य वर्गों में अधिमित्र वर्ग में हो तो सर्वश्रेष्ठ वर्गी बनेगा। यदि उक्त राशि, द्रेष्काण व नवांश में, अधिमित्र वर्ग में हो तथा अन्यत्र उच्चादिगत हो तो मध्यमवर्गी रहेगा। इसीलिए सर्वार्थ चिन्तामणि की टीका में कहा गया है कि—

'मुख्यपक्षस्तु स्वत्र्यंशे (द्रेष्काणे) स्वनवांशे, स्वभवन इति ग्राह्यः।'

अर्थात् इन पारिजातादि वर्गों में भी उक्त प्रकार से उत्कृष्ट, मध्यम व अधम स्थितियों की कल्पना की गई है।

इसके अतिरिक्त कुछ दैवज्ञ केवल निसर्ग शुभ ग्रहों के वर्गों व निसर्ग पाप ग्रहों के वर्गों के गिनकर 'षडवर्ग' या सप्तवर्गादि शुद्धि करते हैं। अर्थात् जो ग्रह बुध, गुरु, शुक्रादि की राशियों में वर्ग कुण्डलियों में गए हों वे शुभ व मंगल, शनि, सूर्य की राशियों में अशुभ कहे गए हैं। अर्थात् सूर्य यदि कहीं पर मेष में हो तो वह मंगल

(पाप) की राशि में होता हुआ भी स्वोच्चगत होने से शुभ वर्ग में ही माना जाएगा। यह भी एक प्रथा है।

हमारा विचार है कि स्वोच्चादि वर्गों से निर्णय श्रेष्ठ, अधिमित्र की राशि से मध्यम एवं केवल निसर्ग शुभ ग्रह की राशि से वर्ग शुद्धि अधम पक्ष है।

षड्वर्गों में विशिष्ट संज्ञाएँ

जिस प्रकार दस वर्गों में वैशिष्ट्य से आचार्यों ने पारिजातादि संज्ञाएँ कहीं हैं, उसी प्रकार षड्वर्गों व सप्तवर्गों में भी 'किंशुक' आदि संज्ञाएँ कहीं हैं। इनका विचार भी पूर्वोक्त स्वभवन, मूल त्रिकोण व उच्चादि के आधार पर ही होगा।

(क) दो वर्गों में विशिष्ट हो तो ग्रह की 'किंशुक' संज्ञा होती है।

(ख) तीन वर्गों में विशिष्ट हो तो ग्रह की 'व्यंजन' संज्ञा होती है।

(ग) चार वर्गों में विशिष्ट हो तो ग्रह की 'चामर' संज्ञा होती है।

(घ) पाँच वर्गों में विशिष्ट होत तो ग्रह की 'छत्र' संज्ञा होती है।

(ङ) छः वर्गों में विशिष्ट हो तो ग्रह की 'कुण्डल' संज्ञा होती है।

(च) सात वर्गों में विशिष्ट हो तो ग्रह की 'मुकुट' संज्ञा होती है।

वर्ग कुण्डलियों के विचारणीय विषय

लग्न से शरीर, होरा से धन-सम्पत्ति का, द्रेष्काण से भ्रातृसुख का, सप्तमांश से सन्तति का, नवमांश से पत्नी का, दशमांश से उन्नति का, द्वादशांश से माता-पिता का, षोडशांश से राजसी वाहनों का, त्रिंशांश से अरिष्ट फलों का व षष्ट्यंश से समस्त शुभाशुभ फलों का विचार करना चाहिए। ऐसा बृहत्पाराशर होराशास्त्र का मत है।

विशेषतया लग्न, द्रेष्काण व नांश इनमें सबसे मुख्य हैं। इनमें प्रायः सभी मुख्य शुभाशुभ फलों का विचार जातकवत् करना चाहिए। ऐसा भी एक सम्प्रदाय है। कहा गया है कि—

"वर्णं रूपगुणान्सुधीसुतनयान् नवांशाऽखिलम् ।।"

पराशर ने भी षड्वर्गों में विश्वा बल निर्णय इस प्रकार बताया है। लग्नादि षड्वर्गों में क्रमशः ६।२।४।५।२।१ विश्वा बल होता है। अर्थात् सम्पूर्ण फल को यदि २० अंक मानें तो उसमें से ६ अंक लग्न को, २ अंक होरा को इत्यादि क्रम से फल विवेक होगा। अथवा लग्न को ३०%, होरा को १०%, द्रेष्काण को २०%, नवमांश को २५%, द्वादशांश को १०% व त्रिंशांश को ५% महत्त्व देना चाहिए।

वर्ग कुण्डलियों के फलित सूत्र

यदि सभी वर्गों में पड़ने वाली लग्न राशियों में से अधिक जगहों पर शुभ ग्रहों की राशियाँ पड़ती हो तो लग्न को शुभ षड्वर्गगत कहा जाएगा। ऐसा लग्न शुभ फलद होता है तथा अपने सभी भाव फलों की विशेष परिपुष्ट करेगा।

उदाहरणार्थ जन्म लग्न, भाव, भावेशादि स्थिति से या क्रूर संयोग से अशुभ होता हुआ भी षड्वर्गों में बहुत शुभ स्थानों में पड़ा हो तो अशुभ फल में कमी होगी। विपरीत होने पर विपरीत फल समझा जाएगा।

द्रेष्काण, लग्न या नवांश में केन्द्र या त्रिकोण में कोई उच्च ग्रह हो तो श्रेष्ठ फलदायक होता है। इसमें भी केन्द्रगत उच्च ग्रह श्रेष्ठ राजयोग बनाता है।

सामान्यतया जातक पद्धति ही यहाँ फल विचार में अपनाई जाती है। जैसे द्रेष्काण से कर्मफल या भ्रातृसुख देखना है तो द्रेष्काण में केन्द्रभावों में उच्च, मूलत्रिकोण, स्वराशि गत या शुभ ग्रह शुभ कर्मफल देंगे। द्रेष्काण से तृतीयेश यदि अच्छे भाव या राशि स्थिति में हो तो भ्रातृसुख होगा इत्यादि।

सप्तमांश से १।२।११ व केन्द्र त्रिकोणों में शुभ व बलवान् ग्रह धन की वृद्धि के सूचक हैं। कारण यह है कि 'धानस्यनिचयं सप्तांशकात् चिन्तयेत्' भी कहा गया है। अपि च सप्तमांश से तृतीयेश यदि शुभ व बली होगा तो विशेष भ्रातृसुख मिलेगा।

नवांश से पत्नी-पुत्रादिकों या समस्त जातक फल को देखना है। अतः नवांश से केन्द्र, त्रिकोणादि सभी शुभ भाव जन्म कुण्डली विचार की तरह से शुभ होंगे तो शुभ फलों की अधिकता रहेगी। अथवा नवांश से पंचम स्थान या सप्तम स्थान भावेशादि विचार से बली होगा तो स्त्री-पुत्रों का सुख मिलेगा।

इसी तरह द्वादशांश में विशेषतया तत्तत् केन्द्र भावों से (४।७।१०) माता, स्त्री व पिता का शुभाशुभ, त्रिंशांश में अष्टम भाव व द्वादश भाव व ३।६ भावों की शुभाशुभता से अरिष्ट विचार जन्म कुण्डली की तरह करना चाहिए। अतः सम्बन्धित भावों व भावेशों के साथ-साथ वर्ग लग्नेशों व वर्ग लग्न भावों की भी शुभाशुभता से विशेष फल विचार करना चाहिए।

उक्त विषय को और अधिक स्पष्ट करने के लिए पूर्वोक्त उदाहरण के प्रसंग में इस समझते हैं।

पूर्वोक्त उदाहरण की होरा कुण्डली में सभी क्रूर ग्रह सूर्य होरा में तथा सभी

शुभ ग्रह चन्द्र होरा में नहीं हैं। अत: मिश्रित ग्रह होने से जातक मिश्रित स्वभाव, कठोरता व कोमलता मिश्रित होगा। लग्न में सूर्य की होरा आर्थिक स्थिति का धीरे-धीरे विकास बताती है।

द्रेष्काण कुण्डली में लग्नेश केन्द्र में स्वक्षेत्री है। केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह सन्तानादि सुखदायक है। लेकिन अष्टम में नीच पापग्रह व द्वादश में शनि भाईयों के लिए या धन संचक के लिए अरिष्ट योग बनाता है।

नवांश लग्न में पंचमेश व सप्तमेश की केन्द्र स्थिति स्त्री-पुत्रादिकों का अच्छा सुख प्रदान करती है, लेकिन द्वादश में पाप ग्रह कुछ शुभ फल काटेंगे।

त्रिंशांश कुण्डली में लग्न व अष्टम की शुभता अरिष्ट फलों में न्यूनता प्रदर्शित करती है। इसी प्रकार से सर्व वर्गफल देखना चाहिए।

जन्मपत्र निर्माण में वर्ग कुण्डलियों के बाद पंचधा मैत्री चक्र को लिख लेना चाहिए, तभी वर्गादि विचार सुगम होगा।



।।श्रीः।।

ज्योतिष प्रश्न कुण्डली विचार

ज्योतिषशास्त्र परिचय

भारतीय ज्यौतिषशास्त्र के अन्तर्गत अध्ययन करने योग्य, जो सामान्य लोगों की दैनिक अपेक्षाओं या आवश्यकताओं की विषयवस्तु आदिकाल से रही है, उसे यहाँ क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, चाहे वह सिद्धान्त विषयक हो, चाहे संहिता या होरा विषयक।

यहाँ पर आप जानेंगे जातक फल, प्रश्नफल और उनकी अनेक विधियाँ, स्वर का विस्तृत ज्ञान और उनका उपयोग, जो आपको अपने हर कदम पर अच्छा बुरा का ज्ञान कराने में समर्थ है, वृष्टि (बारिश) ज्ञान, गोचर सम्बन्धी सभी विधियाँ, अष्टकवर्गफल आदि-आदि जिनके ज्ञान से आप अपने को तो आश्चर्य चकित करेंगे ही, दूसरे सभी की प्रशंसा व यश भी प्राप्त कर सकेंगे। इस क्रम में सर्वप्रथम ज्यौतिषशास्त्र का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

ज्योतिषशास्त्र स्वरूप

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख तीन स्कन्ध हैं—गणित, संहिता और होरा। वैसे जातक, गोल, निमित्त, प्रश्न, मुहूर्त्त एवं गणित; इन छः अंगों के नामों और सम्बन्धित विषयों का उल्लेख आचार्यों ने इस महाशास्त्र ज्योतिष के अन्तर्गत किया है।

स्कन्ध व अंग का सामन्जस्य

इस प्रकार गोल और गणित ये दो अंग उक्त ज्यौतिषशास्त्र के गणित स्कन्ध में, निमित्त संहिता स्कन्ध में और अन्य तीन अंगों को जातक, प्रश्न और मुहूर्त्त होरा स्कन्ध के अन्तर्गत समझने चाहिए।

संहिता का विषय

जनपुष्टि अर्थात् लोक कल्याण, जनक्षय अर्थात् भूकम्प, उल्कापात, केतु दर्शन आदि के वश होने वाले जनसंहार वर्षा, हाथी और घोड़ा आदि जीवों के लक्षण, धूमकेतु और उल्का आदि के लक्षण संहिता स्कन्ध में कहे गये हैं।

गणित और फलित का विषय

प्रमाण और फल के भेद से यह शास्त्र दो प्रकार का होता है। इसका गणित स्कन्ध प्रमाण है और अन्य दोनों जातक एवं संहिता स्कन्ध फलात्मक हैं। यह शास्त्र

वेदाङ्ग है। अत: इसके अध्ययन का अधिकार केवल निर्मत्सर, विद्वान् व सच्चरित्र ब्राह्मण जनों को है; कहा भी गया है—

ज्योतिष, कल्प, निरुक्त, शिक्षा, व्याकरण एवं छन्द ये विराट वेद पुरुष के छ: अङ्ग हैं। अतीन्द्रिय शक्ति सम्पन्न मुनियों ने इन अङ्गों को इस प्रकार कहा है—छन्दशास्त्र वेद के चरण, व्याकरण मुख, कल्पशास्त्र हाथ, ज्योतिष नेत्र, शिक्षा नासिका एवं निरुक्त वेद के कान स्वरूप है।

ज्योतिष शास्त्र का महत्त्व

यह ज्योतिष शास्त्र वेद का नेत्र है, अत: अन्य अङ्गों में इसकी प्रधानता उचित ही है, क्योंकि हाथ-पैर आदि अन्य अंगों से युक्त मनुष्य भी नेत्र के बिना अन्धा होने पर कुछ भी करने में असमर्थ होता है।

पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति

अतएव परम पवित्र एवं रहस्यपूर्ण इस ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन ब्राह्मणों को अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इसको जानकर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साथ श्रेष्ठ यश को आसानी से प्राप्त करने में सफल हो जाता है। ऐसा वशिष्ठ का कथन है।

इस प्रकार म्लेच्छ यवन भी, जो इस शास्त्र का अच्छा ज्ञान रखते हैं, ऋषियों की तरह पूज्य हैं। अत: यदि ब्राह्मण को ज्योतिष शास्त्र का अच्छा ज्ञान हो तो फिर बात ही क्या? ऐसा कथन गर्ग मुनि का है।

दैवज्ञ का लक्षण

ज्योतिष शास्त्र रूपी अग्नि में स्वयं को तपाये हुए अर्थात् उसका मर्मज्ञ, गणित में प्रवीण, छन्द शास्त्रवेत्ता, सत्य बोलने वाला, विनीत, वेदों का अध्येता और ग्रह यज्ञ कराने में निपुण दैवज्ञ होना चाहिए।

उपरोक्त प्रतिभा सम्पन्न ब्राह्मण प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न का जो भी शुभ या अशुभ फलादेश करता है, वह फल कभी भी मिथ्या नहीं होता, इस प्रकार प्राचीन आचार्यों ने बतलाया है।

जो व्यक्ति ग्रहगणित के दश भेद और सम्पूर्ण जातक शास्त्र का चिन्तन-मनन कर शुभ या अशुभ फल बतलाता है, उसकी वाणी कभी मिथ्या नहीं हो सकती।

इस तरह विविध प्रकार से होरा (जातक) शास्त्रीय ग्रन्थों के मर्म को जानने वाला, अधोलिखित ब्राह्म आदि पाँच सिद्धान्तों का मर्मज्ञ, ऊहापोह करने में निपुण

एवं मन्त्र-सिद्धि करने वाला पुरुष जातक शास्त्र अर्थात् होरा, प्रश्न एवं मुहूर्त्त शास्त्र को भी जान सकता है।

ग्रह गणित भेद

अहर्गण-आनयन, मध्यम ग्रह-आनयन, स्पष्ट ग्रह-आनयन, चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, ग्रह युद्ध, ग्रह समागम (ग्रहयुति), ग्रहों का अस्त एवं उदय तथा नक्षत्रों की ग्रह से युति; ये ग्रह गणित के दस भेद जानने चाहिए।

भारतीय ज्यौतिष के पंच सिद्धान्त

ब्राह्म, सौर, वासिष्ठ, रौमश एवं पौलिश ये पाँच सिद्धान्त हैं। इनकी सूक्ष्मता-स्थूलता के अनुसार इनकी स्थिति भेद को कहते हैं। ब्राह्म सिद्धान्त सूक्ष्म (स्पष्ट) है। रौमश सिद्धान्त उस ब्राह्म सिद्धान्त के आसन्न हैं। सूर्य सिद्धान्त सूक्ष्मतर है और वासिष्ठ तथा पौलिश सिद्धान्त अस्पष्ट (स्थूल) हैं। कभी ब्राह्म सिद्धान्त, कभी सूर्य सिद्धान्त और कभी रौमश सिद्धान्त काल आदि विशेषता के अनुसार स्पष्ट अर्थात् दृक्गणित तुल्य होते हैं, किन्तु वासिष्ठ एवं पौलिश सिद्धान्त कभी भी स्पष्ट नहीं ज्ञात होते हैं।

ज्यौतिष शास्त्राध्ययन का समय

शुभ दिन अर्थात् सुमुहूर्त्त में गुरु से विधिवत् मन्त्र ग्रहण रूप दीक्षा लेकर मंत्राधिष्ठातृ देवता को जप एवं होम आदि से प्रसन्न कर मंत्र-सिद्ध करने वाला मनुष्य जातक या प्रश्नशास्त्र के फल को जान सकता है और इस प्रकार का दैवज्ञ समाज में आप्त अथवा यथार्थ बोलने वाला हो जाता है।

मुहूर्त्त विचार कर शुभकाल में ही इस शास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ करना श्रेयस्कर है। कहा भी गया है—

पाप रहित, प्रतिभा सम्पन्न और शांत स्वभाव के शिष्यों को अच्छे मुहूर्त्त में मृदु और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र में चन्द्र स्थित हो तथा गुरु लग्न में हो, तो ज्योतिष शास्त्र की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

सूर्य आदि ग्रहों का बलिदान और होम सहित गंध-पुष्पादि से ठीक प्रकार से पूजा आदि कर और शिष्य द्वारा भी विधिवत् गुरु की पूजा कर इस शास्त्र का शुभारम्भ करना चाहिए।

जिस प्रकार विधिपूर्वक पठित मन्त्र लोक में समस्त कार्यों के साधक होते हैं। उसी प्रकार निश्चय ही सविधि पढ़ा गया शास्त्र भी सफल होता है।

पाठक को परामर्श

वराहमिहिर कृत होराशास्त्र, जो इस समय बृहज्जातक नाम से प्रसिद्ध है; संक्षिप्त होते हुए भी व्यापक और गम्भीर अर्थ वाला है। उसका अर्थ या भाव प्रतिभावान् व्यक्ति के लिए भी दुरूह है, अत: सर्वप्रथम आचार्य भट्टोत्पल आदि की टीकाओं को पढ़ और समझ कर दैवज्ञ को चाहिए कि उसके अर्थ को स्पष्ट रूप से हृदयङ्गम कर लेना चाहिए।

वराहमिहिर के मुख से विनिर्गत होराशास्त्र को जिस दैवज्ञ के द्वारा माला की तरह कण्ठ में धारण कर लिया गया हो और जिसके द्वारा कृष्णीय शास्त्र को भी मंगलसूत्र की तरह सदैव गले में धारण या कण्ठगत कर लिया गया हो उनसे राजसभा एवं विद्वत्सभा की निश्चय ही शोभा बढ़ती है।

चमत्कारिक और अकाट्य फलादेश करने की इच्छा से सम्पन्न दैवज्ञ को होराशास्त्र अर्थात् बृहज्जातक के दश अध्यायों की व्याख्या का मनोयोगपूर्वक अध्ययन करना चाहिए।

जिस दैवज्ञ ने उपरोक्त बृहज्जातक ग्रन्थ के दशाध्यायी के चिन्तन-मनन में विशेषकर परिश्रम नहीं किया है, अत: अन्य बहुत सारे ग्रन्थों का अध्ययन करके भी उसके लिए यथार्थ फलादेश करना कठिन ही है।

इस प्रकार जो व्यक्ति बृहज्जातक की दशाध्यायी का अध्ययन किये बिना फलादेश करने का प्रयास करता है, नौका के बिना समुद्र को पार करने जैसा उसका प्रयास होता है।

पुनर्जन्म का कारण

इस प्रकार स्वर्ग-नरक आदि का भोगात्मक अनुभव करने के बाद भी अवशिष्ट पूर्वजन्मार्जित कर्म का भोग करने के लिए मोहग्रस्त मनुष्यों को बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

कर्मों का विभाग और ज्यौतिषशास्त्र

यहाँ कर्म दो प्रकार का होता है—प्रथम पूर्व अर्थात् प्राक्तन कर्म और दूसरा क्रियमाण कर्म।

पूर्व कर्म भी दो प्रकार का होता है—एक संचित और दूसरा प्रारब्ध। इस प्रकार कर्म के मुख्य रूप से तीन भेद माने गये हैं—संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। पूर्व कर्म का भोग हो जाने पर उसका क्षय होता है और अन्य अवशिष्ट और क्रियमाण कर्म का भोग करने के लिए पुनर्जन्म होता है।

प्राय: अपने कर्म का भोग करने के लिए जीव उत्पन्न होते हैं और भोग द्वारा कर्म को क्षीण करते हुए वे अन्यान्य योनियों में पुनः पुनः चले जाते हैं।

पूर्व-पूर्व जन्म में जो कुछ भी शुभ अथवा अशुभ कर्म प्राणी ने अर्जित किया है, उस समस्त कर्म को यह ज्योतिष शास्त्र उसी प्रकार स्पष्ट कर देता है, जिस प्रकार दीपक अंधकार में रखे पदार्थों को दिखला देता है।

पूर्व-पूर्व जन्म में जिस प्रकार के कर्म को अर्जित किया है, चाहे वह शुभ हो या अशुभ, उस समस्त कर्म को इस वर्तमान जन्म में सूर्यादि ग्रह स्पष्ट रूप से अभिव्यंजित या प्रकाशित कर देते हैं।

इस प्रकार शुभ और अशुभ काल में किया गया कर्म क्रम से सुख और दु:ख देने वाला होता है।

वह जन्मान्तर में भी फल देने वाला होता है और वह कर्म उस कर्म करने वाले के वंश में भी उसी प्रकार फल देता है।

अत: पूर्व जन्म में अर्जित पुण्य और पाप की प्रबलता तथा उसके अतिशयतावश मनुष्य जाति में प्राणी का जन्म सम्भव होता है।

अत: जातक शास्त्र का अध्ययन और मनन करना श्रेयस्कर है, जिससे प्रारब्ध या पूर्व जन्मार्जित कर्मों का पूर्वज्ञान किया जा सके।

प्रश्न व जातक की एकरूपता

चूँकि मृत्युपर्यन्त प्राणी पूर्वकृत कर्म के फल का भोग करता है और उस फल का कथन करने में जातक शास्त्र ही समर्थ है।

इस विषय में प्रश्न शाास्त्र से क्या सत्य कथन किया जा सकता है? यह कथन ठीक नहीं है।

प्रश्नशास्त्र का महत्त्व

इस समय पूर्वकृत शुभ या अशुभ किस प्रकार के कर्म का फलानुभव किया जा रहा है?

इसे जानने के लिए तथा इस जन्म में क्रियमाण और करिष्यमाण कर्म फल ज्ञान के लिए प्रश्नशास्त्र की रचना की गई है।

इस प्रकार पूर्वजन्म में किए गये और इस जन्म में किये जा रहे कर्मों का विभाजन कैसे हो सकता है? यह भी प्रश्न शास्त्र बतलाता है।

जिस समय जातक के फल से प्रश्न का फल किसी गुण-दोष के कारण पृथक् हो, तो उस समय ऐहिक विविध कर्मों अर्थात् वर्तमान जन्म में किये जा रहे कर्मों के द्वारा शुभाशुभ फल जानना चाहिए।

जिस समय प्रश्न शास्त्र का फल ग्रह, राशि एवं योग के अनुसार पर जातक फल के अनुकूल हो, तो उस समय पूर्वजन्मार्जित कर्म का फल होता है— इस प्रकार से बुद्धिमानों को समझना चाहिए।

ग्रह और भावों के बलाबल तथा अन्य ज्यौतिष शास्त्रीय नियमों को जानकर जिस प्रकार जातक शास्त्र से फलादेश किया जाता है, उसी प्रकार प्रश्न शास्त्र से भी विचार करना श्रेष्ठ है।

दैव अर्थात् विधाता के द्वारा शुभ या अशुभ नियति से नियुक्त प्राणी परतन्त्र होता है, किन्तु ज्योतिर्विद प्रश्न पद्धति से ऐसे प्राणी के अत्यन्त निकट पहुँच जाता है, उससे सम्बन्धित पूरी जानकारी कर लेता है।

अतः मानना पड़ता है कि फलादेश करने के प्रसंग में प्रश्नशास्त्र भी जातक शास्त्र के तुल्य ही है।

इस प्रकार कथित इस सिद्धान्त की पुष्टि जातकशास्त्र के अन्य अधिकृत मान्य ग्रन्थों से भी होती ही है।



दैवज्ञ का दैनिक आचरण

प्रात:काल सबेरे अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर हृदय में अपने इष्टदेव का ध्यान करने के पश्चात् शौच, दातुन आदि से शरीर शुद्धि करते हुए, स्नान, आचमन, अर्घ्यदान एवं मन्त्र-जप आदि सभी नित्य कर्म सम्पन्न कर पंचाङ्ग का अवलोकन करते हुए ग्रहों की संगणना कर दैवज्ञ को स्वस्थ अन्तरात्मा का हो जाना चाहिए।

फिर जो कोई भी परिचित या अपरिचित स्त्री या पुरुष प्रश्न पूछने हेतु आता हुआ दृष्टिगत हो, तो उसके ऊपर सावधानी पूर्वक दृष्टि जमाये रखे।

उसकी अङ्गस्पर्श आदि सभी चेष्टाएँ जो प्रश्नोत्तर के लिए अपेक्षित हों, उन्हें जानकर और फिर प्रश्नकालीन शुभाशुभ शकुन तथा अपने स्वर का भी विचार करना चाहिए; क्योंकि प्रश्न का निर्णय करने में पृच्छक का आचरण, उसके आने की दिशा, चेष्टाएँ, अंगों का स्पर्श व आकर बैठने की तरीका आदि अत्यन्त सहायक होता है।

पृच्छक का कर्त्तव्य

शुभ तिथि और दिन व अनुकूल तारा होने पर तथा सूर्यवार सहित शुभवारों अर्थात् चन्द्र, बुध, गुरु एवं शुक्र वार में फल और उपहार आदि से दैवज्ञ को सन्तुष्ट कर प्रात: काल अर्थात् पूर्वाह्न समय में उसके पास जाकर अपना अपेक्षित प्रश्न पूछकर उससे अभीष्ट सिद्धि का उपरोक्त उपाय करना चाहिए।

प्रश्नोत्तर करने में विशेषता

इस प्रकार विधिवद् श्रद्धा-भक्तिभाव से पूछे गये प्रश्नों का शुभ या अशुभ जैसा भी हो, उत्तर देना चाहिए। इससे भिन्न प्रकार से पूछे गए प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं।

कहा भी गया है—किसी के प्रश्न पूछे विना किसी का फलादेश नहीं करना चाहिए और विधि पूर्वक न पूछे गए या परीक्षा के लिए किए गए प्रश्नों का भी फलादेश नहीं ही करना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के पूछे गए प्रश्नों से यथार्थ फल का ज्ञान सम्भव नहीं होता।

दैवज्ञ को अनिवार्य करणीय

ऐसे श्रद्धावान् जिज्ञासु स्त्री या पुरुष, जो विना पूछे या पूछकर अपनी स्थिति या अवस्था के बारे में जानना चाहता है, उसका शुभाशुभ फल लग्न, केन्द्र और त्रिकोण स्थानों से विचार कर अवश्य बतलाना चाहिए।

महर्षि वसिष्ठ के विचारानुसार कोई जिज्ञासु किसी कारणवश प्रश्न नहीं भी पूछता हो, तो भी उसका शुभाशुभ फल आरूढ़ लग्न से विचार कर दैवज्ञ को स्वयं बतलाना चाहिए। ऐसे समय में जिज्ञासु स्वयं प्रश्न पूछेगा तभी फल बतलाना है, ऐसा सोचकर मौन नहीं रहना चाहिए।

प्रश्नफल ज्ञानार्थ आरूढ़ लग्न कथन

इस प्रकार पूर्व में मेष और वृष, अग्निकोण में मिथुन, दक्षिण में कर्क और सिंह, नैर्ऋत्य कोण में कन्या, पश्चिम में तुला और वृश्चिक, वायुकोण में धनु, उत्तर में मकर और कुम्भ तथा ईशान कोण में मीन राशि स्थित मानना चाहिए।

जिस स्थान पर दैवज्ञ स्थित हो, उस भूमि में पूर्वादि दिशाओं में उपरोक्त क्रम से मेषादि राशियों की स्थिति मानकर एवं भूमिचक्र की परिकल्पना कर लेनी चाहिए।

दैवज्ञ के समीप आकर प्रश्नकर्त्ता जिस दिशा में स्थित होकर प्रश्न करता हो, उस दिशा की राशि को निश्चयपूर्वक आरूढ़ राशि या आरूढ़ लग्न जानना चाहिए।

आरूढ़ लग्न ज्ञानार्थ भूमिचक्र

	ईशान कोण	पूर्व		अग्नि कोण	
	मीन	मेष	वृक्ष	मिथुन	
उत्तर	कुम्भ	दैवज्ञ		कर्क	दक्षिण
	मकर			सिंह	
	धनु	वृश्चिक	तुला	कन्या	
	वायव्य कोण	पश्चिम		नैर्ऋत्य कोण	

जिस-किसी दिशा में स्थित राशि पर प्रश्नकर्त्ता यदि आरूढ़ हो या स्थित हो, उसे ही आरूढ़ राशि कहते हैं। आरूढ़ राशि लग्न का विधिवद् ज्ञान कर लेने के पश्चात् उससे प्रश्नों का विचार करते हुए फलादेश करना चाहिए।

अन्य प्रकार से आरूढ़ लग्न कथन

पृच्छक की स्थिति से आरूढ़ राशि का निश्चय नहीं होने पर सोने के पत्र पर पूर्वोक्त भूमिचक्र को लिखकर और उसका विधिवत् पूजन करना चाहिए।

फिर पृच्छक इस चक्र में लिखित जिस राशि का स्पर्श करते हों, वह आरूढ़ राशि जाननी चाहिए। स्पर्श करने हेतु सिक्का का प्रयोग करना चाहिए।

आरूढ़ लग्न को भी प्रश्न लग्न के संदर्भ में उदय लग्न के समान महत्त्व प्राप्त है। यहाँ पर दूसरा प्रकार बताने का कारण यह है कि आजकल दैवज्ञों के पीछे पृच्छक के बैठने का अवसर नहीं होता।

आजकल तो मेज-कुर्सी या गद्दी पर बैठे दैवज्ञ के समक्ष प्रायः निश्चित स्थान पर ही पृच्छक बैठेगा। तब आरूढ़ लग्न का निर्णय प्रथम प्रकार से नहीं ही हो सकता है।

इनके अतिरिक्त प्रश्न लग्न के विषय में कुछ इस प्रकार की बातें भी प्रचलन में देखा जा रहा है कि—

१. पृच्छक या किसी बालक से सिक्के द्वारा आरूढ़ चक्र का स्पर्श करा कर लग्न जानना चाहिए।

२. पृच्छक द्वारा लाये हुए पान के पत्तों की संख्या पर्यन्त मेष राशि से गिन कर लग्न जानना चाहिए।

३. भट्टोत्पल के विचारानुसार पृच्छक द्वारा उच्चारित प्रथम अक्षर के अनुसार लग्न जानना चाहिए।

उसके अनुसार स्वर का स्वामी सूर्य, कवर्ग का मंगल, चवर्ग का शुक्र, टवर्ग का बुध, तवर्ग का गुरु, पवर्ग का शनि और य, र, ल, व, श, ष, स, ह का स्वामी चन्द्र है।

यहाँ प्रथम अक्षर का ग्रहण कर उससे लग्नेश का ज्ञान करना चाहिए। इस प्रकार वर्ग का सम (२, ४) अक्षर होने पर उस ग्रह की सम राशि व विषम (१, ३, ५) होने पर विषम राशि लग्न समझनी चाहिए।

४. उत्तर कालामृत के अनुसार पृच्छक से १ से १०८ के बीच में से कोई संख्या बोलने को कहना चाहिए और उस संख्या को ९ से भाग देने पर लब्धि गत लग्न राशि व उसमें एक जोड़ लेने पर मेषादि क्रम से वर्तमान लग्न राशि ज्ञात हो जाती है। शेष संख्या गत नवांश वाचक होती है।

प्रश्नकालिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व

फल वाचन के लिए दैवज्ञ को प्रश्नकालिक अधोलिखित विषयों का सावधानी से विचार करना चाहिए। विचारणीय विषय इस प्रकार हैं—

(१) प्रश्न करने का समय।

(२) प्रश्न करने का स्थान (देश)।

(३) प्रचलित स्वर।

(४) पृच्छक द्वारा अपने अंग को स्पर्श करना।

(५) भूमिचक्र के अनुसार किसी भी दिशा में स्थित आरूढ़ राशि।

(६) पृच्छक की चेष्टा।

(७) पृच्छक की मुद्रा अर्थात् प्रसन्न या खिन्न आदि भाव।

(८) उसकी न्यूनोच्च दृष्टि।

(९) उसके श्वेत आदि वर्ण के वस्त्र।

(१०) प्रश्न समय के शकुन आदि।

इस प्रकार उक्त विषयों को ध्यान में रखकर दैवज्ञ द्वारा सहज ही सटीक फलादेश करना निश्चय ही सम्भव है।

प्रश्नोत्तरकालिक क्रम व व्यवहार

प्रश्न करने हेतु पृच्छक का घर से निकलने के समय, मार्ग में और दैवज्ञ के घर में प्रवेश करने के समय और दैवज्ञ से प्रश्न पूछने के समय के शकुनों का विचार कर, त्रिस्फुट सूत्र, अष्टाङ्गनिमित्त आरूढ़, लग्न और चन्द्रमा से फलों का विचार, ग्रहों के द्वारा आयु और जातकोक्त रीति से अन्य भावों का विचार करते हुए देवताओं की अनुकूलता तथा मारण-मोहनादि अभिचार क्रियाओं का निश्चय कर दैवज्ञ को फल कथन करना चाहिए।

आयु, रोग, शोकादि का प्रथम विचार करते हुए, उनके शुभाशुभ ज्ञान के बाद प्रश्न फल कहना चाहिए, क्योंकि यदि प्रश्नकर्त्ता आयुहीन है, तो प्रश्न के फल का भोग कैसे सम्भव है?।

दैवज्ञ के फलादेश करने के लिए सावधान होते ही पृच्छक का विनय आदि से युक्त शिष्ट और सुन्दर व्यवहार होना चाहिए, सभी प्रश्नों से शुभ एवं लाभपूर्ण फल सम्भव होता है।

दैवज्ञ फलादेशार्थ सावधान हो, तो उस अवस्था में पूछे गये प्रश्न से सम्बन्धित पदार्थ दिख जाय या उससे जुड़े विषयों की चर्चा हो, तो अभीष्ट सिद्धि होती है।

जैसे कि सन्तान विषयक प्रश्न का फलादेश करते समय बालक दिखलाई दे, तो पुत्र लाभ और विवाह विषयक प्रश्न के समय युवती दिखाई दे तो स्त्री लाभ होता है।

प्रश्न करने में वर्जित काल

इस प्रकार भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, श्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद आदि बालकों के त्रवर्ज्यतारा सम्बन्धी नक्षत्र

में, गण्डान्त नक्षत्र में, उष्ण और विषघटी में, अष्टमी, भद्रा (२, ७, १२) एवं रिक्ता (४, ९, १४) तिथि में शकुनि आदि चारों स्थिर करणों में, तिथि, नक्षत्र और राशि की सन्धि तथा अंश सन्धि में, गुलिक के लग्न में होने पर, व्यतिपात और वैधृति में, सूर्य और चन्द्र ग्रहण से तीन दिन के मध्य, सार्पशिर, एकार्गल, मृत्यु और दग्ध आदि दुर्योग में, पापग्रह से दृष्ट लग्न के समय, त्रयोदशी को प्रदोष काल में, मध्य रात्रि में, उत्पातयुक्त सूर्य के दिखलाई देते समय, संक्रान्ति के समय, विपद् , प्रत्यरि और वध तारा में, राशि और जन्म लग्न से अष्टम स्थान में चन्द्रमा होने पर और भूकम्प, उल्कापात, धूमकेतु के उदित रहने पर इत्यादि दुष्टकालों में प्रश्न पूछना अशुभदायी है।

प्रश्न करने का उत्तम काल

इस प्रकार उपरोक्त दोषों से रहित काल में, अमृतघटी में, लग्न में शुभ ग्रह के होने पर या उनकी दृष्टि होने पर, शुभ मुहूर्त्त में, सिद्धि एवं अमृत आदि योगों में प्रश्न करना इष्ट फलदायक होता है।

प्रश्न करने का उचित स्थान

प्रश्न करने योग्य स्थान कथन क्रम में कहा जा रहा है कि फल, पुष्प एवं वृक्षों से सम्पन्न समतल स्थान में, रत्न और कांचनादि से शोभित स्थान में, पाँचों इन्द्रियों और मन को अच्छे लगने वाले स्थान में; गोबर और जल से तुरन्त लीपे या धोये गये समतल स्थान में, माङ्गलिक कार्य और सौभाग्यवती स्त्रियों से युक्त स्थान में अथवा पुत्र, स्त्री और हृष्ट-पुष्ट व्यक्तियों से युक्त गृह में यदि कोई भी व्यक्ति प्रश्न करता है, तो उसके अभीष्ट फल की प्राप्ति सुनिश्चित है।

प्रश्न करने में अशुभ स्थान

अब प्रश्न करने के अयोग्य स्थानों को कहा जा रहा है कि महावन, श्मशान के समीप, ऊँचे-नीचे स्थान, खाली पड़े घर या दीन-दुःखी के गृहस्थान, प्रेत क्रिया आदि अशुभ कर्मों का स्थान, जल, अग्नि और सूखे वृक्ष के पास, मन और पञ्च-इन्द्रियों को अच्छा न लगने वाला स्थान आदि स्थानों में यदि कोई प्रश्न करता है, तो उसका मनोरथ कथमपि सिद्ध नहीं होता।

प्रश्नकालिक स्वर परिज्ञान

प्रतिदिन सूर्योदय के पूर्व स्वर का परीक्षण दैवज्ञों को अवश्य करना चाहिए। स्वर ज्ञान के लिए श्वास सम्बन्धी इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों की गति और उसमें पृथ्वी आदि तत्त्वों का संचार जानना चाहिए।

उसके अनुसार अपना समस्त शुभाशुभ फल और तात्कालिक स्वर के अनुसार पृच्छक का फल तथा नष्टादि पदार्थों की प्राप्ति कहना चाहिए।

इन स्वरों का पहचान करने के लिए देखनाचाहिए कि कौन-सा स्वर चल रहा है, इस प्रकार इडा वाम स्वर चलने पर, पिङ्गला दक्षिण स्वर और सुषुम्ना दोनों स्वरों के साथ चलने पर जाननी चाहिए।

प्रतिदिन स्वर का परिज्ञान करते हुए देखना चाहिए कि यदि सोमवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार; इन शुभवारों में वाम स्वर चलता हो तथा मंगलवार, रविवार और शनिवार; इन क्रूर वारों में दक्षिण स्वर चल रहा हो तो मनुष्यों को शुभप्रद होता है।

शुभ ग्रहों के वार में दक्षिण स्वर और पाप ग्रहों के वार में वाम स्वर अशुभ फलदायक होता है। अब आगे स्वर के शुभाशुभ प्रकार और फल वैशिष्ट्य को कहा जा रहा है।

स्वर फल की विशेषता

इस तरह प्रत्येक शुभ और पाप ग्रह के वार में स्वर अनुकूल अर्थात् शुभ ग्रहों के वार में वाम स्वर और पाप ग्रहों के वार में दक्षिण स्वर चलता हो तो शरीर में स्वस्थता, धन का लाभ, मधुर भोजन और अभीष्ट कार्य सिद्ध होते हैं। इससे भिन्न स्वर चलने पर मधुर भोजन और धन लाभ नहीं कहना चाहिए। सबसे कलह ही होता है, सुखपूर्वक नींद नहीं आती है और मल सम्बन्धी कष्ट भी होता है।

वारवश स्वर फल

यहाँ रविवार को प्रतिकूल स्वर होने पर शरीर में वेदना, सोमवार को कलह, मंगलवार को मृत्यु और दूर देश की यात्रा, बुधवार को राज्य (शासन) से आपत्ति, गुरु और शुक्र को प्रत्येक कार्य की असिद्धि और शनिवार को प्रतिकूल स्वर होने पर बल और खेती का नाश तथा भूमि विषयक विवाद सम्भव होता है।

निरन्तर आठ दिन तक एक समान स्वर का फल

इस प्रकार रविवार से आठ दिन तक निरन्तर वाम स्वर चलने पर गुरु की मृत्यु अथवा गम्भीर व्याधि उत्पन्न होती है।

इसी प्रकार सोमवार से निरन्तर दक्षिण स्वर चलने पर पुत्र से सम्बन्धित आपत्ति, मंगलवार से निरन्तर वाम स्वर चलने पर शत्रु से बन्धन, बुधवार से निरन्तर दक्षिण स्वर चलने पर गुरु की मृत्यु की सम्भावना, शुक्रवार से निरन्तर

दक्षिण स्वर चलने पर भूमि के विवाद के कारण धननाश और शनिवार से निरन्तर आठ दिन तक वाम स्वर चलने पर स्त्रीनाश या घर का नाश कहना चाहिए।

स्वर मापन का फल

पृथ्वी तत्व के संचार के समय श्वास का दैर्घ्य १६ अंगुल, जल तत्त्व के संचार के समय श्वास का दैर्घ्य १२ अंगुल इसी तरह अग्नि का ८ अंगुल, वायु का ६ अंगुल और आकाश का दैर्घ्य ३ अंगुल होता है।

दोनों नासिकारन्ध्रों से निकलने वाले श्वास की गति का दैर्घ्य इस प्रकार होने पर पृथ्वी आदि तत्त्वों का संचार या उदय कहना चाहिए।

शुक्ल पक्ष के अन्तर्गत नाडियों में तत्त्वों के संचार होने पर इस प्रकार फल जानना चाहिए।

पृथ्वी तत्व इडा नाड़ी १६ अंगुल श्वास में संचरित होने पर ऊँचे मन्दिर और प्राकार अर्थात् परकोटा आदि से युक्त गृह या महल में प्रवेश होता है और राज्याभिषेक भी होता है।

इसके अतिरिक्त होने पर वापी, कूप, तड़ाग आदि का निर्माण जैसे शुभ कार्य सम्भव होता है। वामस्थ स्वर शुभ होता है और कूप, जलाशय आदि की रचना तथा पाणिग्रहण कराता है किन्तु दक्षिणस्थ स्वर जल से भय उत्पन्न करने वाला होता है।

आठ अंगुल संचरित होने पर जल से भय, शस्त्र से शरीर में घाव, घर का दाह अथवा पात और शिशुओं का जलना जैसा अशुभ फल मिलता है।

इस अशुभ फल के निवारण के लिए इष्ट देवता की आराधना करनी चाहिए।

छः अंगुल श्वास की गति होने पर चोर-भय, अपना स्थान छोड़कर पलायन और हाथी, घोड़ा आदि की सवारी कराता है।

तीन अंगुल का संचार होने पर मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र का बारम्बार उपदेश, देव प्रतिष्ठा, दीक्षा, व्याधि की उत्पत्ति और शरीर में निरन्तर पीड़ा उत्पन्न करने वाला होता है।

पृथ्वी आदि पाँचों भूतों या तत्त्वों की दोनों नाड़ियां वाम और दक्षिण भाग से चलने का समान फल जानना चाहिए।

यदि उदित (चलता हुआ) श्वास संहतदीर्घ हो तो शुभ और शीर्णाग्र अर्थात् आगे की ओर न्यूनतर वेदना वाला होने पर नेष्ट फलदायक होता है।

नष्ट वस्तु ज्ञानार्थ स्वर का उपयोग

नष्ट पदार्थ कहाँ है? इस प्रकार के प्रश्न के समय भूमि तत्त्व का उदय होने पर नष्ट पदार्थ भूमि में गड़ा हुआ जानना चाहिए।

जल तत्त्व का उदय होने पर नष्ट पदार्थ जल में, वायु के उदय होने पर धुआँ वाले स्थान में, आकाश तत्त्व के उदय होने पर ऊँची जगह और अग्नि तत्त्व के उदय काल में नष्ट वस्तु भूमि के पृष्ठ भाग में समझना चाहिए।

स्वर से पृच्छक स्थिति परिज्ञान

जिस ओर का स्वर चल रहा हो उस ओर दैवज्ञ को प्रश्नकर्त्ता दिखलाई दे और उस समय यदि पृथ्वी या जल तत्त्व का उदय हो तो पृच्छक का दीर्घायु तथा वह गुणवान् स्त्री और पुत्र से युक्त तथा अधिकाधिक धन की वृद्धि करने वाला होता है। प्रश्न करने वाली स्त्री हो तो भी उक्त फल समझना चाहिए।

यहाँ 'स्त्री' प्राप्ति के स्थान पर गुणवान् पति की प्राप्ति कहनी चाहिए। इसके विपरीत प्रश्नकर्त्ता रिक्त स्वर भाग में स्थित हो और अग्नि, वायु या आकाश तत्त्व का उदय हो तो उपरोक्त का विपरीत फल समझना चाहिए।

यहाँ इडा संज्ञक वाम नाड़ी (स्वर) चन्द्रमा की, पिङ्गला संज्ञक दक्षिण नाड़ी (स्वर) सूर्य की और सुषुम्ना संज्ञक मध्य नाड़ी अग्नि की बतलायी गई है।

स्वर एवं मुहूर्त्त

यात्रा करनें के समय इड़ा वाम स्वर का संचरण तथा प्रवेश, गृहप्रवेश, वधूप्रवेश और नगर प्रवेश काल में पिङ्गला (दक्षिण स्वर का संचार) नाड़ी शुभ फलदायक होती है।

योगाभ्यास की प्रक्रिया में सुषुम्ना (मध्य स्वर का संचार) नाड़ी प्रशस्त होता है, किन्तु अन्य कार्यों में सुषुम्ना शुभ नहीं मानी जाती है।

स्वर से रोग परिज्ञान

दैवज्ञ का दक्षिण स्वर चल रहा हो तथा रोगी या उसका दूत दक्षिण भाग में स्थित होकर प्रश्न करता हो और रोगी पुरुष हो, तो वह शीघ्र स्वस्थ होता है और दीर्घकाल तक जीवित रहता है।

स्त्री रोगिणी हो, दैवज्ञ का वाम स्वर चल रहा हो और प्रश्नकर्त्ता वाम भाग में स्थित होकर प्रश्न करता हो तो स्त्री निश्चित रूप से निरोग होकर दीर्घकाल तक जीवित रहती है।

दैवज्ञ का वाम स्वर के चलने पर यदि प्रश्नकर्त्ता दाहिनी ओर स्थित हो

अथवा इसके विपरीत अर्थात् दक्षिण स्वर के चलने पर पृच्छक बायीं ओर स्थित हो तो दैवज्ञों को उत्पन्न रोग के प्रसङ्ग में कष्टसाध्य होने की बात कहनी चाहिए।

दैवज्ञ के श्वास के अन्दर प्रवेश के समय प्रश्नकर्त्ता (रोग सम्बन्धी) प्रश्न करता हो, तो रोगग्रस्त व्यक्ति स्वस्थ और दीर्घजीवी होता है और यदि श्वास के निकलते समय प्रश्न करता हो तो रोगी मनुष्य यमराज की नगरी को प्रयाण करता है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त होता है।

वाम या दक्षिण भाग में पृच्छक स्थित हो और उस भाग का दैवज्ञ का भी स्वर चल रहा हो तो मन्त्र-तन्त्र के अनुष्ठान विधि से रोगी पुरुष या स्त्री जीवित रहता अर्थात् मृत्यु से बच जाता है।

स्वर और शकुनवश रोगी स्थिति कथन

दूत और स्वर दोनों एक दिशा में हों और मृत्यु के चिह्न दिखलायी या सूनायी या स्मरण में न आया हो, तो रोगी जीवित रहता है।

इसके विपरीत दूत और स्वर भिन्न दिशाओं में स्थित हों तथा मृत्यु के लक्षण दिखलाई या सुनाई दें अथवा स्मृति में आया हो तो रोगी की मृत्यु कहनी चाहिए।

इस प्रकार आगे, बायीं ओर या ऊपर स्थित व्यक्ति शुक्ल पक्ष रहने पर जो कुछ भी पूछता हो तथा प्रश्नकाल में चन्द्र स्वर अर्थात् वाम स्वर का संचार हो रहा हो, तो उसे सब कुछ प्राप्त होता है।

कृष्ण पक्ष रहने पर, पीछे, नीचे या दाहिनी ओर स्थित होकर प्रश्न करता हो और सूर्य स्वर (दक्षिण स्वर) का संचार हो तो भी उसे निश्चित रूप से अभीष्ट लाभ होता है।

प्रश्नकाल में दैवज्ञ प्रसन्न या दु:खी, जैसी भी अवस्था में हो, वैसी ही प्रश्नकर्त्ता की अवस्था होती है।

दैवज्ञ दशावश प्रश्नकर्ता स्थिति ज्ञान

स्नान, भोजन एवं शयन आदि निजी क्रियाकलापों में दैवज्ञ को जैसा अनुभव हो, वैसा ही प्रश्नकर्त्ता को कहे, ऐसा ही श्रेयस्कर रहता है।

दाहिनी तथा बायीं ओर से प्रश्न करते हुए यदि दूत पूर्ण नाड़ी की ओर स्थित हो जाता है, तो रोगी नि:संदेह जीवित रहता है।

नष्ट वस्तु दिशा ज्ञान

स्वरवश नष्ट वस्तु की दिशा इस प्रकार समझनी चाहिए। पृथ्वी तत्त्व का उदय हो तो नष्ट पदार्थ पूर्व में स्थित जानना चाहिए।

जल तत्त्व का उदय हो तो दक्षिण में, अग्नि तत्त्व का उदय हो तो पश्चिम में, वायु तत्त्व का उदय हो तो उत्तर में और आकाश तत्त्व का उदय हो तो नष्ट पदार्थ मध्य में अथवा अपने स्थान पर स्थित कहना चाहिए।

वार-पक्षवश स्वर शुभाशुभत्व ज्ञान

सूर्यादिवारों तथा शुक्ल और कृष्ण पक्ष के प्रकारों के अनुसार स्वर का शुभ व अशुभ फल इस तरह जानना चाहिए।

शुभ ग्रहों के वार और शुक्ल पक्ष में वाम नाड़ी सिद्धिदायक होती हैं तथा पाप ग्रहों के वार और कृष्णपक्ष में दक्षिण नाड़ी सिद्धिप्रद होती है।

स्वर से जय-पराजय का ज्ञान

यहाँ चन्द्र स्वर संचार के समय घर से प्रस्थान करना चाहिए, सूर्य स्वर संचार के समय युद्ध भूमि में प्रविष्ट होना चाहिए तथा रिक्त अर्थात् किसी भी स्वर से रहित भाग की ओर शत्रु को लेकर युद्ध करना चाहिए। इस प्रकार कायर व्यक्ति भी विजयी होता है।

इस तरह जो सूर्य स्वर के चलते समय घर से प्रस्थान करे तथा चन्द्र स्वर चलते समय युद्ध-भूमि में प्रवेश करे और पूर्ण स्वर की ओर युद्ध के समय जिसका शत्रु हो, वह शूरवीर भी हो, तो भी अवश्य मारा जाता है।

दस्यु, शत्रु, राजा, जुआरी और वाद-विवाद करने वाले; ये सभी रिक्त स्वर अर्थात् जिस ओर स्वर संचार नहीं हो रहा हो, उस ओर हों तो उपद्रव करने में असमर्थ रहते हैं और पूर्ण स्वर की ओर हों तो भय करने वाले होते हैं।

दक्षिण-वाम स्वर शुभता कथन

विवाद, जुआ, युद्ध, स्नान, भोजन, स्त्री-सम्भोग, व्यापार और भयदोहन करने वाले साहसिक कार्यों में सूर्य नाड़ी या दक्षिण स्वर प्रशस्त होता है।

यात्रा, दान तथा विवाह में वस्त्र, अलंकार एवं आभूषण धारण करने में, शुभ कर्म में और गृह प्रवेश में चन्द्र नाड़ी या वाम स्वर प्रशस्त होता है।

स्वर से सन्तान ज्ञान

गर्भिणी प्रश्न का विचार करने के समय यदि दक्षिण स्वर चल रहा हो तो पुत्र तथा वाम स्वर चल रहा हो तो कन्या और दोनों स्वर चल रहे हों अर्थात् सुषुम्ना या मध्य स्वर चल रहा हो तो गर्भ में नपुंसक होता है।

मेरे गर्भ में क्या है? इस प्रकार के प्रश्न के समय यदि गर्भिणी पूर्ण स्वर की ओर स्थित हो तो पुत्र; रिक्त स्वर की ओर हो तो कन्या और दोनों स्वर की ओर हो तो युगल या जुड़वा शिशु गर्भ में होने की बात कहनी चाहिए।

दैवज्ञ का दैनिक आचरण

स्वर से कार्य सिद्धि कथन

चन्द्र स्वर चलते समय घर से निकलकर सूर्य स्वर चलते समय अभीष्ट या इच्छित स्थान पर पहुँचे, तो विना प्रयत्न किए दुर्लभ कार्य में भी सफलता प्राप्त होती है।

स्वर से शत्रु आक्रमण

शत्रु के आगमन सम्बन्धी प्रश्न के समय वाम स्वर चल रहा हो, तो शत्रु नहीं आता।

इसके विपरीत दक्षिण स्वर चल रहा हो, तो शत्रु चढ़ाई करता है; यह विना किसी प्रयत्न का स्वयं सिद्ध है।

इस अंक युद्ध में अर्थात् बिना शत्रुता के मात्र परीक्षा या मनोविनोद के लिए किया गया युद्ध में मेरी जीत होगी या हार?

इस प्रश्न के समय पूर्ण स्वर की ओर होने पर जीत और रिक्त स्वर की ओर होने पर हार होगी, कहनी चाहिए।

निर्गमन और केलि युद्ध के स्थल में आरोहण इडा नाड़ी या वाम स्वर चलते समय शुभ होता है।

पिङ्गला नाड़ी चलने के समय जो अपनी बायीं ओर स्थित प्रतिद्वन्द्वी पर प्रहार करता है, उसकी निश्चित रूप से जीत होती है।

इड़ा नाड़ी चलने के समय केलि युद्ध स्थल में आरोहण करने वाले की इड़ा नाड़ी ही सदा चलती रहे तो जीत नहीं होती।

अत: विजय की इच्छा रखने वाले वहाँ पर पूर्व या उत्तर की ओर स्थित होकर स्थिति को अनुकूल बना लें।

स्वर विस्तार से सन्तान मृत्यु ज्ञान

गर्भस्थ सन्तान की कुशलता प्रसङ्ग में प्रश्न होने पर अनुमान करना चाहिए कि यदि छ: या तीन अंगुल मात्र श्वास का विस्तार हो अर्थात् क्रमश: वायु और आकाश तत्त्व का संचार हो तो गर्भ में स्थित बालक की मृत्यु होती है। पूर्ण स्वर की ओर से प्रश्न करने के बाद यदि कोई रिक्त स्वर की ओर हो जाता है तो भी मृत सन्तान का जन्म कहना चाहिए।

पृच्छक की चेष्टा

यदि प्रश्नकर्त्ता वक्षस्थल का स्पर्श करता हो तो शीघ्र ही अभिप्सित वस्तु का लाभ होता है और माङ्गलिक वस्तु जैसे—नारियल, कुमकुम, पुष्प, सुपारी, जलपूर्ण पात्र, पुस्तक आदि का स्पर्श करता हो तो भी शीघ्र लाभ होता है।

किन्तु अमाङ्गलिक वस्तु का स्पर्श करने पर विपरीत फल प्राप्त होता है।

यहाँ गन्दी, घृणोत्पादक या अपशकुनकारक वस्तुओं को अमाङ्गलिक समझना चाहिए।

तथा नाभि, नासिका, मुख, केश, रोम, नाखून, दाँत, गुप्तांग, पीठ, स्तन, ग्रीवा, पेट, अनामिका अंगुली, शरीर के नौ छिद्र, करतल, पादतल और पर्वों अर्थात् अंगुलियों के पर्व या शरीर के जोड़ का स्पर्श करते हुए प्रश्न करने पर पृच्छक को अनिष्ट फल प्राप्त होता है। नीचे के अंगों का स्पर्श करने पर भी इसी प्रकार के फल कहना चाहिए।

ध्वज आदि आयों का फल

यहाँ पूर्व आदि आठ दिशाओं में तथा मस्तक आदि आठ अंगों में ध्वज आदि आठ आय स्थित होते हैं। उनकी स्थिति और उनके स्पर्श का फल भी अब आगे कहा जा रहा है।

इस प्रकार पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, हस्त और काक ये आठ आय स्थित माने गये हैं।

आय स्पष्टार्थ चक्र

पैर	ईशान कोण	पूर्व सिर	अग्नि कोण	नासिका
	काक	ध्वज	धूम	
उत्तर हृदय	हस्ति		सिंह	मुख दक्षिण
	खर	वृष	श्वान	कान
हाथ	वायव्य कोण	पश्चिम गला	नैर्ऋत्य कोण	आँख

उपरोक्त आय शरीराङ्गों में इस प्रकार स्थित माने गए हैं। सिर स्थित ध्वज, नासिकापुट में धूम, मुख में सिंह, कान और नेत्रों में श्वान, कण्ठ में वृष, दोनों हाथों में खर, हृदय में गज और दोनों पैरों में काक आय स्थित हैं।

आठ आयों से प्रश्न विचार

कोई व्यक्ति पूर्व दिशा में स्थित रह कर शरीरस्थ ध्वज, सिंह, वृष और गज आयों के द्योतक अंगों का स्पर्श करता हुआ प्रश्न करता है, तो क्रम से धन, गौ, वाहन और आभूषण प्राप्त करता है और तब वह दक्षिण दिशा में स्थित होकर

सिंह, गो, वृष तथा गज आयों के अंगों का स्पर्श करता हुआ प्रश्न करता है तो शत्रुनाश, लक्ष्मी, सत्पुत्र और बन्धु का लाभ करता है।

इसी तरह पश्चिम दिशा में खड़ा हुआ व्यक्ति वृष, गज, ध्वज और सिंह आय के अंगों का स्पर्श करता हुआ प्रश्न करता है तो बैल, वाहन, विद्या, लाभ और मित्र समागम समझना चाहिये।

उत्तर दिशा में स्थित व्यक्ति गज, ध्वज, सिंह, और वृष आय के अंगों का स्पर्श करता हुआ प्रश्न करता है, तो क्रमश: हाथी, आभूषण, अच्छा मित्र और सत्पुत्र प्राप्त करता है।

अग्निकोण में स्थित व्यक्ति धूम, श्वान, खर और काक आय के अङ्गों को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करता हो तो क्रम से मृत्यु, क्लेश या भय, व्रत भङ्ग और कुटुम्ब नाश जैसा अशुभ फल प्राप्त होता है।

नैर्ऋत्य कोण में स्थित व्यक्ति श्वान, खर, काक और धूम आय के अंगों का स्पर्श करता हुआ प्रश्न करता हो, तो क्रम से व्याधि, पुत्रनाश, विपत्ति और धनक्षय यह फल कहना चाहिए।

वायव्य कोण में स्थित व्यक्ति खर, काक, धूम एवं श्वान आय के अंगों का स्पर्श करता हुआ प्रश्न करता हो तो विवाद, पशुनाश, शस्त्र से भयंकर पीड़ा और पत्नी को रोग जैसा फल प्राप्त होता है।

ईशान कोण में स्थित व्यक्ति काक, धूम, श्वान एवं खर आय के अंगों का स्पर्श करता हुआ प्रश्न करता हो तो बन्धुपीड़ा, दन्तक्षय, मृत्यु और नीच व्यक्ति से उसके पुत्र को विपत्ति जैसा फल प्राप्त होता है।

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में स्थित व्यक्ति धूम, श्वान, खर एवं काक आय के अंगों का क्रम से या व्युत्क्रम से स्पर्श करता हुआ प्रश्न करता हो तो उसे अधिक विपत्ति या सम्पत्ति (शुभ या अशुभ) जैसा फल नहीं प्राप्त होता है अर्थात् तब मध्यम फल प्राप्त होता है।

प्रश्नफल जानने के बहुत से उपाय हैं। ऐसे में दूत और दैवज्ञ की अपनी जैसी अवस्था हो, वैसी व्याधि ग्रस्त व्यक्ति की दशा बनलानी चाहिए।

आरूढ़ राशि व शकुन का समन्वित फल

पृच्छक जिस-किसी दिशा की राशि पर आरूढ़ हो, उसे जान कर और उस पृच्छक ने (मार्ग आदि में) जो अनुभव किया है, उसे जान कर फिर विश्वास कराने के लिए स्वबुद्धि से समन्वित फल कथन करना चाहिए।

सारसंग्रह के अनुसार शकुन परीक्षा

यदि पृच्छक की आरूढ़ राशि में राहु या शनि हो अथवा उस राशि से पंचम या अष्टम में राहु या शनि हो तो पृच्छक ने सामने चाण्डालों का समुदाय देखा था और यदि उपरोक्त स्थानों में मंगल या बुध हों, तो पृच्छक मार्ग में शूद्रों को देखा था।

लग्न, पंचम या अष्टम स्थान में यदि गुरु और शुक्र स्थित हों तो मार्ग में ब्राह्मण आदि दीखते हैं और यदि वे पाप ग्रहों से दृष्ट या युक्त हों तो यज्ञसूत्र धारण किये दुर्ब्राह्मण का दर्शन करते हैं।

यदि इन लग्न, पंचम और अष्टम स्थनों में सूर्य हो तो राजा से, चन्द्र और शुक्र हों तो शूद्र से, चन्द्र और शनि हों तो दुष्ट स्त्रियों से और शुक्र हो तो कुलवधू से मुलाकात योग समझना चाहिए अर्थात् पृच्छक ने मार्ग में इन्हें देखा, इस प्रकार समझना चाहिए।

इस प्रकार पाप और शुभ ग्रह की उक्त स्थानों पर दृष्टि या युति हो, तो दृष्टि या युति कारक ग्रह की जाति के लोगों से भी मुलाकात होती है।

इसके बाद दूत की चेष्टा से और आगमन की दिशा से अन्य लक्षण कहना चाहिए।

प्रश्न माधवीयम् के अनुसार पूर्वघटना व शकुन कथन

आरूढ़ लग्न से सूर्य अष्टम स्थान में स्थित हो, तो बहुत से लोगों ने या राजा की सेना ने विगत रविवार को निश्चित रूप से उपद्रव किया है, ऐसा जानना चाहिए।

अष्टमस्थ सूर्य जीव संज्ञक राशि के नवांश में हो तो राजा ने जीव नाश किया कहना चाहिए।

धातु राशि के नवांश में हो तो धातु नाश और मूल राशि के नवांश में हो तो राजा ने मूल पदार्थ का नाश किया; ऐसा विचारपूर्वक कहना चाहिए।

आरूढ़ लग्न से पृच्छक का विगतवार भोजन ज्ञान

यदि आरूढ़ लग्न से अष्टम स्थान में चन्द्रमा हो, तो गत सोमवार को पृच्छक ने भोजन नहीं किया या जौ का दलिया खाया था, ऐसा बतलाना चाहिए।

विगत मंगलवार दुर्घटना ज्ञान

यदि अष्टम स्थान में मंगल हो, तो स्थानच्युति और यदि वह गुलिक से युक्त हो तो गत मंगलवार को चोट लगी होती है।

मंगल धातु के नवांश में हो तो शस्त्र से और मूल संज्ञक राशि के नवांश में हो तो काँटे से घायल हुआ रहता है।

यदि वह जीव संज्ञक राशि के नवांश में हो तो दन्त या नाखून से घायल होता है और सरीसृप राशियां नवांश में हो तो सर्पादि काटना सम्भव हुआ रहता है।

चिगत बुधवार दुर्घटना ज्ञान

यदि अष्टम स्थान में बुध हो, तो अभीष्ट कार्य में विघ्न या बाधा का उत्पन्न होना बतलाना चाहिए।

वह मूल राशि के नवांश में हो तो पान सुपाड़ी का अभाव या नाश, धातु के नवांश में हो तो शरीर में आलस्य और जीव राशि के नवांश में हो तो वाणी में कठोरता या पान के मसाले का अभाव गत बुधवार को समझ लेना चाहिए।

विगत गुरुवार घटना ज्ञान

अष्टम स्थान में गुरु स्थित हो तो गत गुरुवार को द्विज जाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोगों को सन्ध्यावादन आदि नित्य कर्म में विलम्ब सम्भव हुआ रहता है या द्रव्य आदि का नाश कहना चाहिए।

विगत शुक्रवार घटना ज्ञान

यदि अष्टम स्थान में शुक्र हो, तो प्रिय स्त्री का वियोग या कपड़ा फटा कहना चाहिए। इस स्थान में शुक्र धातु के नवांश में हो, तो कपड़े में कीचड़ लगा होता है। जीव राशि के नवांश में हो, तो नाखून से चोट लगा होता है।

सरीसृप राशि के नवांश में हो, तो कीड़ा या चूहा आदि काटा होता है और मूल राशि के नवांश में हो, तो काँटे से उलझ कर वस्त्र फट जाता है।

अथवा उक्त स्थान में शुक्र जीव राशि के नवांश में हो तो किसी अन्य को वस्त्र दे दिया गया समझना चाहिए।

विगत शनिवार घटना विचार

यदि अष्टम स्थान में शनि हो, तो गत शनिवार को भोजन में विलम्ब हुआ, समझना चाहिए और अत्यन्त आपत्तियों का सामना भी करना पड़ा है।

यदि अष्टम स्थान में राहु हो, तो गत शनिवार को पैर में चोट लगी होती है।

मूल राशि के नवांश में हो, तो काँटे से और धातु राशि के नवांश में हो, तो पत्थर की ठोकर लगने से पैर में तकलीफ कहनी चाहिए।

यदि वह जीव राशि के नवांश में हो तो क्रुद्ध सर्प द्वारा काटा गया रहता है।

यदि अष्टम स्थान में केतु हो, तो गत मंगलवार को पैर में पत्थर की ठोकर लगी होती है।

इस स्थान में केतु गुलिक के साथ हो तो पैर निश्चित रूप से घायल हुआ रहता है। केतु का मंगल के समान फलकारक होने से उपरोक्त घटना गत मंगलवार को कहा गया है।

आरूढ़ लग्न से तृतीयस्थ पापग्रह का फल

आरूढ़ लग्न से यदि पाप ग्रह तृतीय स्थान में स्थित हो तो उस पाप ग्रह के गतवार को उपवास करना पड़ा, कहना चाहिए। यह ग्रह के बल आदि का विचार कर बतलाना चाहिए।

अन्य अनिष्ट भावों में पाप ग्रह का फल

जिस प्रकार अष्टम भाव नेष्ट कहा गया है, उसी प्रकार व्यय, षष्ठ और तृतीय भाव नेष्ट होते हैं। उनमें यदि पाप ग्रह हों तो उस ग्रह के बीते हुए अर्थात् गतवार दिन में अशुभ फल बतलाया जाना चाहिए।

उक्त भावों में शुभ ग्रहों का फल

उपरोक्त अष्टम, षंष्ठ, व्यय और तृतीय स्थान में शुभ ग्रह हों तो उनके गत वारों में वस्तु विशेष का लाभ कहना चाहिए।

जिस प्रकार उपरोक्त भावों से गत दिनों का फल कहा है, उसी प्रकार लग्न से आगामी वारों का फल भी बतलाया जाना चाहिए।

प्रश्नभाषा ग्रन्थ से शकुन कथन

दूत के द्वारा आरूढ़ राशि या प्रश्नाधिरूढ़ अर्थात् स्वर्ण पत्र पर लिखे गये यन्त्र में पृच्छक ने जिस राशि का स्पर्श किया है; से सप्तम स्थान में पाप ग्रह होने पर अशुभ और शुभ ग्रह हो, तो मार्ग में शुभ शकुन देखा गया कहना चाहिए।

दशम भाव, आरूढ़ लग्न और चतुर्थ भाव में बलवान् ग्रहों के आधार पर भी इसी प्रकार देखे गए शकुन कहने चाहिये और यात्रा लग्न से जाने वाले को मार्ग में मिलने वाले शुभ या अशुभ शकुन बतलाने चाहिए।

उपरोक्त शुभ स्थानों में चतुष्पद ग्रह हों तो मार्ग में मातङ्गादि पशु और पक्षीसंज्ञक ग्रह हों तो चकोर आदि पक्षी दीखते हैं।

सूर्य और मंगल चतुष्पद, शनि और बुध पक्षी, चन्द्रमा सरीसृप और राहु अष्टपद संज्ञक ग्रह बतलाये गए हैं।

उपरोक्त शुभ स्थानों में यदि राहु, केतु, गुलिक और शनि हों, तो मार्ग में चाण्डाल आता हुआ दिखलाई देता है।

वहाँ यदि शुक्र और चन्द्र हों तो कुलवधू, बुध हो तो विद्वान् लोग, गुरु हो तो विप्रजन और मंगल हो तो शस्त्रधारी व्यक्ति मार्ग में आते हुए दीखे कहना चाहए।

यदि उन स्थानों में सूर्य हो तो प्रतिष्ठित या प्रभावशाली जनों का दर्शन होता है।

आश्रित दिशा का फल

पुरुषों के प्रसङ्ग में प्रश्न हो, तो मुख्य दिशा स्थान में पृच्छक की स्थिति विशेष रूप से शुभ होती है।

स्त्री विषयक प्रश्न हो, तो कोण स्थान में प्रश्नकर्त्ता की स्थिति शुभ होती है।

अर्थात् पूर्वादि दिशा में पुरुष विषयक एवं ईशानादि कोणों में स्त्री विषयक प्रश्न शुभदायक होना, सिद्ध होता है।

दक्षिण दिशा में स्थिति से प्रश्न का फल

यदि पृच्छक दैवज्ञ के पास आकर दक्षिण दिशा की ओर मुख कर स्थित हो अथवा आरूढ़ दिशा दक्षिण दिशा में हो तो प्राय: उसके द्वारा पूछे गये प्रश्न की फल सिद्धि नहीं होती।

इस स्थिति में रोगी की स्वस्थता व आयु के विषय में पूछा गया प्रश्न का फल विशेष रूप से अशुभ होता है।

रोग व आयु विषयक प्रश्न में विशेष विचार

आकाश, वायु एवं अग्नि तत्त्व के अक्षरों और गणों का वाक्य के प्रथम अक्षर या शब्द के रूप में उच्चारण तथा भूतकालिक क्रियाओं का उच्चारण भी शुभ फलदायक नहीं कहा गया है।

वर्णमाला ज्ञापकार्थ चक्र

वायु	अग्नि	इन्द्र	जल	नपुंसक
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ़	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	–
श	ष	स	ह	–
–	–	ह्रस्व स्वर	दीर्घ स्वर	–

प्रश्नसंग्रह के अनुसार

यहाँ वर्णमाला में स्वर और व्यंजन भेद से दो प्रकार के अक्षर होते हैं। जहाँ स्वर जीव संज्ञक और व्यंजन शरीर संज्ञक होते हैं।

वर्णमाला को इस प्रकार से जानना चाहिए।

पृच्छक के वाक्य का प्रथम अक्षर स्वर हो तो जीव (जिसके बारे में प्रश्न किया गया है) को शुभ फल मिलता है और यदि प्रथम अक्षर व्यंजन हो तो इसके विपरीत शारीरिक दोष (रोग) समझना चाहिए।

वर्णमाला के पाँच वर्गों में जहाँ प्रत्येक वर्ग में पाँच-पाँच अक्षर होते हैं (जैसे कवर्ग में क, ख, ग घ एवं ङ ये पाँच अक्षर हैं; इसी प्रकार अन्य चवर्ग आदि में भी जानने चाहिए। वे क्रमश: वायु, अग्नि, इन्द्र, जल और नपुंसक संज्ञक होते हैं।

प्रश्न वाक्य के प्रारम्भ में नपुंसक अक्षर प्रश्नकर्त्ता की दृष्टि से अत्यन्त अनिष्ट फलदायक होता है।

वायु और अग्नि संज्ञक अक्षर अर्थात् वर्ग के प्रथम और द्वितीय अक्षर अशुभ फलदायक, मध्य अक्षर अर्थात् वर्ग का तृतीय अक्षर शुभ फलदायक होता है।

स्वरों में दीर्घ जल संज्ञक और ह्रस्व स्वर इन्द्र संज्ञक होते हैं।

अनुष्ठानपद्धति का मत

तीन अक्षरों से एक गण उत्पन्न होता है, अत: गण के तीन अक्षरों में से मध्य गुरु हो तो जगण; अन्त्य गुरु हो तो सगण, आद्य गुरु हो तो भगण और तीनों अक्षर गुरु हों तो मगण कहलाता है।

उपरोक्त चारों गणों के स्वामी क्रमश: सूर्य, वायु, चन्द्रमा और भूमि कहे गये हैं।

प्रश्न वाक्य के प्रारम्भ में उपरोक्त गण होने पर क्रमश: स्फीत रोग, विदेश गमन, ख्याति, कीर्ति तथा धन की प्राप्ति होती है।

गण के तीन अक्षरों में से मध्य अक्षर लघु हो तो रगण, अंतिम अक्षर लघु हो तो तगण, आद्य अक्षर लघु हो तो यगण और तीनों अक्षर लघु हों तो नगण होता है।

इन चार गणों के स्वामी क्रमश: अग्नि, आकाश, जल एवं देव होते हैं।

प्रश्न के प्रारम्भ में ये गण हों, तो क्रमश: मृत्यु, शून्यता, अच्छी समृद्धि और दीर्घायु जैसा फल देते हैं।

इन गणों का प्रयोग छन्द: शास्त्र में होता है। किस गण में कितने लघु व गुरु होंगे, इसके लिए यह सूत्र स्मरण रखना चाहिए—**यमाताराजभानसलगा।**

जिस गण को जानना है, उसी के प्रथम अक्षर (यगण में य, मगण में म आदि) को सूत्र में ढूँढकर उससे आगे के दो अक्षरों को और ले लेना चाहिए।

उन्हें एकत्र रखकर गुरु-लघु ज्ञात कर लेते हैं। इस प्रकार कुल गण आठ होते हैं।

यमण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, सगण। स्पष्टता के

लिए इस प्रकार समझना चाहिए—यगण = यमाता = लघु, गुरु, गुरु (।ऽऽ) खड़ी पाई को लघु के लिए व (ऽ) को गुरु के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसी प्रकार मगण—मातारा अर्थात् ऽऽऽ, तगण = ताराज अर्थात् ऽऽ। इत्यादि।

गण ज्ञापक चक्र

गण	यगण	मगण	तगण	रगण	जगण	भगण	नगण	सगण
स्वरूप	।ऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽ।	ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।।	।।।	।।ऽ
स्वामी	जल	भूमि	आकाश	अग्नि	सूर्य	चन्द्र	द्युलोक	वायु
फल	उत्तम समृद्धि	धन लाभ	शून्यता अभाव	मृत्यु	रोग	ख्याति कीर्ति	दीर्घायु	विदेश गमन

प्रश्नभाषामाधूर्य से फल कथन

यदि सुनने में मधुर, शुभ, अर्थपूर्ण या स्पष्ट वाक्य पृच्छक द्वारा कहा गया हो, तो उसका अभीष्ट सिद्ध होता है।

इसके विपरीत कटु, अशुभ अर्थहीन, अस्पष्ट और अंत में विसर्ग सहित वाक्य बोलने पर प्रश्नकर्त्ता का अभीष्ट सिद्ध नहीं होता।

प्रश्न-आद्यक्षर से लग्न ज्ञान

पृच्छक कथित वाक्य के प्रथम अक्षर से भी लग्न ज्ञान कर फिर उससे समस्त शुभाशुभ फल जानना चाहिए। लग्न के ज्ञान का प्रकार आगे कहा जा रहा है।

आर्यासप्तति में कहा गया है कि—

भट्टोत्पल विरचित प्रश्न ज्ञान पद्धति आर्यासप्तशती के आधार पर इस प्रकार वर्णमाला को अभिव्यक्त किया गया है।

वर्णमाला ज्ञापक चक्र

वर्ग	अवर्ग	कवर्ग	चवर्ग	टवर्ग	तवर्ग	पवर्ग	यवर्ग
अक्षर	अ आ	क	च	ट	त	प	य
	इ ई						र
	उ ऊ	ख	छ	ठ	थ	फ	ल
	ऋ ॠ						व
	ऌ ॡ	ग	ज	ड	द	ब	श
	ए ऐ						ष
	ओ औ	घ	झ	ढ	ध	भ	स
	अं अः	ङ	ञ	ण	न	म	ह
स्वामी ग्रह	सूर्य	मंगल	शुक्र	बुध	गुरु	शनि	चन्द्र

अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग एवं यवर्ग को क्रमशः सूर्य, मंगल, शुक्र, बुध, गुरु, शनि और चन्द्रमा के वर्ग के रूप में बतलाया गया है।

प्रश्न-वाक्य में प्रथम अक्षर से जो लग्न हो उससे पृच्छक के प्रश्न का शुभाशुभ फल कहना चाहिए।

मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ये पाँच ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी होते हैं।

अतः कवर्ग आदि पाँच वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम अक्षरों से उनकी विषम राशि और शेष द्वितीय और चतुर्थ अक्षरों से उनकी समराशि को लग्न ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि के वर्ग के अक्षरों से उनकी राशि का लग्न मान लेना चाहिए।

किन्तु सूर्य और चन्द्रमा के वर्ग के अक्षरों में सम-विषम आदि क्रम से विचार नहीं करना चाहिए।

अपितु उनके वर्ग का अक्षर हो, तो उनकी राशि का लग्न मान लेना चाहिए, क्योंकि वे एक-एक राशि के स्वामी होते हैं।

इस प्रकार प्रश्न के समय उस लग्न से समस्त शुभाशुभ विषयों का विचार कर फलादेश करना चाहिए।

अनेक प्रश्नकर्ता एक समय में प्रश्न करें या एक व्यक्ति एक साथ अनेक प्रश्न करे तो इष्टकाल का और उसके अनुसार लग्न का ज्ञान न करके प्रश्नाक्षर से लग्न निर्धारित कर फलादेश करना चाहिए।

पृच्छक की चेष्टा

दूत वाम पैर आगे रखे, तो शुभ और दक्षिण पैर आगे रखे तो दोषावह (अशुभ) होता है।

प्रश्न काल में उसका पैर हिलाना अशुभ और स्थिर होकर बैठना शुभ फलप्रद होता है।

प्रश्नकर्त्ता ऊँचे स्थान में सुन्दर आसन पर सरल रूप से सुखपूर्वक और दैवज्ञ के सामने बैठे तो शुभ होता है अन्यथा अशुभ होता है।

पृच्छक प्रश्न करने के पश्चात् आसन से उठ कर खड़ा हो जाय और फिर न बैठे अथवा वह खड़े-खड़े प्रश्न करने के पश्चात् बैठ जाये, इस प्रकार ये दोनों स्थितियाँ कल्याणकारक कही गयी हैं।

पृच्छक एक बार दीखने के पश्चात् रुक-रुक कर आता हो, तो जितने बार रुक कर वह आता है, उतने दिन में उसका काम सिद्ध होता है।

प्रश्न के समय दूत और दैवज्ञ के बीच में से कोई अन्य मनुष्य निकल जाये तो उसके इच्छित में सहायता नहीं मिलती है; ऐसा कहना चाहिए।

पृच्छक हाथों को हिलाता हुआ या मसलता हुआ तिरछा मुंह किया बैठा हो और वह अपना प्रश्न भूल जाय, तो वह जो कुछ पूछना चाहता है, वह सब नष्ट हो जाता है अर्थात् प्रश्न सफल नहीं होता है।

अपने अंगों या किसी अन्य जगहों या वस्तुओं पर जोर से प्रहार करना, हाथ या मुक्का मारना शीघ्र मृत्युदायक होता है और विनाश के लक्षण अर्थात् सर्प का काटना, कुएं में गिरना या घर जल जाना आदि जैसी घटना देखना या सूनना भी मृत्युप्रद होता है।

लेटे हुए, खुले बाल, अपवित्र अवस्था में, रोते हुए, रुक-रुक कर आते हुए, सिर मुंडवाए हुए, नग्न, किसी चीज में छेद करते हुए, निन्दा करते हुए, दयनीय अवस्था में, घबराए हुए, अग्नि में हवन सामग्री डालते हुए, दूत के हाथ-पैर में बन्धन होने पर, सिर और आंख मसलते हुए, दीन अवस्था में या तिनका और काष्ठ आदि तोड़ते हुए यदि प्रश्न करे तो शुभ नहीं होता, ऐसा विद्वानों का मत है।

जुआ या ताश, चौपड़, कौड़ी आदि खेलते हुए या खेलने वाले लोगों की उपस्थिति में या नाखून से लिखते हुए, बाहर निकाले जाते और अन्दर आने में रोके जाते समय, उबटन लगाए हुए या भस्म, हड्डी, लोहा और मलिन पदार्थ धारण किए हुए, रोगग्रस्त, कपड़े से गर्दन लपेटे हुए, मलिन वेश में, रूखी और अनिष्ट बातें करते हुए या प्रेतों को पिण्डदान देते समय प्रश्न करना शुभप्रद नहीं होता।

शल्य क्रिया के लिए उपयोगी उपकरण वासी = उपदंश आदि रोग में छेद करने में काम आने वाला शस्त्र जैसा एक उपकरण सिंगी या फश्त खड्ग, मांस, जाल, भूसा, पत्ता, पंखा, खाल या सींग धारण किए हुए, बेचैनी में, झाड़ू लिए हुए, प्रेत, पुष्प, सूप, रस्सी और मूसल लिए या भूखा दैवज्ञ अथवा प्रश्नकर्त्ता के रहने पर प्रश्न करने को किसी भी प्रकार उचित नहीं कहा गया है।

मुख मुद्रा से प्रश्न का फल

दूत के चेहरे पर शोक, क्रोध या श्रम आदि के कारण विकार और जिस

किसी कारण से भी वैमनस्यता, अन्यमनस्कता या प्रमाद हो तो प्रश्न करना दोषदायक ही होता है।

यदि सुन्दर, कुलीन, विनयी, स्वस्थ और प्रसन्नचित्त दूत हो तो ऐसे में प्रश्नकर्त्ता को सुख होता है।

नेत्र चेष्टा से प्रश्न का फल

आंखें बंद न करते हुए, आंखों पर पलक न गिराते हुए, माङ्गलिक पदार्थों की ओर ध्यान देते हुए और ऊपर-नीचे दृष्टि नहीं करते हुए पृच्छक प्रश्न करे, तो उसका अभीष्ट सिद्ध होता है। इसके विपरीत दृष्टि होने पर दुःख की ही प्राप्ति होती है।

वेशभूषा से प्रश्न का फल

भीगे, फटे, मैले, लाल या नीले कपड़े पहने हुए और लाल फूलों को धारण किए हुए प्रश्न करने से व्यक्ति व्यसन (दुःख) को प्राप्त करता है।

श्वेत वस्त्र, सुगन्धित, शूभ्र और शोभादायक अनुलेप या आभूषण पहने हुए प्रश्न करने पर पृच्छक का कल्याण होता है।

माङ्गलिक द्रव्यों को लिए हुए प्रश्न करने से पृच्छक का मंगल कल्याण या अभ्युदय होता है और खाली हाथ या अमाङ्गलिक वस्तुओं को लिए हुए प्रश्न करने से पृच्छक का अमङ्गल होता है।

प्रश्न का समय, प्रश्नकर्त्ता की स्थिति, अङ्गों का स्पर्श एवं दृष्टि आदि शुभ हो तथा दैवज्ञ का मन प्रसन्न हो तो अभीष्ट कार्य सिद्ध होता है।

प्रश्नकाल आदि अशुभ हो, तो मनोवांछित फल नहीं मिलता। यदि प्रश्नकाल आदि शुभ एवं अशुभ हों अर्थात् मिश्रित हों, तो जिसकी अधिकता हो, वैसा ही फल कहना चाहिए।

प्रश्नकालीन शकुनों से फल ज्ञान

प्रश्न के समय जैसा कहा, सूना और देखा जाता है उसी के समान प्रश्नकर्त्ता को शुभ या अशुभ फल कहना चाहिए।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि—जिस-किसी भी कार्य से सम्बन्धित प्रश्न या यात्रा करते समय यदि उस कार्य में सहायक वस्तु को देखा जाये तो वह कार्य अवश्य सिद्ध होता है।

विवाह प्रश्न व शकुन

विवाह के समय नवीन दो या अधिक वस्तुओं का एक साथ दर्शन शुभ होता है, किन्तु किन्हीं भी दो वस्तुओं का पृथक् होना अशुभ कहा गया है।

विवाह प्रश्न के समय पृच्छक द्वारा आंख, कान, नाक एवं मुख आदि शरीर के छिद्रों में अंगुली करने, कुरेदने पर कन्या में दोष (अवगुण) समझना चाहिए।

विवाह सम्बन्धी प्रश्न के समय जिस-किसी ओर से यदि कोई व्यक्ति आ जाए, तो उस दिशा में विवाह होना बतलाना चाहिए।

प्रश्न व शकुन से सन्तान विचार

पट्टी अर्थात् लिखने की तख्ती एवं पुस्तक आदि जो पढ़ने के साधन हैं, करधनी और कटक आदि बालक के आभूषण, मेखला, अजिन (मृगचर्म) और दण्ड अर्थात् उपवीत और ब्रह्मचारी के दण्ड रूप उपकरण, गर्भिणी स्त्री और बालक इनका सन्तान सम्बन्धी प्रश्न के समय दिखलाई देना पुत्रोत्पत्ति का सूचक होता है।

प्रश्न व शकुन से गर्भ स्थिति ज्ञान

प्रज्वलित अग्नि का दर्शन, शरीर के आंख, कान, नाक, मुख आदि अङ्गों से मल अर्थात् कीचड़, ढेर, कफ, थूक आदि निकलना, प्रश्न स्थल से किसी का उठकर चले जाना गर्भपात का सूचक होता है।

युद्ध प्रश्न व शकुन

युद्ध सम्बन्धी प्रश्न के समय दाहिने पैर को स्थिर करके खड़ा रहना, शस्त्र आदि चलाना, दाहिना हाथ मसलना, जलती हुई अग्नि देखना, प्रख्यात व्यक्ति और प्रसन्न व्यक्ति को देखना; ये छः शकुन विजयदायक होते हैं।

बायां पैर स्थिर करके खड़ा होना, आवाज में घबराहट, आंसू निकलना, आंखों के आगे धुंधलापन होना और शस्त्र को बन्द करके धारण करना; ये पाँच अपशकुन युद्ध सम्बन्धी प्रश्न में पराजय दायक होते हैं।

यात्रा प्रश्न व शकुन

जिस-किसी भी कार्य को करने के लिए जाते समय यदि स्वर्ण या फल देखता हो तो यात्राकर्त्ता को निःसन्देह द्रव्य लाभ होता है।

रोगी प्रश्न व शकुन

रोगी सम्बन्धी प्रश्न के समय उस स्थान पर कोई भी प्राणी हाथी-घोड़ा आदि पर बैठकर या किसी जीव को लिए हुए दीखता या आता हो, तो रोगी निश्चित रूप से जीवित रहता है।

इसके विपरीत प्रश्न स्थल से कोई प्राणी चला जाता हो, तो रोगी मृत्यु को प्राप्त करता है।

आयु प्रश्न व शकुन

आयु सम्बन्धी प्रश्न के समय प्रेत-पुष्प, तिल, अग्नि तथा नया कपड़ा, कुशा, दही आदि समस्त श्राद्ध की वस्तुएं, अन्त्येष्टि के काम आने वाली सब चीजें जैसे—समिधा, लकड़ी, जौ का आटा एवं घी, मखान आदि; इनका दिखलाई देना मृत्युप्रद होता है।

यात्रा में बाधा व शकुन

प्रश्न पूछने के बाद सो जाना अथवा बैठ जाना यात्रा में विघ्नकारक होता है। वैसे ही पैरों को फैलाना या मिलाना यात्रा में विलम्बकारक होता है और पूछकर तुरन्त उठना एवं चले जाना यात्राकारक होता है।

शकुन और सन्धि

दो व्यक्तियों का परस्पर हाथ मिलाना-सन्धि होने या विवाह के लिए किसी के आने की सूचना देता है।

किसी चीज में छेद करना या उसे तोड़ना आदि सब बातें होने वाली सन्धि या विवाह में मतभेद होने की सूचक होती है।

सामान्यतः कार्यनाशक शकुन

हाहाकार जैसा भयानक दु:खद शब्द, पूजित वृक्ष जैसे—पीपल, वट, शमी, तुलसी आदि या ध्वजा कटना या गिर जाना, कपड़ा, छाता और जूते का फटना, विध्वंस या उपद्रव सम्बन्धी कोलाहल, क्रूर पशु और पक्षियों का चारों ओर बोलना, दीपक बुझना और भरे हुए घड़े का गिरना, इन शकुनों को विद्वान् कष्टदायक समझते हैं।

बिल्ली, डुण्ढुभ अर्थात् एक प्रकार का साँप, भालू, गोधा आदि अशुभ जीवों का वाम भाग में दीखना और गदहे का शब्द सूनना विनाशकारक होता है और दाहिनी ओर इनका शब्द या दर्शन कष्टप्रद ही होता है।

कोयल, गधा, सर्प एवं खरगोश आदि का बातचीत में उल्लेख करना प्रशस्त कहा गया है। इनको देखना या इनकी आवाज सूनना अच्छा नहीं होता।

बन्दर और रीछ को देखना या उनकी बोली सूनना प्रशस्त माना गया है, किन्तु बातचीत में उनका नाम लेना अशुभदायक है।

कार्यसाधक शकुन

प्रश्न के समय हाथी, घोड़ा या बैल की आवाज या चर्चा हो अथवा उनका दर्शन ही हो, तो प्रश्नकर्त्ता को अभीष्ट लाभ कहा गया है।

वीणा, बाँसुरी, मृदङ्ग, शंख या पठह अर्थात् एक प्रकार का वाद्य विशेष का नाद और भेरी का घोष; स्त्रियों का मंगल गीत, वेश्या, दही, अक्षत, ईख (गन्ना), दूब, चन्दन, भरा हुआ कुम्भ (कलश), पुष्प, माला, फल, कन्या, घण्टा, दीपक और कमल; इन सबको विद्वान् शुभ फलदायक निमित्त मानते हैं।

छत्र, तोरण, सुन्दर वाहन, गाड़ी, स्तोत्र या वेद ध्वनि, बंधा हुआ एक पशु, बैल, शीशा, सुवर्ण, बछड़े के साथ गाय, खाने की वस्तु, खोद कर लायी हुई मिट्टी और जो कुछ भी शुभ (निमित्त) दिखाई-सुनाई दे; सुनने और देखने में अच्छा लगे; वे भी निमित्त प्रश्न के समय शुभदायक कहे गए हैं।

प्रश्नकालीन शकुन में विशेष

सांसारिक जनों से, शास्त्र से और गुरु के उपदेश से अन्य-अन्य निमित्तों को और भी जानना चाहिए तथा उन निमित्तों के अनुसार सावधानीपूर्वक विद्वानों को शुभ या अशुभ जैसा हो, वैसा फल कहना चाहिए।

जिस-किसी प्रश्न के पूछने पर प्रश्नकर्त्ता के समीप नाशचिह्न अर्थात् अशुभ निमित्त हों तो उस कार्य का विनाश होता है और इसके विपरीत्त होने पर पूछे गए प्रश्नोक्त कार्य की सिद्धि होती है।

प्रश्न का समय आदि उपरोक्त दस विचारणीय बिन्दुओं के शुभाशुभत्व का अच्छी तरह मनन कर उन्हीं के द्वारा प्रश्नकर्त्ता के प्रश्नों का पूरा-पूरा शुभ या अशुभ फल कहा जाना चाहिए।



यात्रारम्भकालिक शुभाशुभ शकुन

प्रश्न के समय अच्छी तरह शुभत्व और अशुभत्व का विचार कर बृहस्पति की कालहोरा आदि शुभ समय में प्रश्न पूछने हेतु प्रस्थान करना चाहिए।

प्रश्नकालिक जो शुभ और अशुभ निमित्त बताये गए हैं, उन सबका प्रश्न पूछने हेतु प्रस्थान करने के समय भी विचार करना चाहिए।

कालहोरा परिज्ञानार्थ को जानने के लिए ध्यान देना चाहिए कि सूर्योदय काल में प्रत्येक वारेश की होरा १ घंटा के लिए होती है।

तत्पश्चात् प्रति घंटा छठे-छठे ग्रह की होरा होती है। इस प्रकार बृहस्पति की होरा रव्यादिवारों में निम्नलिखित घंटों में रहती है—

रविवार में बृहस्पति की होरा—६वाँ, १३वाँ, २०वाँ घण्टा
सोमवार में बृहस्पति की होरा—३रा, १०वाँ, १७वाँ, २४वाँ घण्टा
मंगलवार में बृहस्पति की होरा—७वाँ, १४वाँ, २१वाँ घण्टा
बुधवार में बृहस्पति की होरा—४वाँ, ११वाँ, १८वाँ घण्टा
गुरुवार में बृहस्पति की होरा—१वाँ, ८वाँ, २२वाँ घण्टा
शुक्रवार में बृहस्पति की होरा—५वाँ, १२वाँ, १९वाँ घण्टा
शनिवार में बृहस्पति की होरा—२रा, ९वाँ, १६वाँ, २३वाँ घण्टा।

प्रस्थान करने वाले व्यक्ति के साथ कपड़ा चला आवे या हाथ में लिया हुआ छाता या छड़ी जमीन पर गिर जाए, तो वह अशुभ फलकारक होता है।

आओ ! रुको ! मत जाओ ! प्रवेश करो ! कहां जा रहे हो? आदि वाक्य प्रस्थान के समय बोला जाना या सुना जाना निश्चित रूप से अशुभ फलप्रद होते हैं।

पत्थर आदि पर पैर फिसलना और खम्भे से सिर टकराना, निकलते समय अशुभप्रद या नेष्ट होता है तथा जो लोक में प्रचलित शकुन हैं, उनका भी प्रस्थान के समय विचार करना चाहिए।

मार्ग मध्य के शुभाशुभ शकुन

अन्य-अन्य जन्मों में किए हुए जैसे भी शुभ अथवा अशुभ कर्म हैं, उसके फलस्वरूप यात्रारत व्यक्ति को शकुन उनका फल प्रदान करते हैं।

शुभ या अशुभ, किसी भी शकुन के घटित होने पर उनके फलों का अनुभव करने के लिए यात्री को रुक जाना चाहिए तथा गन्तव्य स्थान का मार्ग भूल जाने पर भी रुक जाना चाहिए; ऐसा अन्य शास्त्रों में बताया गया है।

शकुन फल भोक्ता कथन

मार्ग में स्वयं अर्थात् अकेले यात्रा करने वाले को, सेना के साथ चलने वाले राजा को , नगर और देवता के प्रसंग में पुरवासियों को और समुदाय में चलने वाले प्रधान व्यक्ति को शकुनों का फल मिलता है।

एक साथ कई समान व्यक्ति होने पर जाति, विद्या और आयु की अधिकता के अनुसार प्रधानता का निश्चय करना चाहिए।

शकुनों का त्रिकालिक फल

समस्त शकुनों का फल त्रिकाल अर्थात् भूत, भविष्यत् अथवा वर्तमान काल से सम्बन्धित होता है, अत: इसे शकुन के घटित होने वाली दिशा के अनुसार जानना चाहिए। यह भी अन्यान्य शास्त्रों में बताया गया है।

दिशा संज्ञा और शकुन का फल

सूर्योदयकाल से प्रारम्भ कर सूर्य प्रत्येक अहोरात्र के ७/३० घटि अर्थात् ३ घंटे के क्रम से पूर्व आदि ८ दिशाओं में घूमता है।

सूर्य से मुक्त भूतकालिक, सूर्य से युक्त दिशा वर्तमान कालिक और ऐष्य (सूर्य से युक्त होने वाली) दिशा भविष्यत् कालिक फल देती है।

सूर्य से मुक्त दिशा अंगार संज्ञक, युक्त दिशा दीप्त संज्ञक और ऐष्य दिशा धूमिनी संज्ञक कही गई हैं।

इनके अतिरिक्त शेष पाँच दिशाएं शान्ता संज्ञक होती हैं।

सूर्य से पाँचवीं दिशा में होने वाले शकुनों का फल तीनों अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल में मिलता है तथा शेष दिशाओं की भूत या भविष्यत् से सामीप्य विचार कर उस समय में शुभ अथवा अशुभ फल बताना चाहिए।

दिशा भेद से व्यक्ति समागम ज्ञान

राजा, राजकुमार, नेता, दूत, धनवान्, सेवक, ब्राह्मण और गजाध्यक्ष पूर्वादि आठों दिशाओं में तथा क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ब्राह्मण पूर्व आदि चारों दिशाओं में कल्पना कर, जाते हुए या बैठे हुए व्यक्ति को जिस दिशा में शकुन का संकेत हो, उस दिशा से कल्पित व्यक्ति से समागम बताना चाहिए।

उपरोक्त का उदाहरण

इस प्रकार पूर्व में शकुन का संकेत होने पर निश्चित रूप से राजा, अग्निकोण में शकुन होने पर राजकुमार और दक्षिण आदि दिशाओं में शकुन होने पर नेता आदि से समागम होगा, कहना चाहिए।

दूतवैशिष्ट्य से शुभाशुभ ज्ञान

पाषण्ड अर्थात् शाक्य जाति जनों, ब्रह्मचारी, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्यास आदि आश्रमधारी जनों और ब्राह्मण आदि चतुर्वर्ण के लोगों के लिए उनके अपने वर्ण (वर्ग) के दूत होने पर कार्य की सिद्धि और विपरीत वर्ण के दूत होने पर कार्य में बाधा समझनी चाहिए।

मार्ग में सामने आये अशुभ शकुन की वस्तु

कपास, औषधि, काला वर्ण धान्य, नमक, जाल आदि हिंसा के लिए उपयोग की वस्तु, अंगार सहित भस्म, छाछ (मट्ठा), सर्प, दुर्गन्धिपूर्ण वस्तु, मल, छर्दि अर्थात् उल्टी की हुई वस्तु, भटका व्यक्ति, आपत्तिग्रस्त, पागल, अन्धा, गूंगा, बहरा, नपुंसक और सन्यासी तथा सब वस्तुऐं जो दृष्टि और नाक को रुचिकर न हों—इन सब चीजों को कष्टदायक निमित्त अर्थात् शकुन जानना चाहिए।

बिल्ली आदि के रास्ता काटने का दोष

बिल्ली, गोह, छिपकली, नेवला, बन्दर आदि द्वारा रास्ता काटे जाना अर्थात् बायीं ओर से दाहिनी ओर या दाहिनी ओर से बायीं ओर चले जाना दोषावह होते हैं।

मार्ग में सरसों, ईंधन, पत्थर, घास-फूस का दिखना भी दोषप्रद होते हैं।

मार्ग के शुभ शकुन

खट्टे पदार्थ, मांस, शराब, शहद, घी, धुला वस्त्र, चन्दन, रत्न, हाथी, पक्षी, घोड़ा, राजा और ज्ञान, धन, जन आदि से सम्पन्न व्यक्ति, देवमूर्ति, शुभ्र चामर, मधुर और स्निग्ध भोजन और पेय द्रव, मुर्दा, ब्राह्मण और प्रज्वलित अग्नि पथ में सामने दिखाई देने पर विद्वान् इन्हें शुभ फलदायक निमित्त कहते हैं।

प्रदक्षिण क्रम से (बाएं से दाएं परिक्रमा करते हुए) चलते हुए पक्षी और पशु प्रशस्त मानना चाहिए, किन्तु कुत्ता और गीदड़ प्रदक्षिण क्रम से चलते हुए प्रशस्त नहीं होते।

विषम संख्या में हिरण भी शुभदायक जानना चाहिए। मार्ग में और प्रतिदिन प्रात:काल इनका दर्शन शुभप्रद होता है।

नीलकण्ठ, गिद्ध, भरद्वाज पक्षी, नेवला, मेढ़ा, मोर और 'मत्स्यौ घटी०' इत्यादि बृहज्जातकोक्त श्लोक के अनुसार बैल, सिंह, स्त्री-पुरुष का जोड़ा, कन्या और कलश आदि सभी वस्तुएं शुभ फलप्रद शकुन माने जाते हैं।

गीदड़, नेवला, बाघ, चकोर, सर्प, पक्षी आदि के बांए से दाहिनी ओर जाने

पर और कुत्ता, कौआ, बकरी, मृग, हाथी आदि के दाहिने से बायीं ओर जाने पर शुभ होते हैं, किन्तु इनके विपरीत स्थिति में शुभ नहीं माना जाता है।

शान्ता, दीप्ता आदि दिशाओं के शकुनों का फल उन दिशाओं के वश से शुभ या अशुभ होता है तथा अन्य ग्रन्थों में भी इनका फल कहा गया है।

रवि से मुक्त, युक्त और ऐष्य अर्थात् अंगार, दीप्ता और धूमिनी, इन तीन दिशाओं में दीप्ता नेष्ट फल देने वाली हैं।

इनके अलावा ५ दिशाएं शान्ता संज्ञक शुभ फलदायिनी कही गई हैं। इन दिशाओं के शकुनों का फल उन दिशाओं के अनुसार कहा गया है।

सूर्य की दिशा और उनकी अन्य संज्ञा

सूर्योदय होने से आधा प्रहरपूर्व से गणना करते हुए २ प्रहर या याम ३ घण्टे का होता है।

इस प्रकार सूर्योदय से डेढ़ घण्टा पूर्व से डेढ़ घण्टा बाद तक पूर्व दिशा में, अगले ३ घंटों में अग्नि कोण में, पुनः पश्चिम में अग्रिम ३ घंटे, इसी तरह तीन घण्टे वायव्य में, फिर उत्तर में व फिर ईशान में भी ३ घंटे सूर्य रहता है।

प्रश्न के समय जिस दिशा में सूर्य स्थित हो उससे बायीं से दायीं ओर चलते हुए आठों दिशाओं की क्रम से ज्वाला, धूम, छाया, मृत्तिका, जल, भूमि, भसित और अङ्गारक संज्ञा होती है।

अङ्गारक, ज्वाला और धूम, ये तीनों दीप्त हैं तथा मृत्तिका, जल और भूमि, ये तीनों शान्त कही गई हैं। छाया का पूर्वार्द्ध और भसित (भस्म) का उत्तरार्द्ध शुभ होता है।

अशुभ शकुन दृष्ट होने पर क्या करना?

पहली बार अशुभ शकुन दिखने पर ११ बार प्राणायाम और दूसरी बार बुरा शकुन दिखने पर १६ बार प्राणायाम कर लेना चाहिए और यदि पुनः पुनः तीसरी बार भी बुरा शकुन दिख जाय, तो यात्रा नहीं ही करनी चाहिए।

गृह प्रवेश कालिक शकुन

प्रश्नकालीन, प्रस्थान करने के समय और मार्ग के मध्य क्रम में जिन-जिन शकुनों का विचार किया गया है; प्रश्नकर्त्ता के घर में प्रवेश करते समय भी प्रायः उन सभी शकुनों का विचार करना चाहिए।

रोगी जीवन-मरण

रोगी के भवन में दैवज्ञ जिस किसी दरवाजे से प्रवेश करे, उसी दरवाजे से

यदि कोई बाहर निकल जाय तो वह रोगी मर जाता है तथा यदि उसी दवारजे से कोई अन्दर प्रवेश कर जाये, तो वह रोगी जीवित रहता है; ऐसा मेरे गुरु जी ने मुझसे कहा था।

दैवज्ञ गृहप्रवेशकालिक अशुभ शकुन

प्रश्नविचार करने के लिए दैवज्ञ का पृच्छक के घर के अन्दर आ जाने पर किसी सौभाग्यवती स्त्री द्वारा मूल और फल लिए हुए बाहर निकल जाने को सन्तान और सम्पत्ति दोनों के विनाश का सूचक जानना चाहिए।

दैवज्ञ का गृह प्रवेशकालिक शुभ शकुन कथन

वेदाध्ययन का घोष और पुण्याह वाचन की ध्वनि, सुरभिपूर्ण गन्ध, प्रदक्षिण क्रम से वायु का सुखपूर्ण स्पर्श, अनुलोम (पृच्छक गृहाभिमुख) बैल का स्वर और साथ ही गौ का स्वर पृच्छक के घर में प्रवेश करते समय होने पर आरोग्य आदि शुभ फलदायक होता है।

अशुभ शकुन कथन

खड़ी की हुई खाट, आसन और वाहनों का दिखलाई देना, नीचे की ओर मुंह किए हुए बर्तनों को देखना अशुभ होता है।

जिस रोगी के गृह में बार-बार बर्तन फूटते या गिरते हों, उस रोगी का जीवन उस गृह में दुर्लभ होता है।

जिस रोगी के गृह में बिना हवा के दीपक का और चूल्हा आदि में ईधन होने पर भी अग्नि का बुझ जाना शीघ्र ही उस रोगी की मृत्यु का सूचक होता है।



फलादेश कालिक आचार

पूर्वाध्याय में प्रस्थान, मार्ग, प्रवेश एवं रोगी के गृह के शकुनों का निरूपण करने के अनन्तर प्रश्नकालीन कर्त्तव्य और कुछ अन्य लक्षणों को, जो अन्य शास्त्रों में भी कहे गये हैं, उन्हें यहाँ कहते हैं।

प्रश्नफल कथन

स्नान आदि से निवृत्त होकर श्वेत वस्त्र पहने, भस्म रमाये, पूर्वाभिमुख सुखपूर्वक आसन पर स्थित दैवज्ञ सर्वप्रथम निमित्तों या शकुनों को अच्छी तरह देख विचार कर गुरु भक्ति के वश से राशि-चक्र आदि लेखन और प्रश्नकालीन अन्य आचार-विधि को सम्पन्न करना चाहिए।

प्रश्न पूछने के उत्तम काल

ठीक दोपहर और सूर्योदय के आस-पास वाले समय को छोड़कर सूर्य के दीप्तिमान रहने पर प्रश्नकर्मों को प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिए।

विशेष—यहाँ पर सूर्य का दीप्तिमान होना इसलिए आवश्यक कहा गया है कि प्राचीन काल में सूर्य की छाया आदि से ही उदय लग्न का आनयन किया जाता था। सूर्य के बादलों, धूल आदि से ढका होने पर लग्न निर्णय करना कठिन था।

अतएव सूर्य का उदय काल व मध्याह्न काल का आसन्नवर्ती समय त्याज्य माना है कि इस समय छाया ठीक से ज्ञात नहीं हो पाती। उदय काल में छाया अत्यन्त लम्बी व मध्याह्न में छोटी हो जाती है, जिससे लग्न गणना में अंतर आ सकता है। वहीं सांयकाल और रात्रि में प्रश्न नहीं करना दैवज्ञाचार है ही। अत: उसका यहाँ उल्लेख नहीं है।

साम्प्रतिककाल में लग्न ज्ञान के लिए हम सूर्य की छाया पर निर्भर नहीं करते हैं। अत: उपरोक्त नियम आज के लिए अनिवार्य नहीं माना जाना चाहिए।

प्रश्न सम्बन्धी उपाकर्म प्रारम्भ करने से पहले भस्म (चक्र आदि स्पष्ट करने के लिए) लाना रोगी की मृत्यु का सूचक होता है, किन्तु दीपक का भस्म (काजल) लाना फलदायक कहा गया है।

दीपज्वाला से फल

आयु, विवाह, सन्तान, रोजगार, यात्रा आदि सभी प्रश्नों तथा सभी कर्मों में दीपक की प्रसन्नता (शुभ्र वर्ण, जाज्वल्यमानज्योति, दिव्यप्रकाश और अग्रिम श्लोकोक्त लक्षण) के अनुसार पर भविष्य में होने वाले शुभ फलों को बताना चाहिए।

दीपक के लक्षण से अशुभफल

वामावर्त ज्योति वाला, मन्दकिरण वाला, चिनगारी के सदृश छोटी ज्योति वाला, पूर्णतया तेल से भरा होने पर भी शीघ्र बुझने वाला, चट-चट शब्द करने वाला, हिलती हुई ज्योति वाला, बिखरी हुई ज्योति वाला और बार-बार बुझने वाला दीपक नाश करने वाला होता है।

दीपलक्षण से शुभफल

संयोजित ज्योति वाला, स्थूल ज्योति वाला, सुस्थिर कान्ति वाला, शब्दरहित, सुन्दर, दक्षिणावर्त गति वाला, वैडूर्यमणि या स्वर्ण के समान आभा वाला दीपक शीघ्र निकट भविष्य में लक्ष्मी के आगमन की सूचना देता है। जिसकी सुन्दर और ऊँची शिखा दिखलाई देता हो वह भी धन लाभ कराने वाला होता है। दीपक के शेष लक्षण यथावत् अग्नि के समान युक्तिपूर्वक ग्रहण कर लेने चाहिए।

रूपक द्वारा दीपमहत्त्व कथन

तेजरूप जिसका शरीर है, उसके मध्य स्थित वर्तमान बत्ती जिसकी आत्मा है, ज्वाला (ज्योति) जिसकी आयु है, विमलता और मलिनता जिसके क्रमशः सुख और दुःख हैं, पात्र जिसका घर है, मन्द और तीव्र गति वाली हवा जिसके मित्र और शत्रु हैं, इस प्रकार के महान् देवता स्वरूप दीपक प्रश्नकर्त्ता के भविष्यगत घटने वाले समस्त वृत्तान्तों की प्रायः चुपके से सूचना देता है।

दीप शिखा की दिशा अनुसार फल

दीपक की ज्योतिगत शिखा पूर्वाभिमुख होकर मनोवांछित फल प्रदान करने वाली, अग्निकोण में होकर अग्नि भय, दक्षिण में प्राणहानि, नैर्ऋत्य में विस्मृतिकारिका, पश्चिम में शान्तिदायिका, वायुकोण में सम्पत्तिहानि, उत्तर में स्वास्थ्य और जीवनदायिका तथा ईशानकोण में कल्याण करने वाली होती है।

दीपाग्नि की ऐसी ऊँची शिखा शारीरिक स्वास्थ्य और मनेप्सित वस्तुएं तत्काल देती है।

प्रस्थान और प्रवेशकालिक शकुनादि के फल में विशेष

यदि प्रश्नकर्ता की जन्म-राशि से अष्टम स्थान में गुलिक हो और वह गुरु से दृष्ट नहीं हो तो वह प्रश्नकाल में पूर्वकथित समस्त शकुनों को बाधित करते हुए तत्काल मृत्यु देता है।

राशि चक्र लेखन प्रकार

शुद्ध (स्वच्छ) चावल और समस्त प्रस्थ दीपक आदि अष्टमाङ्गलिक पदार्थों

से संयोजित, सरल तथा अच्छी तरह से लीपे हुए समतल भूमि में राशिचक्र लिखना चाहिए।

एक हस्त प्रमाण क्षेत्रफल वाले आयताकार या वर्गाकार क्षेत्र में ६-६ अंगुलों के अन्तर से विभाजन करते हुए रेखाएं बनावें।

इस प्रकार षोडश कोष्ठकों वाले चक्र के मध्य में ४ कोष्ठकों में कमल और अन्य द्वादश कोष्टकों में मेष आदि राशियों को लिखना चाहिए।

विशेष—यहाँ उदय लग्न के साधन का भाव निहित है। प्रश्नकर्त्ता के आ जाने पर ही प्राचीन दैवज्ञ लग्नसाधन कर चक्र बनाता था, यह परम्परा आज भी है।

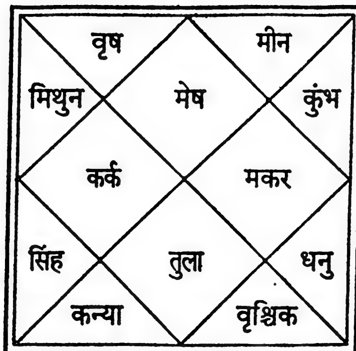
दक्षिण भारत में लग्न चक्र लेखन की तरह यहाँ चक्र दी गई है। प्राय: दैवज्ञ आज भी चावल या भस्म या चन्दन से लग्न लिखते हैं। उत्तर भारत में दैवज्ञ स्लेट व खड़िया या चाक से राशिचक्र-२ की तरह चक्र बनाते हैं।

वैसे आज साधारणत: हर जगह सभी कागज-कलम से लग्न लिखना व्यावहारिक मानते हैं। तात्पर्य इतना ही है कि प्रश्न करने के बाद ही चक्र खींचना चाहिए और चक्र की रेखा के आकार प्रकार से वक्ष्यमाण रीति से फल कथन करना चाहिए।

राशि चक्र-१

मीन	मेष	वृष	मिथुन
कुम्भ			कर्क
मकर			सिंह
धनु	वृश्चिक	तुला	कन्या

राशि चक्र-२



कुछ दैवज्ञ भस्म से चक्र लिखने की निन्दा करते हैं फिर भी आजकल बहुत-से विद्वान् चक्र लिखने में भस्म का भी प्रयोग करते हैं।

चक्ररेखाओं का फल

प्रदक्षिण क्रम से राशि चक्र लिखा जाना चाहिए और अनुलोम तथा विलोम तरीके से लिखने में विघ्न बाधा उत्पन्न होने की सम्भावना को बल मिलता है।

स्थूल रेखा सुखदायक और सूक्ष्म रेखा दुःखदायक होती है। खीचीं गई रेखा को काटना प्रश्नकर्त्ता के सुख और कर्म को नाश करने वाला होता है।

यदि पहले उत्तर की रेखा खीचीं जाय तो निश्चय ही धन लाभ होता है। यदि पश्चिम की बनायी जाय, तो रोग का आगमन होता है।

यदि पूर्व की रेखा लिखी जाय, तो सन्तान की प्राप्ति होती है तथा यदि दक्षिण की रेखा पहले खींची जाय, तो प्रश्नकर्त्ता की मृत्यु होती है।

राशि चक्र में जिस भाग में नीचापन या ऊँचापन दिखलाई देती हो, तो प्रश्नकर्त्ता के निवास स्थान में भी उस दिशा के भाग में नीचापन या ऊँचापन होती है।

राशि चक्र बनाने के बाद उसमें जहाँ तिनके हों, पृच्छक के निवास स्थान में उस दिशा स्थित भाग में वृक्ष होते हैं।

जहाँ जल से गीलापन हो, उस भाग में जल (कूप, टंकी, घड़ा आदि), जहाँ पत्थर का टुकड़ा हो उस भाग में शिला, जहाँ बालू हो वहाँ ऊँची जगह, केले के पेड़ या नारियल जैसे अन्य पेड़ होते हैं।

चींटियों द्वारा लायी गई मिट्टी जिस स्थान पर दिखलाई दे, वहाँ वल्मीक (मिट्टी का टीला) होता है।

यह स्थिति भूमि पर चक्र बनाने पर ही सम्भव है; परन्तु साम्प्रतिक दृष्टि से यह विषय तभी उपयोगी है, यदि आज भी हम चक्र जमीन पर बनायें।

चक्रलेखन पश्चात् लेखक चेष्टावश पृच्छक फल

राशि चक्र लेखन के बाद लेखक जिस किसी का स्पर्श आदि करता हो तो उसके अनुसार प्रंशनकर्त्ता की भूमि के लक्षणों का विचार करना चाहिए।

यदि चक्र लिखकर वह किसी को कोई वस्तु देता है तो यह भूमि किसी अन्य व्यक्ति के पास (स्वामित्व अथवा अधिकार) चली जाती है और वह किसी से कुछ लेता है, तो प्रश्नकर्त्ता को अन्य भूमि का लाभ होता है।

यदि अपने सामने हाथ फैलाकर कुछ निकालता हो, तो पत्थर होता है।

यदि हाथ में अंगूठी पड़ी हो, तो भूमि लता, वल्ली आदि से सुशोभित होती है और पत्थर का टुकड़ा या आभूषण मिलने पर भी उक्त फल ही होता है।

हाथ की अंगुली फैलाने पर शाखाहीन वृक्ष और मुट्ठी बांधने पर उस भूमि में स्थाणु (सूखे ठूठ) बताना चाहिये।

राशि चक्र से प्रश्नकर्त्ता वास स्थान-ज्ञान लक्षण

यदि दाढ़ी-मूँछ के बालों का स्पर्श करता हो, तो उस भूमि में कांटेदार वृक्ष तथा नथुना और कर्ण के छिद्रों का स्पर्श करने पर सर्प और चूहों के बिल कहने चाहिए। इस प्रकार पृच्छक के निवास स्थान के स्वरूप निश्चय के लिए बताया जाता है।

खुले केश या दाढ़ी का स्पर्श करने पर उस स्थान पर मूंज, खस, और कुशा आदि; नासिका का स्पर्श करने पर वल्मीक; मूत्रेन्द्रिय, पेट, नेत्र, स्तन और मुख आदि का स्पर्श करने पर अच्छे जल से युक्त और पसीने का स्पर्श करने पर प्रश्नकर्त्ता के स्थान को जलीय प्रदेश कहना चाहिए।

कुक्षि और गुदा का स्पर्श करने पर खराब जल; हाथ ऊँचा होने पर बहुत ऊँचे पेड़; हाथ नीचा होने पर छोटे वृक्ष और दांत या नाखून छूने पर उस स्थान को लोहायुक्त कहना चाहिए।

जानु आदि हड्डी बाहुल्य अंगों को स्पर्श करने पर भूमि पत्थर और हड्डियों से व्याप्त होती है तथा नाभि आदि निम्न अंग छूने पर प्रश्नकर्त्ता की भूमि में बिल और नालियाँ होती हैं।

अपने पृष्ठ भागस्थ नीचे का हिस्सा छूने से उस स्थान में नाली या नदी कहनी चाहिए। इस प्रकार उपरोक्त लक्षण कथन बहुत रहस्यपूर्ण है। अब प्रसंगवश दूतविषयक कुछ लक्षण कहता हूँ।

पृच्छकवास क्षेत्र का चौहद्दी ज्ञान

दूत के चारों तरफ जिस-जिस दिशा में मनुष्य दिखलाई देते हैं, उस-उस दिशा में उस जाति के उतने संख्यक मकान होते हैं।

जिस दिशा से धनुषधारी आते हैं, उस दिशा में शासक का मकान कहना चाहिए।

जिस दिशा से स्त्रियाँ आतीं हैं, उस दिशा में दुर्गा, काली आदि देवी का मन्दिर समझना चाहिए तथा जिस दिशा से शैतान बालक आता है, उस ओर पिशाच होता है।

दूत के जिस ओर से ब्राह्मण आता हो, पृच्छक के मकान से उस दिशा में ब्रह्मराक्षस का निवास तथा जिस दिशा से दुर्मति आती हो उस दिशा से चोरों का भय कहना चाहिए।

चक्रपूजन विधि

राशिचक्र लिखकर, पैर धोकर, आचमन प्राणायाम आदि से शरीर शोधन करने के पश्चात् बाह्यान्तर्मातृका और प्राण प्रतिष्ठा की विधि से आत्म-पूजा कर, गणेश और भगवान् शिव की अर्चना कर चक्र के मध्य में स्थित पद्म पर पीठस्थ देवताओं की पूजा सम्पन्न करने के पश्चात् सूर्यादि ग्रह, मेषादि राशि आदि को नैवेद्य समर्पित कर पंचाक्षरी मंत्र से विधिवत् पूजन करना चाहिए।

चक्रपूजनकालिक ध्यान

कैलासाद्रीशकोणे सुरविटपितटे स्फाटिके मण्डपे स-
न्मातङ्गारातिपीठोपरि परिलसितं सेव्यमानं सुरौघैः।
जानुस्थं वामबाहुं मृगमपि परशुं ज्ञानमुद्रां वहन्तं
नागोद्यद्योगवेष्टं ददतमृषिगणे ज्ञानमीशानमीडे।।

पर्वतराज कैलाश के ईशानकोण में कल्पवृक्ष की छाया में स्फटिक से बने हुए मण्डप के अन्तर्गत सिंहासन पर सुशोभित, देवताओं से सेवित, जानु पर वामहस्त रखे हुए, मृग, पशु एवं ज्ञान मुद्रा धारण किए हुए, लिपटे सर्पों से योगपट्ट बाँधने वाले और ऋषिजनों को ज्ञान-उपदेश प्रदान करने वाले भगवान् शिव का ध्यान करता हूँ।

राशि चक्र पूजनार्थ मन्त्र

मेषादि राशियों और अपनी-अपनी राशियों में स्थित वर्तमान गोचर के अनुसार ग्रहों और गुलिक का अपने-अपने नाम के मन्त्र से पूजन करना चाहिए।

राशियों के लिए ॐ मेषाय नमः, मेषमावाहयामि, स्थापयामि इत्यादि प्रकार से नामोल्लेख पूर्वक पूजन करना चाहिए।

ग्रह पूजन में सूर्यादि ग्रहों के वैदिक मन्त्रों या तन्त्रोक्त मन्त्रों का प्रयोग (सूर्य के लिए 'आकृष्णेन रजसेत्यादि अथवा ॐ घृणिः सूर्याय नमः) करना चाहिए।

ये मन्त्र किसी देवपूजन की पुस्तक से देख लेने चाहिए।

ब्रह्मार्पण अर्थात् पूजा के अन्त में किये जाने वाले कर्म के पश्चात् सरस्वती और गुरुदेव की अष्टमाङ्गलिक अर्थात् गन्ध, पुष्प, अक्षत, दीप, नैवेद्य, स्वर्ण, जल, वस्त्र आदि द्रव्यों और पुष्पों से पूजा कर दीपक और लक्ष्मी की वन्दना करना चाहिए।

तदनन्तर चन्दन से सुभूषित स्वर्ण मुद्रा को जल से धो कर पत्ते पर पुष्प और अक्षत के साथ रखना चाहिए।

तत्पश्चात् उनको बांए हाथ में रखकर दूसरे हाथ से ढककर भक्तिपूर्वक १०८ बार पंचाक्षरी मंत्र का जप कर लेने के बाद पुनः सबकों एक स्थान पर रखकर अष्टमङ्गल प्रारम्भ करना चाहिए।

एतदनन्तर गुरुजनों द्वारा कहा हुआ उस कर्म को संक्षेप में कहते हैं।

अष्टमंगल-कर्म विधि

राशि चक्र को अपने से दाहिनी तरफ करके अर्थात् राशि चक्र से बायीं तरफ स्थित होकर पूर्वाभिमुख आसन पर स्थित हुआ दैवज्ञ को छेदरहित पट्टा अथवा चौकी पर १०८ वराटिकाओं को रखना चाहिए तथा मन्त्र सहित प्रोक्षण कर अर्थात् जल के छींटे देकर गन्ध, पुष्प और.अक्षतों से अलंकृत करता हुआ उस पर राशिचक्र की तरह भगवान् शिव का आवाहन करना चाहिए।

पूर्व आदि दिशाओं में सूर्य, मंगल, गुरु, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्रमा और राहु ग्रह देवों का भी पूजन कर, उनको अर्थात् वराटिकाओं को बार-बार स्पर्श करते हुए पंचाक्षरी मन्त्र और अन्य गुरुमुख से सुने हुए मन्त्रों का १०८ बार जप करना चाहिए। तत्पश्चात् अपने गुरुजन एवं ग्रहों से इस प्रकार प्रार्थना करें—

प्रश्नकर्त्ता का जन्म नक्षत्र व नाम पहले से ही जानकर इस प्रकार कहना चाहिए—

प्रागाद्याशासु सूर्यारार्यज्ञाच्छार्किविधूरगान्।
अपि संपूज्य ताः स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा साष्टशतं जपेत्।।
पंचाक्षरीं मनूनन्यानपि गुर्वाननाच्छ्रुतान्।
ततः संप्रार्थये देवं गुरुनपि निजान् ग्रहान्।।

अमुक नक्षत्र में उत्पन्न अमुक नाम वाला इस प्रश्नकर्त्ता का भूत, वर्तमान और भविष्य काल सम्बन्धि शुभ या अशुभ फल इस समय विशेष रूप से विचारित प्रश्न का फल और धन, पुत्र एवं भूमि कथन आदि विषयक शुभ या अशुभ की अन्यान्य सम्भावनायें वास्तविक रूप से आपकी कृपा से मेरे मन में स्फुरित हों।

तत्पश्चात् कन्या या बालक अथवा राशि और ग्रहों की गति स्थिति से अपरिचित कोई अन्य व्यक्ति को नहा-धोकर राशि चक्र के समीप आकर फूलों से दीपक, गणपति और ग्रहों का पूजन करना चाहिए।

एतदनन्तर उसके दाहिने हाथ में अक्षत, पुष्प और सोना दे दें तथा उस व्यक्ति को भी उसको हाथ में लिए हुए राशिचक्र की प्रदक्षिणा कर चक्र के समीप में पूर्वाभिमुख ध्यानपूर्वक बैठ जाना चाहिए।

तदनन्तर पृच्छक को अपने इष्ट देवताका ध्यान करते हुए अंजलि बांधकर खड़ा हो जांना चाहिए और दैवज्ञ पृच्छक का अभीष्ट विचारता हुआ उन वराटिकाओं में मूर्ति की भावना के साथ उनका बार-बार स्पर्श भी करता हुआ मन्त्र का जप करता रहे। तीन बार मंत्र का जप करने के बाद दूत (जिसके हाथ में अक्षत, पुष्प और स्वर्ण आदि दिया है) से कहना चाहिए कि इन्हें राशिचक्र में रखो।

दैवज्ञ के निर्देशानुसार दूत को अपने हाथ में लिए हुए स्वर्ण आदि को चक्र में लिखी राशियों में से किसी एक पर रख देना चाहिए।

तत्पश्चात् दैवज्ञ को उन वराटिकाओं का एक भाग उत्तर में, एक भाग मध्य में और एक भाग दक्षिण में, इस प्रकार तीन भाग कर देना चाहिए तथा फिर निमित्तों का विचार करें।

पहले प्रश्न के समय जो-जो शुभ या अशुभ कहा गया है, वह सब स्पर्श एवं श्वास आदि का यहाँ भी विचार करना चाहिए।

तत्पश्चात् समतल भूमि में दूत पदच्छाया मान (अंगुलात्मक) ज्ञात करें।

जिस राशि में स्वर्ण हो वह आरूढ़संज्ञक होती है।

दैवज्ञ आरूढ़ राशि और स्वर्ण का ऊपर या नीचे मुख रहा इत्यादि विचार करते हुए, पृच्छक को कुछ फल बतलायें और पूजा समाप्त कर तीन स्थानों में रखी वराटिकाओं में से आठ-आठ के क्रम से निकालें और शेष बची वराटिकाओं की संख्या गिनकर उन वराटिकाओं को रख देना चाहिए।

सुवर्ण जहाँ रखा गया, वह स्थान आरूढ़, छाया, अष्टमङ्गल और पृच्छक की तारा सहित मास और गत दिन अर्थात् मास की व्यतीत तिथियाँ आदि लिख कर रखें।

इस अध्याय में राशिचक्र लेखन विधि के साथ-साथ जो कर्म कहे गए हैं, उन्हें क्रमशः संक्षेप में पुनः कहा जा रहा है—

राशि चक्र लिखकर, अक्षत फैलाकर, भक्ति सहित अच्छी तरह पूजा कर, फिर अष्टमङ्गल करने के पश्चात् राशियों का पूजन कर, प्रश्नकर्त्ता को सुवर्ण से उनका स्पर्श करना चाहिए और दैवज्ञ वराटिकाओं का विभाग करे।

कुछ आचार्य ऊपर कथित कर्म में लाल फूल का प्रयोग करते हैं, किन्तु आजकल प्रायः इस कार्य में तुम्ब आदि सफेद फूलों का प्रयोग देखा जाता है।

लग्नं आदि निरूपण

प्रश्नकालिक लग्न स्पष्ट कर लेने से फलादेश यथासम्भव सफल (यथार्थ) होता है; इस प्रकार अन्य ग्रन्थों में बताया गया है।

तन्त्रों (सूर्य सिद्धान्त आदि जैसे ग्रन्थों) का अच्छा ज्ञान रखने वाले दैवज्ञ के लिए छाया और घटी यन्त्र से स्पष्ट लग्न का ज्ञान करना सहज कार्य हो जाता है और होराशास्त्र का ठीक तरह से अभ्यास किये रहने से फलादेश करने वाले ऐसे दैवज्ञ की वाणी कभी मिथ्या नहीं होती।

दिनगत नाडी अर्थात् इष्टकाल साधन प्रकार

तात्कालिक छाया से पूर्वोक्त वाक्य घटाकर शेष के अंगुल बनाकर ६० से गुणा कर तात्कालिक पदच्छाया और पार्श्ववर्ती दो वाक्यों के अन्तराङ्गुल से भाग देकर जो पल मिलें, उनको घटाए गए वाक्य की घड़ियों में से घटाने से दिन के व्यतीत घड़ी और मिलते हैं, उसे दिनगतनाडी या इष्टकाल नाडी कहा जाता है।

ऐसे दिनगत इष्टकाल का साधन करना उस समय ठीक होता है, जिस समय सूर्य; राशि के मध्य में होता है। अन्यथा उक्त कथन का स्पष्टीकरण इस प्रकार समझना चाहिए वस्तुत: इष्टकाल साधन की यह पद्धति एक क्लिष्ट-कल्पना है। अत: अपने सुपरिचित रीति से जन्म अथवा प्रश्नकाल और सूर्योदय के अन्तर से इष्टकाल साधन कर लेना चाहिए अथवा छाया से सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थों में प्रतिपादित विधि से दिनगत घड़ियों अथवा इष्टकाल घड़ियों का ज्ञान कर लेना श्रेयस्कर होगा।

लग्नसाधन

एवं सायन सूर्य और राशियों के स्वोदयमान से लग्न साधन की विधि को दर्शाया गया है।

तात्कालिक सूर्य के गम्य या भोग्य अंश-कला में सूर्य जिस राशि में हो उसके हार से भाग देने से सूर्योदय के बाद के सूर्यनिष्ठ राशि के घट्यादि (भोग्यकाल) मिलते हैं।

उपरोक्त प्रकार से आनीत दिनगत इष्ट घटियों में से उक्त घट्यादि (भोग्यकाल) को घटावें और अग्रिम (सूर्य जिस राशि में हो उससे अगली) राशियों के पलों को भी जब तक घटते जाएँ, घटाना चाहिए।

जो शेष बचे उस को (घटने वाली राशि से अग्रिम) राशि के हार से गुणा करें।

इस प्रकार प्राप्त फल को गतराशि (शुद्ध राशि अथवा वह राशि जिसके पल घट गए हैं) की संख्या में जोड़ने से स्पष्ट लग्न होता है।

यहाँ स्वोदयपल को 'हार' नाम दिया है तथा ऊपर लग्न साधन में तत्कालिक सूर्य कहा है, जिसका तात्पर्य सायन सूर्य होता है।

कुन्दघात की आवश्यकता

यदि पृच्छक का जन्म नक्षत्र न हो तो प्रश्नकालिक स्पष्ट लग्न का कुन्दघात करके कुछ कलाएँ जोड़कर या घटाकर पृच्छक के जन्म नक्षत्र का आनयन करना चाहिए।

पृच्छक का नक्षत्र आगे हो तो जितने नक्षत्रों का अन्तर हो उनमें से प्रत्येक नक्षत्र की १०-१० कलाएँ जोड़नी चाहिए।

चन्द्रसाधन

'परहित' गणित से आनीत चन्द्रमा में २४ कला जोड़ने पर क्रमशः १, ३, ४, ५, ६, ७, ४, १ इन संख्याओं का कन्यार्क और मीनार्क अर्थात् सौर आश्विन और चैत्र मास की १०वीं तिथि से प्रारम्भ कर प्रत्येक १०-१० दिन के अन्तर पर संस्कार करना चाहिए।

यहाँ कन्यार्क (आश्विन) की १०वीं तिथि से लेकर धनु (पौष) की १०वीं तिथि तक तथा मीन (चैत्र) की १०वीं तिथि से प्रारम्भ कर मिथुन (आषाढ़) की १०वीं तिथि तक घटाने और शेष महीने में उक्त क्रम से जोड़ने से दृग्गणितीय चन्द्रमा हो जाता है।

८२५ कोलम्ब (कलि सम्वत् में ३३२६ संख्या घटाने से कोलम्ब सम्वत् हो जाता है) सम्वतात्मक वर्ष होने तक चन्द्रमा में २४ कला जोड़ना उचित है और प्रत्येक ४७ वर्ष के बाद १-१ कला जोड़नी चाहिए।

कण्ठाभरण ग्रन्थोक्त दृक्चन्द्र साधन की विधि इस प्रकार है—

कोलम्ब सम्वत् में से ३१८ घटाकर तात्कालिक (वेधागत) सूर्य से साधित अयनांश जोड़े। इसको ११७ से गुणा कर ११२ का भाग देने से लब्ध फल उसमें सूर्य के भुज और कोटि जोड़े और घटावे।

फिर इसमें १४५ जोड़े और वाक्यान्तर से गुणा कर ५९ का भाग दें। इस प्रकार प्राप्त फल को परहित गणित से आनीत चन्द्रमा की कलाओं में जोड़ने से दृश्य चन्द्रमा हो जाता है।

मान्दि साधन का विचार

मान्दि या गुलिक साधन करने के समय के सायन सूर्य की चरज्या में ३ से भाग देना चाहिए।

वे प्राप्त पल (३० घटी और तात्कालिक दिनमान का अन्तर) होते हैं।

उन से मान्दि घटि को गुणा कर ३० से भाग देने पर प्राप्त हुए पलों को मान्दिघटी में यथाक्रम से जोड़ना और तुलादि ६ राशियों में सूर्य के होने पर घटाना चाहिए। इस प्रकार मान्दि घटी स्पष्ट होती है।

फिर उन स्पष्ट मान्दिघटियों से स्पष्ट गुलिक लाने के लिए दिनगत घटियों से जैसे लग्न का साधन किया जाता है, मान्दि घटियों से उसी प्रकार स्पष्ट गुलिक का साधन करना चाहिए।

त्रिस्फुट साधन

इस प्रकार लग्न, चन्द्रमा और गुलिक का आनयन कर एक स्थान पर अलग-अलग लिखना चाहिए।

फिर उन तीनों का पृथक् योग करना चाहिए, जिसे त्रिस्फुट कहते हैं, उसे भी लिख लेना चाहिए।

यहाँ चिन्त्य यह है कि प्रचलित सूक्ष्म पद्धतियों से साधित लग्न, चन्द्र, गुलिक आदि को ही जोड़ने से त्रिस्फुट होता है।

अत: इस प्राचीन क्लिष्ट व अप्रचलित पद्धति के गणितीय उलझन में पड़ने की आवश्यकता नहीं, ऐसा मेरा विचार है, वैसे विद्वान् विचार करें।

चतुःस्फुट और पञ्चस्फुट साधन

लग्न, चन्द्रमा और गुलिक के योग को त्रिस्फुट कहा जाता है। उसमें स्पष्ट सूर्य जोड़ने से चतुस्फुट तथा उस चतुस्फुट में राहु जोड़ने से पंचस्फुट हो जाता है।

प्राण, देह और मृत्यु साधन

लग्न और चन्द्रमा को क्रम से पाँच और आठ से गुणा कर दोनों में गुलिक जोड़ना चाहिए। इस प्रकार क्रमश: प्राण और देह होता है।

तथा गुलिक को ७ से गुणाकर सूर्य जोड़ने से मृत्यु (पदार्थ विशेष, जिसका फल अग्रिम अध्याय में बताया गया है) होता है।

इन तीनों प्राण, देह और मृत्यु को भी लिख लेना चाहिए। ये तीनों फलादेशार्थ पारिभाषिक संज्ञायें हैं।

अन्य प्रकार से प्राण साधन

प्रश्नकालिक दिनगत घटियों (इष्टकाल) को १२० से गुणा करें और गुणनफल में दिनमान की घट्यादि से भाग दें।

इस प्रकार प्राप्त राश्यादि फल को तात्कालिक सूर्य में जोड़ देना चाहिए।

एवं तात्कालिक सूर्य स्थिर राशि में होने पर इसमें ४ राशि घटाना और द्विस्वभाव राशि में होने पर ४ राशि जोड़ देना चाहिए तथा चर राशि में सूर्य के होने पर जोड़ना-घटाना नहीं चाहिए।

इस तरह स्पष्ट प्राण होता है और उसको भी लिख लेना चाहिए।

अन्य प्रकार से काल व मृत्यु साधन

इस प्रकार दिनगत घटियों अर्थात् इष्टकाल को ३६ से गुणा करें तथा गुणनफल दिनमान का भाग देना चाहिए।

इस तरह प्राप्त फलगत राशि रूप आदि फल को सूर्य, गुरु, शुक्र और चन्द्रमा के वारों की संख्या में मेषादि चर राशियों में तथा मंगल, बुध और शनि के वारों की संख्या में मिथुनादि द्विस्वभाव राशियाँ जोड़ने से 'मृत्यु' होता है।

उपरोक्त फल को सूर्य आदि वारों में मेषादि चर राशियों में से मंगल आदि के वारों की संख्या में मिथुन आदि राशियों में से घटाने पर 'काल' होता है। इन दोनों 'मृत्यु' और 'काल' को भी लिख लेना चाहिए।

सूर्य, चन्द्र और राहु चक्र

सूर्योदयकाल से प्रारम्भ होकर प्रत्येक २ घड़ी ३० पल के क्रम से रवि धनु राशि से विलोम गति द्वारा एक-एक राशि में संचरित होता है।

इस सूर्य से ६ राशि के अन्तर पर अनुलोम (मार्गी) गति वाला चन्द्रमा स्थित होता है।

सूर्योदयकाल से लेकर प्रत्येक ढ़ाई (२/३०) घटि के क्रम से राहु मकर, सिंह, कर्क, मेष, वृश्चिक और तुला राशि में और फिर क्रम से कर्क, कुम्भ, मकर, मेष, वृष और तुला राशियों में संचरित होता है।

तथा सूर्य, चन्द्र और राहु का साधन इस प्रकार करना चाहिए—

दिनगत घटियों के पलात्मक मान में १५० का भाग देने पर लब्धि राशि और शेष को ३० से गुणाकर १५० से भाग देनें से अंश तथा फिर बचे शेष को ६० से गुणाकर १५० से भाग देने से लब्धि कला होती है।

इन राशि, अंश और कलाओं को ८ राशि में से घटाने से सूर्य तथा सूर्य में ६ राशि जोड़ने से चन्द्रमा होता है।

राहु साधन के लिए भी दिनगत घटियों में १५० का भाग देकर उपरोक्त विधि से राशि, अंश और कला का साधन करना चाहिए।

यहाँ राशि की १, २, ३ आदि संख्या के स्थान पर, उस संख्या बोधक राशि मकर, सिंह, कर्क आदि कथित राशियाँ ग्रहण करते हुए अंश कला गणित से प्राप्त कर लेनी चाहिए।

यहाँ ध्यातव्य है कि ये ग्रह सूर्य, चन्द्रमा और राहु सूर्यमण्डलीय ग्रहों से सर्वथा भिन्न और कल्पित संज्ञाएँ हैं, जिनका फल इसी ग्रन्थ के पूर्व पृष्ठों में दिया गया है।

मृत्यु चक्र

गुलिक, चन्द्रमा और सूर्य सूर्योदय काल से प्रत्येक ९० पल में जिस राशि में स्थित होते हैं उसके नवांश की राशि से अग्रिम राशियों में संचार करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा सीधी गति से और गुलिक विलोम गति से संचरण करता है।

इस तरह तात्कालिक सूर्य, चन्द्रमा और गुलिक की राशि ज्ञात रहने पर वह गुलिक सूर्य के साथ होने पर मृत्युकारक और चन्द्रमा के साथ होने पर भयदायक होता है। इसे मृत्युचक्र कहा जाता है।

इनका साधन इस प्रकार से करना चाहिए—

दिनगत घटियों को पलात्मक बनाकर उनमें ९० का भाग देकर उपरोक्त प्रकार से राशि, अंश और कला आदि का साधन के पश्चात् तात्कालिक स्पष्ट सूर्य, चन्द्र और गुलिक की राशियों को ९ से गुणा करना चाहिए।

फिर उपरोक्त सूर्य और चन्द्रमा की ९ से गुणित राश्यादि में पूर्व-साधित राशि, अंश, कला आदि जोड़ दें और ९ से गुणित गुलिक के राश्यादि पूर्वोक्त राश्यादि में से पूर्वसाधित राशि,अंश, कला आदि घटा दें।

इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा और गुलिक स्पष्ट हो जाते हैं। यदि स्पष्ट गुलिक सूर्य या चन्द्रमा के साथ हो तो क्रम से मृत्युदायक और भयदायक होते हैं। इसी के आधार पर ही इसे मृत्यु चक्र कहा जाता है।

स्पष्ट ग्रह साधन प्रकार विचार

उपरोक्त सूर्य, चन्द्रमा और आरूढ़ लग्न की राशि और नवांश के स्वामी

अन्य प्रकार से प्राण साधन

प्रश्नकालिक दिनगत घटियों (इष्टकाल) को १२० से गुणा करें और गुणनफल में दिनमान की घट्यादि से भाग दें।

इस प्रकार प्राप्त राश्यादि फल को तात्कालिक सूर्य में जोड़ देना चाहिए।

एवं तात्कालिक सूर्य स्थिर राशि में होने पर इसमें ४ राशि घटाना और द्विस्वभाव राशि में होने पर ४ राशि जोड़ देना चाहिए तथा चर राशि में सूर्य के होने पर जोड़ना-घटाना नहीं चाहिए।

इस तरह स्पष्ट प्राण होता है और उसको भी लिख लेना चाहिए।

अन्य प्रकार से काल व मृत्यु साधन

इस प्रकार दिनगत घटियों अर्थात् इष्टकाल को ३६ से गुणा करें तथा गुणनफल दिनमान का भाग देना चाहिए।

इस तरह प्राप्त फलगत राशि रूप आदि फल को सूर्य, गुरु, शुक्र और चन्द्रमा के वारों की संख्या में मेषादि चर राशियों में तथा मंगल, बुध और शनि के वारों की संख्या में मिथुनादि द्विस्वभाव राशियाँ जोड़ने से 'मृत्यु' होता है।

उपरोक्त फल को सूर्य आदि वारों में मेषादि चर राशियों में से मंगल आदि के वारों की संख्या में मिथुन आदि राशियों में से घटाने पर 'काल' होता है। इन दोनों 'मृत्यु' और 'काल' को भी लिख लेना चाहिए।

सूर्य, चन्द्र और राहु चक्र

सूर्योदयकाल से प्रारम्भ होकर प्रत्येक २ घड़ी ३० पल के क्रम से रवि धनु राशि से विलोम गति द्वारा एक-एक राशि में संचरित होता है।

इस सूर्य से ६ राशि के अन्तर पर अनुलोम (मार्गी) गति वाला चन्द्रमा स्थित होता है।

सूर्योदयकाल से लेकर प्रत्येक ढ़ाई (२/३०) घटि के क्रम से राहु मकर, सिंह, कर्क, मेष, वृश्चिक और तुला राशि में और फिर क्रम से कर्क, कुम्भ, मकर, मेष, वृष और तुला राशियों में संचरित होता है।

तथा सूर्य, चन्द्र और राहु का साधन इस प्रकार करना चाहिए—

दिनगत घटियों के पलात्मक मान में १५० का भाग देने पर लब्धि राशि और शेष को ३० से गुणाकर १५० से भाग देने से अंश तथा फिर बचे शेष को ६० से गुणाकर १५० से भाग देने से लब्धि कला होती है।

इन राशि, अंश और कलाओं को ८ राशि में से घटाने से सूर्य तथा सूर्य में ६ राशि जोड़ने से चन्द्रमा होता है।

राहु साधन के लिए भी दिनगत घटियों में १५० का भाग देकर उपरोक्त विधि से राशि, अंश और कला का साधन करना चाहिए।

यहाँ राशि की १, २, ३ आदि संख्या के स्थान पर, उस संख्या बोधक राशि मकर, सिंह, कर्क आदि कथित राशियाँ ग्रहण करते हुए अंश कला गणित से प्राप्त कर लेनी चाहिए।

यहाँ ध्यातव्य है कि ये ग्रह सूर्य, चन्द्रमा और राहु सूर्यमण्डलीय ग्रहों से सर्वथा भिन्न और कल्पित संज्ञाएँ हैं, जिनका फल इसी ग्रन्थ के पूर्व पृष्ठों में दिया गया है।

मृत्यु चक्र

गुलिक, चन्द्रमा और सूर्य सूर्योदय काल से प्रत्येक ९० पल में जिस राशि में स्थित होते हैं उसके नवांश की राशि से अग्रिम राशियों में संचार करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा सीधी गति से और गुलिक विलोम गति से संचरण करता है।

इस तरह तात्कालिक सूर्य, चन्द्रमा और गुलिक की राशि ज्ञात रहने पर वह गुलिक सूर्य के साथ होने पर मृत्युकारक और चन्द्रमा के साथ होने पर भयदायक होता है। इसे मृत्युचक्र कहा जाता है।

इनका साधन इस प्रकार से करना चाहिए—

दिनगत घटियों को पलात्मक बनाकर उनमें ९० का भाग देकर उपरोक्त प्रकार से राशि, अंश और कला आदि का साधन के पश्चात् तात्कालिक स्पष्ट सूर्य, चन्द्र और गुलिक की राशियों को ९ से गुणा करना चाहिए।

फिर उपरोक्त सूर्य और चन्द्रमा की ९ से गुणित राश्यादि में पूर्व-साधित राशि, अंश, कला आदि जोड़ दें और ९ से गुणित गुलिक के राश्यादि पूर्वोक्त राश्यादि में से पूर्वसाधित राशि,अंश, कला आदि घटा दें।

इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा और गुलिक स्पष्ट हो जाते हैं। यदि स्पष्ट गुलिक सूर्य या चन्द्रमा के साथ हो तो क्रम से मृत्युदायक और भयदायक होते हैं। इसी के आधार पर ही इसे मृत्यु चक्र कहा जाता है।

स्पष्ट ग्रह साधन प्रकार विचार

उपरोक्त सूर्य, चन्द्रमा और आरूढ़ लग्न की राशि और नवांश के स्वामी

ग्रहों का दृग्गणित से आनयन करना चाहिए। वैसे उपरोक्त सूर्य, चन्द्रमा और आरूढ़ लग्न फलादेश के लिए कल्पित संज्ञाएँ हैं, जिनके आधार पर अग्रिम अध्यायों में फल बताया गया है।

वस्तुतः इन सूर्य, चन्द्र आदि का सौरमण्डलीय ग्रहों से कोई सम्बन्ध नहीं है। ये सूर्य, चन्द्र आदि आकाशस्थ ग्रह पिण्डों से निःसन्देह भिन्न हैं।

इसी प्रकार आरूढ़ लग्न या राशि का भी पारमार्थिक क्रान्तिवृत्त से कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु प्रश्नशास्त्र में इन संज्ञाओं सूर्य, चन्द्र, राहु, गुलिक, आरूढ़ लग्न, प्राण, देह, काल आदि का फलादेश में उपयोग होता है।

इसलिए यहाँ इनका अलग से साधन किया गया है और ग्रहों का साधन करने के लिए दृग्गणित का आश्रय लेना चाहिए।

दृश्यगणित से समस्त ग्रहों का साधन करना चाहिए और लग्न, भाव नवांश आदि सभी वस्तुओं के साधन में भी स्पष्ट गणित तथा दृश्यगणितीय ग्रहों का उपयोग करना चाहिए।

दृक्तुल्य ग्रह प्रमाण

ग्रहयुति, सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण और अस्तोदया-वक्री, मार्गी, शीघ्रा, मन्दा तथा समा इन ५ प्रकार की गतियों में दृग्गणित पर आधारित करणग्रन्थ का उपयोग करना चाहिए और उसके अनुसार तीन बार अर्थात् बारम्बार ग्रहों की गणना करनी चाहिए।

जब सौर, ब्राह्म, आर्य; इनमें जो सिद्धान्त दृक्तुल्य हो तब उस सिद्धान्त से ही विद्वान् को जातक, प्रश्न आदि की गणित करनी चाहिए।

स्पष्टीकरणार्थ आरूढ़ लग्न

आरूढ़ को स्पष्ट करने के लिए स्पष्ट लग्न की राशि का त्याग करते हुए अंश और कला को आरूढ़ राशि में जोड़ना चाहिए और उस स्पष्ट आरूढ़ को अलग से लिख लेना चाहिए।



सूत्रपंचक निरूपण

आरूढ़ और स्पष्ट लग्न से फल चिन्तन करना सामान्य सूत्र है। आरूढ़ और स्पष्ट लग्न के स्वामियों से फल चिन्तन करना अधिप संज्ञक सूत्र है। लग्न के नवमांश और आरूढ़ राशि से फल विचार करना अंश संज्ञक है। लग्न के नक्षत्र और पृच्छक के नक्षत्र से फल चिन्तन करना नक्षत्र संज्ञक है तथा आरूढ़ और उससे दशम स्थान इन दोनों से फल चिन्तन करना महासूत्र है।

सभी प्रकार के प्रश्न के उत्तर को समझने की संक्षिप्त एवं निश्चित विधि को सूत्र कहा गया है। गणित के विविध प्रश्नों का समाधान करने के लिए प्रायशः सूत्रों का उपयोग होता है। फलित ज्यौतिष शास्त्र में सूत्रों का उपयोग जैमिनी आदि ऋषियों ने विस्तारपूर्वक किया है। यह सूत्र शब्द न्यूनतम शब्दों में भावों का अभिव्यक्त करने की व्यवस्था का नाम है।

पञ्च सूत्रों का पञ्चमहाभूतों में समावेश

पृथ्वी सामान्य सूत्र है। जल अधिपसंज्ञक सूत्र है। तेज अंश संज्ञक सूत्र है। वायु नक्षत्र सूत्र है और आकाश महासूत्र है। इस प्रकार पाँचों सूत्रों में पंचमहाभूतों का समावेश और उनसे उनकी प्रधानता का चिन्तन होता है।

जीव, मृत्यु और रोग सूत्र

यदि आरूढ़ और लग्न (प्रश्न) दोनों चर राशि में स्थित हों अथवा इन दोनों में से एक स्थिर राशि में और दूसरा अन्य (द्विस्वभाव) राशि में हो तो इन दोनों स्थितियों में दो जीव सूत्र होते हैं।

आरूढ़ और लग्न इन दोनों में से एक चर राशि में और दूसरा द्विस्वभाव राशि में अथवा इन दोनों के स्थिर राशि में होने पर इस प्रकार मृत्यु सूत्र भी दो तरह के हो जाते हैं।

इन दोनों (आरूढ़ और लग्न) में से एक चर राशि में और दूसरा स्थिर राशि में अथवा इन दोनों के द्विस्वभाव राशि में होने पर दो प्रकार का रोग सूत्र होता है।

अंश सूत्र का विचार करते समय लग्न के स्थान पर लग्न के नवांश राशि को लग्न मान कर उपरोक्त विधि से विचार करना चाहिए।

आरूढ़ और लग्न ये दोनों के चर राशि में होने पर अथवा इनमें से एक के चर में अथवा दूसरे के स्थिर या द्विस्वभाव में होने पर जीव सूत्र होता है। ये दोनों स्थिर राशि में हों अथवा इनमें से एक द्विस्वभाव और दूसरा चर या स्थिर

में हो तो रोग सूत्र तथा ये दोनों द्विस्वभाव में हों अथवा इनमें से एक स्थिर और दूसरा द्विस्वभाव में हो तो रोग सूत्र होता है।

चर लग्न में चर, स्थिर और द्विस्वभाव राशियों के नवांश होने से क्रमशः जीव, रोग और मृत्यु का संकेत मिलता है। इसी प्रकार स्थिर लग्नों में द्विस्वभाव, चर और स्थिर नवांश क्रमशः जीव, रोग और मृत्यु का संकेत करते हैं। इसी प्रकार द्विस्वभाव लग्नों में स्थिर, द्विस्वभाव और चर राशियों के नवांश क्रमशः जीव, रोग और मृत्यु का संकेत करते हैं।

सूत्रों का फल

यदि आरूढ़ और लग्न का स्वामी एक ही ग्रह हो अथवा उन दोनों के स्वामियों में मित्रता हो, तो जीव सूत्र समझना चाहिए। वे दोनों परस्पर सम हों, तो रोगदायक (रोगसूत्र) होते हैं। उन दोनों के परस्पर शत्रु होने पर मृत्युदायक सूत्र अर्थात् मृत्युसूत्र होते हैं अर्थात् इनका फल यथा नाम तथा गुण के अनुसार समझमा चाहिए।

अन्य प्रकार से जीव, रोग और मृत्यु सूत्र कथन

लग्न नक्षत्र से लेकर पृच्छक के नक्षत्र तक गणना करना चाहिए, जितनी संख्या हो, उसमें ३ से भाग देने पर १ शेष हो तो जीवसूत्र, २ शेष हो, तो रोगदायक सूत्र और ० शेष हो तो मृत्युदायक सूत्र होता है अर्थात् जीव जीवन का, रोग रोग का और मृत्यु मृत्यु का बोधक है।

यदि आरूढ़ और उससे दशम स्थान, दोनों चान्द्र राशिगत हों, तो जीवनप्रद सूत्र; ये दोनों सूर्य राशिगत हों, तो मृत्यु सूत्र जानना चाहिए। यदि इन दोनों में से एक चान्द्र और दूसरा सौर राशिगत हो तो रोगसूत्र समझना चाहिए। यहाँ सूर्य राशि से दिनबली तथा चन्द्रराशि से रात्रिबली राशियों का ग्रहण नहीं किया जाता है। सौर व चान्द्र राशियां क्रम और व्युत्क्रम भेद से होती हैं। सिंह से क्रमशः मकर पर्यन्त ६ राशियों अर्थात् सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर को सौरराशियाँ तथा कर्क से व्युत्क्रम से ६ राशियों अर्थात् कर्क मिथुन, वृष, मेष, मीन, कुम्भ आदि को चान्द्र राशियाँ कही जाती है। यह बात वृद्ध यवन, कालीदास आदि ने भी मानी है और यह सिद्धान्त ऋग्वेद की एक ऋचा से सन्दर्भित भी कहा जाता है।

जीव आदि सूत्र का फलाप्ति

दीर्घायु और रोगशान्ति जीवसूत्र का फल होता है। रोग पैदा होना और लम्बे समय तक रोग का चलना रोग सूत्र कहा जाता है। पृच्छक अथवा प्रश्न से सम्बन्धित व्यक्तियों की मृत्यु होना मृत्यु सूत्र का फल होता है।

जीव सूत्र में प्रश्नकर्त्ता को अभीष्ट लाभ होता है। रोगसूत्र में कार्य का नाश आदि अशुभ फल तथा मृत्युसूत्र में दुःख और भय आदि अनिष्ट फल मिलता है।

इस विषय में अन्य ग्रन्थों में भी फल कहा गया है। उसे भी यहाँ लिखा जा रहा है।

ग्रन्थान्तर से जीव-रोग-मृत्यु का

जीवसूत्र होने पर आयु, बल, धन आदि की भी वृद्धि होती है। यदि रोगसूत्र हो तो धननाश मनोबल का क्षय और शरीर पीड़ा होती है तथा मृत्युसूत्र होने पर भय और रोग की वृद्धि, मनोबल का नाश और अभीष्ट कार्य का नाश होता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रश्नकर्त्ता के समस्त प्रश्नों का फल उपरोक्त तीन सूत्रों के अनुसार बताना चाहिए।

पूर्वोक्त सूत्रों से रोगस्थान

इस अध्याय के आरम्भ में कहे गए सूत्रों में जो भी पंचभूतात्मक सूत्र मृत्युकारक या रोगदायक हो; उन पृथ्वी आदि तत्त्वों के प्रभाव से शरीर में होने वाले रोग पृच्छक को बतलाया जाना चाहिए।

मनुष्य शरीर में मांस, हड्डी, त्वचा, शिरा (नसें)और रोम पृथ्वी तत्त्व सम्बन्धी होते हैं। पसीना, खून, मूत्र, वीर्य और लार जल सम्बन्धी तत्त्व कहे गए हैं। भूख, प्यास, आलस्य, निंद्रा और आभा (कान्ति) तेज तत्त्व सम्बन्धी माने गए हैं। अङ्गों का संचालन वायु तत्त्व के प्रभाव से और द्वेष, राग, मोह, भय, वृद्धता आदि आकाश तत्त्व के प्रभाव से होती है। इस प्रकार समस्त जीवों का पंचभौतिक शरीर होता है। तात्पर्य यह है कि पृथ्वी आदि जिस तंत्त्व का सूत्र रोगदायक हो, शरीर में वह मांस, हड्डी आदि जिन पदार्थों का प्रतिनिध होता है, उनमें विकार (रोग) पैदा करता है। उदाहरणार्थ पृथ्वीतत्त्वमय सामान्य सूत्र के रोग या मृत्युदायक होने पर मांस, हड्डी, त्वचा, नस और रोम आदि सम्बन्धी रोग उत्पन्न होता है। इसी प्रकार अन्य जल आदि तत्त्वों के सूत्रों से भी विचार कर किया जाना चाहिए।

सूत्र और काल त्रिभाग का सम्बन्ध

पूर्वोक्त सूत्रपंचक में से नक्षत्र सूत्र और अधिप सूत्र, ये दोनों वर्तमान काल में फलदायक होते हैं। सामान्य सूत्र भूतकाल में फल देता है और अंशकसूत्र तथा महासूत्र भविष्यत्काल में होने वाले फल की सूचना देते हैं। पाँच सूत्रों के तीनों कालों में वर्गीकरण का प्रयोजन यह है कि जिस काल से सम्बन्धित सूत्र रोगकारक या मृत्युकारक हो उस काल में रोग, मृत्यु या अशुभ फल कहना चाहिए।

प्रश्न कुण्डली से तीनों कालों का विचार

लग्न आदि चार भावों से वर्तमान कालिक, पंचमादि चार भावों से भविष्यत्कालिक और नवमादि चार भावों से भूतकालिक शुभ या अशुभ फल मिलता है—ऐसा आचार्यों का मत है।

काल और भाव सम्बन्ध ज्ञानार्थ चक्र

भाव	१, २, ३, ४	५, ६, ७, ८	९, १०, ११, १२
काल	वर्तमान काल	भविष्यत्काल	भूतकाल

अन्य आचार्यों द्वारा इन तीनों सूत्रों की प्रधानता प्रश्न शास्त्र में बारम्बार बताया गया है, परन्तु कण्ठाभरण नामक ग्रन्थ में यह विषय जिस प्रकार कहा गया है, यहाँ भी उसी प्रकार इसकी प्रधानता और फल इस प्रकार कहा जा रहा है—

आरूढ़ और लग्न के स्वामी तथा इन दोनों के नवमांशेश तथा द्वादशांशेश का फल विचार करते समय स्पष्ट-आरूढ़, जिसका उल्लेख पाँचवें अध्याय के बत्तीसवें श्लोक में हुआ है, का ग्रहण करना चाहिए।

कण्ठाभरणोक्त सूत्रत्रय

(१) आरूढ़ और लग्न (२) आरूढ और लग्न नवमांश और (३) आरूढ़ और लग्न द्वादशांश; इन तीनों से सम्बन्ध रखने वाले सूत्रों को सूत्रत्रय के रूप में कहा गया है। यदि इन दोनों (आरूढ़ और लग्न) के स्वामी, नवमांशेश और द्वादशांशेश ग्रह परस्पर शत्रु हों, तो सूत्रत्रय मृत्युदायक होता है। त्रिस्फुट, दूत, लक्षण (निमित्त), दशा आदि (चेष्टा, भाव और स्वर) के दोषयुक्त होने पर स्वस्थ व्यक्ति का भी मरण हो जाता है।

त्रिसूत्रात्मक जीवनदायक नवमांशेश ग्रहों में मित्रता तथा त्रिस्फुट, दूत, लक्षण, दशा, छिद्र आदि सभी विचारणीय वस्तुओं के प्रशस्त रहने पर मरणासन्न व्यक्ति भी जीवित रह जाता है।

त्रिसूत्रात्मक नवमांशेश, त्रिस्फुट, दूत, लक्षण, दशा आदि के मिश्रित होने पर व्यक्ति अपने कर्मानुसार जीवित रहता है। इस स्थिति में दोष की अधिकता होने पर उसका जीवन सुखदायक नहीं होता है।

त्रिस्फुट से मृत्यु ज्ञान

इस प्रकार कर्क, वृश्चिक और मीन राशियों में उत्तरोत्तर अधिक दोष कहा गया है अर्थात् कर्क से वृश्चिक और वृश्चिक से मीन अधिक दोषदायक राशि है।

इसी प्रकार आश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्रों में भी उत्तरोत्तर अधिक दोष की प्राप्ति होती है। इन राशियों और नक्षत्रों में त्रिस्फुट होने पर उपरोक्त प्रकार से ही त्रिस्फुट में भी उत्तरोत्तर अधिक दोष समझना चाहिए।

तथा कर्क, वृश्चिक और मीन राशियों के अन्तिम नवमांश में त्रिस्फुट होने पर क्रमशः वर्ष, मास और दिन के क्रम से प्रश्नकर्त्ता की मृत्यु कहनी चाहिए।

सृष्टि-स्थिति-विनाश संज्ञक राशि

मेष आदि चार जैसे मेष, वृष, मिथुन राशियाँ सृष्टि संज्ञक, सिंह आदि चार जैसे सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक राशियाँ स्थिति संज्ञक तथा धनु आदि चार जैसे धनु, मकर, कुम्भ और मीन राशियाँ विनाश संज्ञक होती है। पूर्वाभद्रपद नक्षत्र से तीन-तीन नक्षत्र, प्रथम नवांश से, तीन-तीन नवमांश और लग्न से चार-चार भावों की भी क्रमशः सृष्टि, स्थिति और विनाश संज्ञाए होती हैं।

विनाश संज्ञक नक्षत्र और राशि में, गण्डान्त (संधि) नक्षत्र और राशि में तथा प्रश्नकर्त्ता के जन्मकालीन नवमांश से ८८वें नवमांश (८वीं राशि) में त्रिस्फुट होना शुभ नहीं होता है।

राशि, नक्षत्र, भाव, नवांश आदि की सृष्ट्यादिसंज्ञा ज्ञानार्थ चक्र

संज्ञा	सृष्टिसंज्ञक	स्थिति संज्ञक	विनाश संज्ञक
राशि	मेष, वृष, मिथुन, कर्क	सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक	धनु, मकर, कुम्भ, मीन
नक्षत्र	अश्वि०, हस्त, रोहि० पुन०मूल० मघा, पू० पू०भा, श्रवण	भर०, चित्रा, मृग० अनु० पुष्य, पू०फा० पू०षा०, उ०भा०, धनिष्ठा	कृति० स्वाती, आर्द्रा ज्ये० आश्ले० उ० षा०, उ०फा०,शत०, रेवती
भाव	१, २, ३, ४	५, ६, ७, ८	९, १०, ११, १२
नवमांश	१, २, ३	४, ५, ६	७, ८, ९

कर्क राशि के अन्तिम नवमांश में त्रिस्फुट हो तो वर्ष के अन्तर्गत, वृश्चिक राशि के अन्तिम नवांश में त्रिस्फुट हो तो मास के अन्तर्गत और रेवती के अन्तिम चरण अर्थात् अन्त्य नवांश में त्रिस्फुट हो तो एक दिन में मृत्यु देने वाला कहना चाहिए।

त्रिस्फुट को ९ से गुणाकर जो भी गुणनफल होता है, उसकी राशियों का त्याग कर केवल अंश और कला को १२ से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल क्रम से नवांश और द्वादशांश स्पष्ट होता है। यदि यह राशि सन्धि (कर्क, वृश्चिक और

मीन के अन्तिम नवांश अर्थात् श्लेषान्त, ज्येष्ठान्त और रेवत्यन्त में स्थित हो अथवा जन्म नक्षत्र में हो तो प्रश्न करने वालों के लिए निश्चित रूप से मृत्युदायक होता है।

किसी भी नक्षत्र से दसवाँ व उन्नीसवाँ नक्षत्र त्रिकोण होता है। इस तरह जन्मनक्षत्र में ९ जोड़ने पर प्रथम त्रिकोण तथा इस त्रिकोण में पुनः ९ जोड़ने पर दूसरा त्रिकोण नक्षत्र ज्ञात होता है।

त्रिस्फुट और अकाल मृत्यु

त्रिस्फुट की राशि और नवांश में से जिसका अधिकतर बल हो तथा वह जन्मकालिक चन्द्रमा की राशिगत हो, तो मृत्युदायक होता है। यदि त्रिस्फुट सिंह या धनु के नवांशगत हो, तो वृद्धावस्था में मृत्युदायक होता है।

रोग और विपत्तिदायक त्रिस्फुट

त्रिस्फुट गुलिक या पाप ग्रहों से युक्त हो तो शुभदायक नहीं होता है। इस प्रकार यह जिस नक्षत्र में हो, उस नक्षत्र में घर में रोग होता है। यदि यह नौ प्रकार के दोषों में से किसी दोष से युक्त हो तो प्रश्नकर्त्ता पर विपत्ति आती है। यह सृष्टिसंज्ञक नक्षत्र, राशि आदि में और शुभ ग्रहों के साथ भी होने पर दीर्घायु और आरोग्य देने वाला होता है। उपरोक्त नौ प्रकार के दोष कौन-कौन से कहे गये हैं, उसे यहाँ बालबोधार्थ दिया जा रहा है—

'विषोष्णविष्टिगण्डान्तलाटैकार्गलवैधृताः ।
गुलिकोऽहिशिरश्चैते नवदोषा बलोत्तराः।।

अर्थात् (१) नक्षत्रों की विषघटी, (२) ऊष्णघटी, (३) भद्रा, (४) गण्डान्त, (५) लाट या व्यतिपात, (६) एकार्गल, (७) वैधृति, (८) गुलिक, (९) सार्पशीर्ष, ये ९ दोष हैं। इन दोषों से संयुक्त लग्न, नक्षत्र या चन्द्रमा के होने से अत्यन्त अनिष्टप्रद होता है।

इन दोषों को सारांश में इस प्रकार जानना चाहिए—

(1) **विषघटी**—अश्विन्यादि नक्षत्रों की अधोलिखित घटियों से अग्रिम चार-चार घटियाँ विषघटी होती हैं—

सूत्रपंचक निरूपण

विषघटि स्पष्टार्थ नक्षत्र चक्र

न.	वि.घ.	न.	वि.घ.	न.	वि.घ.
अ०	५०	भ०	२४	कृ०	३०
रो	४०	मृग०	१४	आर्द्रा	२१०
पुन०	३०	पुष्य	२०	आश्ले०	३२
मघा	३०	पू०फा०	२०	उ०फा०	१८
ह०	२१	चि०	२०	स्वा	१४
विशा०	१४	अनु०	१०	ज्ये०	१४
मूल	५६	पू०षा०	२४	उ०षा०	२०
श्रव०	१०	धनि०	१०	शत०	१८
पू०भा०	१६	उ०भा०	२४	रेव०	३०

जैसे—उपरोक्त चक्र के अनुसार अश्विनी नक्षत्र में ५१-५४ घटियाँ विषघटी है। अन्यत्र भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

(२) **ऊष्णघटी**—अश्विनी के दूसरे प्रहर की पांच घटियाँ, भरणी के अन्तिम प्रहर की ९ घटियाँ, कृत्तिका से स्वाती तक की शूरू की २२ घटियाँ और अन्त की ३-३ घटियाँ, विशाखा की शूरु में ८ घटियाँ, अनुराधा की अन्त की ८ घटियाँ, ज्येष्ठा के पूर्वार्ध की १० घटियाँ, ज्येष्ठा (शेष) से रेवती तक अन्त की ३-३ घटियाँ ऊष्ण घटि हैं।

(३) **भद्रा**—प्रत्येक तिथि में दो करण होते हैं। कुल चर-स्थिर ग्यारह करण होते हैं। उनमें से भद्रा विष्टिकरण का ही अपर नाम है। शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा और अष्टमी के पूर्वार्ध तथा एकादशी और चतुर्थी के उत्तरार्ध में भद्रा होती है। कृष्ण पक्ष में तृतीया और अष्टमी तिथियों के उत्तरार्ध में तथा सप्तमी और चतुर्दशी के पूर्वार्ध में भद्रा रहती है।

(४) **गण्डान्त**—तिथिगण्ड, लग्नगण्ड व नक्षत्रगण्ड। पूर्णा तिथियों की अन्त की ७ घटियाँ, नन्दा में आरम्भिक २ घटियाँ गण्ड हैं।

मीनान्त की १/२ घटि और मेषारम्भ की १/२ घटि गण्ड है। इसी प्रकार कर्कान्त की १/२ घटि व सिंहादि की १/२ घटि वृश्चिकान्त की १/२ घटि व धनु की १/२ घटि गण्ड हैं।

रेवती-अश्विनी, आश्लेषा-मघा और ज्येष्ठा-मूल ये छः गण्ड नक्षत्र हैं

(५) लाट या व्यतिपात, अतिपात, महापात या क्रान्तिसाम्य ये सभी

समानार्थक शब्द हैं। इसकी गणितीय स्पष्टीकरण प्रक्रिया सूर्य सिद्धान्त आदि ग्रन्थों से देखना चाहिए। स्थूलतया सिंह—मेष, वृष-मकर, तुला-कुम्भ, कन्या-मीन, कर्क-वृश्चिक, मिथुन-धनु में एक साथ सूर्य व चन्द्र हो तो क्रान्तिसाम्य होता है।

(६) **एकार्गल**—इसे खार्जूरवेध भी कहा जाता हैं। सूर्यनक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र तक अभिजित् सहित गिनकर यदि विषम संख्या प्राप्त हो और उस दिन विष्कम्भादि योगों में से अधोलिखित योग भी हों तो एकार्गल होगा—व्याघात, शूल, व्यतिपात, वैधृति, गण्ड, वज्र, परिघ, अतिगण्ड।

(७) **वैधृति**—प्रसिद्ध वैधृति योग का विष्कम्भादि २७वाँ (अन्तिम) योग से तात्पर्य है। यह अनिष्टकारक योग है।

(८) **गुलिक**—मान्दी या गुलिक की स्पष्टीकरण पिछले अध्याय में किया गया है।

(९) **सार्पशीर्ष**—चन्द्र और सूर्य के योग के समय अनुराधा नक्षत्र के होने पर उस नक्षत्र का अन्तिम चरण सार्पशिर कहलाता है।

त्रिस्फुट नक्षत्र फल विचार

अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों में से नौ-नौ नक्षत्रों के तीन खण्डों के नक्षत्रों में त्रिस्फुट यदि स्थित हो, तो क्रमशः सम्पन्न ब्राह्मण का आगमन, निर्धन ब्राह्मण का आगमन, अग्नि भय और वासस्थान का नाश, कलह में हारे हुए व्यक्ति का आगमन, सर्प का आना, तीन ब्राह्मणों का आना, पशुओं पर विपत्ति, बन्धुओं का आना तथा मृत्यु के चिन्ह दिखना, ये सब फल कहना चाहिए।

त्रिस्फुटाश्रय नक्षत्र फल ज्ञानार्थ चक्र

त्रिस्फुटाश्रय नक्षत्र	—	उसका फल
अश्विनी, मघा, मूल	—	धनाढ्य ब्राह्मागमन
भरणी, पू.फा., पू.षा.	—	धनहीन, ब्राह्माणगमन
कृत्तिका, उ.फा., उ.षा.	—	अग्निभय और वासथान हानि
रोहिणी, हस्त, श्रवण	—	कलह से पराजित मनुष्यागमन
मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा	—	सर्पागमन
आर्द्रा, स्वाती, शतभिषा	—	ब्राह्मणत्रयागमन
पुनर्वसु, विशाखा, पू.भा.	—	चतुष्पादापत्ति
पुष्य, अनुराधा, उ.भा.	—	मित्रागमन
अश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती	—	मृत्युलक्षण दीखना

उपरोक्त त्रिस्फुट पर सूर्य-चन्द्र का फल

जिस राशि में या जिस राशि के नवांश में त्रिस्फुट स्थित होता है, तो उस राशि में चन्द्रमा के आने पर या उस राशि से त्रिकोण स्थान में सूर्य कि स्थितिवश उपरोक्त नक्षत्रानुसार पूर्वोक्त फल घटता है।

त्रिस्फुट के साथ ग्रहयुति फल

त्रिस्फुट की राशि या नक्षत्र में स्थित होने पर सूर्य सिर दर्द, गर्मी, ज्वर एवं सन्ताप करता है। चन्द्रमा अतिसार (पेचिश) और मंगल व्रण (घाव आदि) करता है। बुध वाणी और मन को कुण्ठित (रोगयुक्त) करता है। गुरु दृष्टि को कमजोर करता है। शुक्र बुद्धिनाश और शरीर में विकार करने के बाद सूजन करता है। शनि पैरों में ऐंठन करता है। राहु ऊपर से गिराता है तथा केतु का फल मंगल की तरह व्रण आदि का कारण होता है।

नवांश कुण्डली से ग्रह व त्रिस्फुट की युति

सूर्य आदि ग्रहों के नवांश में उन ग्रहों के साथ त्रिस्फुट भी स्थित हो तथा यदि उन ग्रहों के उपरोक्त रोग भी हो तो प्रश्नकर्त्ता की निश्चित रूप से मृत्यु होती है।

जिस नक्षत्र में त्रिस्फुट हो, उसकी संख्या को ९ से गुणा करने से जो नक्षत्र आता हो, उस नक्षत्र में रोग उत्पन्न होता है तथा उस नक्षत्र से अग्रिम नक्षत्र में मूर्च्छा और तीसरे नक्षत्र में मृत्यु हो जाती है।

त्रिस्फुट नक्षत्र दशा साधन

त्रिस्फुट, जिस नक्षत्र में स्थित है, उस नक्षत्र की ऐष्य घटियों से अग्रलिखित विधि के द्वारा नक्षत्र दशा का साधन करने के पश्चात् उससे अपहार और छिद्र का विचार कर एक वर्ष के अन्तराल का फल कहना चाहिए। ऐष्य अर्थात् भोग्य घटियाँ और इन भोग्य घटियों से विंशोत्तरी दशा की तरह दशा का स्वामी व भुक्त-भोग्य निकाल लेना चाहिए।

आरूढ़ राशि से अष्टम, षष्ठ एवं व्यय स्थान के स्वामी उन त्रिक स्थानों में ही स्थित होकर नीच राशि में स्थित हो या अस्तंगत हो और पाप ग्रह केन्द्र, धन एवं त्रिकोण स्थानों में हों तथा गुलिक के नवमांशेश और उसकी राशि का स्वामी तथा त्रिस्फुट का नक्षत्र, विपत्, प्रत्यरि एवं वध आदि तारा संज्ञक हो तो ये सब प्रश्न करने वालों को दोषकारक होते हैं लेकिन केन्द्र आदि स्थानों तथा लग्न में शुभ प्रभाव हो तो शुभफलदायक होता है। इसे परम रहस्यात्मक विषय जानना चाहिए।

त्रि-चतुस्फुट नक्षत्र से मृत्यु नक्षत्र

त्रिस्फुट का नक्षत्र जिस नवांश में हो, उसकी गत घटियों को ९ से गुणा कर २७ से भाग देकर त्रिस्फुट के नक्षत्र से शेष तुल्य आगे गणना करना चाहिए। इस प्रकार प्राप्त नक्षत्र मृत्यु नक्षत्र होता है। इस नक्षत्र में पृच्छक की मृत्यु होने की सम्भावना होती है तथा चतुस्फुट, जिस नक्षत्र में हो, वह नक्षत्र भी मृत्युनक्षत्र होता है। इस नक्षत्र में यदि रोग समाप्त हो भी जाए तो भी चतुस्फुट के नक्षत्र में उत्पन्न रोग प्रश्नकर्ता के निकट सम्बन्धी को संक्रमित हो जाता है।

त्रिस्फुट, जिस राशि में है, उसमें यदि सूर्य अथवा चन्द्रमा जाता है, तो मृत्यु होती है। प्रश्नशास्त्र में मृत्यु का निर्णय गुरु के उपदेश और कई बार परीक्षण कर किया जा सकता है।

पंचस्फुट से मृत्यु

यदि लग्न, राहु, गुलिक, चन्द्रमा और सूर्य; इन पूर्वोक्त पंचस्फुटों के योग में जन्मराश्यादि स्थित हों अर्थात् पंचस्फुट जन्मराशि आदि पर स्थित हों अथवा वध, तारा, वैनाशिक नक्षत्र और रेवती नक्षत्र या विपत् और प्रत्यरि तारा में पंचस्फुट योग होने पर मृत्यु होती है। वैनाशिक नक्षत्र २२वाँ होता है। इसका भी ८८वाँ नवांश अत्यन्त अशुभ है। स्पष्ट चन्द्र में ९।२०°।०° जोड़ने से ८८वें नवांश का प्रारम्भ ज्ञात हो जाता है। इसमें ३°.२०′ जोड़ने से अन्त आ जाता है। यदि पंचस्फुट इसमें या २२वें नक्षत्र में हो, तो वैनाशिक में गया हुआ माना जाता है।

अन्य प्रकार से प्राण-देह व मृत्यु फल

लग्न नवांश को प्राण, चन्द्र नवांश को देह (शरीर) और गुलिक नवांश को मृत्यु जाना जाता है। यदि प्राण और देह बोधक राशि के स्वामी युति अथवा दृष्टि द्वारा परस्पर सम्बन्धित हों और उन पर मृत्यु द्योतक राशि के स्वामी की युति अथवा दृष्टि का कोई प्रभाव न हो तो पृच्छक की दीर्घ आयु जाननी चाहिए। यदि मृत्यु द्योतक राशि अथवा उसके स्वामी का उन पर प्रभाव हो तो शरीर में दर्द और रोग होते हैं। इसी प्रकार यदि यह प्रभाव प्राणबोधक राशि अथवा उसके स्वामी पर हो तो पृच्छक को मोह की प्राप्ति होती है।

लग्न, चन्द्र और गुलिक नवांश फल

जब लग्न, चन्द्र और गुलिक द्विस्वभाव राशि के नवांश में होते हैं, तब प्रश्नकर्त्ता के लिए मृत्युप्रद होते हैं। जब वे स्थिर राशि के नवांश में होते हैं, तब

रोगदायक और चर राशि के नवांश में होने पर आयु और आरोग्य करने वाले होते हैं।

वे परस्पर पाँचवीं और छठवीं राशि में होकर भयंकर रोग देते हैं। वे तीनों एक-दूसरे को देखते हैं, तब तो मूर्छित करते हैं। एक-दूसरे से युक्त होते हैं, तब मृत्युदायक होते हैं और कर्क से त्रिकोण में अर्थात् कर्क, वृश्चिक और मीन राशियों में इन तीनों के होने पर निश्चित रूप से मृत्यु होती है। इस प्रकार के विचार के समय, इन तीनों के अलग-अलग राश्यादिमान का व्यवहार करना चाहिए।

लग्न, चन्द्र और गुलिक से विशेष फल

प्रथम लग्न (प्रश्न लग्न) को ५ से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल में गुलिक जोड़ने से प्राण होता है। चन्द्रमा को ८ से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल में गुलिक जोड़ने से देह और गुलिक को ७ से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल में सूर्य जोड़ने से 'मृत्यु' होता है।

प्राण अधिक होने पर रोग शान्ति और देह अधिक होने पर रोग होता है। 'मृत्यु' अधिक होने पर अथवा जन्म राशि में मृत्यु के होने पर या आश्लेषा, रेवती और ज्येष्ठा नक्षत्र में 'मृत्यु' के रहने पर मरण होता है।

त्रिस्फुट राशि में राहु व गुलिकवश फल

त्रिस्फुट; जिस राशि में स्थित है, उसमें सूर्य आदि के होने पर पिता आदि को आपत्ति जाननी चाहिए। त्रिस्फुट की राशि में राहु सहित गुलिक के होने पर प्रश्नकर्त्ता की मृत्यु बतलानी चाहिए।

उपरोक्त राशि में गुलिक के होने पर दैवज्ञ का और केतु के होने पर प्रश्नकर्त्ता का कल्याण होता है। इस राशि में शनि के होने पर प्रश्नकर्त्ता द्वारा जो दूत भेजा गया है, उसका नाश होता है।

रोगी प्रश्न के विशेष

दिनगत असुओं (पल का षष्ठांश एक असु होता है) में ५६२ का भाग देकर प्राप्त राश्यादि को स्पष्ट गुलिक में से घटाने पर शेष पृच्छक के जन्म नक्षत्र के तुल्य होने पर मृत्युदायक होता है। यदि शेष अपने नक्षत्र (जन्म नक्षत्र) के तुल्य नहीं हो, तो वह शेष, जिस नक्षत्र में पड़ता हो, उस नक्षत्र में जन्म लेने वाला पृच्छक के किसी भी सम्बन्धी की मृत्यु होती है।

मृत्युयोग

त्रिस्फुट संहार या विनाशक राशि अर्थात् कर्क, वृश्चिक और मीन के अन्तिम नवांश में होने पर और देहांशक (८०वाँ नवमांश) आदि में अथवा जन्म सम्पत्, विपत् आदि तीन ताराओं में स्थित होकर नियमानुसार निश्चित रूप से मृत्युकारक होते हैं।

आयुष्यवृद्धि योग

त्रिस्फुट सृष्टि संज्ञक भाव और नक्षत्रों में हो या शुभ संयुक्त हो अथवा मेष, सिंह और धनु के नवमांश में स्थित हो, तो आयु वृद्धि होती है।

त्रिस्फुट से पिता आदि सम्बन्धि शुभाशुभ

त्रिस्फुट के द्रेष्काण, होरा, नवमांश, त्रिंशांश, द्वादशांश और क्षेत्र, इनके स्वामियों से क्रमशः पिता, माता, भ्राता, बन्धु, पुत्र और पत्नी का शुभाशुभ फल विचार करना चाहिए।

उपरोक्त द्रेष्काण आदि के स्वामियों के गुण युक्त होने पर उनका अर्थात् पिता-माता-भ्राता आदि का शुभ फल और दोष युक्त होने पर अशुभ फल कहना चाहिए।

दुर्बलता, अनिष्ट स्थान में स्थिति और पाप ग्रहों के साथ होना आदि ग्रहों के दोष होते हैं। इष्ट (अच्छे) भावों में स्थिति, बलवान् और शुभ ग्रहों की युति एवं दृष्टि ये सभी उनके गुण कहे जाते हैं।

द्रेष्काण आदि के स्वामि फल

त्रिस्फुट सूर्य आदि ग्रहों से युक्त होने पर पिता, माता, भ्राता आदि को अशुभ फल होता है।

यदि चतुष्पद राशि या उसके नवांश में पापग्रह के साथ त्रिस्फुट हो तो पशुओं का नाश होता है। इस प्रकार युक्ति से अन्य बातों का भी विचार कर लेना चाहिए।

त्रिस्फुट चन्द्रमा नक्षत्रादि का विशेष फल

१. अकारण तीन दिन तक कलह, २. निर्धन और वृद्ध ब्राह्मण का आगमन, ३. अग्नि भय, ४. पात्र (बर्तन) या वस्त्र का नाश, ५. शरीर में चोट युक्त व्यक्ति या रोगी का आना, ६. सर्प और शुद्ध ब्राह्मण का आना, ७. पशुओं का मरण या सेवक का गिर पड़ना, ८. पड़ोस में या निकट सम्बन्ध में किसी की मृत्यु और ९. भृंग आदि के द्वारा दीपक बुझना; ये नौ मृत्यु के लक्षण हैं, ऐसा तब होता है, जब अष्टम स्थान में चन्द्रमा होता है।

यदि अश्विनी आदि ९ नक्षत्रों के त्रिकोण हो या परस्पर त्रिकोण (९वीं और ५वीं राशि) में त्रिस्फुट हो अथवा स्पष्ट त्रिस्फुट की राशि से त्रिकोण में चन्द्रमा हो तो उक्त ९ लक्षण उत्पन्न होते हैं।

ग्रहों के रोग

ज्वर होना तथा शरीर और सिर में ताप; ये विशेष रूप से सूर्य के रोग हैं।

चन्द्रमा का अतिसार (पेचिश) और मंगल का घाव होना रोग है।

वाणी और मन का कुंठित होना या दृष्टिदोष बुध के रोग हैं।

सारे शरीर में वेदना और बुद्धि भ्रम, ये गुरु के रोग बताये जाते हैं।

शुक्र का सूजन और शनि का हाथ-पैर में अकड़न होना रोग हैं। राहु का रोग गिर पड़ना और केतु का घाव होना रोग होता है। यह विषय इसी प्रकरण के पृष्ठों में उद्धृत किया गया है।

त्रिस्फुट के साथ रहने वाले या त्रिस्फुट के नवमांश स्वामी ग्रह से सम्बन्धित रोग रोगी व्यक्ति (प्रश्नकर्त्ता) को होने पर उसकी मृत्यु निश्चित होती है।

त्रिस्फुट से मृत्युकाल

त्रिस्फुट के नक्षत्र की ऐष्य घटियों के द्वारा दशा साधन कर तथा अपहार और छिद्र का विचार कर वर्ष के अन्तराल का फलादेश करना चाहिए।

त्रिस्फुट का नक्षत्रेश विपत्, प्रत्यरि या वध से सम्बन्धित नक्षत्रेश के साथ आरूढ़ राशि का होकर अनिष्ट (त्रिक्) भाव में हो, उनके स्वामी नीच राशि में हों और गुलिकेश अर्थात् गुलिक राशि का स्वामी अथवा उसका नवांशेश अस्तंगत हो, तो ये सब अशुभ फलदायक होते हैं।

प्रश्न दशा साधन में अन्यमत

प्रश्न नक्षत्र और त्रिस्फुट के नक्षत्रों से उपरोक्त विधि के अनुसार जैसा पूर्व के पृष्ठों में भी कहा गया है, नक्षत्र दशा ज्ञात करना चाहिए और गुलिक के नक्षत्र की भी गत घटियों से उसकी भुक्त दशा का साधन करना चाहिए।

शुभ एवं अशुभ प्रश्न में इन तीनों दशाओं में, जो दशा प्रश्न के अनुरुप हो, उस एक दशा को फलादेश के लिए ग्रहण करना चाहिए।

किसी वर्ष या मास में होने वाले फल का विचार करने के लिए वार्षिक या मासिक दशा ज्ञात करनी चाहिए।

वार्षिक दशा में ग्रहों की दशा के दिन विंशोत्तरी दशा में कथित ग्रहों की वर्ष संख्या को तीन से गुणा करने पर होते हैं।

तथा मासिक दशा में विंशोत्तरी की वर्ष संख्या में चार से भाग देने पर

ग्रहों के दिन होते हैं अथवा उपरोक्त दशा के स्थान पर प्रश्नकालीन चन्द्रमा के नक्षत्र से उसकी दशा का साधन करना चाहिए।

वार्षिक दशागत ग्रह दिनज्ञान

दशाधीश ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
दिन	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	६०

मासिक दशागत ग्रह दिनादिज्ञान

दशाधीश ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
दिन	१	२	१	४	४	४	४	१	५
घड़ी	३०	३०	४५	३०	००	४५	१५	४५	००

नक्षत्रवश दशाधीश ग्रहचक्र

दशाधीश ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
नक्षत्र	कृति. उ.फा. उ.षा.	रोहि. हस्त श्रव.	मृग. चित्रा धनि.	आर्द्रा. स्वाति शत.	पुन. विशा. पू.भा.	पुष्य. अनु. उ.भा.	आश्ले. ज्येष्ठा. रेव.	मघा. मूल. अश्वि.	पू.फा. पू.षा. भरणी
दशावर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०



अष्टमंगल फल निरूपण

वाम भाग अथवा उत्तर दिशा में स्थित अष्टमङ्गल से भूतकालिक फल, मध्य भाग अथवा पूर्व दिशा में स्थित से वर्तमान कालिक फल और दक्षिण भाग अथवा दक्षिण दिशा में स्थित से भविष्यकालिक फ़ल को बताना चाहिए। चक्रस्थ राशि में पहले १०८ वराटिकाओं का जो विधान पूर्वोक्त अध्याय ४ श्लो. ३८-३९ में बताया गया है, उसी को अष्टमंगल कहा गया है। वहाँ आठ-आठ के क्रम से वराटिकाएँ (कौड़ी) निकाली जाती हैं, इसलिए उसे अष्टमंगल कहते हैं।

शरीर के अधोभाग, मध्य भाग एवं ऊर्ध्व.भाग में दक्षिण, मध्य एवं उत्तर भाग की कल्पना कर शरीर मध्य भाग में ग्रह के अनुसार व्याधि (रोग) कहना चाहिए।

राशिचक्र में तीनों स्थानों पर एक या दो या तीन आदि वराटिका बच जाता है, तो सूर्य आदि ग्रह , ध्वज आदि आय, गरुड़ आदि जीव तथा पृथ्वी आदि तत्त्वों की क्रम से कल्पना कर लेनी चाहिए।

एक, दो या तीन आदि शेष होने पर क्रमशः सूर्य, मंगल, गुरु, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्र और राहु आदि ग्रह; ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और काक आय; गरुड़, मार्जार, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, गज और खरगोश जीवों की कल्पना कर लेनी चाहिए।

ध्वज और सिंह का भूमि तत्त्व, गज और वृष का जल तत्त्व, धूम का अग्नि तत्त्व, खर का वायु तत्त्व, श्वान और काक का आकाश तत्त्व बताया गया है।

शेषवश ग्रह, जीवन, तत्त्व आदि स्पष्टार्थ चक्र

शेष	१	२	३	४	५	६	७	८
ग्रह	सूर्य	मंगल	गुरु	बुध	शुक्र	शनि	चन्द्र	राहु
आय	ध्वज	धूम	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	काक
जीव	गरुड़	मार्जार	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक	गज	शश
तत्त्व	भूमि	अग्नि	भूमि	आकाश	जल	वायु	जल	आकाश

ग्रहों से प्राप्त होने वाले फल

अभीष्ट पदार्थ का लाभ, कीर्ति, विजय, राज-सम्मान तथा सभा, जनपद (नगर) एवं गाँव में सुप्रसिद्धि सूर्य से प्राप्त होता है।

चोर, नृप, शस्त्र और अग्नि से भय; स्कन्ध और भैरव (दोनों देवता) से भय; कलह; तथा ज्वर, रक्त, पित्त, सिरपीड़ा और नेत्र रोगों को प्रदान करने वाला होता है।

गुरु, देवता और ब्राह्मणों की कृपा अथवा उनका आशीर्वादार्थ आगमन तथा वस्त्र, स्वर्ण, हाथी, घोड़ा और पुत्र की प्राप्ति गुरु प्रभाव से ही सम्पन्न होता है।

कुत्ता, बैल (सांड) और मृग आदि से भय, भगवान् विष्णु का कोप, चेचक, चर्म रोग और सन्निपात; इनको बुध प्रदान करने वाला होता है।

आभूषण, वस्त्र और शय्या की प्राप्ति; स्त्री सुख, मधुर भोजन तथा खेती, गाय एवं भैंस आदि का लाभ शुक्र द्वारा सम्भव होता है।

वातशूल रोग, दुष्टों से भय, मृत्यु का भय (आशंका) और ग्रह पीड़ा शनि के कारण सम्भव होता है।

गृह-सुख, मन में प्रसन्नता; मित्र और बन्धुओं का साथ, जल में पैदा होने वाली फसल (चावल, जूट आदि), पेय-पदार्थ, अन्न एवं स्त्री की प्राप्ति पूर्ण चन्द्रमा से सम्भव होता है।

कुंष्ठ और खुजली आदि रोग; नेत्र और पैर में होने वाले रोग, विष भय और नीच ज़नों से विरोध राहु से सम्भव होता है।

ध्वजादि आयों से प्राप्त होने वाले फल

ध्वज आय के दर्शन से व्यक्ति को स्वास्थ्य और धन का लाभ; शत्रु का नाश तथा पुत्र की प्राप्ति होती है।

धूम आय के दर्शन से मन में दुःख, भयंकर रोग, शत्रु पीड़ा, निर्धनता, स्थान की च्युति और विवाद जैसा फल मिलता है।

सिंह आय के दर्शन से आरोग्यता, पुत्र का लाभ, मन में प्रसन्नता, धन की प्राप्ति, उच्च जाति के जनों और राजा से सम्मान की प्राप्ति होती है।

श्वान आय के दर्शन से बाहर देश की यात्रा, भय, धन का नाश, रोग, अपमृत्यु और विवाद जैसा फल प्राप्त होता है।

वृष आय के दर्शन से स्त्री की प्राप्ति, पुत्र का लाभ, धन का लाभ, पारिवारिक सुख, आयु और आरोग्य प्राप्ति होती है।

खर आय के दर्शन से शत्रु का आगमन, रोग, स्थान की हानि, धन का नाश, कार्य की हानि और मन में क्लेश होता है।

गज आय के दर्शन से स्त्री का सुख, धन-धान्य की प्राप्ति, मित्र का समागम, सुख और राजा से रत्न आदि का लाभ होता है।

काक आय के दर्शन से स्थानच्युति, सुहृतों का नाश, स्थान हानि, महाभय, प्रिय प्राणी की मृत्यु और अपमृत्यु जैसा भयंकर फल प्राप्त होता है।

सर्पादि जीवों से प्राप्त होने वाले फल

सर्प, मूषक, गज और शश मध्य भाग में और गरुड़, मार्जार, सिंह और श्वान के दक्षिण भाग में होने पर वे मृत्युदायक होते हैं।

इस प्रकार से सर्पादि और गरुड़ादि के साथ स्थित होने पर मार्जार मूषक को खा जाता है तथा चकोर और श्येन आदि (गरुड़ की जाति के पक्षी) सर्प को पकड़ लेते हैं। शश को पकड़ कर या उसके माँस के टुकड़े को लेकर श्वान पृच्छक के घर आता हो, तो इसे मृत्यु का लक्षण प्रकट होना समझना चाहिए।

मध्य भाग में मार्जार आय होने पर बिल्ली प्रश्नकर्त्ता का रास्ता काटती है। इस स्थान में श्वान होने पर कुत्ता या व्याघ्र आदि से भय होता है। वहाँ मूषक होने पर चूहे वस्त्र एवं शय्या आदि को काट डालते हैं। मध्य भाग में काक हो, तो कौआ शरीर का स्पर्श करता है अथवा अचानक उसके ऊपर गिर जाता है। वहाँ खर आय होने पर पशुओं से भय और धूम आय होने पर अग्नि भय होता है।

उपरोक्त सभी लक्षण प्रश्नकर्त्ता को रोग आदि अशुभ फल की सूचना देने वाले होते हैं।

दक्षिण और मध्य भागस्थ ग्रहों का फल

मध्य और दक्षिण भाग में स्थित ग्रहों में से एक ग्रह दूसरे ग्रह का शत्रु हो या दोनों भागों में पाप ग्रह हों तो अशुभ फल समझना चाहिए। यदि दोनों भागों में स्थित पाप ग्रह भी एक दूसरे के मित्र हों तो शुभफल प्रदान करने वाले होते हैं।

पञ्चमहाभूतों का फल

पंचमहाभूतों में पृथ्वी और जल शुभफलदायक तथा अग्नि, वायु और आकाश महाभूत अशुभ फलदायक कहे गए हैं।

यदि मध्य और दक्षिण भागों में से एक में अग्नि और दूसरे भाग में जल हो तो पृच्छक रोगी अथवा उसकी मृत्यु जैसा फल कहना चाहिए।

तिथि आदि साधन विधि

दक्षिण की संख्या को एक स्थानीय (ईकाई), मध्य भाग की संख्या को दशस्थानीय (दहाई) और वाम भाग की संख्या को शतस्थानीय (सैकड़ा) मान कर भविष्यत्, वर्तमान या भूतकालीन फल जानने के लिए उस स्थान की एक, दश

या शतस्थानीय संख्या में ३० से भाग दें और एक आदि शेष होने पर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा आदि तिथियाँ होती हैं।

इसी प्रकार उक्त संख्या में २८ का भाग देने से एक आदि शेष होने पर अश्विनी आदि नक्षत्र, ७ से भाग देने पर एक आदि शेष से रवि आदि वार, १२ से भाग देकर एक आदि शेष होने से मेष आदि राशि, ९ से भाग देकर एक आदि शेष होने पर सूर्य आदि ग्रह और ५ से भाग देकर एक आदि शेष होने पर पृथ्वी आदि तत्त्व जानने चाहिए। दक्षिण भाग में ५ संख्या हो तो उसे ५ मानकर, मध्य भाग में ५ संख्या हो तो ५० मानकर और वाम भाग में ५ संख्या हो तो ५०० मान कर तिथि आदि का साधन करना चाहिए तथा इसी तरह नक्षत्र, वार आदि का ज्ञान भी करना चाहिए।

तिथि आदि फल

उपरोक्त प्रकार से आनीत राशि पृच्छक की अष्टम राशि हो और आनीत नक्षत्र आदि उसके नक्षत्रादि हों तो निश्चित रूप से पृच्छक को अशुभ फल कहना चाहिए।

यदि इन तिथि आदि से मृत्यु और दग्ध आदि योग बनें तो प्रश्नकर्त्ता को विपत्ति कहनी चाहिए और यदि इस प्रकार अमृत आदि योग बनें तो शुभ फल कहना चाहिए।

अष्ट मंगल की शेषित संख्या फल

राशि चक्र में तीन भागों में विभक्त वराटिकाओं में आठ-आठ के क्रम से वराटिकाऐं निकालने पर यदि तीनों स्थानों में सम संख्या हो तो मृत्यु होती है। क्योंकि इन स्थानों में सम संख्या होने पर मंगल, बुध, शनि और राहु ग्रह तथा धूम, श्वान, खर एवं काक आय रहेंगी, जिनका अनिष्ट फल पहले ही कहा गया है।

वाम और मध्य भाग में से किसी एक स्थान पर युग्म संख्या होने पर भयंकर रोग होता है। यहाँ यह विचारणीय है कि 'वाममध्यमयो:' का तात्पर्य वाम और मध्यम भाग में इस प्रकार होता है, किन्तु वाम और मध्य इन दोनों भागों में सम संख्या शेष रहना सम्भव प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि १०८ वराटिकाओं को ३ स्थान पर रखकर उसमें से ८-८ के क्रम से निकालने पर या तो तीनों स्थानों में समसंख्या शेष रहेगी अथवा दो स्थानों में विषम संख्या और एक स्थान में सम संख्या। एक साथ दो स्थानों में सम संख्या और एक स्थान में विषम संख्या शेष रहना सम्भव नहीं है। उपरोक्त अर्थ में इस तरह के दोष को देखकर 'वाम मध्यमयो:' इस शब्द का अर्थ 'वाममध्यमयोरेकस्मिन्' वाम और मध्य भाग में किसी एक भाग में सम संख्या होना स्वीकार करना उचित है।

मध्य भागस्थ संख्या से शुभाशुभ फल

तीन भागों में स्थित वराटिकाओं के मध्य भाग में अवशिष्ट संख्या को पाँच से गुणा करें और आठ का भाग दें।

इस प्रकार यदि शून्य शेष हो तो पृच्छक की मृत्यु होती है।

यहाँ दो शेष हो तो पुत्र की मृत्यु, चार शेष हो तो स्वजनों पर आपत्ति और छ: शेष हो तो स्वयं पृच्छक रोगी होता है।

यदि यहाँ विषम संख्या शेष रहता हो, तो सुख, स्वास्थ्य आदि की वृद्धि सम्भव होता है।

वर्गाक्षरों से अङ्क ज्ञान करने की विधि से शुभ और दिन शब्द क्रमश: ४५ और ८ के द्योतक हैं। किसी भी संख्या को ४५से गुणा कर ८ का भाग देने पर जो शेष बचता है, वही शेष ५ से गुणा कर ८ से भाग देने पर बचता है।

अत: आचार्योक्त प्रकार क्रिया वृद्धिकारक है। वस्तुत: ५ से गुणा करने से क्रिया में सरलता व सहजता की प्राप्ति हो सकती है।

स्पष्ट शनि और जीव की स्थितिवश फल

अष्टमंगल की शेष बची हुई संख्या को तीन स्थान पर रखकर शुक्ल पक्ष होने पर वाम भाग की संख्या को २ से, मध्य भाग की संख्या को ३ से, दक्षिण भाग की संख्या को ४ से गुणा करना चाहिए तथा कृष्ण पक्ष होने पर ३३६ (चलाङ्ग) और ६४८ (दैवत) जोड़ कर ४८ (भुज) का भाग देना चाहिए। एवं शेष को क्रमश: १२ (प्रिय), ३० (नग) और ६० (नत) से गुणा कर के ८४ (वेद) का भाग देने से राशि, अंश कला फल शनि के रूप में प्राप्त होता है।

इस प्रकार आगत स्पष्ट शनि की स्थिति जीव की फल राशि में हो तो पृच्छक की मृत्यु होती है। यहाँ शब्दों का अर्थ कटपयादि पद्धति से किया गया है।

इस प्रकार गुरु द्वारा उपदेशित अष्टमङ्गल को संक्षेप में कहा है। गुरु भक्ति के साथ ईश्वर का ध्यान करते हुए इसका फल बताने से वह निश्चय ही सत्य सिद्ध होता है। यहाँ अष्टमङ्गल से तिथि, वार, नक्षत्र और राशि का फल कहा गया, किन्तु ग्रह और तत्त्व (पंचभूतों) का फल इस क्रम में नहीं कहा गया लेकिन ग्रहों और तत्त्वों का सामान्य शुभाशुभ फल इस ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर कहा गया है।

अत: ग्रन्थकर्त्ता का यह अभिप्राय स्पष्टतया प्रतीत होता कि अष्टमंगल के ग्रह और तत्त्वों का फल अन्यत्र वर्णित फल के तुल्य जानकर फलादेश करना चाहिए।

प्रश्नकालिक आरूढ़ादि राशि

आरूढ़ राशि, प्रश्नलग्न की राशि, प्रश्न लग्ननवांश की राशि, छत्र राशि, स्पृष्टाङ्ग राशि और चन्द्राधिष्ठित राशि; इन छः राशियों का प्रश्न कर्म में चिन्तन करना श्रेष्ठ है।

षड् राशि फल

इस प्रकार इन छः प्रकार की राशियों में शुभ योग और शुभ अवस्था प्राप्त रहने पर आरोग्य आदि शुभ फल की प्राप्ति होती है तथा असद् (पाप) योग और अशुभ अवस्था प्राप्त रहने पर रोग आदि पाप फल मिलता है तथा मिश्रित स्थिति में शुभत्व और अशुभत्व के बलानुसार प्रश्नकर्त्ता को शुभ या अशुभ फल कहना चाहिए; ऐसा प्रश्न शास्त्र में बतलाया गया है।

स्पृष्टाङ्ग राशि फल

आरूढ़ राशि या प्रश्नलग्न के समय प्रश्नकर्त्ता, जिस अंग रूप राशि का स्पर्श करता हो, वह स्पृष्टाङ्ग राशि कहलाती है।

उसके पाप युक्त होने पर उस राशि से सम्बन्धित अंग में रोग या घाव आदि कहना चाहिए।

मेष आदि द्वादश राशियाँ व्यक्ति के शरीर के सिर आदि द्वादश अंगों के रूप में मानी गई हैं। इस प्रकार सिर, मुख, भुजा, हृदय, पेट, कटि, बस्ति, गुप्तांग, जांघ, घुटने, पिंडली, पैर आदि में क्रमश: मेषादि राशियाँ कही गई हैं।

आरूढ़ादि स्वामियों की युति फल

आरूढ़ाधिपति, लग्नाधिपति, चन्द्रमा, सूर्य आदि चारों ग्रह, जिन राशियों में बैठे हों, उनके स्वामी और ये सभी अपनी उच्च राशियों के नवमांश में स्थित होकर बलवान् हों तो प्रश्नकर्त्ता को अवस्था, धन, सन्तान और समृद्धि से परिपूर्ण कहनी चाहिए।

यदि ये ग्रह बलहीन हों तो उसकी अवस्था धन, सन्तान आदि से हीन कहनी चाहिए और यदि वे नीच और शत्रु राशि के नवांश में हों तो अनिष्ट फलदायक अर्थात् दीन, हीन और दरिद्री की अवस्था को पहुँचाने वाले होते हैं।

अन्य अशुभ युति

यदि आरूढ़ाधिपति बलहीन और अष्टमेश बलवान् हो, तो प्रश्न के समय प्रश्नकर्त्ता पर अत्यधिक संकट आता है तथा जब आरूढ़ाधिपति और भाग्येश

बलवान् हों तथा षष्ठेश, अष्टमेश और व्ययेश निर्बल हों तो सब प्रकार के भाग्यवश साधन समुपलब्ध होते हैं।

ग्रहों की अवस्था

ग्रहों के सात प्रकार की अवस्थाऐं होती हैं, जिन्हें अधोलिखित प्रकार कहा गया है, जिनका उल्लेख अन्य ग्रन्थों में भी कहा गया है। ग्रह की अवस्थानुसार पृच्छक की दशा का विचार किया जाता है।

समराशि, मित्रराशि, स्वराशि, मूलत्रिकोणराशि, उच्चराशि, शत्रुराशि और नीचराशि में स्थित ग्रहों की क्रमश: वक्ष्यमाण सात अवस्थाएँ होती हैं। वे अवस्थायें हैं अतिबाल, बाल, कुमार, युवा, भूपति, वृद्ध और मृत; ये सात अवस्थाऐं या दशाएँ पूर्वोक्त भिन्न-भिन्न राशियों या स्थानों में स्थिति के अनुसार कही गई हैं।

अन्य प्रकार से ग्रह अवस्था

सूर्य के साथ अस्त होने के पश्चात् तत्काल उदित हुआ ग्रह अतिबाल और सात दिन तक बाल तथा इसके बाद कुमार होता है। ग्रह की वक्री गति प्रारम्भ होने पर वह युवा और वक्री गति से चलते समय में भूपति होता है। अस्त होने के आसन्न काल सात दिन पहले तक वह वृद्ध और अस्त होने पर मृत अवस्था में होता है। इस पद्धति से मंगल आदि पञ्चतारा ग्रहों की ही दशा का विचार किया जा सकता है। सूर्य और चन्द्र की अवस्थाओं का निर्णय करना इस प्रकार से सम्भव नहीं है। अत: इस पद्धति की अपेक्षा पूर्वोक्त पद्धति श्लो० ८-९ में उपवर्णित का क्षेत्र व्यापक है। अत: यदि आरूढ़, लग्न या छत्र के स्वामी सूर्य अथवा चन्द्र हों तो उपरोक्त पद्धति से दशा का निर्णय करना उचित है।

अवस्था निर्णय और फल

आरूढ़, लग्न और छत्र इन तीनों राशियों के स्वामियों में जो ग्रह बलवान् हो, उसकी उपरोक्त दोनों पद्धति से कही गयी अवस्था के अनुसार प्रश्नकर्त्ता को फल बतलाना चाहिए।

जगत् में अतिबाल (शिशु) आदि की जैसी स्वभाव एवं प्रवृत्ति प्रसिद्ध है, जैसे युवक की युवती के प्रति स्वाभाविक आकर्षण आदि; वैसी ही स्वभाव और प्रवृत्ति पृच्छक की समझनी चाहिए।

शिशु में आकर्षण, बालक में खेलने की प्रवृत्ति, कुमार में पढ़ने की रुचि, पुरुष में स्त्री के प्रति आसक्ति, वृद्ध में कार्य करने की अक्षमता, राजा में

प्रभुत्व और मृत में निश्चेतना, मनुष्य में अवस्थागत ऐसे स्वभाव और प्रवृत्तियाँ निहित होती हैं।

आरूढ़ राशि के उच्च-नीच से मृत्यु

उच्च राशि या उच्च नवांश में जो ग्रह स्थित है, उसके वार में उसकी राशि आरूढ़ हो तो वह भी उच्च कहलाती है और यदि ऐसी स्थिति प्राप्त हो तो प्रश्नकर्त्ता की मृत्यु होती है।

आरूढ़ राशि से रोग

आरूढ़ के सिंह राशि में होने पर कुक्षि और नेत्र रोग, हृदय रोग, उष्णता-दाह आदि रोग होते हैं।

आरूढ के कर्क राशि में होने पर वक्ष, जिह्वा और मुख में रोग, अरुचि तथा जलोदर रोग होते हैं।

आरूढ़ के मंगल की राशि में होने पर सिर और नेत्र रोग, ज्वर, घाव एवं चेचक रोग होते हैं।

आरूढ़ के बुध की राशि में होने पर वायु रोग, नासिका रोग, चर्म विकार आदि होते हैं।

आरूढ़ के गुरु की राशि में होने पर बुद्धि भ्रम, कर्ण रोग आदि सम्भव होते हैं।

आरूढ़ शुक्र के की राशि में होने पर नेत्र रोग, अरुचि और कफज रोग होते हैं।

आरूढ़ के शनि की राशि में होने पर बुद्धि भ्रम, आलस्य एवं वायु विकार होते हैं।

आरूढ़ राशि के राहु से दृष्ट या युक्त होने पर चेचक और खुजली होती है तथा आरूढ़ राशि में पाप ग्रह के होने पर निश्चित ही उपरोक्त रोग होते हैं।

आरूढ़ राशि से मृत्यु

आरूढ़ राशि, लग्न राशि, आरूढ़ नवाश राशि, लग्न नवांश राशि आदि चारों में से किन्हीं दो राशियों के योग से अधिक राशियों का गुलिक या उसकी नवांश राशि के होने पर यह मृत्युदायक होता है। स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्न में आरूढ़ राशि में पाप ग्रह के न होने पर कोई रोग नहीं बतलाना चाहिए तथा अन्य प्रश्नों में भी आरूढ़ राशि में पाप ग्रह होने पर राशि के अनुसार रोग कहना चाहिए।

मेष, मिथुन और सिंह (कलश) राशियों में ईशानकोण से प्रारम्भ कर नीचे के खण्डों की; तुला, धनु और कुम्भ में नैऋत्य कोण से ऊपर के खण्डों; कर्क, वृश्चिक और कन्या (वेदान्त) राशियों में अग्निकोण से तथा शेष राशियों में वायव्य कोण से तिर्यग् गणना करनी चाहिए।

आरूढ़ादि राशिस्थ गण्डान्तराशि से मृत्यु

यदि आरूढ़ राशि, लग्न राशि अथवा आरूढ़ से अष्टम राशि में गण्डान्त कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का अन्तिम नवांश हो और उसमें पाप ग्रह की दृष्टि या स्थिति हो, तो प्रश्नकर्त्ता की मृत्यु होती है।

पंगु व कूप-पतन योग

आरूढ़ राशिस्थ मीन राशि पाप ग्रहों से दृष्ट हो, तो पृच्छक पंगु होता है और आरूढ़ राशिस्थ वृश्चिक या कर्क राशि पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो कुँआ आदि में गिरना बतलाना चाहिए।

वृक्षज्ञानार्थ अन्य योग

पूर्वादि दिशाओं में उपरोक्त विधि से (राशि चक्रवश) आरूढ़ आदि राशियों को लिखना चाहिए और फिर केन्द्र स्थान में बलवान् राशियों के अनुसार उनके वृक्षों का कथन करना चाहिए।

राशियों के स्वामी सूर्यादि ग्रहों के आधार पर क्रमशः पहाड़ी वृक्ष, केला, काँटेदार वृक्ष, बाँस, सीधे पेड़, नारियल वृक्ष और ताल के वृक्षों का समूह बतलना चाहिए।

आरूढ़गत ऊर्ध्वमुखादि राशि फल

आरूढ़ राशि के ऊर्ध्वमुख होने पर वह पृच्छक का अभ्युदय और वृद्धि करती है तथा अधोमुख होने पर विनाश करती है; इस प्रकार 'कृष्णीय' आदि ग्रन्थों में कहा गया है। उनमें 'सूर्यमुक्ताधा ऊर्ध्वाऽधस्तिर्यगानना:' इस श्लोक में सूर्य से मुक्त राशि को ऊर्ध्वमुख, सूर्य से युक्त राशि को अधोमुख और सूर्य से भोग्य राशि को तिर्यक्मुख कहा गया है। यह राशियों के ऊर्ध्वादि संज्ञा जानने का पृथक् विधि है।

यदि प्रश्नकाल में ऊर्ध्वमुख राशि या उसकी होरा हो तो प्रश्नकर्त्ता के अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है। यदि अन्य (अधोमुख एवं तिर्यक्मुख) राशियाँ हों तो कार्य हानि जाननी चाहिए तथा यदि वे अधोमुख एवं तिर्यक्मुख राशियाँ शुभ ग्रहों से युत एवं दृष्ट हों तो शुभफल होता है।

आगे भी आरूढ़ लग्नफल

यदि आरूढ़ लग्न में ऊर्ध्वमुख राशि हो, तो प्रसव, यात्रा, कार्यारम्भ, प्रश्नकर्त्ता की उन्नति, अच्छी मात्रा में धनलाभ, पौरुष, यश एवं स्थान आदि की प्राप्ति होती है।

यदि आरूढ़-लग्न में अधोमुख राशि हो तो धन आदि सभी अभीष्ट वस्तुओं की हानि, मित्रों द्वारा बहिष्कृत और पृच्छक वाहनादि से गिर भी जाता है।

यदि प्रश्नकाल के समय आरूढ़ाधिपति शुभ ग्रहों की राशि में स्थित हो तो प्रश्नकर्त्ता राजभवन या देवमन्दिर आदि सुन्दर व पवित्र स्थान में स्थित होता है। यदि वह (आरूढ़ाधिपति) पापग्रहों की राशि में हो तो पृच्छक म्लेच्छ, चाण्डाल आदि के निवास स्थान में निवास करने वाला होता है।

आरूढ़ाधिपति की शुभ और अशुभ, जिस भी प्रकार के ग्रह से दृष्टि एवं युत हो, उसी प्रकार के अच्छे या बुरे स्त्री, पुरुष आदि प्रश्नकर्त्ता के साथ है, ऐसी कल्पना से कहने चाहिये।

अच्छे स्थान व कार्य सिद्धि योग

यदि लग्न में शुभ ग्रहों का वर्ग या शुभ ग्रहों का योग हो, तो प्रश्नकर्त्ता को अभीष्ट कार्य की सिद्धि और अन्य अच्छे स्थान की प्राप्ति कहनी चाहिए। ऐसा आरूढ़ लग्न से भी विचार करना चाहिए।

द्विपदादि राशिगत लग्न व आरूढ़ फल

यदि द्विपद या चतुष्पद राशि अर्थात् मिथुन, कन्या, तुला, धनु आदि और मेष, वृष, सिंह, मकर आदि राशियों में से कोई राशि लग्न में हो तथा उसमें कोई पाप ग्रह स्थित हो तो अभीष्ट कार्य का नाश और यदि उसमें शुभ ग्रह हो तो अभीष्ट कार्य की वृद्धि करने वाला होता है; ऐसा कहना चाहिए।

स्वर्ण के फल

आरूढ़ पर रखे गए स्वर्ण से भी प्रश्नकर्त्ता का शुभाशुभ फल जानना चाहिए। यद्यपि इस प्रसङ्ग में अन्य ग्रन्थों में बताया गया है, तथापि यहाँ भी कुछ कहा जा रहा है।

जल, गन्ध (चन्दन, सुगन्धी द्रव्य आदि), पुष्प, व्रीहि (धन-धान्य) एवं चावल ये पाँच द्रव्य पंचमहाभूतों के प्रतीक हैं। जीव पंचभूतात्मक शरीरधारी होता है और आरूढ़ पद्धति के अन्तर्गत उपरोक्त विधि से स्वर्ण भी पंच महाभूतों के प्रतीक रूप होता है।

यदि पुष्प और अक्षतों पर सुवर्ण ऊर्ध्वमुख हो तो पृच्छक की दीर्घायुष्य होती है। भूमि के ऊपर लिखे चक्र पर वह तिर्यक् मुख हो तो रखने वाले को बाधा और रोगदायक होता है। स्वर्ण, नायक आदि पुरानी स्वर्णमुद्राओं के नाम हैं। आजकल इस पद्धति को सिक्के से पूर्ण की जा सकती है।

यदि पुष्प और अक्षतों के ऊपर स्थिर किया हुआ स्वर्ण ऊर्ध्वमुख हो तो उसी समय से पृच्छक के पास धन, सुख और यश की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होती है।

यदि पुष्प और अक्षत्तों के ऊपर अधोमुख हो तो वृद्धि से क्षय का प्रारम्भ हो चुका होता है तथा यदि वह अक्षत, पुष्पों के नीचे ऊर्ध्वमुख हो तो उस समय से पूर्व हो चुके क्षय से अब उत्तरोत्तर वृद्धि कहनी चाहिए।

यदि अक्षत, पुष्प आदि सभी के नीचे वह अधोमुख हो तो क्षयित होते हुए आगे चलकर सर्वनाश हो जाता है।

पुष्प और अक्षतों के बीच में स्वर्ण होने पर उपरोक्त रीति से फल की कल्पना कर फलादेश करना चाहिए।

यदि पूर्व आदि चारों दिशाओं में क्रमश: स्वर्ण का प्लवत्व (ढलान) हो, तो यथाक्रमेण दीर्घायु, मृत्यु, निर्धनता और धन की अभिवृद्धि होती है तथा स्वर्ण का अग्निकोण आदि चारों कोणों में प्लवत्व होने पर मृत्यु रोग आदि अनर्थ होते हैं।

गुलिक, चन्द्र, लग्न आदि का फल

यदि गुलिक, चन्द्रमा, लग्न और लग्न का नवांश तथा मृत्यु, देह और प्राण ये सभी चर राशि में हों तो आयु और आरोग्यदायक होते हैं। ये सब स्थिर राशि में हों तो दीर्घकालीन रोगदायक होते हैं एवं यदि गुलिक आदि चारों द्विस्वभाव राशि में तथा प्राण आदि तीनों एक साथ हों तो पृच्छक के लिए मृत्युदायक बतताना चाहिये। ये परस्पर देखते हों तो मोहदायक और परस्पर त्रिकोण (५वें और ९वें) स्थान में हों, तो भयंकर रोगकारक होते हैं।

प्राण और देह का युति व दृष्टि आदि सम्बन्ध आयुवर्द्धक, देह-मृत्यु का युति व दृष्टि आदि सम्बन्ध रोगदायक और प्राण-मृत्यु का युति व दृष्टि आदि सम्बन्ध मोहकारक (मूर्च्छा अथवा मृत्यु) होता है।

क्षीण चन्द्रमा, शनि, मंगल अथवा सूर्य का षड्वर्ग लग्न में होने पर पृच्छक के लिए मृत्यु, व्याधि, धननाश आदि अशुभ फलदायक होता है। यदि वह षड्वर्ग बुध का हो तो बुद्धि और शक्ति (सामर्थ्य) दायक होता है तथा यदि पूर्ण चन्द्रमा, शुक्र या गुरु का षड्वर्ग हो तो आरोग्य, धन और पुत्र लाभ आदि अभीष्ट फलप्रदायक होता है।

लग्न या लग्नेश अश्विन्यादि नक्षत्र की उष्णघटियों में स्थित हो तो पित्त-विकार होता है तथा इन दोनों के विष-द्रेष्काण में होने पर मकान का दाह होता है। नक्षत्र की उष्ण घटी पहले ही लिखे जा चुके हैं।

लग्न नवांश फल

जिस राशि में लग्न का नवांश हो, यदि वह राशि शुभ ग्रह से युक्त हो तो बीता हुआ समय शुभ होता है और उस राशि के पापग्रहों से युक्त होने पर बीता हुआ समय अशुभ होता है।

लग्नादि नवांश में चन्द्रादि फल

यदि लग्न के नवांश की राशि में चन्द्रमा हो, तो लोहे आदि के बर्तन टूटने से और गुलिक के नवांश की राशि में चन्द्रमा होने से मिट्टी के बर्तन फूटने से मृत्यु का लक्षण प्रकट होता है।

मृत्यु, प्राण और देह की राशि में स्थित या उनको देखने वाले ग्रहों के अनुसार उनके कहे गये पदार्थों का लाभ और हानि अथवा शुभ और अशुभ फल पृच्छक को बतलाना चाहिए।

ग्रह पदार्थों का निरूपण बृहज्जातक के संज्ञाध्याय दशाध्यय और कर्मजीवाध्यायों में क्रमशः 'ताम्रसिते०' 'नखदन्ते०' 'तृणकनकोर्णमेषजाद्यै०' इत्यादि श्लोकों में किया गया है। यदि उपरोक्त मृत्यु, प्राण और देह की राशि में स्थित या देखने वाले ग्रह उस राशि के स्वामी नहीं हों, तो उपरोक्त प्रकार से फतादेश करना श्रेष्ठ है।

प्राण, मृत्यु और देह के फल

'लग्नेन्दूमानदानाभ्यां' इत्यादि श्लोक में निरुपित प्राण, मृत्यु और देह का फल अब कहा जा रहा है।

यदि प्राण, मृत्यु और देह, इन तीनों में देह की राशियाँ अधिक हो, तो रोग-शान्ति; प्राण की राशियाँ अधिक हो, तो भयंकर रोग और मृत्यु की राशियाँ अधिक होने पर निधन होता है। यहाँ राशि समान होने पर अंश; अंश समान होने पर कला और कला भी समान होने पर विकला की अधिकता से निर्णय करना चाहिए।

ज्येष्ठा, आश्लेषा और रेवती में तथा पृच्छक के जन्म-नक्षत्र में 'मृत्यु' होने पर निधन होता है। मृत्यु, प्राण और देह; इनके उत्तरोत्तर अधिक होने पर शुभ फल प्राप्त होता है।

लग्न चन्द्र व गुलिक नवांशों का फल

लग्न, चन्द्रमा और गुलिक के नवमांशों (पूर्व में उपवर्णित प्राण, मृत्यु और देह) द्वारा भी उत्तरोत्तर अधिकता के अनुसार कोई आचार्य फल का विचार करते हैं। इसको भी यहाँ लिखते हैं।

लग्न नवांश (प्राण) की गतघटी अधिक होने पर रोग की वृद्धि, चन्द्र नवांश (देह) की गतघटी अधिक होने पर रोग-शान्ति और गुलिक नवांश (मृत्यु) की गतघटी अधिक होने पर निधन बतलाना चाहिए।

मृत्यु और काल या पाप ग्रहों के बीच में स्पष्ट प्राण स्थित हो और उनसे दृष्ट और युत हो तो प्रश्नकर्त्ता का निधन कहना चाहिए। उसका चन्द्रमा के साथ होने पर शुभ फल होता है।

आरूढ़राशि, आरूढ़ाधिपति, लग्नराशि, लग्नेश लग्ननवांश, लग्ननवांशेश, चन्द्रमा और चन्द्रनवांश; इन आठों से मृत्यु और काल के युक्त होने पर निधन होता है।

सूर्येन्दु राहु चक्र फल

लग्न में राहु हो, तो चोर और शत्रु की पीड़ा; सूर्य होने पर मृत्यु और चन्द्रमा होने पर शरीर में रोग होता है; इस प्रकार सूर्येन्दु राहु चक्र का फल होता है।

कालहोरावश प्रश्न का चकित करने योग्य फल

प्रश्नकर्त्ता को चकित कर देने वाला और अपनी वाणी पर विश्वास कराने वाला कालहोरा का फल अब आगे कहा जा रहा है।

जब सूर्य की काल होरा में प्रश्न किया जाता है, तो तात्कालिक भविष्यत्काल में प्रश्नस्थल या प्रश्नकर्त्ता के घर राजा आता है। इसी तरह अन्य ग्रहों की काल होरा में उस-उस ग्रह के अनुसार फल की कल्पना करनी चाहिए।

जैसे—चन्द्रमा की काल होरा में स्त्री का आगमन, मंगल की काल होरा में शस्त्रधारी का आगमन, बुध की काल होरा में विद्वान् का आगमन, गुरु की काल होरा में ब्राह्मण का आगमन, शुक्र की काल होरा में वेश्या का आगमन और शनि की काल होरा में व्यापारी, नौकर या बौद्ध भिक्षु का आगमन होता है, ऐसा कहना चाहिए।

इन काल होरा स्वामी ग्रहों का लग्न से केन्द्र स्थानों में स्थित होने पर निश्चित रूप से उपरोक्त फल व्यक्त करना चाहिए।

चन्द्रनवांशगत ग्रह फल

चन्द्रमा का नवांश जिस किसी राशि का हो, उस राशि में यदि शुभ ग्रह स्थित हो तो भविष्यत्काल में शुभ फल होगा और यदि उस राशि में पापग्रह स्थित हो, तो भविष्यत्काल में अशुभ फल होगा, बताना चाहिए।

उसी तरह चन्द्र नवांशगत राशि में गुरु के होने पर पुत्र प्राप्त होता है। वह गुरु नीच राशि के नवांशगत हो, तो ब्राह्मण से शत्रुता कराता है। उस चन्द्रनवांश राशि में शुक्र वस्त्र, स्त्री का लाभ आदि कराता है तथा बुध वाद-विवाद में विजय दिलाता है।

उस चन्द्रनवांश राशि में पूर्ण चन्द्रमा हो तो सुन्दर वस्तुएं देता है और सूर्य हो तो देवता और राजा को कुपित करता है। मंगल व्यर्थ का विवाद और भूमि का झगड़ा पैदा करता है।

शनि खेती, नौकर, पशु और घोड़ा आदि वाहनों को नष्ट करता है। राहु चाण्डाल से आपत्ति, सिर पीड़ा तथा विष या सर्प का भय देता है तथा केतु प्रेतबाधा और गुलिक उपद्रव पैदा करता है।

उस चन्द्रनवांशगत बुध पापयुक्त हो तो विवाद में पराजय तथा उसमें क्षीण चन्द्रमा स्थित हो, तो प्रश्नकर्त्ता को मानसिक कष्ट देता है।

चन्द्रनवांश फल प्राप्तिकाल

यहाँ चन्द्रमा के नवमांश का फल प्राप्त होने के क्रम में इस बात को भी जानना चाहिए कि चन्द्रमा जिस नवमांश में स्थित होता है, उतने मासों में उपरोक्त फल की प्राप्ति होती है। अर्थात् चन्द्रमा प्रथम नवांश में हो तो एक मास के अन्दर, द्वितीय नवांश में हो तो दो मास में, तृतीय नवांश में हो तो तीन मास में,इत्यादि प्रकार से फल-प्राप्ति का समय निश्चित कर लेना चाहिये।

लग्न के नवांश का शुभाशुभ कहने के लिए भी उपरोक्त विधि से फल प्राप्ति का समय सुनिश्चित करना चाहिए।

चन्द्रमा की षष्टि क्रिया

प्रश्नकालिक षष्टि चन्द्र क्रियाओं के नाम के समान उनके फल प्रश्नकर्त्ता को बताया जाना चाहिए; इस प्रकार आचार्य बृहस्पति ने कहा है। उसे यहाँ लिखा जा रहा है।

मेषादि बारह राशियों में पाँच-पाँच अंश की एक-एक चन्द्र क्रियाकी कल्पना कर सब प्रकार से उनके नाम के सदृश फल कहना चाहिए।

यदि प्रश्नकाल में चन्द्रमा की क्रिया शुभ हो तो शुभ फल और चन्द्रमा अशुभ क्रिया में हो तो फल भी अशुभ होता है।

आयु, विवाह, सन्तान आदि प्रश्नों का फल विचार करने के क्रम में अब तक प्राय: प्रश्नकाल आदि दस प्रकार के विषयों का विवेचन किया गया है।

आयु प्रसङ्ग में विशेष

तात्कालिक उत्पन्न निमित्त, प्रश्नकालिक आरूढ़ लग्न, चन्द्रमा और गुलिक आदि से स्वास्थ्य और रोग-विषयक प्रश्न के प्रकार को ध्यान में रखते हुए सर्वप्रथम प्रश्नकर्त्ता की आयु का विचार करना श्रेष्ठ है।

आयु-निर्णय अनिवार्य विषय

सर्वप्रथम आयु का विचार करना चाहिए उसके पश्चात् ग्रह योग, ग्रह स्थिति एवं उनके अन्यान्य सम्बन्धों आदि के अनुसार जातक लक्षण (फल) कहने चाहिये, क्योंकि आयुरहित जातकों का लक्षणों से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? पूर्वाचार्यों के इन वचनों के अनुसार लग्नेश-अष्टमेश प्रभृति ग्रहों के द्वारा सर्वप्रथम आयु का निश्चय करना दैवज्ञों का कर्त्तव्य है।

अब योगादि का फल कहने से पूर्व विशेष रूप से इस प्रकरण में आयु का विचार करते हैं। प्रश्न स्वस्थ व्यक्ति या रोगी को लक्ष्य कर किया गया है। इस प्रकार का निर्णय ग्रहों के आधार पर करना चाहिए। यही अन्यान्य ग्रन्थों में विवेचित हुआ है।

पृच्छक रोगी या स्वस्थ है?

यदि लग्नेश बलवान् होकर केन्द्र में स्थित हो और वह चर राशि या चर नवांश राशि में हो तो प्रश्न स्वस्थ व्यक्ति के सम्बन्ध में किया गया है, ऐसा कहना चाहिए

यदि निर्बल लग्नेश व्यय या रोग भाव में होकर स्थिर राशि में हो तो प्रश्न महारोग से पीड़ित व्यक्ति के प्रसङ्ग में है, जानना चाहिए।

यदि लग्नेश उपरोक्त मिश्रित या उभय स्थितियों में हो तो समुद्र की ज्वार-भाटा की तरह बार-बार रोग की शान्ति और वृद्धि (उतार-चढ़ाव) कहनी चाहिए।

कोई आचार्य लग्नेश के केन्द्र में स्थित करना, बलवान् होना , चर राशि या चर नवांश में होना आदि चारों को पृथक्-पृथक् स्वस्थ व्यक्ति सम्बन्धी प्रश्न का लक्षण मानते हैं। उसी तरह लग्नेश का व्यय भाव में या रोग भाव में स्थिति, उसका निर्बल होना तथा स्थिर राशि में होना आदि चारों में से किसी एक को ही रोग प्रश्न का सबल लक्षण मानते हैं।

लग्नेश से आयु

यदि लग्नेश उच्च राशि में स्थित हो, तो प्रश्नकर्त्ता धनवान्, बलवान, शत्रुओं को जीतने वाला, बढ़ते हुए तेज प्रभाव वाला और स्वाभिमानी होता है।

यदि लग्नेश मूल त्रिकोण राशि में हो, तो प्रश्नकर्त्ता वस्त्र और आभूषणों से सुशोभित शरीर वाला और सुख सम्पन्न होता है।

यदि लग्नेश मित्र राशि या स्वराशि में हो, तो प्रश्नकर्त्ता शत्रुविहीन और पत्नी, पुत्र, धन, बन्धुओं आदि से आमोद-प्रमोद प्राप्त करने वाला होता है।

यदि लग्नेश शत्रु राशि में हो, तो स्थायी रोग तथा पुत्र, स्त्री और मित्रों का नाश एवं राजा, अग्नि या चोर से पीड़ा होती है।

यदि लग्नेश नीच राशि में हो, तो शत्रु से परेशान होकर परदेश भागना, पैदल घूमना, धन-हानि और दीनता जैसा फल होता है।

यदि लग्नेश अस्तङ्गत और पापयुक्त गुलिक के साथ हो तो प्रश्नकर्त्ता राजा या शत्रु से पीड़ित होकर विदेश चला जाता है अथवा मर जाता है, ऐसा समझना चाहिए।

लग्नेश और अष्टमेश संयुक्त फल

यदि लग्नेश और अष्टमेश दोनों नीच राशि में हों या अस्तंगत हों तो प्रश्नकर्त्ता खिन्न-हृदय, सुख-हीन, सदैव रोगग्रस्त और स्वल्पायु होकर वह शरीर के ऊर्ध्व भाग में होने वाले रोग से पीड़ित तथा किसी तरह अपने पैरों से चलने वाला होता है। इस प्रकार केमद्रुम आदि अशुभ योग हो, तो भी उक्त फल कहना चाहिए।

दीर्घायुष्य सम्बन्धी योगत्रय का

यदि लग्नेश और अष्टमेश किसी भी भाव में साथ-साथ हों अथवा यदि वे दोनों उच्च राशि, स्वराशि या मित्र राशि में हों अथवा यदि लग्नेश, शुक्र और गुरु द्वितीय, पंचम, नवम एवं केन्द्र (१, ४, ७, १०) स्थानों में हों तो निश्चित रूप से दीर्घायु होती है।

स्वस्थ व्यक्ति की मृत्यु के षड्योग

यदि प्रश्नकर्त्ता के नक्षत्र (राशि) से त्रिकोण में गुलिक हो, यदि जन्म लग्न या जन्म-राशि से अष्टम में गुलिक हो, यदि गुलिक, जिस राशि में है, उसका स्वामी अपना नक्षत्रेश हो, यदि नक्षत्रेश अष्टम स्थान में स्थित हो, यदि जन्म नक्षत्र, प्रश्न नक्षत्र और गुलिक नक्षत्र जन्म राशि से अष्टम स्थान में हो तथा इन तीनों नक्षत्रों के स्वामी जन्म राशि से अष्टम में हो, तो इन छः योगों में से किसी एक योग में भी स्वस्थ व्यक्ति की भी मृत्यु होती है।

जातक शास्त्र में आयु निरूपण महत्त्व

इस प्रकार प्रश्नकर्त्ता की आयु का निर्णय करना होराशास्त्र (जातक

ज्योतिष शास्त्र) की आत्मा है और अन्य पुत्र, धन, स्त्री आदि प्रश्नों का फल जानना उसका शरीर है; ऐसा ग्रन्थान्तर में कहा गया है।

ज्योतिष (होरा) शास्त्र में आयु का निरूपण और जीवनगत घटने वाली विभिन्न घटनाओं का फलश्रुति, ये दो प्रयोजन बताये गए हैं। इन दोनों का निरूपण कौन कर सकता है? इस स्थिति में कहा जा सकता है किया तो महर्षि वशिष्ठ अथवा महागुरु बृहस्पति ! अत: मनुष्य की क्या शक्ति है, विशेषकर इस कलियुग में कि वे इसका निरूपण करे।

जीवन की विभिन्न घटनाओं की जानकारी इस जातक शास्त्र का शरीर है, किन्तु आयुर्दाय का ज्ञान इस शरीर की आत्मा है, इस प्रकार विद्वानों ने निरूपित किया है।

आयुपरिज्ञानार्थ पञ्चसाधन

वैसे लग्न, लग्नेश, अष्टम भाव, अष्टमेश और चन्द्रमा प्रश्नकर्त्ता की आयु ज्ञान के साधन हैं। इन पर शुभ दृष्टि, इनकी शुभ युति और बलवत्ता; इनके ये तीन गुण हैं तथा पाप दृष्टि, पापयुति एवं निर्बलता आदि इनके दोष हैं। इस आधार पर आयु का विचार करना चाहिए।

लग्न और अष्टम भाव के गुण-दोष

लग्न की दो पाप ग्रहों के बीच में होना, उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि और उससे पापग्रहों का योग; ये लग्न के तीन दोष हैं तथा दो शुभ ग्रहों के बीच में होना, शुभ ग्रहों का योग—ये तीन उसके गुण हैं। अपने स्वामी की दृष्टि और युति भी उसके गुण होते हैं। इसी तरह अष्टमभाव के दोष और गुण लग्न के उपरोक्त दोष-गुणों के समान ही जानने चाहिए।

लग्नेश के गुण-दोष

वैसे पाप ग्रह योग, पाप ग्रह दृष्टि, पाप ग्रह मध्य स्थिति (पापग्रहों के बीच में रहना), अस्त होना, शत्रु राशि में स्थित होना तथा नीच राशि में स्थित होना, ये लग्नेश के दोष होते हैं। एवं उच्च राशि में स्थिति, स्वराशि में स्थिति, शुभ ग्रहों से योग,शुभ ग्रहों की दृष्टि, शुभ ग्रहों के बीच में स्थिति और वक्र गति; ये लग्नेश के गुण माने जाते हैं।

अष्टमेश के गुण-दोष

उसी तरह अष्टमेश के गुण-दोष लग्नेश के गुण और दोषों के समान होते हैं, किन्तु अपवाद रूप अष्टमेश का केन्द्र स्थान में स्थित होना दोष है और वह लग्नेश का गुण होता है।

चन्द्रमा के गुण-दोष

छठवें, आठवें या बारहवें स्थान में स्थित होना, पाप ग्रह मध्य स्थित होना, पाप ग्रह दृष्टि, पाप ग्रहों के साथ योग होना और लग्न में अपनी नीच राशि में होना—ये चन्द्रमा के दोष होते हैं।

पूर्णत्व, शुभ मध्य स्थिति, शुभ ग्रहों से योग, शुभ ग्रहों की दृष्टि से युक्त, गुरु के साथ केन्द्र में बैठना, स्वराशि में होना और लग्न में उच्च राशिगत गुरु के साथ होना—ये चन्द्रमा के विशेष गुण होते हैं।

तृतीय, एकादश और षष्ठ स्थान में पाप ग्रहों का बैठना दीर्घायु कारक होता है—इस प्रकार वराहमिहिर ने अमितायु योग के प्रसङ्ग में बृहज्जातक के पद्य में उल्लिखित किया है कि—

"गुरुशशिसहिते कुलीरलग्ने
शशितनये भृगुजे च केन्द्रयाते।
भवरिपु सहजोपगैश्च शेषै-
रमितमिहायुरनुक्रमाद्विना स्यात्।। बृ.जा.७।१४

अर्थात् कर्क लग्न में गुरु और चन्द्रमा हों, बुध और शुक्र केन्द्र में हों तथा शेष पाप ग्रह तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थानों में हों, तो अमितायु योग होता है।

सारसंग्रह ग्रन्थानुसार दीर्घायु योग

यदि लग्न में शीर्षोदय राशि हो; वह शुभ ग्रहों से युक्त हो और शेष सभी ग्रहों की उस पर दृष्टि हो तो दीर्घायुकारक योग होता है। इसी तरह अष्टम भाव के साथ अन्य भावों के फल का विचार भी उपरोक्त लक्षणों के अनुसार करना चाहिए।

यदि लग्नेश एवं अष्टमेश बलवान् हो इनमें परस्पर अति मित्रता हो तथा आरूढ़ राशि ऊर्ध्वमुख, समय-जलसमृद्ध हो और वह शीर्षोदयी हो तो दीर्घायु योग बताना चाहिए। जल समृद्धि काल से तात्पर्य है, चन्द्रोदय से ६ घंटे बाद तक जल वृद्धि (समुद्र में ज्वार आना) साथ ही चन्द्रोदय से बारहवें घंटे से १८वें घंटे तक भी जल-वृद्धि होती रहेगी। शेष समय अर्थात् छठे घंटे से १२वें घंटे में व १८वें घंटे से २४वें घंटे तक जल क्षय (भाटा) होने का समय होता है, ऐसा भूगोलविदों का कहना है।

रोगी का मृत्यु योग

इसी प्रकार यदि लग्न में सर्प, कोलाभ एवं गृध्रमुख आदि द्रेष्काण पाप ग्रहों से युक्त हों और चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो तो रोग रहित मनुष्य की भी मृत्यु हो जाती है।

यदि अष्टम स्थान में चन्द्रमा और लग्न में पृष्ठोदय राशि हो तथा पाप ग्रह केन्द्र या अष्टम स्थान में हो तो रोगी मनुष्यों की मृत्यु होती है।

सर्पद्रेष्काण—कर्क राशि का मध्य और अन्त्य; वृश्चिक राशि का प्रथम और मध्य तथा मीन राशि का अन्त्य द्रेष्काण सर्पसंज्ञक है।

कोलाभ द्रेष्काण-कर्क का प्रथम द्रेष्काण है।

पक्षी या गृध्रमुख द्रेष्काण-तुला और मिथुन राशि का मध्य द्रेष्काण तथा कुम्भ व सिंह राशि का प्रथम द्रेष्काण गृध्रानन संज्ञक द्रेष्काण है।

अथवा अन्यमत से सिंह का प्रथम गृध्रमुख या पक्षिसंज्ञक; वृश्चिक का प्रथम और कर्क का मध्य तथा मीन का अन्तिम सर्पसंज्ञक द्रेष्काण है।

आरूढ़ और उदय लग्न की समानता

तत्काल उदित हुई और प्रश्नकर्त्ता की आरूढ़ राशि दोनों को कृष्णीय आदि ग्रन्थों में लग्न कहा गया है। अत: उन दोनों लग्नों से ही फलादेश करना श्रेष्ठ है।

भूमिस्थ स्थिर चक्र (राशिचक्र भी पृच्छक की विभिन्न दिशाओं में स्थिति वश) चलता है और आकाश में चरचक्र (निरन्तर घूमने वाला राशिचक्र) चलता है। अत: प्रश्नकाल में इन दोनों राशि चक्रों से पृच्छक को फल कहना चाहिए।

जिस तरह उदित राशि या लग्न और आरूढ़ राशि से पृच्छक का शुभाशुभ फल कहा जाता है, उसी प्रकार दैवज्ञ का व्यय भाव और आरूढ़ राशि से तथा दूत का आय भाव और आरूढ़ राशि से फल बतलाया जाना चाहिए।

उदय राशि और आरूढ़ राशि में से जो बलवान् हो, उससे प्रश्न के समय पृच्छक को द्वादश भावों का फल कहा जाता है तथा पिता आदि के कारक सूर्य आदि ग्रहों से उनके फल का विचार किया जाता है।

कृष्णीयग्रन्थोक्त लग्न और आरूढ़

उदय राशि और आरूढ़ राशि की प्रधानता के अनुसार प्रश्न दो तरह का होता है। इस प्रकार सूर्योदय काल में काल की प्रधानतावश और आरूढ़ के दुर्ज्ञेय होने से उदय लग्न की प्रधानता होती है। पृच्छक के आगमन पर, पृच्छक के विद्वान् होने पर तथा यात्रा आदि चर या चल कार्यों में दैवज्ञ को उदय लग्न के द्वारा फलादेश करना चाहिए।

प्रश्नकर्त्ता के द्वारा किए जाने वाले कार्य की समाप्ति पर अथवा दिन के समाप्त होने पर अथवा पृच्छक के सो जाने पर रात्रि में अथवा प्रश्नस्थल पर भीड़-

भाड़ होने पर मूक या मुष्टि प्रश्न में अथवा पृच्छक के घर के भीतर अथवा स्थावर के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर इत्यादि सब तरह के प्रश्नों में आरूढ़ राशि से फलादेश करना उचित है।

यहाँ लग्न और आरूढ़ दोनों से फल विचार करते समय उसकी-उसकी छत्रराशि का भी विचार अवश्य करना चाहिए—अब छत्रराशि के प्रसङ्ग में भी कहा जा रहा है।

छत्र राशि कथन

वृष और तुला से चार-चार राशियों जैसे—वृष, मिथुन, कर्क, सिंह और तुला, वृश्चिक, धनु, मकर तथा अन्य मेष, कन्या, कुम्भ, मीन आदि राशियों में सूर्य हो तो क्रमशः मेष, मिथुन और वृष राशि की वीथी होती है।

आरूढ़ से लग्न जितनी संख्या आगे हो वीथी राशि से उतनी संख्या आगे छत्र राशि होती है। इस प्रकार से स्थिर चक्र (भूमि पर निर्मित या कल्पित राशि चक्र) में छत्र राशि का ज्ञान करना चाहिए। चलचक्र (आकाशस्थ राशिचक्र) में लग्न के नवांश की राशि, उसकी छत्रराशि होती है।

जैसे कि सूर्य मिथुन राशि में और कर्क लग्न तथा मकर आरूढ़ राशि है। अतः उपरोक्त रीति से मेष वीथी हुई। यद्यपि आरूढ़ मकर राशि से कर्क लग्न सातवीं संख्या आगे है, इस प्रकार वीथी राशि (मेष) से सातवीं तुला छत्र राशि हुई। छत्र राशि का महत्त्व और उसको जानने की विधि अनुष्ठान पद्धति में भी इसी प्रकार बताया गया है। दक्षिण भारतीय विशेषतः तमिल क्षेत्र में इसका अधिक महत्त्व है। वैसे दक्षिण भारत में इसका अपर नाम 'कविप्पु' है।

राशिचक्र याने क्रान्तिवृत्त के सतत गतिशीत रहने से निरन्तर क्षितिज में उदित हो रही कोई न कोई राशि सदैव लग्न रहती ही है। तथापि आरूढ़ लग्न की आवश्यकता होती है, इसलिए इसकी भी प्रधानता मानी जाती है।

वीथी स्पष्टार्थ चक्र

सूर्याश्रित राशि	वृष	तुला	मेष
	मिथुन	वृश्चिक	कन्या
	कर्क	धनु	कुम्भ
	सिंह	मकर	मीन
वीथी राशि	मेष	मिथुन	वृष

आयु प्रसङ्ग में विशेष

आयु निर्णय के उपकरणों से फल

इन लग्न, लग्नेश, अष्टम भाव, अष्टमेश, चन्द्र आदि पाँच साधनों के दोषरहित और गुणयुक्त होने पर पृच्छक को नीरोगता आदि समस्त सुख के साथ दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। इनके दोषयुक्त और गुणहीन होने पर मृत्यु होती है तथा दोष-गुण मिश्रित होने पर दीर्घकालिक रोग होता है।

दीर्घायुष्य योग

लग्न शरीर और अष्टम स्थान जीव (आत्मा) होता है। इन दोनों के स्वामियों अर्थात् लग्नेश और अष्टमेश के बल तथा परस्पर दृष्टि और युति होने पर पृच्छक की दीर्घायु होती है।

निश्चित दीर्घायु योग

लग्नेश, गुरु और शुक्र में से कोई एक भी आरूढ़ राशि से केन्द्र में स्थित हो तो पृच्छक की आयु के लिए शुभ होता है। अत: इनमें से दो या तीनों ही केन्द्र में हों तो कहना ही क्या है अर्थात् निश्चच ही दीर्घायु होता है।

दीर्घायु और मृत्यु योग

यदि शुभग्रह त्रिकोण, द्वितीय, केन्द्र (१, ४, ७ व १० भाव), एकादश और अष्टम भावों में हों तथा पाप ग्रह तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में हों तो दीर्घायुप्रद होते हैं।

यदि शुभ ग्रह और पापग्रह उपरोक्त स्थानों से भिन्न स्थानों में हों तो मृत्यु या रोगदायक होते हैं तथा अष्टम स्थान में गुलिक गुणयुक्त होने पर भी मृत्यु करता है।

गुलिक के दोषकारकत्व

सभी पापग्रहों में गुलिक अधिक दोषप्रद होता है। गुलिक शनि की युति, दृष्टि और षडवर्ग के प्रभाव से अति दोषकारक हो जाता है।

वराहमिहिरोक्त सद्य:मृत्युकारक योग

वराहमिहिर ने बृहज्जातक के षष्ठाध्याय में सद्य: मृत्युकारक जिन योगों का उल्लेख किया है, उनका संवाद भी विचार करने योग्य है।

अत: प्रसङ्गवश उनमें से कुछ योगों का यहाँ उल्लेख करना अनुचित प्रयास नही होगा—

(१) सन्ध्या के समय चन्द्रमा की होरा हो और पापग्रह नक्षत्र सन्धि या राशि के अन्त में हो।

(२) तीन पापग्रह और चन्द्रमा ये चारों प्रत्येक केन्द्र स्थान में हों।

(३) पापग्रह लग्न और सप्तम में तथा पापयुक्त चन्द्रमा पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि न हो।

(४) क्षीण चन्द्रमा १२वें स्थान में, पापग्रह लग्न और अष्टम में तथा केन्द्र से भिन्न स्थान में शुभ ग्रह हों।

(५) पापयुक्त चन्द्रमा प्रथम, सप्तम, अष्टम अथवा बारहवें स्थान में हो और शुभ ग्रह केन्द्र से भिन्न स्थान में हों, इस प्रकार उपरोक्त सभी मृत्युप्रद योग हैं।

जातक शास्त्र में आयु

गोचर, दशा और प्रश्न शास्त्रीय फल में संवाद अर्थात् मतैक्य होने पर ही संशयरहित शुभाशुभ फल बताना श्रेष्ठ है। इस प्रकार की शास्त्रोक्ति के अनुसार प्रश्न शास्त्र और जातक शास्त्र में इस प्रसङ्ग को समझकर जातक शास्त्र के आधार पर आयु का विचार करते हैं।

आयुष्य भेद

जन्म-जन्मान्तरों में किये गये पूर्वार्जित कर्मों को भोगने के लिए प्राणी का इस लोक में जो जीवन-काल होता है, उसे आयु कहते हैं। उस प्राणी की वह आयु संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण आदि कर्म के प्रभाव से दीर्घ, मध्य, अल्प आदि तीन प्रकार के होते हैं।

पूर्वाजित कर्मों का जो कुछ भी फल होता है, प्रत्येक प्राणी को उसे अवश्य भोगना पड़ता है। किसी भी योग के द्वारा उसे बिना भोगे यह प्राणी नहीं मरता।

योग शब्द निर्वचन

'योग' शब्द का निर्वचन अन्यान्य शास्त्रों में किया गया है। उस योग के स्वरूपों की संख्या (भेद) तथा उसके प्रकार को अब बताये जा रहे हैं।

ग्रहों की स्थिति और उसके भेद से संचितादि कर्मों से उत्पन्न फल (परिणाम), जो प्राणियों को मिलते हैं, उन्हें योग कहते हैं। योग शब्द का संस्कृत में निर्वचन इस प्रकार किया गया है—

"ग्रहस्थितिभेदेन कर्मसमुद्भुवैः फलैः पुरुषान् योजयन्तीति योगाः।'

योग के सात प्रकार

१. स्थानों से, २. भावों से, ३. ग्रहों से, ४.स्थान, भाव और ग्रहों से, ५. स्थान और भाव के योग से, ६. भाव और ग्रह के योग से तथा, ७. स्थान और ग्रह के संयोग से योग सात प्रकार के हो जाते हैं।

उच्च राशि, मूल त्रिकोण राशि, स्वराशि, नीच राशि आदि को ग्रहों का स्थान कहा जाता है। लग्न भाव से प्रारम्भ कर द्वितीय भाव, तृतीय भाव, चतुर्थ भाव, पञ्चमभाव, षष्ठभाव, सप्तमभाव, अष्टमभाव, नवमभाव दशमभाव, एकादश भाव और द्वादशभाव होते हैं; जिनकी क्रम से तनु, धन, सहज, सुहृत्, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय आदि द्वादश संज्ञायें होती हैं तथा सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु आदि नौ ग्रह होते हैं।

भाव, स्थान और ग्रह; इन तीनों या इनमें से किन्हीं दो के द्वारा बनने वाले योग में जो योग के हेतु कारक होते हैं, उनमें से जो बलवान् हो, वह योग का फल प्रदान करता है। ग्रहों की उच्चादि राशियाँ इस प्रकार होती हैं।

ग्रह	स्वराशि	उच्चराशि परमोच्चांश	मूल त्रिकोण	नीच राशि परमनीचांश
सूर्य	सिंह	मेष १०°	सिंह ०°-२०°	तुला
चन्द्र	कर्क	वृष ३°	वृष ३°-३०°	वृश्चिक
मंगल	मेष, वृश्चिक	मकर २८°	मेष ०°-१२°	कर्क
बुध	मिथुन, कन्या	कन्या १५°	कन्या ०°-१५	मीन
गुरु	धनु, मीन	कर्क ५°	धनु ०°-१०°	मकर
शुक्र	वृष, तुला	मीन २७°	तुला ०°-१५°	कन्या
शनि	मकर, कुम्भ	तुला २०°	कुम्भ ०°-२०°	मेष

योगायु और दशायु

योगायु और दशायु भेद से मनुष्यों की आयु के दो प्रकार होते हैं। योगों के द्वारा प्रतिपादित आयु को योगायु तथा दशा द्वारा साधन की गयी आयु को दशायु कहते हैं।

योगायु के भेदों

छः प्रकार के योगों के अनुसार योगायु के भी ६ प्रकार होते हैं। अब उनके नाम कहते हैं—१. सद्योरिष्ट योग, २. अरिष्ट योग, ३. योगारिष्ट योग, ४. मध्य आयु योग, ५. दीर्घायु योग और ६. अमितायु योग, इस प्रकार छः प्रकार की योगायु होती है।

उपरोक्त षड्योगों के आयु वर्ष

एवं सद्योरिष्ट योग एक वर्ष के अन्दर मृत्युदायक होते हैं। अरिष्ट योग १२ वर्ष की आयु के अन्दर मृत्युकारक होते हैं। ये दोनों दशाकाल की अपेक्षा नहीं करते हैं। योगारिष्ट योग ६० वर्ष की आयु तक मृत्यु देते हैं। मध्यमायु योग ७० वर्ष की आयु तक और दीर्घायु योग १०० वर्ष की आयु तक मृत्यु देते हैं। ये तीनों (योगारिष्ट, मध्यमायु और दीर्घायु) योग दशाकाल की अपेक्षा रखते हैं। अमितायु योग होने पर १०० से अधिक वर्षों तक व्यक्ति जीवित रहता है। अमितायु योग में आयुर्दाय विधि की अपेक्षा नहीं रहती है।

उपसंहारात्मक

इस प्रकार सारावली आदि ग्रन्थों से इन उपरोक्त योगों का विस्तार से जानकारी करनी चाहिए। अब पुनः तीन प्रकार के दीर्घायु, मध्यायु और अल्पायु योगों को कहते हैं।

अल्पायु, मध्यमायु और दीर्घायु योग

यदि लग्नेश और जन्म राशि के स्वामी के शत्रु उनके अष्टमेश हों तो अल्पायु होती है। यदि वे परस्पर सम या मित्र हों तो क्रम से मध्यमायु या दीर्घायु होती है।

चन्द्र यदि नवांश से ६४वें नवांश का स्वामी चन्द्र नवांशेश का क्रमशः शत्रु, सम या मित्र हो, तो क्रम से अल्पायु, मध्यमायु और दीर्घायु योग होते हैं अथवा सूर्य का लग्नेश क्रमशः शत्रु, सम या मित्र हो तो क्रम से अल्पायु, मध्यमायु या दीर्घायु योग होते हैं।

आयु वृद्धिकारक गुण

आयु योगों के प्रसङ्ग में बताने के अनन्तर आयुष्य वृद्धिकारक कुछ गुणों को यहाँ लिखा जा रहा है, जो इस प्रकार हैं—

१. लग्न या चन्द्रमा का बलवान् होना।
२. इनके स्वामियों का शुभ ग्रहों के साथ योग होना।
३. इन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि होना।
४. इनकी केन्द्र, त्रिकोण, अष्टम और द्वितीय भाव में स्थित होना।
५. केन्द्र त्रिकोण अष्टम और द्वितीय भाव में शुभ ग्रहों को स्थित होना।
६. तृतीय, षष्ठ और एकादश भाव में पापग्रहों को स्थित होना।

७. विशेष रूप से लग्न में गुरु का स्थित होना।

८. लग्न में गुरु और चन्द्रमा का योग होना।

९. केन्द्र में लग्नेश को स्थित होना।

१०. केन्द्र में जन्मराशीश को स्थित होना।

११. लग्नेश और राशीश का बलवान् होना।

१२. लग्नेश और राशीश का लाभ भाव में स्थित होना।

उपरोक्त आयु वृद्धि कारक गुणों का विचार यहाँ किया गया है।

आयुक्षयकारक योग

१. जन्मलग्न और चन्द्र का बलहीन होना।

२. इन पर पापग्रह की दृष्टि का होना।

३. इनकी पापग्रहों से युति का होना।

४. लग्नेश और राशीश का अस्त होना।

५. इनका ६, ८ या १२वें भाव में स्थित होना।

६. इन दोनों का बलहीन होना।

७. संध्या कालों में सूर्य और चन्द्रमा का दिक् दाह आदि प्राकृतिक कोप का घटित होना।

८. अपशकुनों या अशुभ निमित्तों के समय जातक का जन्म होना।

९. राशियों के मृत्युसंज्ञक अंशों में जैसे—मेषादि राशियों के क्रमशः १, ९,२२, २१, २५, २, ४, २३, १८, ८, २०, २४ और १० अंश मृत्युसंज्ञक होते हैं; उनमें जातक का जन्म होना।

१०. गण्डान्त मीन, मेष, कर्क, सिंह, वृश्चिक और धनु राशियों में से किसी राशि में जन्म होना।

११. मृत्युसंज्ञक अंश में स्थित चन्द्रमा का केन्द्र या अष्टमभाव में स्थित होना।

१२. मृत्युसंज्ञक अंश में स्थित चन्द्रमा का पापग्रहों के साथ केन्द्र या अष्टम में स्थित होना।

मेषादि राशियों में क्रमशः २३, १२, १३, २५, २४, ११, २६, १४, १३, २५, ५ एवं १२वाँ अंश चन्द्रमा का मृत्युसंज्ञक होता है।

१३. ग्रह से दृष्ट चन्द्रमा का छठे या आठवें स्थान में स्थित होना।

१४. वक्री पापग्रहों से दृष्ट शुभ ग्रहों का छठे या आठवें स्थान में स्थित होना।

१५. केन्द्र, त्रिकोण तथा अष्टम स्थान में पापग्रहों का स्थित होना आदि सभी दोष हैं, जो आयु को क्षीण करने वाले कहे जाते हैं।

आयुष्य के गुण-दोष कथन में विशेष

इस प्रकार गुण होने पर दीर्घायु और दोष होने पर अल्पायु समझनी चाहिए।

परन्तु गुण और दोष दोनों का मिश्रण होने पर गुण और दोष की न्यूनता और अधिकता के अनुसार आयुष्य की कल्पना करनी चाहिए।

उपसंहारात्मक कथन

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत प्रश्न शास्त्र और जातक शास्त्र के आधार पर आयु का निर्णय करते हुए रोगियों की मृत्यु का निश्चय होने पर रोग और मृत्युकाल अथवा जीवन का निश्चय होने पर रोग ठीक होने का समय बतलाना उचित है।

लेकिन यदि जीवन और मृत्यु दोनों, मिश्रित स्थिति होने पर संदिग्ध निर्णय हो, तो जैसा उचित हो, वैसा फल बुद्धिमानों को कहना चाहिए।



मरणकाल निरूपण

प्रश्नशास्त्र और जातक शास्त्र के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर मृत्यु सम्बन्धी काल आदि का विचार करना चाहिए। अतएव प्रश्नशास्त्र और जातकशास्त्र, इन दोनों में से प्रथम जातकशास्त्र के अनुसार मृत्यु के समय, रोग और देश का विचार किया जाता है।

पूर्वोक्त योग, दशा, अन्तर्दशा तथा शनि, गुरु, सूर्य, चन्द्र के स्थानवश और लग्न से मरण काल का निश्चय करना चाहिए।

मरणकाल

एवं कुण्डली में योग रहने पर योगों के कहे गए वर्ष की समाप्ति के समय मृत्यु होती है तथा दशा की अपेक्षा रखने वाले योगों के होने की स्थिति में दशा और योगों के समय की एकरूपता का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

तथा कुण्डली में योग न होने की स्थिति में ग्रहों के दोषदायक अग्रलिखित दशापहार और गोचरीय भ्रमणकाल में मनुष्यों की मृत्यु बतलानी चाहिए।

मरणकारक दशान्तर्दशा

जन्म लग्न या जन्म राशि से अष्टम भाव के स्वामी अष्टम स्थान में स्थित हों या जन्म-लग्न और जन्म-राशि को देखते हों तो इन दोनों की दशा व अन्तर्दशा मृत्युकारक होती है एवं शनि और २२वें द्रेष्काण का स्वामी तथा गुलिक स्थित राशि का स्वामी, इन तीनों के नवांश राशियों और राहु, इनमें जो दुर्बल होकर दु:स्थान में बैठा हो और पाप ग्रहों से दृष्ट हो, उसकी दशा-अन्तर्दशा मृत्यु देने वाली होती है।

एक साथ विभिन्न दशाओं की समाप्ति

पापग्रहों की दशा के अन्तर्गत पाप ग्रहों की ही अन्तर्दशा हो तो मृत्यु का चिन्तन करना चाहिए। पहला, तीसरा, पाँचवाँ और सातवाँ अर्थात् जन्म, विपत्, प्रत्यरि एवं वध नक्षत्रों के स्वामियों की दशा का समय भी दोषदायक होता है।

नक्षत्र, कालचक्र आदि दो-तीन दशाओं की एक साथ समाप्ति होने पर भी समय कष्टदायक होता है और सभी दशाओं का समाप्तिकाल भी अशुभ होता है तथा दोषयुक्त ग्रहों की दशा की समाप्ति का समय विशेष रूप से अशुभ होता है।

अष्टमेश की सर्वत्र दुष्ट फल

अष्टमेश आदि होने का दोष सभी दशाओं में समान रूप से जानना चाहिए; किन्तु विपत्, प्रत्यरि, वध नक्षत्रों के स्वामी का दोष केवल नक्षत्र दशाओं (विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी आदि) में ही विचार करना चाहिए।

नीच और अस्त ग्रह की दशा

तथा नीच राशि में स्थित और अस्तंगत ग्रहों की दशा भी मृत्यु देने वाली होती है। अब आगे कालचक्र दशा को विशेष रूप से कहा जा रहा है।

कालचक्र दशा

मीन से वृश्चिक, कन्या से कर्क, सिंह से मिथुन या मिथुन से सिंह और धनु से मेष की ओर गमन करना (दशाक्रम देखना चाहिए) कष्टदायक होता है। इन दशाओं का प्रवेश का समय (सन्धि काल) और उत्तरवर्ती दशा भी कष्टप्रद होती है।

अनुलोम या प्रतिलोम राशि क्रम का अतिक्रमण न करते हुए चार (संचार) शुभदायक होता है और राश्यन्तर स्थित चार भी शुभदायक होता है। इस प्रकार यहाँ गुरु की दशा के पश्चात् मंगल की दशा और उनकी सन्धियाँ अशुभ होती हैं। इसी प्रकार बुध की दशा के बाद चन्द्र दशा और उनकी सन्धि; सूर्य की दशा के बाद बुध की दशा और उनकी सन्धि; बुध दशा के बाद सूर्य की दशा और उनकी सन्धि तथा गुरु की दशा के बाद मंगल की दशा और उनकी सन्धि अशुभ होती है जिसे राशियों के द्वारा अभिव्यक्त किया है।

वाक्योक्त दक्षिण ताराओं (दक्षिण नक्षत्रों) में प्रथम राशि देह और अन्तिम राशि जीव होती है तथा वाम ताराओं (वाम नक्षत्रों) में प्रथम जीव और अन्तिम राशि देह होती है।

दक्षिण और वाम नक्षत्रज्ञापक चक्र

दक्षिण नक्षत्र	अश्विनी भरणी कृत्तिका	पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा	हस्त चित्रा स्वाती	मूल पू.षा. उ.षा.	पू.भा. उ.भा. रेवती
वाम नक्षत्र	रोहिणी मृगशिरा आर्द्रा	मघा पू.फा. उ.फा.	विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा	श्रवण धनिष्ठा शतभिषा	

देह और जीव राशियों के स्वामियों में से एक ग्रह के पापयुक्त होने पर उसकी दशा रोगदायक होती है तथा इन दोनों के पापयुक्त होने पर इनकी दशा मृत्युदायक या निश्चित ही अशुभ होती है। कालचक्र दशा पद्धति का अभ्यास पाराशरहोरा, जातक पारिजात आदि से करना चाहिए।

शनिगोचर से मृत्यु

शनि के क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पर्याय (भगण या द्वादश राशियों के क्रम का भोग) होने पर से क्रमशः अल्पायु, मध्यमायु और दीर्घायु वाले लोगों की मृत्यु समझनी चाहिए तथा इसके चतुर्थ पर्याय (भगण या राशिचक्र के भोग) के पश्चात् मितायु वालों की मृत्यु होती है। शनि के एक पर्याय की पूर्ति ३० वर्ष में होती है। सामान्यतया शनि २ वर्ष ६ मास में एक राशि का भोग करता है। अतः जन्म के समय शनि जिस राशि में स्थित है, उससे प्रारम्भ कर १२ राशियों के एक पर्याय (चक्र) की पूर्ति ३० वर्ष में करता है। अर्थात् अल्पायु वालों की ३० वर्ष में, मध्यमायु वालों की ६० वर्ष में और दीर्घायु वालों की ७० वर्ष में मृत्यु होती है और अमितायु वालों की मृत्यु १२० वर्ष में हो जाती है।

गुलिक से मरण काल

गुलिक की राशि या उसकी नवांश राशि से त्रिकोण (पंचम तथा नवम स्थान) में शनि के होने पर रात्रि के समय या रात्रिसंज्ञक राशि में पैदा हुए व्यक्तियों की मृत्यु होती है तथा यदि गुलिक की राशि या नवमांश राशि से सप्तम और त्रिकोण में शनि हो, तो दिन के समय या दिनसंज्ञक राशि में पैदा हुए लोगों की मृत्यु कहनी चाहिए।

शनि का मारक गोचर

यदि शनि और अष्टमेश के नवांश की राशि से त्रिकोण में स्थित शनि मृत्यु करने वाला होता है। सूर्य अधिष्ठित राशि से द्वितीय और द्वादश स्थान या त्रिकोण स्थान में स्थित शनि भी मृत्यु कारण होता है।

जन्म समय के द्रेष्काण से २२वाँ द्रेष्काण; जिस राशि में स्थित हो, तो उससे त्रिकोण (पंचम एवं नवम स्थान) में स्थित शनि भी मनुष्यों की मृत्यु का कारण होता है।

गुरु का मृत्युकारक गोचर

लग्न के द्रेष्काण का स्वामी; जिस राशि में हो, उससे त्रिकोण में गुरु की स्थितिवश अथवा कालहोरा का स्वामी, जिस राशि में हो, उससे त्रिकोण में गुरु की स्थितिवश मनुष्यों की मृत्यु कहनी चाहिए।

जो राशि शनि से आक्रान्त हो, उसके धन या व्यय भाव से त्रिकोण में स्थित गुरु मनुष्यों के लिए मृत्युदायक होता है।

लग्नेश और अष्टमेश के योग के साथ उसी राशि में स्थित गुरु और पाप ग्रह अर्थात् सूर्य, मंगल, शनि, राहु तथा केतु मनुष्यों को मृत्युदायक होते हैं।

शनि, जिस राशि पर आरूढ़ हो, उससे तृतीय, एकादश, पंचम और षष्ठ स्थानों में से जिस स्थान पर गुरु की न्यूनतम दृष्टि हो, उस स्थान पर गोचर क्रम से गुरु संचार करता हो तो मृत्युदायक होता है।

मृत्युकारक सूर्यचार

अष्टमेश जिस राशि में स्थित हो, उस राशि पर सूर्य की स्थितिवश अथवा जन्म नक्षत्र या लग्नस्थ नक्षत्र पर सूर्य की स्थितिवश मृत्यु होती है।

अनुष्ठान पद्धति के अनुसार

जन्मकाल में सूर्य चर राशि में स्थित हो, तो सूर्य के द्वादशांश की राशि से त्रिकोण में चर क्रम से सूर्य के जाने पर मृत्यु होती है। यदि सूर्य स्थिर राशि में हो तो अष्टमेश के नवमांशेश की राशि (जिसमें वह स्थित हो) से त्रिकोण में गोचर से सूर्य के पहुँचने पर मृत्यु होती है। यदि जन्म काल में सूर्य द्विस्वभाव राशि में अवस्थित हो और फिर लग्नेश जिस नवांश में स्थित हो, उस राशि में या उससे त्रिकोण में सूर्य स्थितिवश मृत्यु कहनी चाहिए।

चन्द्र मारक गोचर

यदि सूर्य जिस राशि में स्थित हो, उसमें या अष्टमेश जिस राशि में हो, उससे त्रिकोण में या राहु जिस नक्षत्र पर हो, उससे त्रिकोण नक्षत्र में अथवा अष्टमेशाधिष्ठित नक्षत्र में चन्द्रमा की स्थितिवश मनुष्यों की मृत्यु कहनी चाहिए। परस्पर नौ-नौ के अन्तर पर पड़ने वाले नक्षत्र त्रिकोण-नक्षत्र होते हैं। जैसे— अश्विनी, मघा और मूल परस्पर त्रिकोण-नक्षत्र हैं अर्थात् प्रत्येक दशवाँ व उन्नीसवाँ नक्षत्र भी त्रिकोण होता है।

धनेश, जिस राशि में स्थित हो, उससे या उसकी सप्तम राशि से त्रिकोण में अथवा धनेश के नवांशेश की राशि में चन्द्रमा की स्थितिवश मृत्यु होती है।

अपने जन्म काल में जिस राशि में गुलिक हो; उस राशि में चन्द्रमा के संचार करने पर रोगारम्भ और उससे सप्तम राशि में चन्द्रमा के चारवश निश्चित रूप से मृत्यु समझनी चाहिए।

ग्रन्थान्तरोक्त प्रमाण गुलिक कथन

प्रमाण गुलिक का आनयन और उसके अनुसार शनि एवं गुरु की तथा सूर्य एवं चन्द्र के मृत्यु काल सम्बन्धित स्थिति अन्य ग्रन्थों में जिस तरह कही गई है, उसी तरह उसे कहते हैं।

प्रमाण गुलिक आनयन

जन्मकालिक स्पष्ट गुलिक में ६ राशियाँ (१८०°) जोड़ने से प्रमाण गुलिक होता है। रात्रि में उत्पन्न जातक का यह १८०° युक्त गुलिक प्राग्दिनगुलिक अर्थात् विगत दिन का गुलिक होता है। दिन में उत्पन्न जातक का यह गुलिक विगत रात्रि का गुलिक होता है। यही गतनिशा व प्राग्दिन गुलिक प्रमाण गुलिक कहलाता है। उस गुलिक की राशि के स्वामी ग्रह की राशि में केवल शनि ही मृत्युदायक नहीं होता, अपितु उसके नवमांशेश की राशि में गुरु, द्वादशांशेश की राशि में सूर्य और त्रिंशांश की राशि में चन्द्रमा भी मृत्युदायक होता है।

उपरोक्त शनि, गुरु, सूर्य व चन्द्रमा के मारक गोचर का निरुपण किया गया है। प्रमाण गुलिक का आनयन कर देखना चाहिए कि वह किस राशि में पड़ रहा है। उस प्रमाणगुलिक की राशि के स्वामी ग्रह की राशि या राशियों (गृह) में जब शनि का संचरण होता है, तो मारक होता है। अब प्रमाणगुलिकेश का अधिष्ठित नवांश को लेना चाहिए क्योंकि इन नवांशेशों की अपनी राशियों में जब गुरु संचरण करता है, तो मारक होता है।

इसी तरह प्रमाणगुलिकेश की द्वादशांश राशि के स्वामी ग्रह की राशियों में सूर्य का संचरण व इस गुलिकेश की त्रिंशांश राशि के स्वामी की राशियों में चन्द्रमा का संचार मारक होता है। अथवा गुरु, शनि, सूर्य व चन्द्रमा के अपने-अपने अष्टक वर्गों में अल्प रेखा वाली राशियों की सूची बना कर वहाँ स्थित चार रेखाओं से कम रेखाएँ उत्तरोत्तर प्रबल अशुभ होती हैं। इन अल्परेखा या रेखाहीन राशियों में जब इन ग्रहों का संचार हो, तो मारक होता है, यहाँ ध्यातव्य है कि गुरु के अष्टक वर्ग में अल्परेखा राशियों में उसका गोचर, शन्यष्टक की अल्पबली रेखाओं में शनि का संचार आदि प्रकार से मारक समय का चिन्तन करना चाहिए।

प्रकारान्तर से मारक गोचर

शनि तथा इसके द्रेष्काणेश, नवांशेश और द्वादशांशेश से भिन्न-भिन्न सूर्य युक्त हो, तो योगकारक राशि से सप्तम राशि या त्रिकोण राशि में चन्द्रमा, सूर्य, गुरु और शनि के होने पर अथवा शनि, गुरु, सूर्य व चन्द्रमा के स्पष्ट अंशादिकों (राशिरहित) के योग तुल्य राशि में या इस योग में स्थित नवांशराशि में इनका संचार होने पर मृत्यु कहनी चाहिए। इनको अपने गतांशों से गुणा कर संवाद (विभिन्न प्रकार में एकरूपता) में सामञ्जस्य का भी विचार कर लेना चाहिए।

समस्त ग्रह मृत्युकालिक स्थिति

यहाँ स्पष्ट ग्रह को दो स्थानों में रखें और एक स्थान में मेषादि से जितने

नवांश व्यतीत हो चुके हों, उस संख्या से (राशि अंश कला का सम्पूर्ण नवांश संख्या बनते हों तो कला बनाकर) गुणा करना चाहिए, तथा दूसरे स्थान में वर्तमान नवमांश की जितनी गत कला हों, उनकी संख्या से गुणा करना चाहिए। फिर दोनों जगह २०० (आनख) से भाग देना चाहिए। इस प्रकार प्रथम स्थान की राशि आदि लब्धि में दूसरे स्थान की कला आदि लब्धि जोड़ देनां चाहिए। यदि राशि संख्या अधिक हो तो १२ से भाग दें। इस प्रकार से प्राप्त स्पष्ट राशि में उपरोक्त ग्रह हों तो मृत्युदायक होते हैं।

अष्टकवर्ग से मृत्यु काल

लग्न से अष्टम राशि, अष्टमेश की अधिष्ठित राशि, लग्नेश की राशि और लग्न नवांश की राशि से अष्टम राशि; इन चारों राशियों में या इनसे त्रिकोण स्थित राशियों में से एक के भी लग्न में होने पर मृत्यु कहनी चाहिए।

अथवा लग्न के नवांश की राशि अथवा लग्नेश की अधिष्ठित राशि से चौथी राशि लग्न में स्थित हो, तो मनुष्यों की मृत्यु समझनी चाहिए।

इस प्रकार दो या तीन तरह से एकमत (संवाद) हो, तो उस राशि के लग्न में मृत्यु होगा, ऐसा स्पष्ट रूप से फलादेश करना श्रेष्ठ है।

ग्रन्थान्तरों में अनेक लक्षणों तथा शनि आदि ग्रहों का प्रतिपादन किया गया है। सभी ग्रहों के अनुसार स्पष्ट रूप से अनेक तरह से परस्पर मतैक्य देखकर मृत्यु के समय उनकी स्थिति का निश्चय करना चाहिए।

प्रश्नकुण्डली से मृत्युकाल

प्रश्नशास्त्र से भी मृत्युकाल का विचार कर फलादेश करना चाहिए। इसके बाद मृत्युकालीन शनि, गुरु, सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति तथा लग्न आदि को कहते हैं।

प्रश्न से मारक गोचर

प्रश्नकालिक गुलिक के नवांश की राशि में स्थित शनि, लग्न के नवांश की राशि में स्थित गुरु, आरूढ़ राशि में स्थित सूर्य और गुलिक की राशि में स्थित चन्द्रमा; इनमें परस्पर मतैक्य (संवाद) होने पर ये पृच्छक को मृत्युदायक होते हैं।

दूत द्वारा कथित वाक्य के अन्तिम वर्ण से प्राप्त राशि में शनि, गुरु, सूर्य एवं चन्द्रमा में से अत्यधिक दोषदायक किसी एक ग्रह के होने पर उस राशि के लग्न में मृत्यु कहनी चाहिए।

अन्तिम अक्षर से लग्न ज्ञान

आ, ई, ऊ और 'अच्' अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ

बारह स्वर तथा कवर्ग आदि वर्गों के प्रथम और अन्तिम वर्ण अर्थात् क, ङ, च, ञ, ट, ण, त, न, प, म, इन में य और र मिलाकर ये बारह वर्ण क्रमशः मेषादि राशियों के माने जाते हैं। शेष वर्ण मेष आदि छः राशियों में होते हैं।

उदाहरणार्थ—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ऌ,, ए, ऐ, ओ, औ ये १२ स्वर तथा क, ङ, च, ञ, ट, ण, त, न, प, म, य, र ये १२ व्यञ्जन हैं। ये सभी मेषादि राशियों में होते हैं। जैसे—अ तथा क मेष में, आ तथा ङ वृष में औ तथा र मीन में। शेष ल, व आदि वर्ण मेष से कन्या तक छः राशि में होते हैं।

रोग वृद्धि और मृत्यु

प्रश्न लग्न के नवांश की राशि में चन्द्रमा स्थित हो और यदि पृच्छक के रोग की वृद्धि होती हो, तो प्रश्नकालीन चन्द्राधिष्ठित नवांश की राशि में मूर्च्छा तथा गुलिक के नवांश की राशि में चन्द्रमा की स्थितिवश मरण होता है।

यदि प्रश्न के समय चन्द्राधिष्ठित नवांश की राशि और गुलिकाधिष्ठित नवांश की राशि एक ही राशि हो तो उसमें चन्द्रमा की स्थितिवश मूर्च्छा आने पर सूर्य और गुलिक के नवांश राशि में चन्द्रमा की स्थिति में मृत्यु होती है।

पूर्व साधित प्राण, देह और मृत्यु तीनों का स्फुट साधन कर उसमें स्फुट यमकण्टक जोड़ने से जो नक्षत्र आता हो, उसमें चन्द्रमा की स्थितिवश मृत्यु होती है। यमघण्टक या यमकण्टक समानार्थी हैं। दिन में जन्म हो तो दिनमान को व रात्रि में जन्म होने पर रात्रिमान को ८ से भाग देना चाहिए। लब्धि को जन्मवार के गुणक से गुणा करने पर 'यमकण्टकेष्टकाल' होगा। इस इष्टकाल के गुणक वारानुसार इस प्रकार कहे गये हैं—

	वार	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
गुणक	दिन	५	४	३	२	१	७	६
	रात्रि	१	७	६	५	४	३	२

गुलिक नक्षत्रसे त्रिकोण नक्षत्र में स्थित सूर्य व अष्टमेश की राशि में स्थित सूर्य मृत्यु देने वाला होता है तथा गुलिक का नक्षत्र भी मृत्यु देने वाला होता है। दसवां व उन्नीसवाँ नक्षत्र पूर्वोक्त त्रिकोण होता है।

त्रिस्फुट के नक्षत्र से आश्लेषा, ज्येष्ठा एवं रेवती नक्षत्र जितनी संख्या आगे हों, उतने वर्ष, मास, दिन एवं घटियों में मृत्यु कहनी चाहिए। लग्न का नवांशेश लग्नेश का अधिमित्र होने पर उतने वर्ष में, मित्र होने पर उतने मास

में, शत्रु होने पर उतने दिनों और अधिशत्रु होने पर उतनी घटियों में मृत्यु कहनी चाहिए।

लग्न और चन्द्रमा; इन दोनों में जो बलवान् हो, उसके नवांश की भोग्य घटियों के तुल्य दिन, मास या वर्ष में दोषाधिक्य और दोषाल्पता के अनुसार मृत्यु बतलानी चाहिए।

यदि लग्न का नवांशेश शत्रु, सम या मित्र हो, तो लग्न के नवमांश के भोग्य पल तुल्य दिन, मास या वर्ष में मृत्यु कहनी चाहिए।

उपरोक्त की तरह लग्न नवांशेश लग्नेश का शत्रु, सम, या मित्र हो तो मृत्यु देने वाला और नवांश के भोग्यपल भी मृत्युदायक होते हैं।

अनुष्ठान पद्धति में मृत्यु योग

शनि आदि पापग्रह, सर्पद्रेष्काण, गुलिक एवं त्रिस्फुट आदि में से मृत्यु प्रदायक लग्न के नवांश से जितने नवांश आगे हों, उस समय कष्ट की अधिकता और अल्पता के अनुसार उतने दिन, मास या वर्ष में मृत्यु बतलानी चाहिए।

मृत्युयोग

सर्प, मृत्यु, गुलिक आदि कष्टदायक ग्रह, जिस राशि में स्थित हों, उससे त्रिकोण स्थित राशि में चन्द्र, सूर्य, गुरु और शनि में से किसी एक कष्टदायक ग्रह की स्थिति हो और यदि प्रश्न के समय मृत्युदायक कोई निमित्त अथवा शकुन भी हुआ हो, तो उस समय मृत्यु के प्रसङ्ग में विचार करना चाहिए।

मृत्युप्रद योग

लग्नेश और आरूढ़ का स्वामी, इन दोनों में से जो अधिक बलवान् हो उसकी राशि, नक्षत्र, द्रेष्काण और नवांश से वृक्ष गिरना आदि अशुभ निमित्तकालिक लग्न की राशि, नक्षत्र, द्रेष्काण एवं नवांश पर्यन्त गणना करनी चाहिए अथवा गुलिकाधिष्ठित राशि तक गणना करनी चाहिए। इस प्रकार गणना से प्राप्त संख्या के समतुल्य दिनों की आदि में मृत्यु कहनी चाहिए।

मृत्युप्रद अन्य योग

आरूढ़ और लग्न से अष्टम राशि और इनसे सम्बन्धित अष्टमेशों की आश्रित राशि और मर्वाष्टक वर्ग में अल्प रेखायुक्त राशि लग्न में हो, तो मृत्यु कहनी चाहिए।

यहाँ उत्तरार्द्ध में अष्टक वर्ग आदि विषय के होने के कारण यह जातक शास्त्र का विषय है। गुलिक दिन संज्ञक राशि में हो तो रात्रि में और रात्रि

संज्ञक राशि में हो तो दिन में मृत्यु होती है, वैसे यह उपरोक्त प्रश्न से भी विचार योग्य है।

पुनः मृत्युप्रद अन्य योग

लग्न से बारहवें, पहले और आठवें स्थान में सूर्य, मंगल, शनि, गुरु आदि सभी ग्रह क्रम से धननाश, प्रवास, रोग और भय को उत्पन्न करने वाले होते हैं।

जन्म लग्न से आठवें स्थान में चन्द्रमा, सातवें स्थान में बुध और मंगल, बारहवें स्थान में सूर्य, छठे स्थान में शुक्र, तीसरे गुरु और लग्न में राहु, केतु एवं शनैश्चर प्राणों का सन्देह उत्पन्न करने वाले होते हैं; इसमें संशय नहीं करना चाहिए।

लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम और व्यय भावों में क्रूर ग्रह जलती हुई अग्नि के सदृश प्रज्वलित हो जाते हैं।

चतुर्थ स्थान, अष्टम स्थान और व्यय स्थान में चन्द्र सदैव अनिष्टकारक होता है।

गोचर वश जन्म के दिन यदि चन्द्रमा जन्म लग्न की राशि में या जन्म कालिक चन्द्रराशि में ही संचार करे, तो अशुभ होता है। इसे किसी ने गर्भ योग माना है।

इस प्रकार विभिन्न पद्धतियों में मतैक्य का अनुभव कर और ग्रहों की स्थिति का निश्चय करें और तो ही मृत्यु का समय बताना चाहिए।



अष्टमस्थ ग्रहजन्य मृत्यु कारण

जन्म लग्न से अष्टम स्थान में सूर्य आदि ग्रह हों तो क्रमशः अग्नि, जल, शस्त्र, ज्वर, अज्ञात रोग (जिसका निदान नहीं हो सके) तृषा या प्रमेह, क्षुधाजन्य रोगों से मृत्यु हो जाती है।

जन्म लग्न से अष्टम स्थानस्थ ग्रहजन्य रोग ज्ञापक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
रोग	प्रदाह तृषा जलन	जलोदर एवं शरीर के अंगों में जल भरने का रोग	शस्त्र से चोट लगना, जलना, कटना,	ज्वर	जिनका निदान न हो ऐसे जटिल रोग,	तृषा, प्रमेह, गुप्त रोग	क्षुधा रोग, सूखा रोग, कमजोरी

अष्टमद्रष्टा ग्रह और मृत्यु निमित्त

यदि सूर्य आदि ग्रह जन्म लग्न से अष्टम भाव को देखते हों तो उनकी अस्थि आदि धातुओं में विकार उत्पन्न होने से या उनके पित्तादि में उत्पन्न विकारों से अथवा उपरोक्त प्रदाह आदि रोगों से मृत्यु होती है।

एवं सूर्य आदि सात ग्रहों की धातु क्रमशः हड्डी, रक्त, मज्जा, त्वचा (चमड़ी), वसा (मांस), वीर्य और स्नायु (नसें) कही गयी है।

ग्रह त्रिधातु

सूर्य का पित्त, चन्द्रमा के वात और कफ, मंगल का पित्त, बुध का त्रिदोष (पित्त-कफ-वात) गुरु का कफ, शुक्र के कफ और वात तथा शनि का वातदोष कहा गया है।

ग्रह और उनकी धातु ज्ञापक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
धातु	हड्डी	रक्त	मज्जा	त्वचा	वसा	वीर्य	स्नायु
त्रिधातु	पित्त	कफ वात	पित्त	त्रिधातु	कफ	कफ वात	वात

कालपुरुष के अङ्गों में रोग

जन्म लग्न से अष्टम राशि अथवा अष्टम स्थान को देखने वाला ग्रह काल पुरुष के जिस अङ्ग की राशि में हो, व्यक्ति के शरीर के उस अङ्ग में रोग उत्पन्न होता है। काल पुरुष का अंग-विभाग इस ग्रन्थ के अध्याय ८/३ में कहा जा चुका है।

खरद्रेष्काण से मृत्यु

अष्टम स्थान में ग्रह योग या उस पर ग्रहों की दृष्टि का अभाव होने पर अष्टमेश या खरसंज्ञक २२वें द्रेष्काण का स्वामी अपने (धातु-त्रिदोष) एवं दाह आदि रोग रूप गुणों से मृत्युप्रद होते हैं। हड्डी आदि धातु व पित्त आदि त्रिदोष और दाह आदि रोग ग्रहों के गुण कहे गये हैं।

धातु विकार से मृत्यु

जब शनैश्चर सूर्य आदि ग्रहों से युक्त हो, तब उन सूर्य आदि ग्रहों की कही हुई धातु विकृति रूप रोग से मनुष्य की मृत्यु होती है।

ग्रह दृष्ट शनि के रोग

यदि सूर्य या मंगल शनि को देखता हो, तो दाहिने अंग में रक्तविकार या व्रण होता है। चन्द्रमा उसे देखता हो तो अतिसार (पेचिश), बुध देखता हो तो कम्प (कम्पवात), गुरु देखता हो तो पैरों में सूजन और दाहिने पैर में दर्द, शुक्र देखता हो तो क्षय (तपेदिक) और शोक तथा कोई न देखता हो तो कास (खाँसी) और श्वास (दमा) आदि रोग होते हैं। उसे राहु देखता हो तो जोड़ों में विकार, गुलिक देखता हो तो उन्माद (पागलपन) और शनि को यम कण्टक देखता हो तो दीर्घकालीन मूर्च्छा कहनी चाहिए।

यदि अर्द्धप्रहर से शनि युक्त हो, तो व्रण आदि होते हैं और शनि काल से दृष्ट हो तो घूमते-फिरते मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। अध्याय १० ४३ में यमकण्टक साधन बताया गया है। उसी पद्धति से गुणकों से गुणा कर लग्नवत् इनका साधन करना चाहिए।

गुणक वारक्रम से ये इस प्रकार हैं—

	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि		
अर्धप्रहर	४-७	३-६	२-५	१-४	७-३	६-२	५-१	दिन	रात्रि
काल	१-४	७-३	६-२	५-१	४-७	३-६	२-५	दिन	रात्रि

सौख्ययुक्त और अकाल मृत्यु

यहाँ गुलिकाधिष्ठित या आरुढ़ाश्रित नवांश राशि से सप्तम स्थान में शुभ ग्रह के होने पर सुखपूर्वक अर्थात् स्वाभाविक रूप से या बिना कष्ट की मृत्यु प्राप्त होती है और यदि उस स्थान में पापग्रह हों तो दुर्घटनापूर्वक मृत्यु होती है। जिस प्रकार उस स्थान में सूर्य हो तो राजकोप या राजदण्ड से, क्षीण चन्द्रमा हो तो जल में डूबने से, मंगल हो तो युद्ध में, शनि हो तो धोखे से और राहु हो तो साँप के डँसने से या जहर के स्पर्श करने से मृत्यु होती है।

ज्वरादि रोगों से मृत्यु

यदि सूर्य के द्रेष्काण में शनि हो तो ज्वर से, चन्द्रमा के द्रेष्काण में शनि हो तो जलोदर आदि रोग से, मंगल के द्रेष्काण में शनि हो तो फोड़ा-फुन्सी एवं गर्मी आदि से, बुध के द्रेष्काण में शनि हो तो वायु विकार से, गुरु के द्रेष्काण में शनि हो तो गुल्म रोग और तीव्र शरीरिक वेदना से और शुक्र के द्रेष्काण में शनि हो तो शोफ, प्रमेह तथा क्षय (तपेदिक) रोग से तथा अपने ही द्रेष्काण में ही शनि हो, तो कास, श्वास या वायु रोग से मृत्यु होती है। यदि उन द्रेष्काणों के स्वामी राहु से दृष्ट या युक्त हों तो जहरीले रोगों से मृत्यु होती है।

सजन और निर्जन स्थान में मृत्यु योग

शनि शुभ ग्रहों की राशि, नवांश राशि आदि में अथवा स्वराशि एवं उच्च राशि आदि में अथवा विशेषकर गुरु की राशि में होने पर पुत्र और मित्रों से घिरा हुआ जातक अपने घर में मृत्यु को प्राप्त करता है तथा यदि नीच राशि या शत्रु राशि आदि में शनि हो, तो बन्धुओं से रहित अकेला एवं दुःख भोगता हुआ मृत्युमुख में समा जाता है।

यहाँ शनि सर्पसंज्ञक द्रेष्काण में राहु एवं गुलिक से युक्त अथवा दृष्ट होने पर वह सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त करता है।

यदि शनैश्चर मंगल या सूर्य से युक्त हो अथवा वह मंगल या सूर्य की राशि में हो अथवा वह अग्नि तत्त्व की राशि में स्थित होकर राहु एवं गुलिक से दृष्ट या युक्त हो, तो जातक आग (अग्नि काण्ड) में जलकर मृत्यु को प्राप्त करता है।

साथ ही राहु और गुलिक से दृष्ट या युक्त शनि जलीय ग्रहों (चन्द्रमा और शुक्र) से भी युक्त होने पर गर्म जल में गिरकर मृत्यु को पाता है। इस प्रकार उपरोक्त जलीय ग्रहों से युक्त शनि यदि राहु और गुलिक की दुष्ट युति या दृष्टि मुक्त हो तो जलचर पक्षियों से व्याप्त स्थान में जातक की मृत्यु होती है।

हिंसक पशु-पक्षियों और पिता आदि से मृत्यु योग

उपरोक्त शनि यदि कोलमुख संज्ञक द्रेष्काण में हो, तो हिंसक पशुओं द्वारा मृत्यु होती है। वह शनि यदि गृध्रानन द्रेष्काण में हो तो मांसाहारी पक्षियों द्वारा मृत्यु होती है। इन दोनों योगों में शनि की गुलिक से युति या दृष्टि के अनुसार उसकी प्रबलता-निर्बलता का भी विचार करना चाहिए।

गुलिक राशि के स्वामी सूर्य आदि ग्रह अशुभ स्थान में स्थित होकर दुर्बल हो, तो क्रमश: पिता, माता, भाई, मित्र, पुत्र, स्त्री और स्वयं के कारण मृत्यु को प्राप्त करता है। यहाँ कही गई द्रेष्काण संज्ञा पहले ही बता चुके हैं।

मृत्यु के कुछ अन्य कारण

दुर्बलता आदि दोष युक्त शनि मंगल से युक्त या दृष्ट हो, तो चामुण्डा आदि देवियों की पीड़ा से मृत्यु होती है। वह शनि यदि मंगल और गुलिक से युक्त हो तो तलवार और बाण आदि अस्त्र-शस्त्रों से मृत्यु को प्राप्त होता है।

यदि शनि गुलिक और सूर्य से दृष्ट या युक्त हो, तो शंकर भगवान् के कोप से अथवा उनके निवास स्थान (श्मशान) में रहने वाले भूत-प्रेत आदि के पीड़ा-जन्य ज्वर से मृत्यु होती है।

प्रश्नशास्त्रानुसार मृत्यु योग

यहाँ तक जातक शास्त्र के अनुसार मृत्युदायक रोगों के कारणों या निमित्तों को अभिव्यक्त किया है। इस समय प्रश्नशास्त्रानुसार प्रश्नलग्न से मृत्युदायक रोगों को कहा जा रहा है।

मृत्युदायक रोग का प्रतिनिधि ग्रह

इस प्रकार जो ग्रह अष्टम स्थान को देखता है, उससे प्राप्त होने वाला रोग मृत्युदायक होता है। देखने वाले ग्रह के अभाव में अष्टम स्थान में स्थित ग्रह से प्राप्त होने वाला और इन दोनों के अभाव में अष्टमेश ग्रह जन्य रोग मृत्यु देने वाला होता है।

ग्रहजन्य रोग

सूर्य तीव्र जलन या दाह, वेदना और अन्तर्ज्वर अथवा आभ्यान्तरिक

बुखार उत्पन्न करने वाला होता है। चन्द्रमा ऊर्ध्वमुख संज्ञक राशि में वमन, तिर्यग्मुख संज्ञक राशि में मूत्रकृच्छ्र, अधोमुख संज्ञक राशि में अतिसार और तृषा तथा सभी राशियों में शोफ रोग उत्पन्न करने वाला होता है। मंगल जलन, दाह और रक्त विकार के कारण व्रण या घाव करता है। बुध शीत ज्वर और बुद्धिभ्रम अथवा पागलपन पैदा करता है। गुरु सन्निपात,बौद्धिक कुटिलता (मानसिक रोग), अजीर्ण और श्वास जैसे रोग देता है। शुक्र प्रदाह और प्रमेह उत्पन्न करता है। शनि तृष्णा, अरुचि और सभी अंगों में वात जैसा दर्द उत्पन्न करता है। राहु वायुविकार और गुलिक हिक्का रोग उत्पन्न करता है। इस प्रकार यहाँ सूर्य से गुलिक तक केतु को छोड़कर ग्रहों के रोग लिखा गया है।

ग्रहजन्य रोगज्ञापक चक्र

ग्रह	रोगों के नाम
सूर्य	जलन, दाह, अन्तर्जवर आदि।
चन्द्र	वमन, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार, तृषा, सूजन
मंगल	जलन, दाह, रक्त विकार
बुध	शीतज्वर, बुद्धिभ्रम
गुरु	सन्निपात, मानसिक रोग, अजीर्ण, श्वास रोग
शुक्र	प्रदाह, प्रमेह
शनि	तृष्णा, अरुचि, अङ्ग, दर्द
राहु	वायु विकार
गुलिक	हिचंकी लेना।

ग्रहजन्य अन्य रोग विचार

सूर्य आदि ग्रह और शनि आदि के नवांश से त्रिस्फुट के युक्त होने पर जो रोग यत्र-तत्र उल्लिखित किया गया है, उन रोगों का भी यहाँ चिन्तन करना श्रेष्ठ है।

प्रश्न लग्न नवांशस्थ चन्द्र से रोग वृद्धि विचार

यदि प्रश्नकालीन लग्न के नवांश की राशि में चन्द्रमा हो, तो जो रोग अल्प मात्रा में भी बढ़ता है, तो वह पृच्छक की मृत्यु करने वाला होता है।

पूर्वकथित शकुन और मृत्यु विचार

लग्न और गुलिक के नवांशों के द्वारा पात्र (बर्तन) का टूटना आदि जैसे लक्षण तथा त्रिस्फुट के नक्षत्र के द्वारा जैसे लक्षण पूर्व में कहे गए हैं—उन सबका भी यहाँ चिन्तन करना चाहिए।

कण्ठाभरण ग्रन्थ में कहा गया है कि–सूर्य के मृत्युपति अर्थात् अग्रोक्त मृत्यु की राशि का स्वामी होने से कलह करने वाले व्यक्ति का आगमन होता है अथवा पृच्छक के मरणासन्न काल में किसी भी प्रकार का कलह होता है।

इस प्रकार चन्द्रमा मृत्युपति हो तो मृत्यु-स्थल पर स्त्री का आगमन होता है। यदि मंगल मृत्युपति हो तो रोगी को गुड़ और खीर (या दूध) की इच्छा होती है, कहनी चाहिए अथवा गुड़ और खीर लेकर किसी का आगमन बतलाना चाहिए।

यदि बुध मृत्युपति हो तो विद्वान् का आगमन, गुरु मृत्युपति हो तो ब्राह्मण का आगमन, शुक्र मृत्युपति हो तो ब्राह्मण और पशुओं पर विपत्ति तथा शनि मृत्युपति हो तो दुष्ट और नीच लोगों का मृत्यु-स्थल पर मरणासन्न समय में आगमन कहना चाहिए।

स्फुटमृत्यु (पूर्वानीत) राहु युक्त हो अथवा वह केतु युक्त हो तो मृत्यु के स्थान पर भिखारी और सर्प का आगमन होता है। लेकिन स्फुट मृत्यु के केतु से युक्त होने पर ऊँची जगह से गिरना कहना चाहिए।

यदि वह मंगल और चन्द्रमा से युक्त हो बर्तनों का टूटना आदि मृत्युकालीन लक्षण कहा जाना चाहिए।

आयु और आरोग्य सम्बन्धित प्रश्न में देह और प्राण के स्वामी ग्रहों से अन्य ग्रहों का योग हो, तो उपरोक्त के अनुसार रोग शान्ति लक्षणों को अभिव्यक्त करना चाहिए।

यदि चन्द्रमा और शुक्र की राशि में त्रिस्फुट का नवमांश हो, तो ऊर्ध्वमुख आदि संज्ञा के अनुसार छर्दि, शोफ और अतिसार मृत्युप्रद रोग होते हैं।

सूर्य और मंगल की राशि में त्रिस्फुट का नवांश होने पर गर्मी और प्रदाह मृत्युप्रद होते हैं।

बुध की राशि में उसके होने पर जड़ता या वाणी दोष (मूकता), गुरु की राशि में होने पर बुद्धि भ्रम के साथ मूकता और शनि की राशि में होने पर श्वास और वायु की गड़बड़ी मृत्युदायक होता है।

विविध ग्रहों की राशि में अथवा उन ग्रहों से दृष्ट या युक्त त्रिस्फुट का नवमांश हो, तो उपरोक्त फल अभिव्यक्त करना चाहिए।

विशेष संज्ञा कथन

उपरोक्त प्रसंग में लग्न का नवांश प्राण, चन्द्रमा का नवांश देह, गुलिक का नवांश मृत्यु और त्रिस्फुट का नवांश काल को समझना चाहिए।

जातक शास्त्रीय मृत्यु स्थान

यदि जन्म लग्न से अष्टम स्थान में चर राशि हो, तो विदेश में; द्विस्वभाव राशि हो, तो रास्ते में और स्थिर राशि हो तो स्वदेश में मृत्युप्रद होती है।

यदि उपरोक्त स्थान में ग्राम्य, वनचर या जलचर राशियाँ हो तो तो क्रम से गाँत में, वन में और जल के समीप में मृत्यु होती है।

इस प्रकार अष्टम भाव में शुभ ग्रह हो, तो स्वच्छ स्थान में और पाप ग्रह हो, तो दूषित स्थान में मृत्यु होती है तथा उस अष्टम भाव में अधोमुख राशि हो, तो उन्नत प्रदेश कहना चाहिए।

उस मृत्युस्थल में दीपक आदि का विचार अष्टम स्थान से बृहज्जातक आदि जैसे ग्रन्थ के सूतिकाध्याय की तरह से करना चाहिए।

जातक की जन्म-कुण्डली में जन्मलग्नेश और जन्म लग्न के नवांशेश में जो बलवान् हो, वह भी जिस राशि में हो, उस राशि में उपरोक्त कथन की तरह स्वदेश, विदेश और मार्ग आदि में मृत्यु जाननी चाहिए।

यदि वह बलवान् ग्रह अन्य ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो उनमें से जो बलवान् हो उसके या लग्न नवांशेश के देवालाय, जलाशय आदि स्थानों में शरीरधारियों की मृत्यु कहनी चाहिए।

लग्न में स्थित, लग्नेश से युक्त, लग्न को देखने वाला और लग्नेश को देखने वाला, इन चारों ग्रहों में से जो कोई भी ग्रह बलवान् हो, उस से पुराने-मरम्मत किए हुए आदि जैसे घरों में मृत्यु होना कुछ आचार्यों ने कहा है।

मृत्युकाल आदि सब कुछ जानकर और उसकी शुभता या अशुभता का निश्चय करने के पश्चात् यदि सभी ग्रहों की शुभता हो तो शीघ्र रोग शान्ति और दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है।

यदि सभी ग्रहों की अशुभता हो तो शीघ्र मृत्यु कहनी चाहिए।

उनकी मिश्रित स्थिति हो, तो शुभ ग्रहों की अधिकता से रोग शान्ति और पापग्रहों की अधिकता से मृत्यु होती है।

इस प्रकार सोच-विचार करने के पश्चात् पृच्छक की मृत्यु का निश्चय कर मृत्युकाल, रोग और मृत्यु स्थान भी बता देना चाहिए।



रोग सम्बन्धि विशेष कथन

इस प्रकार जीवनकाल के सम्बन्ध में सब कुछ जानने के पश्चात् निर्णय कर लेने के अनन्तर रोग-शान्ति के लिए उसकी चिकित्सा बतलायी जानी चाहिए; क्योंकि रोगों की जानकारी किये विना उसकी चिकित्सा बतलाना कठिनतर कार्य है, इसलिए रोगों के भेद जानने के लिए रोग-विषयक तत्त्वों का ज्ञान करना चाहिए। रोग शान्ति विषयक इस प्रकरण में आवश्यक कार्य और उचित क्रिया विधि यहाँ कहा जा रहा है।

ग्रह स्थतिवश रोग

अनिष्ट स्थानों में स्थित ग्रहों के अनुसार उनके पूर्वोक्त रोगों को कहने चाहिये तथा इष्ट (शुभ) स्थानों में स्थित ग्रहों के अनुसार आरोग्यता बतलानी चाहिए।

आरोग्यता सूचक ग्रह योग

यदि प्रश्न या जन्म के समय कुण्डली में पाप ग्रह एकादश और तृतीय स्थान में स्थित हों और तृतीय, षष्ठ, द्वादश एवं अष्टम स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में शुभ ग्रह हों तथा गुलिक भी त्रिकोण, अष्टम और केन्द्र स्थान से भिन्न स्थान में अर्थात् अन्यत्र स्थित हो तो ये सब ग्रह प्रश्नकर्त्ता के नीरोग या स्वस्थ शरीर के सूचक होते हैं और उपरोक्त स्थानों से अन्यत्र या भिन्न स्थानों में स्थित ग्रह उसके रोगग्रस्त शरीर की सूचना देते हैं।

उपरोक्त श्लोक में जिन भावों में स्थित ग्रह आरोग्यप्रद कहे गये हैं, उन भावों में स्थित ग्रहों की सुस्थसंज्ञा होती है तथा जिन स्थानों में स्थित वे रोगदायक होते हैं, उनकी दुस्थसंज्ञा होती है; इस प्रकार से सार संग्रह ग्रन्थ में कहा गया है।

दीर्घकालीन रोग

यदि षष्ठ, द्वादश, अष्टम, सप्तम, चतुर्थ, लग्न, नवम, पंचम आदि स्थानों में स्थित दुर्बल पापग्रह तथा षष्ठ, अष्टम, द्वादश आदि स्थानों में स्थित शुभ ग्रह दुस्थ संज्ञक होते हैं। लग्नेश के अधिशत्रु तथा उपरोक्त दुःस्थानों में स्थित ग्रह दीर्घकालीन रोग उत्पन्न करने वाले और मृत्युदायक होते हैं। उपरोक्त स्थानों से भिन्न स्थानों में स्थित और चन्द्रमा के साथ स्थित ग्रह सुस्थ संज्ञक होते हैं। इस प्रकार दुःस्थग्रह अपना अशुभ तथा सुस्थ ग्रह अपना शुभ फल प्रदान करते हैं।

ग्रहस्थितिवश रोगस्थान

द्वितीय, अष्टम और व्यय स्थानों में स्थित ग्रहों से, इन स्थानों में स्थित ग्रहों को देखने वाले और युक्त ग्रहों से तथा लग्न में स्थित और लग्न को देखने वाले ग्रहों से लग्न की तरह उन ग्रहों के पूर्वोक्त रोगों को बतलाना चाहिए। यदिऊर्ध्वमुख और चर राशि लग्न में हो, तो गले के ऊपर के भाग में, तिर्यग् मुख और स्थिर राशि लग्न में हो, तो गले से कमर तक के भाग में तथा अधोमुख और द्विस्वभाव राशि लग्न में हो, तो कमर से नीचे के भाग में रोग (विकार) का स्थान जानना चाहिए।

सूर्यादि ग्रहों के अङ्ग

सूर्य आदि ग्रहों के क्रमशः कुक्षि, हृदय, शिर, वक्षस्थल, ऊरू, मुख, जानु, दोनों पैर आदि अङ्ग होते हैं अर्थात् सूर्य की कुक्षि, चन्द्र का हृदय, मंगल का शिर, बुध का वक्षस्थल, गुरु का ऊरु, शुक्र का मुख, शनि का जानु और राहु का दोनों पैर पर प्रभाव जानना चाहिए।

इस प्रकार दुर्बल और दुःस्थानों में स्थित ग्रहों के अपने-अपने अंगों में रोग या विकार जानना चाहिए।

स्पष्टार्थ चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु
अंग	कुक्षि	हृदय	शिर	वक्षस्थल	ऊरु	मुख	जानु	पैर

द्वादश भावों में शिर आदि अङ्ग विचार

प्रश्न लग्न और आरूढ़ लग्न आदि द्वादश भावों में तथा उनके स्वामी ग्रहों में भी शिर आदि अंगों की कल्पना करनी चाहिए। जैसा आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ लघुजातक के प्रारम्भ में ही कहा है—

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिवस्तिगुह्य संज्ञानि।
ऊरु जानु जङ्घे चरणाविति राशयोऽजाद्याः ।।

इस तरह से द्वादश भाव और द्वादश राशियों में भी उक्त विधि से अङ्गों का विचार करना चाहिए।

इस प्रकार जो भाव और भावेश क्रूर ग्रह से युक्त हो, वह जिस अंग का प्रतिनिधित्व करता हो, प्रश्नकर्त्ता के शरीर के उस अंग में रोग या विकार कहना चाहिए।

तथा प्रश्नकर्त्ता द्वारा स्पर्श की गई राशि, आरूढ़ राशि, प्रश्नलग्न आदि से भी रोगग्रस्त अंग कहना चाहिए, जैसा कि आरूढ़ के फल का विचार करते समय बताया भी गया है।

सारसंग्रह ग्रन्थानुसार त्रिदोष विभाग

वराहमिहिर द्वारा प्रतिपादित ग्रहों के त्रिदोष के सम्बन्ध में पहले कहा गया है और अब सारसंग्रह में प्रतिपादित ग्रहों के त्रिदोष वात, पित्त, कफ आदि के बारे में कहा जा रहा है।

सूर्य वात और पित्तविकार; चन्द्रमा वात और कफविकार; मंगल पित्तविकार; बुध वात, पित्त और कफ त्रिदोष विकार; गुरु वात और कफ विकार; शुक्र वात और कफ विकार तथा शनि वात और पित्तविकार को उत्पन्न करता है।

त्रिदोष स्पष्टार्थ चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
दोष	पित्त और वायु	कफ और ायु	पित्त विकार	वात पित्त और कफ	वात और कफ	वात और कफ	वात और पित्त

ऋतुवंश रोग

ग्रह अपने पूर्व कथित पाञ्चभौतिक अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु आदि तत्त्वों के कारणवश भी रोगों को अपने समय (वर्ष आदि) में और अपनी ऋतुओं में उत्पन्न करते हैं, इस प्रकार ग्रन्थान्तर में बताया गया है।

ग्रहजन्य रोग

दु:स्थान या त्रिकूस्थान में यदि सूर्य और मंगल हो, तो पित्तजन्य रोग होते हैं तथा उन स्थानों में शुक्र और चन्द्रमा हो, तो जलज रोग, शनि हो, तो वायु रोग, बुध हो, तो त्रिदोषजन्य रोग तथा अनिष्ट स्थान में गुरु हो, तो आकाशतत्त्व के विकार से बधिरता आदि रोग होते हैं।

अनिष्ट स्थान में स्थित ग्रह अपनी-अपनी ऋतुओं में अपने उपरोक्त रोगों को उत्पन्न करते हैं। शनि, शुक्र, रवि, चन्द्रमा, बुध और गुरु की क्रमशः शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद एवं हेमन्त ऋतु होती है। विद्वज्जन मंगल को भी ग्रीष्म ऋतु का प्रतिनिधि ग्रह मानते हैं।

रोगदायक ग्रहों की ऊपर कथित हड्डी आदि धातुओं में विकार उत्पन्न होने से रोग होते हैं, इस प्रकार से ग्रन्थान्तर में कहा गया है।

रोग के प्रश्न के समय दुःस्थान में स्थित ग्रह की हड्डी आदि धातु में अथवा रोगदायक ग्रह, जिसके नवांश में स्थित हो, उस ग्रह की धातु में विकार होने से रोगियों को रोग उत्पन्न होना मानते हैं।

रोग प्रकार

रोग के भेदों का निरूपण करने के समय इनके विविध प्रकार और भेद का विचार किया गया है, यहाँ उनको उसी प्रकार लिखते हैं, जिस प्रकार अन्य ग्रन्थों में कहा गया है।

वंशागत और आगन्तुक भेद से रोग दो प्रकार के होते हैं तथा सहज (वंशागत) और आगन्तुज रोगों में से प्रत्येक दो प्रकार के बताये गए हैं।

सहज (वंशानुगत) रोग शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार के होते हैं तथा आगन्तुज रोग दृष्टनिमित्तजन्य और अदृष्ट निमित्तजन्य भेद से दो प्रकार के होते हैं। इस प्रकार चार प्रकार के रोग हो जाते हैं।

शारीरिक रोग

वात, पित्त और कफ की विकृति के कारण उत्पन्न, इनमें से किन्हीं दो के संसर्ग से उत्पन्न तथा सन्निपात आदि दोषों से उत्पन्न रोगों को शारीरिक रोग कहा गया है।

शारीरिक रोग विनिश्चयीकरण

अष्टम स्थान, अष्टम स्थान का स्वामी ग्रह, अष्टम स्थान को देखने वाला ग्रह या अष्टम स्थान में स्थित ग्रह से रोग का विनिश्चय करना चाहिए। उपरोक्त चारों ग्रहों में से बलवान् ग्रह अपना रोग उत्पन्न करता है।

मानसिक रोग

क्रोध, हर्ष, शोक आदि आवेगों से उत्पन्न होने वाले रोग मानसिक रोग के रूप में जाने जाते हैं। इन मानसिक रोगों का विनिश्चय अष्टमेश और चतुर्थेश की युति एवं दृष्टि आदि के अनुसार करना चाहिए।

दृष्ट निमित्तजन्य रोग

शाप, अभिचार अर्थात् मरण, मोहन, स्तम्भन, उच्चाटन आदि तान्त्रिक अनुप्रयोग तथा घात अर्थात् षडयन्त्र या योजनाबद्ध रूप से प्रहार आदि प्रत्यक्ष घटनाओं के द्वारा उत्पन्न रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं। इन रोगों का विचार

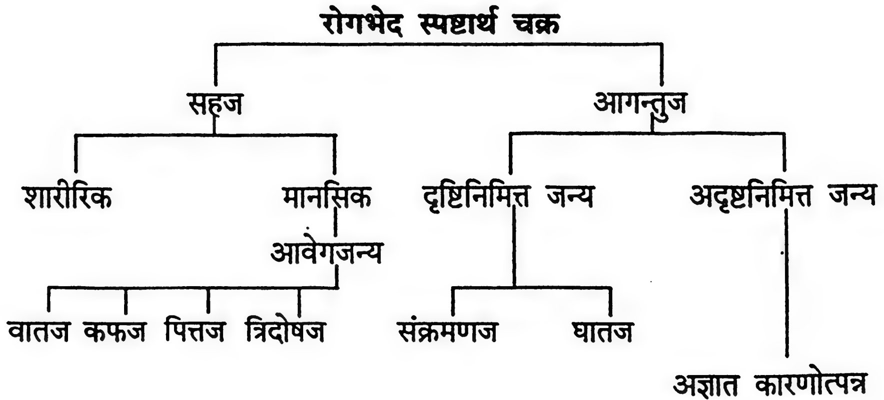
षष्ठस्थान, षष्ठेश, षष्ठ स्थान को देखने वाला या उसमें स्थित ग्रह आदि से करना चाहिए।

अदृष्ट निमित्तजन्य रोग

यदि अष्टमेश और षष्ठस्थान आदि का पारस्परिक सम्बन्ध हो, तो शाप आदि उपरोक्त कारण प्रबल रूप से सम्भावित होता है।

बाधक ग्रहों से उत्पन्न रोग अदृष्ट निमित्त पूर्व कृत संचित कर्म या प्रारब्ध कर्मवश उत्पन्न होते हैं।

रोगभेद स्पष्टार्थ चक्र



रोग विषयक प्रश्न से रोग

रोग विषयक प्रश्न के समय अकस्मात् जिस पदार्थ को देखा जाय या जिसके बारे में सुना जाय, उस पदार्थ के अनुसार रोगों के भेदों को जानना चाहिए। ऐसा ग्रन्थान्तर में कहा गया है।

जिस रोग का जो वस्तु अपथ्य (हानिकारक) मानी जाती है, रोग विषयक प्रश्न का विचार करते समय वह वस्तु दिखाई दे, या उसके बारे में सुनाई दे, तो वह रोग होता है। इस प्रकार ध्यानपूर्वक रोग के विषय में चिन्तन करना चाहिए।

अष्टाङ्गहृदय के अनुसार रस प्रसङ्ग

अष्टाङ्गहृदय में कहा गया है कि सुस्वादु (मधुर), खट्टा, नमकीन, तीखा (चटपटा), उष्ण, कसैला आदि छः रस होते हैं। इनमें प्रथम तीन (सुस्वादु, खट्टा और नमकीन) रस वायु का शमन करने वाले होते हैं तथा तीखा आदि शेष तीन रस कफ का शमन करते हैं। कसैला, तीखा और मधुर ये तीन रस पित्त को शान्त करते हैं और शेष तीन रस क्रमशः वात आदि विकारों को बढ़ाते हैं। संक्षेप में वात, पित्त और कफ, ये तीन दोष कहे गये हैं।

जिस ग्रह का जो पित्त आदि त्रिधातु या त्रिदोष पहले कहा गया है, उस ग्रह के रोगप्रद होने पर उस दोष से उत्पन्न होने वाला रोग कहना चाहिए। तात्पर्य यह कि सूर्य रोगप्रद हो, तो पित्तजन्य रोग, चन्द्रमा रोगप्रद हो, तो कफजन्य रोग मङ्गल रोगप्रद हो, तो भी पित्तजन्य रोग आदि कहना चाहिए। इस प्रकार आगे भी चिन्तन करना चाहिए।

ग्रह योग से रोग

बृहत्पराशर होराशास्त्र, बृहज्जातक, सारावली, जातक पारिजात आदि होराशास्त्र के सामयिक नामचीन ग्रन्थों में समुपवर्णित पापग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट विविध योगों के अनुसार भी रोगों के भेदों का निरूपण और विचार करना चाहिए। इस प्रकार योगों के अनुसार सुनिश्चित किए जाने वाले रोग पूर्व-जन्म में अर्जित किए गए कर्म के दुष्प्रभाववश उत्पन्न होते हैं।

उन्माद रोग सम्बन्धी ग्रहयोग

१. लग्न में गुरु व सप्तम स्थान में शनि का होना, २. लग्न में गुरु और सप्तम स्थान में मंगल का होना, ३. लग्न में शनि और सप्तम, पंचम या नवम स्थान में मंगल का होना, ४. लग्न में क्षीण चन्द्रमा और बुध दोनों का होना, ५. क्षीण चन्द्रमा और शनि दोनों का व्यय स्थान में होना, ६. क्षीण चन्द्रमा का पापग्रहों के साथ लग्न, एकादश, पंचम या नवम स्थान में होना, ७. सप्तम स्थान में पापग्रहों से युक्त गुलिक का होना और ८. तृतीय, षष्ठ या अष्टम या व्यय स्थान में पापयुक्त बुध का होना, इन योगों के रहने पर उन्माद रोग होता है। इस प्रकार उन्माद पैदा करने वाले ये आठ योग बतलाये गये हैं।

एवं अनेक प्रकार के उन्मादों का कारण तथा उन्मत्त (पागल) व्यक्ति की चेष्टा (कार्य-कलाप) आदि तथा उन्माद रोग के भेदों के प्रसङ्ग में जिस प्रकार से अन्यान्य ग्रन्थों में बताया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहा जा रहा है।

उन्माद के भेद और लक्षण

आयुर्वेद चिकित्साशास्त्रोक्त रोग लक्षण लिखने का उद्देश्य मात्र यह है कि दैवज्ञ स्वयं भी ग्रह योग व शारीरिक विकारों से योग व फल की संगति करने का अभ्यस्त हो। हर्ष, इच्छा या महत्वाकांक्षा, भय, शोक आदि की प्रबलता से स्वास्थ्य और प्रकृति के प्रतिकूल या अपथ्य वस्तु खाने से तथा गुरु एवं देवता आदि के कोप से पाँच प्रकार का उन्माद होता है।

वातजन्य उन्माद लक्षण

उन्माद पाँच प्रकार का होता है—१. वातजन्य, २. पित्तजन्य, ३.

कफजन्य, ४. सन्निपातजन्य और ५. आगन्तुक (गुरु अथवा देवता आदि के कोप से उत्पन्न)।

हंसना, चिल्लाना, बिलखना, गाना, नाचना, रोना, एक स्थान पर न ठहरना, हाथ-पैर आदि अंगों को फेंकना-पटकना, कोमल और कमजोर शरीर होना, कमजोर होने के बावजूद भी बलवान् होना और अधिक बड़बड़ाना, ये सभी वातजन्य उन्माद का लक्षण है।

पित्तज उन्माद लक्षण

व्याकुलता, क्रोध, गम्भीरता, विद्वत्ता, द्रवीभूत होना, जोर-जोर से बोलना या लड़ना, छाया, ठण्डी वस्तु तथा जल की इच्छा, अधिक रोष, पीला तथा गरम शरीर होना आदि पित्तजन्य उन्माद का लक्षण कहा गया है।

कफजन्य उन्माद लक्षण

स्त्रियों से बातचीत करने की इच्छा, निद्रा में बोलना, साधारणतया कम बोलना, मुंह से लार या झाग निकलना, उल्टी होना, अधिक खाना, उसका नाखून, आंख आदि का सफेद होना, कफजन्य उन्माद का लक्षण है।

सन्निपातजन्य उन्माद लक्षण

इस प्रकार उपरोक्त प्रकार आचार्य ने कई श्लोकों में वात, पित्त और कफजन्य उन्माद की चेष्टाएँ कही हैं। उक्त लक्षणों के मिश्रित लक्षणों वाला उन्माद सन्निपातजन्य उन्माद होता है।

आगन्तुक उन्माद के लक्षणों

देवता, राक्षस, नाग आदि आगन्तुक ग्रह होते हैं। ये अमर हैं तथा बल, वाणी, ज्ञान एवं पराक्रम, इन सबसे सम्पन्न होते हैं। इनके कोप से उत्पन्न उन्माद को आगन्तुक उन्माद कहते हैं।

उन्माद रोग चिकित्सा

वातजन्य उन्माद में स्नेह (तेल, घी आदि) पान, पित्तजन्य उन्माद में विरेचन (पेट की सफाई), कफजन्य उन्माद में नस्य सूंघना और वमन तथा आगन्तुक उन्माद में स्नेह-पान आदि समस्त क्रियाएँ करनी चाहिए। ग्रह मन्त्र का जप तथा हवन आदि प्रायोगिक कर्म से सभी के उन्माद नष्ट हो जाते हैं।

प्राचीन आचार्यों ने उन्माद के कारण आदि का वर्णन करते समय एक विशेष सम्प्रदाय की बात कहा है, अतः उसे भी यहाँ लिखा जा रहा है।

उन्माद के दस हेतु

भ्रान्ति या पागलपन की अवस्था को प्राप्त होने में १० हेतु होते हैं। इन

दस हेतुओं या कारणों से उत्पन्न भ्रान्ति या उन्माद आयुर्वेद में त्रिदोषजन्य अर्थात् वात, पित्त एवं कफजन्य माने जाते हैं। जहाँ पित्त-जन्य उन्माद में बन्धन होता है। वे दस कारण इस प्रकार हैं—

१. विषम अर्थात् परस्पर विरोधी भोजन करना, जैसे—दही और मूली, दूध और मछली, सिरका व दही आदि अर्थात् ऐसे भोज्य पदार्थों को एक साथ खाना, जो हितकारी न हों।

२. अपवित्र अर्थात् गन्दा, बिना धुले हुए फल सब्जी आदि, अपवित्र स्थान में रखा, बासी भोजन आदि करना।

३. उपवास अर्थात् अधिक लम्बे समय तक निराहार रहना।

४. भय, ५. वैराग्य अर्थात् भोजन आदि से अरुचि होना अथवा वैराग्य के कारण बलात् संसार त्यागने की इच्छा होना।

६. अकारण अत्यधिक क्रोध करना।

७. अभिचार अर्थात् शत्रुकृत मोहन, उच्चाटन, स्तम्भन, मरण, मारणादि अभिचार कर्म के वशीभूत होना।

८. गुरु निन्दा करने की विचित्र-सी प्रवृत्ति का पनप जाना।

९. देवकार्य में त्रुटि होने से अत्यन्त पश्चात्ताप की स्थिति उत्पन्न होना।

१०. देवनिन्दा करके अपने को ज्ञानी जैसा प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति पनपना।

इस प्रकार क्रमशः अन्तिम ८, ९, १० कारणों से तात्पर्य मानसिक आघात और असुरक्षा की भावना की प्रबलता ही मुख्य कारण जानना चाहिए।

योगवश उपरोक्त हेतुओं के विनिश्चयीकरण

यदि चन्द्रमा, शुक्र और अष्टमेश अनिष्ट स्थानों में स्थित हों तो विषम भोजन या उपवास के कारण उन्माद होता है।

यदि ये चन्द्रमा, शुक्र और अष्टमेश केतु, गुलिक एवं राहु से युक्त हो तो अपवित्र भोजन से उन्माद होता है।

यदि पंचम स्थान में पापग्रह हो, तो भय के कारण उन्माद होता है।

यदि षष्ठ स्थान में मंगल हो, तो शत्रुकृत अभिचार के कारण उन्माद होता है।

यदि नवम स्थान में पापग्रह हो, तो गुरु, अग्नि एवं देवता आदि के शाप से उन्माद होता है।

इन सभी प्रकार के उन्मादों में कल्याणघृत, पंचगव्य एवं सारस्वत आदि घृतों का सेवन लाभ के लिए करना चाहिए।

अपस्मार (मिर्गी) के योगत्रय

यदि अष्टम स्थान में शनि व त्रिकोण में राहु की स्थिति हो और शुभ ग्रह बलवान् हों तथा यदि सूर्य और मंगल अनिष्ट स्थान में हो तो अपस्मार रोग होता है।

अपस्मार के द्वादश भेद

वैसे अपस्मार अपने स्वरूप से एक-सा होता हुआ भी द्वादश भेदों के कारण उसका स्वरूप द्वादश प्रकार का हो जाता है। अत: आगे उसके स्वरूप और उन भेदों को कहा जा रहा है।

अपस्मार का लक्षण

इस रोग में मनुष्य का शरीर शिथिल होकर अकस्मात् गिरने लगता है और वह मूर्च्छित भी होने लग जाता है। मुँह से फेन और कठोर आवाज निकलती है। अंग कठोर और टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। आँख की पुतलियाँ चारों ओर घूमती हैं। दाँत भिंच जाते हैं। रंग पीला हो जाता है। प्यास से व्याकुलता और मुखाकृति विकृत प्रतीत होती है। इस प्रकार के स्वरूप वाला (लक्षण वाला) अपस्मार कहलाता है।

अपस्मार की द्वादश दूतियाँ

१. श्वसना, २. मलिना, ३. निद्रा, ४. जृंभिका, ५. अनशना, ६. त्रासिनी, ७. मोहिनी, ८. रोदनी, ९. क्रोधनी, १० तापनी, ११. शोषणी और १२. ध्वंसिनी, ये प्रसिद्ध बारह दूतियाँ अपस्मार रोग की प्रिया हैं। जिस प्रकार प्रिया अपने प्रियतम का साथ नहीं छोड़ती और इन दोनों में अभिन्न सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार अपस्मार रोग के साथ श्वसना आदि बारह चेष्टा रूपी दूती सदैव साथ रहती हैं।

अपस्मार (मृगी) के रोगी को ये सभी चेष्टायें दूतियों के रूप में या इनमें से कुछ प्रमुख चेष्टा रूपी दूतियाँ अपना आश्रय बना लेती हैं और अपने नाम ही जैसी चेष्टा रोगी के शरीर में उत्पन्न करती हैं। इनका लक्षण इस प्रकार है—

श्वसना नाम की चेष्टा लम्बी-लम्बी साँस चलना है।

मलिना नाम की चेष्टा शरीर व मुख की कान्ति की मलिनता है।

निद्रा नाम की चेष्टा नींद आना है।

जृंभिका नाम की चेष्टा खूब जंभाई आना है।

अनशना नाम की चेष्टा भोजन त्याग देना है।

त्रासिनी नाम की चेष्टा भयभीत होना है।

मोहिनी नाम की चेष्टा बेहोशी होना है।

रोदिनीनाम की चेष्टा रोना है।

क्रोधनी नाम की चेष्टा गुस्सा करना है।

तापिनी नाम की चेष्टा शरीर गर्म होना है।

शोषिणी नाम की चेष्टा मुखादि का सूख जाना है।

ध्वंसिनी नाम की चेष्टा अंगों का मरोड़ना और मृत्यु है।

अपस्मार की शांति के उपाय

सर्वप्रथम अपस्मार का शमन करने के लिए मन्त्र शास्त्र में प्रतिपादित कूष्माण्डी बलि कर्म सम्पन्न करना चाहिए तथा भीषण अपस्मार का शमन करने के लिए सुदर्शन या क्रोधाग्नि मन्त्र शास्त्र में प्रसिद्ध मन्त्रों से उनके अक्षरों की संख्या को एक हजार से गुणाकर तिल की आहुति देनी चाहिए।

अपस्मार की सामान्य चिकित्सा

प्रश्नविषयक अन्य ग्रन्थों में समुपवर्णित अपस्मार रोग में लाभदायक कुछ उपाय दृष्ट हुए हैं, अत: उसका अनुसरण करते हुए इस रोग की कुछ चिकित्सा यहाँ भी लिखी जा रही है।

सूँघने योग्य दवा

सैन्धव, वृश्चिकाली, कुष्ठ, कणा और भार्ङ्गी, इन औषधियों का बारीक चूर्ण बनाकर नाक से सूँघाना तेज मृगी के दौरे को शान्त करने में प्रशस्त है।

अपस्मारनाशक घृत प्रयोग

ब्राह्मी के रस में दूधिया बच, शंखपुष्पी, आँवले का रस और महुआ आदि मिलाकर क्वाथविधि से बनाया घृत और वृष मूत्र में मधुक, शुद्ध हींग मिलाकर बनाया घृत पीना या सूंघना अपस्मार को दूर करने वाला होता है।

त्रिवृत, अर्थात् त्रिपुटा या निशोत, विलङ्ग अर्थात् बायविडंग, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), सेंधानमक की डली व छोटी अंगारी ब्राह्मी रस में शोधकर तथा घी में पका कर बनाया गया घृत मिर्गी (अपस्मार) को नाश करने वाला होता है।

अन्य विशेष घृत बनाने का कथन

मंजीठ, अंगार, बायविडंग, कूष्ट, नागरमोथा, त्रिपुटा या निशोत, छारिका,

शंखपुष्पी, छोटी इलायची बटौवे की बेल (पाटला या पाढ़) मागधी आदि सब जड़ी बूटियों को पंचगव्य में शोध कर बनाया गया घृत तेज मृगी के दौरे को, मतिभ्रम और कुष्ठ रोग को नष्ट करता है तथा शरीर की कांति को संवृद्ध करने वाला होता है।

भक्त विरोध रोग

यदि लग्न को पाप ग्रह देखते हों, अष्टम स्थान को शनि देखता हो और अष्टमेश निर्बल हो तो यह योग भक्त विरोध नामक रोग को उत्पन्न करने वाला होता है।

प्रमेह रोग योग

यदि लग्न पापग्रहों से दृष्ट तथा लग्नेश नीच या शत्रु राशि में हो और अष्टम स्थान शुक्र से युक्त या दृष्ट हो तो यह मेष योग होता है। यह योग प्रमेह रोग उत्पन्न करने वाला होता है।

इसी ग्रन्थ में पहले ही आरूढ़ की चर्चा के प्रसंग में "सिंहे कुक्ष्यक्षिते०" इत्यादि श्लोकों में जिन रोगों को बताया गया है, यहाँ उन सबका भी विचार करना चाहिए।

प्रश्नानुष्ठान पद्धति प्रोक्त मूर्ति और रोग भेद

प्रश्नानुष्ठान पद्धति में पहले नेष्ट स्थान में स्थित ग्रहों के मूर्ति भेद और रोग भेद कहे गये हैं—यहाँ उन्हें लिखते हैं।

सूर्य के रोग

सूर्य पित्तविकार, गर्मी, ज्वर, दाह, दौरा आना, मृगी, ह्रदय रोग, बस्ति रोग, नेत्र रोग, शत्रु भय, चर्मरोग, अस्थि स्राव, कुष्ठ रोग, अग्नि व शस्त्र और विषजन्य विकार, स्त्री एवं पुत्र को रोग और पशु, चोर, राजा, धर्म देवता, सर्प, शिव भूत-प्रेत आदि से भय उत्पन्न करने वाला होता है।

चन्द्र के रोग

चन्द्रमा को निद्रा, आलस्य, कफ विकार, अतिसार, पेचिश, पिटक या फोड़ा-फुन्सी, शीत ज्वर तथा सींग वाले पशु और जलचर जीवों से भय, मन्दाग्नि, कमजोरी, स्त्रीरोग, कामिला या कामला रोग, मानसिक रोग, रक्तविकार, जल से भय तथा बालग्रह, दुर्गा, किन्नर, धर्म, देवता, सर्प और यक्ष आदि से पीड़ित करने वाला कहना चाहिए।

मंगल के रोग

मंगल को तृष्णा (दाह), रक्त विकार, पित्तविकार और ज्वर, अग्नि, विष, शस्त्र आदि से पीड़ा, कुष्ठ रोग, नेत्रविकार, गुल्म रोग, अपस्मार, मज्जा रोग, जड़ता, खुजली आदि चर्म रोग तथा राजा, शत्रु, चोर, भाई, पुत्र, मित्रों आदि से शत्रुता और युद्ध ब्रह्मराक्षस, गन्धर्व, घोरग्रह आदि से भय तथा शरीर के ऊपर के भाग में रोग उत्पन्न करने वाला कहना चाहिए।

बुध के रोग

बुध को भ्रांति, वाक्दोष तथा नेत्र, गला और नासिका के रोग, ज्वर, पित्त-कफ-वायु त्रिदोषजन्य रोग, जहरीले रोग, चर्मरोग, पाण्डु रोग, दुःस्वप्न, चेचक, गिरना (गिरने से चोट लगना), शरीर में कठोरता, बंधन, अधिक परिश्रम तथा गंधर्व, भूदेव, भुवनवासी, किन्नरों आदि से पीड़ा उत्पन्न करने वाला कहना चाहिए।

गुरु के रोग

गुरु को गुल्म रोग, आंतों का ज्वर, शोक, मूर्च्छा, कफविकार, कर्णविकार, प्रमेह रोग, देवालय के धन का दुरुपयोग, ब्राह्मण या देवता के शाप से उत्पन्न रोग और किन्नर, यक्ष, देवता, सर्प, विद्याधर आदि के कोप से उत्पन्न रोगों का सूचक कहना चाहिए। तथापि बुध और गुरु दोनों विष्णु देवता के कोप के कारण उत्पन्न रोगों को सूचित करने वाला भी जानना चाहिए।

शुक्र के रोग

शुक्र के द्वारा पाण्डु, श्लेष्मा, वायु विकार, नेत्र विकार, निद्रा, अधिक थकान, गुप्त रोग, मूत्र रोग, रति रोग, वीर्यस्राव और वस्त्र, स्त्री, खेती, शीरी की कांति आदि का नाश; तथा योगिनी, यक्षिणी, मातृकाओं आदि से भय तथा प्रियजन, मित्रों आदिसे विरोध या हार सूचित होना जानना चाहिए।

शनि के रोग

शनि वायु विकार, श्लेष्मा, पैर में चोट (पंगुता), आपंत्ति (आगन्तुक रोग), आलस्य, थकान, भ्रांति, कुक्षि रोग, आंतरिक उष्णता (दाह), भृत्यनाश, पशुनाश, स्त्री एवं पुत्र पर विपत्ति, अंगभंगता (अंग वैकल्य), हृदय रोग, वृक्ष और पत्थर से चोट, दुष्ट ग्रह, पिशाच आदि से पीड़ा सूचित करने वाला होता है।

राहु, केतु और गुलिक के रोग

राहु से देहताप, कुष्ठ, असाध्य रोग, विष विकार, पैर में रोग, पिशाच

और सर्प से भय, स्त्री और पुत्र पर आपत्ति, ब्राह्मण और क्षत्रिय से विरोध, शत्रु से भय आदि सूचित होता है। केतु के द्वारा राहु के रोगों के अलावा प्रेत पीड़ा और विष विकार की सूचना भी मिलती है। गुलिक सर्पजन्य पीड़ा तथा अपवित्रता या गंदगी से पैदा होने वाली बीमारियों को दर्शाता है।

लग्नादि भावस्थ ग्रह के अनुसार कुछ रोग

दशम स्थान में स्थित शनि पिशाच बाधा को सूचित करने वाला होता है। लग्न या अष्टम स्थान में स्थित और राहु से दृष्ट गुलिक दृष्टि और सूंघने से सम्बंधित और विष के कारण रोग उत्पन्न करता है। षष्ठ स्थान में स्थित पाप ग्रह उदर रोग उत्पन्न करने वाला होता है। अष्टम या सप्तम स्थान में स्थित मंगल ज्वर तथा लग्न या सप्तम स्थान में स्थित होकर अजीर्ण और अरुचि कर रोग उत्पन्न करता है। षष्ठ स्थान में स्थित चन्द्रमा शत्रु पीड़ा को सूचित करने वाला होता है।

रोग निर्णय में विशेष

ग्रह के आश्रित राशि और उस राशि के आश्रित भाव और अन्य ग्रहों के साथ उसका योग व दृष्टि तथा अधिक संख्यक बुरे स्थानों में ग्रहों की स्थिति आदि जैसे विषयों का विचार करते हुए यथोचित रोगों का निर्णय लेना चाहिए।

यदि लाभ और तृतीय भावों को छोड़कर शेष अन्य दस भावों में जहाँ-कहीं भी पाप ग्रह बैठे हों तो प्रश्नकर्त्ता पापग्रहों के उपरोक्त दोषों के कारण निश्चित रूप से रोगी होता है, ऐसा कहना चाहिए।

अङ्गवाचक भाव

बृहज्जातक (जन्माध्याय श्लोक २३-२४) में ''कादि विलग्न विभक्तभगात्र इति'' तथा ''कंदृक्श्रोत्रनसाकपोल हन्वोवक्त्र मिति'' श्लोकों के अनुसार प्रश्नकर्त्ता के अङ्गों का चिन्तन करना चाहिए, क्योंकि उपरोक्त दोनों श्लोकों में वराहमिहिर ने पापग्रहों से दृष्ट या युक्त होने पर अंग में घाव या रोग होना निरूपित किया है।

यहाँ प्रश्नशास्त्र में यदि लग्न में चर राशि, ऊर्ध्वमुख राशि या शीर्षोदय राशि स्थित हो, तो सिर, नेत्र, कान आदि; स्थिर राशि, तिर्यङ्मुख राशि या उभयोदय राशि स्थित हो तो कण्ठ; कन्धा आदि तथा द्विस्वभाव राशि, अधोमुख राशि या पृष्ठोदय राशि स्थित हो, तो बस्ति; लिङ्ग, गुदा आदि अंगों का विचार करना चाहिए। प्रश्नशास्त्र में शिर आदि, कण्ठ आदि, बस्ति आदि अंगों का विभाजन द्रेष्काण के अनुसार नहीं करना चाहिए; बल्कि उपरोक्त विधि से करना

चाहिए। जातक शास्त्र में "कंदृक् श्रोत्रनसाकंपोलहन्वोवक्त्र" इत्यादि श्लोकोक्त पद्धति से प्रथम, द्वितीय और तृतीय द्रेष्काण के अनुसार शिर आदि, कण्ठ आदि और बस्ति आदि अंगों का विभाजन किया गया है, किन्तु प्रश्नशास्त्र में द्रेष्काण के स्थान पर चर, ऊर्ध्व, शीर्षोदय आदि के अनुसार उपरोक्त विभाजन प्रदर्शित किया गया है।

प्रश्नशास्त्र के अंगविभाग स्पष्टार्थ चक्र

लग्न स्थिति	भाव दाँये-बाँयें क्रम	अंग विभाग क्रम
१. चरराशि, ऊर्ध्वमुख या शीर्षोदय राशि	लग्न, २-१२, ३-११ ४-११, ५-९ ६-८, ७	मस्तक, नेत्र, कान नथुने, गाल, ठुड्डी के दोनों भाग, मुख
२. स्थिर राशि तिर्यङ्मुख या उभयोदय राशि	लग्न २-१२ ३-११, ४-१० ५-९, ६-८, ७	गला, कन्धे, दोनों हाथ, छाती, फेफड़े व हृदय, पेट का दायाँ बायाँ भाग, नाभि
३. द्विस्वभावराशि, अधोमुख, पृष्ठोदय राशि	लग्न २-१२ ३-११, ४-१० ५-९, ६-८, ७	नाभि, लिङ्ग व गुदा, दोनों अण्डकोष दोनों जाँघें, घुटने, पिंडलियाँ पैर।

यदि लग्न और उसके नवांश दोनों ही में चर राशि स्थित हो या दोनों में स्थिर राशि स्थित हो अथवा दोनों में द्विस्वभाव राशि स्थित हो तो चर आदि तीनों राशियों के अनुसार अङ्ग विभाग का चिन्तन करते हुए अंगों का निश्चय करना चाहिए।

यदि लग्न और उसके नवांश दोनों में भिन्न अर्थात् एक में चर और दूसरे में स्थिर या द्विस्वभाव राशियाँ हों तो ऊर्ध्वमुख, तिर्यङ्मुख और अधोमुख राशियों के अनुसार अङ्ग विभाग की व्यवस्थापना स्वीकार करनी चाहिए।

जिस-किसी भी राशि के नीच नवांश में या कन्या के अन्तिम अथवा तुला के प्रथम द्रेष्काण में सूर्य स्थित हो तो इसे अत्यन्त निर्बल माना है। अत: प्रश्न कुण्डली में अत्यन्त दुर्बल सूर्य होने पर शीर्षोदय, उभयोदय एवं पृष्ठोदय राशियों के अनुसार अङ्ग विभाग की कल्पना करनी चाहिए।

'कृष्णीयम्' ज्योतिष ग्रन्थ में लग्न आदि द्वादश भावों में जिस प्रकार सिर आदि अंगों को स्थापित किया गया है, उसे यहाँ कहा जा रहा है। प्रश्नशास्त्र में यही पद्धति ग्राह्य है। अत: इसी प्रकार से अंगों का विचार करना चाहिए।

सिर में लग्न स्थित है तथा उसके भोग्यांश एवं भुक्तांश क्रमश: सिर के दाहिने और बायें भाग होते हैं। लग्न के दाहिनी और बायीं ओर स्थित भाव क्रमश: दाहिने और बायें कान, आँख, नथुना, गाल, ठुड्डी एवं मुख माने जाते हैं।

इसी प्रकार लग्न आदि भाव, ग्रीवा, कन्धा, हाथ, कुक्षि, पीठ, हृदय, पेट एवं कमर में स्थित माने गए हैं।

बृहज्जातक के 'कंदृक् श्रोत्रनसाकपोलहन्वो०' इस श्लोक में आचार्य वराहमिहिर ने अंगों में लग्न आदि द्वादश भावों का जिस प्रकार समायोजन किया है, वह जातक शास्त्र में ग्राह्य है अर्थात् जन्मकुण्डली में उसके अनुसार विचार करना चाहिए न कि प्रश्न कुण्डली में।

इस प्रकार रोग के भेद, उपभेद आदि को जानकर उनकी समुचित चिकित्सा विधि का उपदेश करना चाहिए। तीव्र रोग होने पर उसकी शान्ति के लिए कर्म विपाकसंहिता में कहे गये प्रायश्चित आदि कर्म का सम्पादन करना चाहिये।



रोग प्रारम्भ-समाप्ति काल

प्रश्नलग्न के नक्षत्र से जितने संख्यक नक्षत्र पर चन्द्रमा स्थित हो, चन्द्रमा के उस नक्षत्र के आगे उतनी संख्या वाले नक्षत्र में रोग की शुरूआत बतलानी चाहिए।

अथवा यदि स्पष्ट गुलिक के नवांश या द्वादशांशस्थ चन्द्र के नक्षत्र में या स्पष्ट गुलिक और स्पष्ट चन्द्रमा दोनों के योग में स्थित नक्षत्र में अथवा पृच्छक के विपत्, प्रत्यरि या वध आदि अनिष्ट नक्षत्र में रोग का प्रारम्भ बतलाना चाहिए।

चन्द्रमा, सूर्य, गुरु और शनि चारों में से जो अधिक पापी हो, वह दूत के द्वारा उच्चारित वाक्य में प्रथम वर्ण की राशि से अत्यन्त दोषप्रद अष्टम स्थान में हो, तो रोग का प्रारम्भ कहना चाहिए।

रोग प्रारम्भ की दिशा

प्रश्न काल में कोई रोगी व्यक्ति अथवा रोगी के बारे में पूछने वाला दूत सर्वप्रथम जिस दिशा में दिखाई दे, उस दिशा में पृच्छक के रोग का प्रारम्भ होता है, समझना चाहिए।

रोगारम्भ के प्रहर

पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर जिस दिशा में दूत स्थित हो, सूर्योदय से गणना कर उस प्रहर में रोग पैदा होता है।

विशेष—सूर्योदय के समय से ७ घड़ी ३० पल का प्रत्येक प्रहर होता है। इस प्रकार एक अहोरात्र में आठ प्रहर होते हैं। यहाँ पूर्व आदि दिशा से आठ दिशाओं में क्रम से एक-एक प्रहर समायोजित कर इष्टकाल के अनुसार किस दिशाके किस प्रहर में रोग का प्रारम्भ हुआ, ज्ञात हो जाता है।

प्रश्न काल में रोगी या उसके दूत पर जितने लोगों की दृष्टि हो; रोगारम्भ काल में रोगी के पास उतने व्यक्ति होते हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि रोगी के पास उपस्थित जन की आयु, जाति और स्वरूप आदि भी दूत को देखने वाले जनों के समान होते हैं।

रोग कब से कब तक रहेगा?

रोगेश अर्थात् षष्ठेश या अष्टमेश या दोनों जिस राशि या भाव में बैठा हो; उसके भुक्त-भोग्य के अनुसार रोग के गत और गम्य काल की अधिकता या अल्पता को बतलाना चाहिए।

रोगारम्भ और रोग प्रकोप काल

षष्ठेश दिवाबली हो या षष्ठ स्थान में दिवाबली ग्रह स्थित हो, तो दिन में रोग का प्रारम्भ या प्रकोप तथा षष्ठेश रात्रिबली हो या षष्ठस्थान में रात्रिबली ग्रह स्थित हो तो रात्रि में रोग का प्रारम्भ या प्रकोप होता है।

विशेष—इस प्रकार आगत प्रसङ्ग में यह ध्यान देना चाहिए कि सूर्य, गुरु और शुक्र दिवाबली होते हैं और बुध हमेशा बलवान् रहता है एवं चन्द्र, मङ्गल और शनि रात्रि बली होते हैं।

कण्ठाभरण ग्रन्थानुसार रोगारम्भ काल

आरूढ़ राशि से षष्ठेश, जितनी संख्या आगे हो, प्रश्नकाल से उतने मास में रोग कहना चाहिए। अथवा आरूढ़ नक्षत्र से षष्ठेश, जितनी नक्षत्र संख्या आगे हो, प्रश्नकालिक सूर्य के नक्षत्र से आगे गणना द्वारा पड़ने वाले नक्षत्र पर सूर्य, जब जाता है, तब रोग कहना चाहिए।

अथवा प्रश्न काल में षष्ठेश के भुक्त नवांशों की संख्या से उसके काल अर्थात् वह अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, क्षण आदि में से जिसका प्रतिनिधि वह हो, उसको गुणा कर रोग के प्रारम्भ का समय बतलाना चाहिये।

रोग का प्रारम्भ और समाप्ति

षष्ठेश के आश्रित राशि में (गोचर क्रम से) चन्द्रमा के पहुँचने पर रोग का प्रारम्भ तथा चतुर्थेश की आश्रित राशि में चन्द्रमा के पहुँचने पर रोग की समाप्ति कहना चाहिए।

लग्न, लग्नेश और चन्द्रमा की पापग्रहों के साथ जब युति व दृष्टि हो, तो उस समय रोग उत्पन्न हुआ कहना चाहिए।

एवं उन तीनों की शुभ ग्रहों के साथ जब युति व दृष्टि का सम्बन्ध आगे आने वाले समय में होने वाला हो तब रोग की समाप्ति होगी बतलाना चाहिए। इन तीनों में से किसी एक के साथ जब शुभ ग्रहों की युति व दृष्टि होती है, उस समय से रोग कम होने लगता है।

प्रश्न लग्न में उदित नवमांश के स्वामी के द्वादशांश की राशि में चन्द्रमा के पहुँचने पर अथवा चन्द्रमा के गुलिक की राशि का अतिक्रमण करने पर रोग की समाप्ति अथवा शान्ति कहनी चाहिए।

यदि अष्टम स्थान (जन्म राशि से अष्टम स्थान) में गोचरस्थ चन्द्रमा के होने पर रोग उत्पन्न हुआ हो तो प्रश्न लग्न से अष्टम राशि का चन्द्रमा के द्वारा अतिक्रमण कर लेने पर रोग का शमन होता है।

रोगोत्पत्ति-समाप्ति के कारण तथा उपाय

दुष्ट या त्रिक या अनिष्ट स्थान में स्थित ग्रह के कारण रोग का आगमन और शुभ स्थान में स्थित ग्रह के कारण मन्त्र, बलिदान, पूजा, औषधि, देवपूजा और चिकित्सा आदि उपायों से उसकी शान्ति होती है, ऐसा अनुष्ठान पद्धति में कहा गया है।

दुःस्थानों में स्थित ग्रहों में से जो ग्रह अतिदोषकारक हो, उससे आश्रित राशि में गोचरस्थ चन्द्र सूर्य, गुरु, मङ्गल आदि ग्रहों के पहुँचने पर रोगारम्भ होता है। वह रोग अतिदोषप्रद ग्रह के स्वामी देवता के कोप से उत्पन्न हुआ मानना चाहिए।

शुभ स्थानों में स्थित ग्रहों में से जो शुभतम हो, उससे आश्रित राशि में गोचरस्थ चन्द्र आदि ग्रहों के पहुँचने पर और उस शुभतम ग्रह के स्वामी देवता की उपासना करने से रोग की शान्ति होती है; कहना चाहिए।

ध्यातव्य—षष्ठ, अष्टम और व्यय भाव को दुःस्थान, त्रिक या दुष्ट स्थान भी कहा जाता है। तथा जब ग्रह क्षीण, बलहीन, अस्त, नीचराशिगत, शत्रुराशिगत हो, तो वह अतिदोषप्रद माना गया है।

रोगारम्भ नक्षत्र से रोग शान्ति

यदि उत्तराषाढ़ा और मृगशिरा में रोग आरम्भ हो तो एक मास के पश्चात् धनिष्ठा, हस्त और मूल में रोग का प्रारम्भ हो, तो पन्द्रह दिन के पश्चात्; चित्रा, रोहिणी, भरणी और श्रवण में रोग का प्रारम्भ हो, तो ग्यारह दिन के पश्चात्; मघा में बीस दिन के पश्चात्; पुष्य, पूर्वा फाल्गुनी, ज्येष्ठा और उत्तरा भाद्रपद में सात दिन के पश्चात्; मूल, अश्विनी और कृत्तिका में नौ दिन के पश्चात् तथा अनुराधा और रेवती में रोग का प्रारम्भ हो, तो रोगी कठिनाई से स्वस्थ होता है।

ज्येष्ठा, स्वाति, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद आदि इन सात नक्षत्रों में उत्पन्न रोग मृत्युदायक होता है। छिद्र अर्थात् चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी तिथियों में और पापग्रहों के वार में कृत्तिका, धनिष्ठा, भरणी और शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न रोग भी मृत्युप्रदायक होता है।

रोगारम्भ काल से मृत्यु

अष्टमी, पर्व (अमावस्या और पूर्णिमा); रिक्ता (चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी) आदि तिथियों में और पापग्रहों के वार (रविवार, मंगलवार एवं शनिवार) में त्रिजन्मनक्षत्र, विपत्, प्रत्यरि और वध नक्षत्रों में चन्द्रमा के पहुँचने पर रोग उत्पन्न हो तो वह मृत्युदायक होता है।

रोग प्रारम्भ-समाप्ति काल

जन्म नक्षत्र, आधान नक्षत्र, अनुज जन्म नक्षत्र आदि तीनों को त्रिजन्म नक्षत्र कहा गया है।

यहाँ यह तात्पर्य है, जन्म नक्षत्र से तीसरा, पाँचवाँ और सातवाँ नक्षत्र, जो विपत्, प्रत्यरि और वध संज्ञक तारा होती हैं।

शूलचक्र वश मृत्यु

सूर्य नक्षत्र और आरूढ़ नक्षत्र से नौवाँ और इक्कीसवाँ नक्षत्र; इन छः नक्षत्रों में यदि रोग उत्पन्न हो, तो रोगी की मृत्यु कहनी चाहिए।

सूर्य के पार्श्ववर्ती नक्षत्र, आरूढ़ के पार्श्ववर्ती नक्षत्र और इन दोनों से नौवाँ, पन्द्रहवाँ और इक्कीसवाँ नक्षत्र; इन दस नक्षत्रों में रोग उत्पन्न हो तो रोग बढ़ता है और शेष बारह नक्षत्रों में रोग उत्पन्न हो, तो रोगी जीवित रहता है। यहाँ अभिजित के साथ अट्ठाइस नक्षत्र का ग्रहण किया गया है।

मृत्युयोग

नक्षत्र, वार, तिथि, शूलचक्र के नक्षत्र, जन्मनक्षत्र आदि पाँचों यदि रोगारम्भ के समय मृत्युदायक प्राप्त हों तो रोगी की निश्चित रूप से मृत्यु होती है।

द्वादशवर्षान्तर्गत बालरोगी

जन्मनक्षत्र से लेकर रोग प्रारम्भ वाले नक्षत्र तक गणना के पश्चात् उस प्राप्त संख्या को ३ से गुणा और ४ का भाग देना चाहिये।

इस प्रकार यदि १ शेष हो तो शीघ्र मृत्यु होती है। २ शेष हो तो धीरे-धीरे रोग बढ़ने से मृत्यु होती है। ३ शेष हो तो कष्ट से जीवन बचता है। और ० शेष हो तो रोग दूर करने का कोई प्रयास न करने पर भी बालक जीवित रहता है।

इस पद्धति से द्वादश वर्ष की आयु पर्यन्त के बालकों के रोगी होने के समय जीवन या मृत्यु का विचार करना चाहिए।

रोग की अवधि

षष्ठेश की मन्द गति होने पर या उसके स्थिर राशि में रहने पर रोगों का शमन शीघ्र हो जाता है; किन्तु उसके शीघ्र गति या चर राशि में होने पर रोग शीघ्र अच्छा नहीं होता।

यहाँ यह मत प्रश्नशास्त्र के अन्य आचार्यों के मतों से बिल्कुल भिन्न है। अन्य आचार्य स्थिर राशि में विलम्ब से रोग का शमन कहते हैं, तो चर राशि में शीघ्र रोग का शमन होना मानते हैं।

ध्यातव्य—जब ग्रहगति, उसकी मध्यमा गति से अल्प हो, तो उसे मन्दगति तथा उससे अधिक होने पर उसे शीघ्र गति कहते हैं।

दीर्घकालीन रोग

पापग्रहों का लग्न में स्थित होना, पापग्रहों का लग्न के दोनों ओर होना, लग्नेश की निर्बलता, उसका पापग्रहों के साथ या पापग्रहों के बीच में होना, चन्द्रमा का क्षीण होना,पापग्रहों के साथ या उनके मध्य में होना; क्षीण चन्द्रमा का बारहवें, छठे या आठवें स्थान में स्थित होना और उन स्थानों में पापग्रहों की स्थिति आदि योगों में से कोई यदि एक योग हो, तो बीमारी लम्बे समय तक चलती है।

यदि इन योगों में से अधिक योग हों तो बीमारी के लम्बे समय के बारे में क्या कहना? अर्थात् लम्बे समय तक रोग बना रहता है।

प्रश्न कुण्डली में इन योगों के रहने पर उत्पन्न रोग लम्बे समय तक चलता है।

ये ही योग जन्म लग्न में होने पर भी निश्चित रूप से स्वास्थ्य व शरीर को हानि पहुँचाने वाले होते हैं।

सायणोकृत असाध्य रोगोपचार प्रायश्चित

असाध्य रोगों के शमन के लिए उनका कथित सम्बन्धित प्रायश्चित्त करने चाहिए, इस प्रकार ऐसा सायण ने अपने ग्रन्थ कर्मविपाक संहिता में लिखा है।

जिस तरह सब प्रकार के कार्यों में सहायक सामग्री दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकार की होती है, उसी रोगों को दूर करने के लिए चिकित्सा भी औषधि और प्रायश्चित्त दोनों प्रकार की करनी चाहिए, ऐसा शास्त्रकारों का मत है।

इस प्रकार माता-पिता, पत्नि, पुत्र, भ्राता, बन्धु, मित्र एवं अन्य सम्बन्धियों की सहायता तथा स्वयं का बौद्धिक प्रयास दृष्ट सामग्री कहलाती है।

वरदान, आशीर्वाद, दैवीकृपा, प्रारब्धकर्मफल रूप भाग्य प्रयोग एवं व्रत-नियम व संयम आदि अदृष्ट सामग्री होती है।

रोग नाश के योग

समस्त कलाओं से सम्पन्न सम्पूर्ण शरीर वाला चन्द्रमा लग्न में स्थित हो और यदि वह गुरु से दृष्ट हो तो रोगी स्वस्थ हो जाता है।

अथवा प्रश्नलग्न से केन्द्र में गुरु और शुक्र दोनों के स्थित होने पर भी रोगी स्वस्थ हो जाता है।

चन्द्रमा प्रश्नलग्न से तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश आदि उपचय स्थान में स्थित हो और यदि शुभ ग्रह भी केन्द्र, त्रिकोण, द्वितीय एवं अष्टम स्थानों में हों तो रोगी अच्छा हो जाता है।

रोग प्रारम्भ-समाप्ति काल

अथवा प्रश्न कुण्डली में चन्द्रमा लग्न से उपरोक्त उपचय स्थान में हो और लग्न अशुभ ग्रहों से भी दृष्ट हो तो भी रोगी अच्छा हो जाता है।

प्रारब्ध फल रूप रोग के शमन

पूर्व-पूर्वजन्म में किया हुआ पाप कर्म रोग के रूप में उत्पन्न होता है। उसका निदान औषधि, दान, जप, होम और पूजा आदि के द्वारा सम्भव होता है।

रोगियों के रोग के कारण की अनेक प्रकारों से कल्पना की गयी है, जैसा कि देवता या राक्षस या भूत आदि के आवेश से, प्रतिकूल स्थान में ग्रह के गमन से और वात, पित्त एवं कफ के कुपित होने से रोग उत्पन्न होते हैं।

रोग की उत्पत्ति प्रायशः व्यक्ति के अपने किए कर्म फल रूप पापों के द्वारा होती है। इसी तथ्य को उक्त तीन प्रकारों में बतलाया गया है।

वस्तुतः मनुष्यों के रोगों की उत्पत्ति का एक ही पाप रूपात्मक हेतु या कारण तीन प्रकार का दिखलाई देता है।

ग्रहों का गोचर क्रम से अनिष्ट स्थानों में संचार करने से मनुष्यों को देवता अथवा असुरों की पीड़ा मिलती है और उसी से वात, पित्त, कफ आदि इन तीनों दोषों में विपर्यय होता है तथा इस विपर्यय से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

इन का एकमात्र कारण पूर्वकृत कर्मफल अपना पाप होता है। इसलिए रोगों की शान्ति के लिए विभिन्न रोगों के कथित प्रायश्चित्त ही उनकी वास्तविक चिकित्सा है।

विविध पापों के भेद, जिनसे रोग उत्पन्न होते हैं तथा प्रायश्चित्तों के भेद जिनसे रोग ठीक होते हैं; आदि का आचार्य सायण ने अपने कर्मविपाक नामक ग्रन्थ में विस्तार से उल्लेख किया है।

जैसे कि राजयक्ष्मा अर्थात् तपेदिक या टी.बी. आदि रोगों का कारण ब्रह्महत्या आदि पाप हैं तथा वस्त्र आदि का दान प्रायश्चित्त, उसके शांत करने का उपाय आदि बतलाया गया है।

इसी ग्रन्थ के तेईसवें अध्याय में कर्म विपाक को आगे कहना है, कि उससे प्रायश्चित्त जान कर रोग से मुक्त होने की कामना करने वालों को अवश्य प्रायश्चित्त करना चाहिए।

रोग निवृत्ति के उपाय

औषधि, पथ्य आहार, तैल-अभ्यङ्ग, शयन आदि विश्राम का अवसर चारों चीजों के रूप में रोग की निवृत्ति हेतु रोगी को विश्वासपूर्वक देना ही चाहिए।

सभी प्रकार के रोगों की शान्ति के लिए मृत्यंजय मन्त्र से हवन करना चाहिये तथा सभी प्रकार के हवनों में ब्राह्मण-भोज करना चाहिए इस प्रकार प्रामाणिक आचार्यों का आदेश है।

मृत्युञ्जय मन्त्र से किया जाने वाला यह हवन तीव्र ज्वर तथा अभिचार अर्थात् मरण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, वशीरकण आदि तान्त्रिक प्रक्रिया को शान्त करने वाला कहा गया है।

केवल आयु की वृद्धि के लिए ही नहीं करना चाहिए, अपितु समस्त शारीरिक कष्टों से छुटकारा पाने के लिए इसको करना श्रेयस्कर है।

संजीवनी बूटी के समान प्रभाव डालने वाला यह मृत्युञ्जय हवन आठ हजार आहुति के साथ सम्पन्न करने से तीव्र ज्वर, तीव्रतर अभिचार, उन्माद (पागलपन), दाह रोग, मूर्च्छा आदि में भी शीघ्र शान्ति प्रदान करने वाला होता है।

इस प्रकार रोगादि शान्ति के लिए किए जाने वाले शान्तिक और आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य पाने के लिए किया जाने वाला पौष्टिक कर्म में तथा वशीकरण में जितनी आहुति दी गई हों, उतने ही ब्राह्मणों को भोजन कराना औचित्यपूर्ण समझा जाता है।

यहाँ ध्यानार्ह है कि जप की संख्या का दशमांश हवन किया जाता है। अतः जपसंख्या के दसवें भाग के समान विप्रभोजन बताया गया है। वैसे अशक्ति में यथाशक्ति करना चाहिए।



द्वादश भाव निरूपण

अज्ञात आयु वाले पृच्छक के प्रश्नों का भी फल सुत या पञ्चम आदि भावों से कहना चाहिए। उन भावों का विचार पृच्छक की अवस्था जानकर आसानी से किया जा सकता है। अत: उसकी अवस्था या आयु जानने की विधि को भी कहा जा रहा है।

पृच्छक की अवस्था

यदि मंगल और बाल चन्द्रमा लग्नेश हो, तो प्रश्नकर्त्ता पाँच वर्ष की अवस्था से छोटा होता है।

बुध लग्नेश हो, तो पृच्छक आठ वर्ष से छोटा और शुक्र लग्नेश हो, तो पृच्छक सोलह वर्ष से छोटा होता है।

गुरु के लग्नेश होने पर पृच्छक तीस वर्ष से छोटा तथा सूर्य और वृद्ध चन्द्रमा के लग्नेश होने पर पृच्छक सत्तर वर्ष से छोटा होता है।

शनि के लग्नेश होने पर पृच्छक सत्तर वर्ष से अधिक आयु का होता है।

उपरोक्त ग्रहों के लग्न में स्थितिवश भी प्रश्नकर्त्ता की उपरोक्त आयु या अवस्था कहनी चाहिए।

लग्न के योग्य विषय

शरीर की सुन्दरता, स्वास्थ्य, पृच्छक की स्थिति, श्रेय, यश, सुख, विजय, शरीर आदि सब विषयों का लग्न से विचार करना चाहिए।

द्वितीय भाव के योग्य विषय

भरण-पोषण से सम्बन्धित समस्त वस्तुएँ, धन, वाणी, दाहिना नेत्र, विविध प्रकार के कला या विद्या आदि सब विषयों का विचार द्वितीय भाव से करना चाहिए।

तृतीय भाव के योग्य विषय

धैर्य, पराक्रम, दुर्बुद्धि, भाई, दाहिना कान, सहायक या सेवक आदि विषयों का विचार तृतीय भाव से करना चाहिए।

चतुर्थ भाव के योग्य विषय

माता, मित्र, मामा, भानजा, खेतया भूमिजायदाद, सुख, वाहन, आसन, लालित्य, जल, शयन, वृद्धि, पालतू पशु आदि और जन्म स्थान इन सब विषयों का चतुर्थ भाव से विचार करना चाहिए।

पंचम भाव के योग्य विषय

प्रज्ञा, प्रतिभा, मेधा, विवेकशक्ति, पूर्व जन्म में अर्जित पुण्य, मन्त्र, अमात्य (मन्त्री), पुत्र और मानसिक सन्तोष आदि विषयों का पंचम भाव से विचार करना चाहिए।

षष्ठ भाव के योग्य विषय

चोर, शत्रु, विघ्न, मानसिक और शारीरिक रोग, शरीर में चोट, शत्रु या शस्त्र से मृत्यु आदि सब विषयों का विचार षष्ठ भाव से करना चाहिए।

सप्तम भाव के योग्य विषय

विवाह, काम या प्रणय, व्यापार, स्त्री-पुरुष समागम, शय्या, पत्नी, घर, चोरी गया धन, सम्भोग आदि विषयों का विचार सप्तम स्थान से करना चाहिए।

अष्टम भाव के योग्य विषय

सर्वनाश, विपत्ति, अपवाद, मृत्यु के कारण और स्थान, दास, मठ (छात्रावास), घर, रोग, विघ्न-बाधाएँ इन विषयों का विचार अष्टम भाव से करना चाहिए।

नवम भाव के योग्य विषय

भाग्य, धर्म, दया, पुण्य, तपस्या, पिता, शिष्य, पुत्र, दान, उपासना, सदाचार, गुरु आदि विषयों का नवम स्थान से विचार करना चाहिए।

दशम भाव के योग्य विषय

मन्दिर, नगर, सभागार, रास्ते में पड़ने वाले विश्रामालय, धर्मशाला, प्याऊ एवं भोजनालय आदि मकान, नौकर, नौकरी, सभी प्रकार के कार्य व्यापार आदि आज्ञा, आश्रय अर्थात् आजीविका का साधन सब विषयों का विचार दशम भाव से करना चाहिए।

एकादश भाव के योग्य विषय

सभी इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति (लाभ), बड़ा भाई, उत्पन्न बच्चे (पुत्र आदि), बाँया कान; धन आदि लाभ इस विषय का विचार एकादश भाव से करना चाहिए।

द्वादश भाव के योग्य विषय

पाप, व्यय, पतन, नुकसान, बायाँ नेत्र, स्थानच्युति, विफलता आदि विषयों का विचार, द्वादश भाव से करना चाहिए।

केन्द्र योग्य विशेष कथन

लग्न से संचार और गतिविधि का विचार करना चाहिए। चतुर्थ स्थान से शयन, सप्तम से उपभोग और दशम से स्थिति का विचार करना चाहिए।

चतुर्थ स्थान से भूमि के गर्भगत अर्थात् कुआँ, तालाब, बावड़ी आदि का जल, सप्तम स्थान से नदी के जल का प्रवाह या नदी मार्ग से यात्रा, दशम स्थान से वर्षा होना और लग्न स्थान से उपरोक्त तीनों का फल कहना चाहिए।

भोजन और राजा के सम्बन्धी प्रश्न

भोजन के प्रश्न और राजा से सम्बन्धित प्रश्न में द्वादशभावों से विशेष विषयों का विचार किया जाता है।

यहाँ लग्न आदि द्वादश भावों से क्रमशः विचारणीय विषयों को लिखा जा रहा है।

भोजन सम्बन्धी प्रश्न में लग्न आदि द्वादश भावों से क्रमशः भोजन करने वाले की शरीरिक स्थिति, भोजन का पात्र, भक्ष्य (खाने की चीजें), पेय, भोजन करने वाले के मनोभावों, व्यंजन, तक्र (मट्ठा) आदि पेय, अन्न, साथ में खाने वाले, तृप्ति, भोजन के समय की वार्ता या चर्चा और भोजन के बाद विश्राम आदि सब विषयों का विचार करते हैं।

द्वादश भाव और भोजन प्रसङ्ग स्पष्टार्थ चक्र

लग्न	द्वितीय भाव	तृतीय भाव	चतुर्थ भाव	पंचम भाव	षष्ठ भाव	सप्तम भाव	अष्टम भाव	नवम भाव	दशम भाव	एकादश भाव	द्वादश भाव
भोक्ता शारीरिक स्थिति	भोजन पात्र	भक्ष्य पदार्थ	पेय	भोक्ता का मनोभाव	सेंचन तक्र आदि पेय	अन्न	सह भोक्ता	तृप्ति	भोजन कालिक कथा	विश्राम	शयन

राजा से सम्बन्धित प्रश्न में लग्न आदि द्वादश भावों से क्रमशः राजा का शरीर, राजकोष, योद्धा या सैनिक, वाहन, मन्त्र (मन्त्रणा), शत्रु अर्थात् विरोधी दल एवं शत्रु देश, आचार और विचार धारा, राजा का जीवन काल, राजा की मनोवृत्ति, राजकार्य, राजस्व, राज्य का घाटा आदि विषयों का विचार करना चाहिए।

द्वादश भाव और राजा प्रसङ्ग स्पष्टार्थ चक्र

लग्न	द्वितीय भाव	तृतीय भाव	चतुर्थ भाव	पंचम भाव	षष्ठ भाव	सप्तम भाव	अष्टम भाव	नवम भाव	दशम भाव	एकादश भाव	द्वादश भाव
राजा का शरीर	राज कोष	सैनिक	वाहन	मंत्रणा	शत्रु	विचार धारा	आयु	राजा की मनो-वृत्ति	राज कार्य	राजस्व	घाटा

द्वादश भावों के भेद

भीतरी व बाहरी विभाग में ध्यान से देखने पर पता चलता है कि आन्तरिक भाव भीतरी वस्तु किसी भाव, अनुभूति या संवेग से सम्बन्धित हैं, जबकि बाह्य विभाग में भौतिक रूप से प्रत्यक्ष दीखने वाले पदार्थों का ग्रहण है।

बाह्य और आभ्यन्तर भावों के भेद से दो प्रकार के भाव होते हैं। तनु, कुटुम्ब, भ्रातृ बन्धु, पुत्र, शत्रु, स्त्री, मृत्यु, भाग्य, कर्म, आय, व्यय आदि द्वादश बाह्य भाव जानने चाहिए तथा कलि, धन, विक्रम,गृह, प्रतिभा, क्षत, मनोज, रन्ध्र, गुरु, मान, आय, व्यय आदि द्वादश आभ्यन्तर भाव मानने चाहिए।

भावभेद ज्ञापक चक्र

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
आभ्यन्तर भाव	तनु	धन	भातृ	मातृ	पुत्र	शत्रु	स्त्री	मृत्यु	भाग्य	कर्म	आय	व्यय
बाह्य भाव	कलि	धनि	विक्रम	गृह	प्रतिभा	घाव	काम	रन्ध्र	गुरु	मान	आय	कम

बाह्य और आभ्यन्तर भाव का अन्तर

जो-जो विषय लग्न आदि भावों से विचारणीय हैं, उस भाव के साथ उसके स्वामी का योग अर्थात् भाव में भावेश की स्थिति हो, तो वे सब विषय आभ्यन्तर भाव से सम्बद्ध होते हैं और भाव के साथ उसके स्वामी का समागम या संयुति नहीं हो, तो बाह्य भाव से सम्बद्ध होता है।

अङ्गों के प्रतिनिधि भाव

लग्न आदि द्वादश भाव क्रमशः सिर, मुख, कण्ठ, कन्धा, हृदय, पेट, बस्तिप्रदेश, गुप्ताङ्ग, ऊरु, जानु, जंघा, पैर आदि शरीर के द्वादश अंगों के प्रतिनिधि होते हैं, शेष सब चक्र से स्पष्ट है।

भाव और अङ्ग स्पष्टार्थ चक्र

भावनाम	प्रथमभाव	द्वितीयभाव	तृतीयभाव	चतुर्थभाव	पंचमभाव	षष्ठभाव
अंग	सिर	मुख	कंठ	कन्धा	हृदय	पेट
भावनाम	सप्तमभाव	अष्टमभाव	नवमभाव	दशमभाव	एकादशभाव	द्वादशभाव
अग	बस्ति	गुप्ताग	ऊरु	जानु	जघा	पैर

अंङ्गों की ह्रस्वता और दीर्घता

लग्न भाव में स्थित राशि के अनुसार अंगों की ह्रस्वता और दीर्घता का

विचार करना चाहिए अर्थात् अंग के प्रतिनिधि भाव में दीर्घराशि के होने पर वह अंग दीर्घ तथा ह्रस्व राशि के होने पर वह अंग ह्रस्व होता है।

अत: फलादेश में प्राय: यही सिद्धान्त विद्वानों को भी व्यवहार करते देखा जाता है।

यहाँ मेष, वृष, कुम्भ, मीन राशियाँ ह्रस्व हैं। मिथुन, कर्क, धनु, मकर, राशियाँ सम हैं और सिंह कन्या, तुला, वृश्चिक राशियाँ दीर्घ हैं।

यही मत सारावली, जातक पारिजात आदि का है, जिसे विद्वज्जनों के बीच भी प्रमाणिक माना जाता है।

भाव ह्रानि और वृद्धि

इसी प्रकार लग्न की राशि स्वयं प्रश्नकर्त्ता का होता है तथा अन्य जैसे द्वितीय भाव उसके धन आदि के प्रतिनिधि होते हैं। अत: इन भावों का प्रतिनिधि शुभ ग्रह हो, तो वृद्धि और पाप ग्रह हो, तो हानि होती है।

एवं लग्नादि द्वादश भाव में से जो कोई भी भाव अपने स्वामी ग्रह से युक्त या दृष्ट हो अथवा वह भाव शुभ ग्रह से युक्त हो तो उस भाव की वृद्धि होती है।

इसी प्रकार जो कोई भी भाव पापग्रह से युक्त हो तो उस भाव की हानि होती है।

इस तरह प्रश्न लग्न अथवा जन्म लग्न से ग्रह का भाव के साथ युति और दृष्टि के आधार पर उनके फल की ह्रास और वृद्धि की कल्पना करनी चाहिए।

भट्टोत्पल ने आर्यासप्तति में इस प्रकार लिखा है कि प्रश्न कुण्डली में जो-जो भाव अपने स्वामी से दृष्ट अथवा युक्त हो अथवा वह गुरु, बुध या शुक्र या दो या तीनों से दृष्ट या युक्त हो तो उस भाव से शुभफल की प्राप्ति कहनी चाहिए।

जिस-जिस भाव में शुभ ग्रह स्थित हों या उस विचारित भाव से दूसरे, बारहवें और सातवें भाव में शुभ ग्रह हों, तो उस-उस भाव की वृद्धि होती है।

इसी प्रकार विचारित भाव से दसवें और चौथे स्थान में भी शुभ ग्रह हो, तो भी उसकी वृद्धि होती है।

भाव फल नाश

षष्ठ, अष्टम, द्वादश आदि भावों के स्वामी तथा किसी भावेश के शत्रु शुभ ग्रह भी अपने प्रभाव द्वारा भाव के फल का नाश करते हैं।

भाव, भावेश और भाव के कारक ग्रह की निर्बलता से भी भाव के फल का नाश होता है, इस प्रकार से आचार्यों का कथन प्रमाण है।

इस प्रकार त्रिकालदर्शी मुनिजनों ने षष्ठ, द्वादश और अष्टम भाव को अनिष्ट फलकारक माना है।

उन भावों के स्वामी या त्रिकेश अर्थात् षष्ठेश, द्वादशेश और अष्टमेश से जिस भाव का स्वामी युक्त या दृष्ट हो अथवा जो भाव उन त्रिकेश से युक्त या दृष्ट हो या जो भावेश ग्रह इन (षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश) भावों में स्थित हो, तो इन तीनों स्थितियों में विचारित भाव का नाश होता है।

यदि उस विचारित भाव का कुछ फल उत्पन्न भी हो जाए तो वह नष्ट या विफल हो जाता है। यहाँ इन तीनों भावों में से अष्टम भाव अत्यन्त कष्टकारक माना गया है।

भावाधीश, भाव और भाव के कारक ग्रह निर्बल हो, दो पाप ग्रहों के बीच में हो; पाप ग्रह और शत्रु ग्रह से दृष्ट तथा अन्य शुभ और मित्र ग्रह से अदृष्ट हो, तो उस भाव की हानि होती है।

एवं उस भाव से चौथे, आठवें और बारहवें स्थान में पापग्रह हो; तो उस भाव की हानि हाती है।

उपरोक्त प्रकार के योगों में से दो या तीन योग एक साथ किसी कुण्डली में उपलब्ध हों तो उसके प्रभाववश निश्चित रूप से भाव की हानि कहनी चाहिए।

ग्रहों के कारकत्व

पिता और आत्मा का सूर्य; मन और माता का चन्द्रमा; बल, भाई और भूमि का मंगल; वाणी और ज्ञान का बुध; बुद्धि, ज्ञान, पुत्र और सुख का गुरु; स्त्री, भोगोपभोग और वाहन का शुक्र तथा मृत्यु, रोग (व्याधि), सेवक और मृत्यु आदि का कारक शनि कहा गया है।

ग्रह कारक ज्ञापक चक्र

ग्रह नाम	सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
कारक-त्व प्रभाव	पिता आत्मा	मन माता	भ्राता बल भूमि	वाणी ज्ञान	बुद्धि ज्ञान पुत्र सुख	स्त्री भोग वाहन	मृत्यु रोग दास भृत्य

कारकत्व का प्रयोजन

आचार्य वराहमिहिर के लघुजातक ग्रन्थ की यह उक्ति है, जिसके अनुसार आत्मा आदि तत्वों के कारक ग्रह बलवान् होने पर ये आत्मादि तत्त्व भी बलवान् होते हैं और यदि इनके कारक ग्रह दुर्बल हों तो उक्त तत्त्व भी दुर्बल माने जाते हैं।

किन्तु इस प्रसंग में शनि निर्बल हो तो सुख आदि शुभ फल और बलवान् हो तो दुख आदि अशुभ फल अधिक मिलता है।

वाराहमिहिराचार्य कृत् बृहज्जातक ग्रन्थ में 'अर्कांशे तृणकनकोर्ण भेषजाद्यैः' 'सौर्या स्वं नखदन्तचर्मकनकक्रौर्चाध्वभूपाहवैः०' तथा 'तातश्चात्मप्रभावो घुर्माणरथ०'' उक्त तीनों श्लोकों में सूर्य आदि ग्रहों को जिन-जिन वस्तुओं का कारक कहा गया है, उन सभी वस्तुओं की पुष्टि अथवा वृद्धि और नाश या हानि में उसी ग्रह का प्रभाव मानना चाहिए।

उसी प्रकार भाग्य आदि अभीष्ट (शुभ) भावों का स्वामी पाप ग्रह भी भाव की पुष्टि करने या चाहने वाला होता है। जिस प्रकार वराहमिहिराचार्य ने 'लग्नात्पुत्रकलत्रभे शुभपति प्राप्ते०' इस श्लोक मे स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किया है।

शुभ और पाप फल वृद्धि

शुभप्रद ग्रह प्रबल हो, तो शुभ फल की अभिवृद्धि होती है और दोषकारक (अशुभ फलदायक) ग्रह निर्बल हो, तो दोषों की अर्थात् अशुभ फलों की वृद्धि होती है। इसी प्रकार इन ग्रहों से युक्त भाव आदि का फल भी समझना चाहिए।

उपरोक्त सिद्धान्त का दृष्टान्त

इस प्रकार बलरहित पापग्रह वह पंचम भाव में स्थित होने पर पुत्र का नाश करने वाला होता है तथा अष्टम भाव के स्वामी को छोड़कर अन्य कोई भी भावेश शुभग्रह होने के साथ बलवान् होकर भी पंचम स्थान में स्थित हो तो पुत्रदायक होता है।

पंचम में बली पाप ग्रह व अकेला शनि भी पुत्र अवश्य देने वाला होता है, इस प्रकार अनुभव व्यवहार से आता है।

ग्रह का पूर्ण शुभ और अशुभ फल

तथा जिस ग्रह की युति, दृष्टि या योग से जो भी शुभ या अशुभ फल होता है तथा वह ग्रह बलवान् हो तो अपना सम्पूर्ण शुभ फल तथा दुर्बल होने पर अपना सम्पूर्ण अशुभ फल देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शुभ फलप्रद ग्रह बलवान् हो, तो अपना पूर्ण शुभफल देता है और अशुभ फलदायक ग्रह निर्बल हो, तो अपना पूर्ण अशुभ फल देने वाला होता है।

विरोधी फल में सामन्जस्यस्थापन

जो ग्रह इष्ट भावों में वर्गोत्तम नवांश, स्वांश और शत्रु के नवांश में स्थित हो, तो वह अपना कथित शुभ फल क्रमशः पूर्ण, मध्य और अल्प मात्रा में पृच्छक को प्रदान करता है तथा यदि वह अनिष्ट भावों में क्रमशः शत्रु नवांश, स्वांश और वर्गोत्तम नवांश में स्थित हो तो अपना धन नाश और रोग आदि जैसे कथित अशुभ फल भी यथाक्रमेण पूर्ण, मध्य और अल्प मात्रा में प्रदान करता है।

भाव फल की अनुभूति

जिस भाव का स्वामी और कारक बलवान् होकर इष्ट भावों में स्थित हों, वह भाव निश्चित रूप से मनुष्यों को अपने फल की अनुभूति कराने में समर्थ होता है तथा जिस भाव के स्वामी तथा कारक ग्रह द्वादश, षष्ठ और अष्टम स्थान में निर्बल होकर स्थित हों, तो वह भाव मनुष्यों को अपना फल नहीं दे पाता।

अतः उसके द्वारा प्रदत्त फल की अनुभूति की चर्चा का प्रश्न ही नहीं उठता।

जिस किसी भाव के स्वामी और कारक उच्च आदि राशियों में होकर अष्टम आदि अनिष्ट भावों में स्थित हों, तो भी वह भाव प्रबल अथवा समर्थ होता है, किन्तु मनुष्यों को उसके फल की अनुभूति नहीं होती।

परन्तु जिस-किसी भाव के स्वामी और कारक नीच आदि राशियों में निर्बल होकर शुभतर लाभ आदि भावों में स्थित हों, तो वह भाव निर्बल होता है, फिर भी इसके फल की अनुभूति होती है एवं भाव के स्वामी और उसके कारक के बल से उस भाव की प्रबलता और इनके निर्बल होने से उस भाव की निर्बलता कही गई है।

किन्तु फल की अनुभूति इष्ट या शुभ स्थान में स्थित होने पर ही होती है। उसके अनिष्ट स्थान में स्थित होने पर नहीं। अतः उपरोक्त दोनों श्लोकों में इसी सिद्धान्त को बतलाने की चेष्टा की गयी है।

इस प्रकार भाव के स्वामी और कारक इन दोनों में से एक बलवान् होकर इष्ट स्थान में स्थित हो तथा अन्य इसके विपरीत (निर्बल होकर अनिष्ट स्थान में) हो तो इस मिली-जुली स्थिति में उपरोक्त विधि से फल की कल्पना कर लेनी चाहिए।

इस स्थिति में फल का सर्वथा अभाव या उसकी पूर्ण पुष्टि भी नहीं होती तथा इसी प्रकार उसकी पूर्ण अनुभूति या सर्वथा अनुभूति भी नहीं होती।

इसलिए यहाँ फल की कल्पना करने के लिए बतलाया गया है।

प्रत्येक विचारित भाव से उसके स्वामी इष्ट स्थान में हो, तो उस भाव की पुष्टि होती है तथा विचारित भाव से अनिष्ट स्थान में भावेश हो, तो उस भाव की हानि या विपत्ति होती है।

इसी प्रकार लग्न से इष्ट स्थान में विचारित भाव के स्वामी हो, तो फल की अनुभूति होती है और लग्न से अनिष्ट स्थान में विचारित भाव के स्वामी हो, तो फल की अनुभूति नहीं होती है; इस प्रकार का भी किसी आचार्य का मत है।

यहाँ ग्रन्थान्तर में कहा गया है कि—

अत: जिस-जिस भाव का लग्न या लग्नेश से दृष्टि, युति या केन्द्र स्थितिवश सम्बन्ध हो, तो उस भाव के फल का ही अनुभव होता है।

ग्रहों के इष्ट और अनिष्ट भाव

शुभ ग्रहों के लिए द्वादश, अष्टम, षष्ठ और तृतीय भाव नेष्ट तथा शेष भाव इष्ट तथा पापग्रहों के लिए षष्ठ, तृतीय और एकादश भाव इष्ट तथा शेष अनिष्ट होते हैं।

वैसे लग्न आदि द्वादश भावों में लग्न की प्रधानता है तथा पंचम और नवम भाव भी लग्न के ही समान होते हैं।

इसलिए इन तीनों अर्थात् लग्न, पंचम एवं नवम भाव में शुभ ग्रहों का अधिक शुभ फल तथा पापग्रहों का अधिक पाप फल पाप्त होता है।

दृष्टान्त स्वरूप कथन

सूर्य आदि पाप ग्रह षष्ठ स्थान में स्थित होने पर ताँबा, सोना, आदि धातुओं का लाभ कराते हैं।

किन्तु रोग आदि अशुभ प्रश्नों में ये पाप ग्रह भी षष्ठ स्थान में स्थित होकर अपने रोगों को उत्पन्न करते हैं।

लघुजातक में कहा गया है कि—

लग्न आदि भावों में स्थित शुभ ग्रह भावों की पुष्टि करते हैं और पाप ग्रह भावों को नष्ट करते हैं।

शुभग्रह षष्ठ स्थान में होने पर शत्रुनाशक होते हैं तथा सभी ग्रह व्यय और अष्टम स्थान में नेष्ट होते हैं।

दु:स्थान और शुभ स्थान में ग्रह स्थित होने पर जो अशुभ और शुभ दशाफल कहे गए हैं, उस समस्त फल को प्रश्न में भी कहना चाहिए।

बृहज्जातक के संज्ञाध्याय में कथित इष्ट और अनिष्ट स्थान में स्थित शुभ और अशुभ फलप्रद का समस्त फल भी प्रश्नकुण्डली में प्रयुक्त करना चाहिए।

भाव विपत्ति एवं अङ्ग में रोग

लग्नादि भाव अपने अष्टमेश या शनि से जब गोचर में संयुक्त हों अथवा विचारित भाव से षष्ठ, द्वादश और अष्टम स्थानों के स्वामी इन्हीं में से किसी एक के साथ स्थित हों तो निश्चित रूप से उस विचारणीय भाव की विपत्ति अर्थात् भाव का अपना ही मौलिक फल की हानि होती है।

इसी प्रकार 'शीर्षमुखबाहुहृदयोदरकटिवस्ति०' इत्यादि श्लोकोक्त अंगों के प्रतिनिधि-भावों में क्रम से उस भाव के अष्टमेश या शनि के होने पर प्रश्नकर्त्ता के शरीर के उस अङ्ग में विद्वान् रोग बताते हैं।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब पंचम भाव अपने अष्टमेश (लग्न से व्ययेश) से या शनि से गोचरीय क्रम से युक्त हो, अथवा पंचम भाव से षष्ठम, अष्टम और द्वादश स्थान के स्वामी (लग्न से दशमेश, व्ययेश एवं चतुर्थेश) उक्त स्थानों में से किसी एक स्थान में स्थित हों तो पंचम स्थान के अपनें मौलिक फल अर्थात् पुत्र एवं उदर पर विपत्ति अर्थात् पुत्रनाश एवं उदररोग कहा जाता है।

यहाँ पर सिर का प्रतिनिधि लग्न, मुख का प्रतिनिधि द्वितीय भाव है, अतः इसी क्रम से फल बताना चाहिए।

अतएव लग्नादि भावों में स्थित पाप और शुभ ग्रहों का योग हो, तो उनके फल को एक स्थान पर युक्त करके कथन करना चाहिए।

पाठक की सुविधा के लिए अब फल निर्देश की पद्धति को कहा जाता है।

लग्नस्थ पाप और शुभ ग्रह का फल

यदि लग्न में पाप ग्रह हो, तो पराजय, सिर में रोग, दुःख, अपकीर्ति, स्थानच्युति, धननाश, समस्त शरीर के अंगों में विकार अथवा सम्पूर्ण स्वास्थ्य का नाश या शारीरिक दुःख कहना चाहिए।

द्वितीय भावस्थ पाप और शुभ ग्रह फल

यदि द्वितीय भाव में पाप ग्रह हो, तो स्वयं अपने द्वारा पूर्वसंचित द्रव्य का नाश, मुख रोग, कुटुम्बियों को रोग, दाहिने नेत्र में विकार, कठोर वाणी और घरेलू पात्र आदि सामग्री की क्षति होती है।

यदि शुभ ग्रह द्वितीय भाव में हो, तो अपने पूर्व अर्जित सम्पत्ति की वृद्धि, पात्र आदि की प्राप्ति, कुटुम्ब में प्रसन्नता और सुख सौख्यपूर्ण रूप फल पृच्छक को प्राप्त होता है।

तृतीय भावस्थ पाप और शुभ ग्रह फल

यदि तृतीय भाव में पाप ग्रह हो, तो सहायकों की हानि, सहोदर भाईयों को रोग आदि से कष्ट, छाती एवं दाहिने कान में रोग, बुद्धि भ्रम और धैर्य का नाश होता है।

यदि तृतीय स्थान में शुभ ग्रह हो, तो भाई और सहायकों को आरोग्यता आदि के साथ पृच्छक को अच्छा लाभ होता है और सद्बुद्धि का उदय, धैर्य की वृद्धि आदि शुभ फल भी मिलता है।

चतुर्थ भावस्थ शुभ व पाप ग्रह फल

यदि चतुर्थ भाव में पापग्रह हो, तो माता, मामा, भानजा आदि और मित्र को रोग और कष्ट मिलता है। गौ आदि पालतू पशु, मकान, शय्या, आसन (घरेलु फर्नीचर), खेत एवं वाहन आदि की हानि, हृदय रोग और कष्ट मिलता है तथा कुएँ का जल खराब हो जाता है।

चतुर्थ स्थान में शुभ ग्रह हो, तो खेत या भूमि, गौ आदि पालतू पशु, शय्या, आसन (घरेलू उपकरण) के साथ मकान, वाहन एवं मित्र आदि का लाभ और सुख की प्राप्ति होती है।

पंचम भावस्थ पाप एवं शुभ ग्रह फल

यदि पंचम भाव में पाप ग्रह हो, तो इस दोष के कारण मूर्च्छा या मानसिक रोग और मृत्यु होती है अथवा पुत्र एवं पूर्व अर्जित पुण्य का नाश तथा मन में कुण्ठाएँ उत्पन्न होती हैं; इस प्रकार कहना चाहिए। साथ ही क्रोध की वृद्धि, मन्त्री अथवा सलाहकारों को रोग होता है।

यदि इस भाव में शुभ ग्रह हो, तो पुत्र का लाभ या उसकी आरोग्यता, बुद्धि एवं प्रतिभा में उत्कर्ष, मन में संतोष और पुण्यों का उदय होता है।

षष्ठ भावस्थ पाप एवं शुभ ग्रह

यदि षष्ठभाव में पाप ग्रह हो, तो षष्ठ भवन अर्थात् रोगभाव से सम्बन्धित अंग में चोट आदि घाव लग जाता है तथा चोर और शत्रु से कष्ट, नाभि और कमर में रोग, सभी कार्यों में विघ्न बाधाएँ आना और उस पाप ग्रह के दोष अर्थात् वात एवं कफ आदि से रोग उत्पन्न होते हैं।

यदि इस भाव में शुभ ग्रह हो, तो पृच्छक के शत्रुओं का नाश, उसको रोगों का अभाव और दीर्घकाल से चले आ रहे रोगों की समाप्ति कहनी चाहिए।

सप्तम भावस्थ पाप एवं शुभ ग्रह

यदि सप्तम स्थान में पापग्रह हो, तो पत्नी की मृत्यु, उसको रोग या उसका वियोग, प्रश्नकर्त्ता यदि स्त्री हो, तो उसके पति की मृत्यु, उसको रोग या उसका वियोग होता है।

साथ ही यात्रा में विघ्न और मूत्रकृच्छ्र अर्थात् बस्ति एवं गुर्दे में संक्रमण से उत्पन्न होने वाले रोग होते हैं।

यदि सप्तम स्थान में शुभ ग्रह हो, तो विवाह होना, नष्ट धन अर्थात् चोरी गए या अपहृत या खोए हुए द्रव्य का लाभ, मित्र का मिलन, भोगों की प्राप्ति, विदेश यात्रा तथा वाहन, मित्रों आदि का लाभ होता है।

यदि सप्तम भाव पाप युक्त हो, तो घर एवं स्त्री आग आदि से जल जाते हैं; परन्तु सप्तमभाव बलवान् शुभ ग्रह से युक्त हो, तो स्त्री को घर में रखना सम्भव होता है अर्थात् स्त्री की दीर्घायु होती है।

अष्टम का शुभ पाप-फल

यदि पापग्रह अष्टम भाव में हो, तो सेवकजनों को रोग, कार्यों में विघ्न, गुप्तरोग, लोगों से विवाद अथवा मतभेद तथा चोर, राजा अथवा शत्रु से धन का अपहरण हो जाता है। साथ ही अरुचि आदि रोग और अपमृत्यु होती है।

इस प्रकार अष्टम भावस्थ पापग्रह से जो फल कहा गया है, शनि के लिए उपयुक्त नही प्रतीत होता है; क्योंकि किसी का मत है कि यहाँ शनि आयुष्य की वृद्धि करता है।

यदि अष्टम भाव में शुभ ग्रह हो, तो स्वास्थ्य लाभ और दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

चूँकि अष्टम स्थान में पाप ग्रह के होने पर लोकापवाद और मठ पर आपत्ति भी आती है तथा इस स्थान में स्थित शुभ ग्रह मठ एवं विद्यालय आदि को सम्पत्ति भी प्रदान करता है।

नवम भावस्थ पाप और शुभ ग्रह

नवम भावस्थ पापग्रह गुरुजन, पिता एवं पौत्र आदि को रोग, भाग्य हानि, धर्माचार्य के अनुग्रह, पुण्य एवं तप की हानि तथा प्रभावहीनता के कारण उत्पन्न करता है।

यदि भाग्य भाव में शुभ ग्रह हो, तो गुरु, पिता अपना मन एवं उसके अधिकारीजन प्रसन्न होते हैं तथा भाग्य और धर्म की वृद्धि, शुभ और तपस्या में शान्ति तथा पौत्रों से सुख मिलता है।

दशम भावस्थ पाप और शुभ ग्रह

दशम भावस्थ में पाप ग्रह हो, तो कार्यों में विघ्न-बाधा, अपकीर्ति अर्थात् लोकापवाद, राजा से हानि, सेवक और आश्रित दोनों का नाश, जानु में रोग और परदेश में प्रवास होता है।

यदि इस भाव में शुभ ग्रह हो, तो पद्धति अर्थात् धार्मिक ग्रन्थ, मार्ग, मण्डप और मन्दिर आदि का निर्माण, कार्य में सिद्धि, आश्रित और सेवकों का सुख, दास-दासी की प्राप्ति और कीर्ति का प्रसार होता है।

एकादश भावस्थ शुभ और पाप ग्रह

यदि एकादश भाव में पाप ग्रह हो, तो पुत्र एवं बड़े भाई को रोग आदि से कष्ट, जंघा और बांये कान में बीमारी तथा ग्रह की कथित ताम्र आदि धातु का लाभ होता है।

यदि इस स्थान में शुभ ग्रह हो, तो दुःखों का नाश, इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति तथा अर्थ लाभ होता है।

साथ ही बृहज्जातक संज्ञाध्याय, कर्मजीवाध्याय और दशाफलाध्याय आदि में कही हुई वस्तुओं का लाभ तथा प्राप्ति जाननी चाहिए।

द्वादश भावस्थ पाप और शुभ ग्रह

यदि द्वादश भाव में पाप ग्रह हो, तो अपव्यय, पदच्युति, पैर और बायें नेत्र में रोग, पतन, पापबुद्धि की वृद्धि आदि फल पृच्छक के लिए जानना चाहिए।

यदि द्वादश भाव में शुभ ग्रह हो, तो दान आदि के रूप में व्यय होता है, अपव्यय नहीं होता। पाप की हानि और शुभ विचारों का उदय तथा चित्त में शान्ति आदि जैसा पृच्छक को फल मिलता है।

विषयोपसंहारात्मक विचार

लग्न आदि द्वादश भावों में शुभ और पाप ग्रहों का साधारण फल उपरोक्त प्रकार से कहा गया है।

बृहज्जातक होराशास्त्र के भावफल के प्रसंग में 'शूरस्तब्धो०' इत्यादि श्लोकों में प्रतिपादित विशेष फल का भी विचार कर उसे यहाँ प्रतिपादित करना चाहिए।

लग्न आदि भावस्थ गुलिक विचार

बृहज्जातक होराशास्त्र में लग्न आदि द्वादश भावों में स्थित गुलिक का फल कथन नहीं किया गया है अतः अन्यान्य ग्रन्थों में देखा गया गुलिक का फल यहाँ लिखा जा रहा है।

लग्न से चतुर्थ तक गुलिक फल

यदि गुलिक लग्न में हो, तो रोगी तथा चोटग्रस्त या क्षत-विक्षत शरीर वाला होता है।

गुलिक के द्वितीय भाव में होने पर निन्दनीय या अशिष्ट बातें करने वाला और वस्त्रहीन होता है।

तृतीय स्थान में गुलिक के होने पर भाईयों से द्वेष करने वाला, लेकिन शौर्यशाली होता है।

चतुर्थ भाव से यदि वह हो, तो सुख आदि से हीन और शत्रु से डर-डर कर जीने वाला होता है।

पंचम से सप्तम तक गुलिक फल

यदि पंचम भाव में गुलिक हो, तो पृच्छक गुरु आदि पूज्य लोगों की निन्दा करने वाला, पुत्र रहित और उदरशूल रोग से ग्रस्त होता है।

यदि षष्ठ स्थान में हो, तो स्वयं अपने से द्वेष करने वाला, टेढ़े नेत्र वाला और कुल, खानदान का नाम डुबाने वाला होता है।

सप्तम स्थान में गुलिक होने पर पत्नी को मारने वाला और अति कामी होता है।

अष्टम से दशम तक गुलिक फल

यदि अष्टम स्थान में गुलिक हो, तो पृच्छक बुद्धिमान्, अनेक रोगों से ग्रस्त, अल्पायु वाला तथा विष, अग्नि और शस्त्र से मरने वाला होता है।

यदि नवम स्थान में वह हो, तो धर्म, तप और मन्त्रों से रहित पृच्छक होता है।

तथा दशम स्थान में स्थित हो, तो यशस्वी और परोपकारी होता है।

एकादश व व्यय भावस्थ गुलिक फल

यदि लाभस्थान में गुलिक हो, तो पृच्छक पराक्रमी, धन, वाहन एवं अर्थ कमाने वाला, ऐश्वर्यशाली तथा अनेक सेवकों से युक्त होता है।

तथा व्यय भावस्थ गुलिक से दुःस्वप्न देखने वाला, बुरे नाखून वाला और विकल शरीर वाला पृच्छक होता है।

यहाँ तक लग्न आदि द्वादश भावों में स्थित गुलिक सम्बन्धि फल बतलाया गया है।

वराहमिहिरपूर्ववर्ति सत्याचार्य का मत

लग्नादि द्वादश भावों में स्थित शुभ और पाप ग्रह क्रमशः भाव के फल का उपचयन और ह्रास करते हैं; परन्तु षष्ठम, अष्टम, द्वादश भावों में स्थित शुभ और पाप ग्रह विपरीत रूप से शुभ ग्रह अशुभ तथा अशुभ ग्रह शुभ फल प्रदान करने वाला होता है। इस प्रकार सत्याचार्य प्रतिपादित करते हैं।

उपग्रहों का फल

लग्न आदि द्वादश भावों में धूम आदि पाँच दोषों के स्थित होने पर जो फल लिखा जा रहा है, उसका प्रश्न और जातक में समान रूप से उपयोग करना चाहिए। इनका साधन प्रकार प्रदर्शित किया जा रहा है—

स्पष्ट सूर्य + ४.१३° .२०'.००" = स्पष्ट धूम

१२ राशि-स्पष्ट धूम = स्पष्ट व्यतिपात

स्पष्ट व्यतिपात + ६ राशि = स्पष्ट परिवेष

१२ राशि-स्पष्ट परिवेष = स्पष्ट इन्द्रधनुष

इन्द्र धनुष + ००.१६° .४०'.००" = स्पष्ट उपकेतु अथवा ध्वज

लग्नादि भावस्थ धूम का फल

यदि धूम लग्न में हो, तो पृच्छक का कुएँ में गिरना; द्वितीय भाव में धूम हो, तो वाणी में स्खलन अर्थात् हकलाहट आदि रोग, तृतीय भाव में हो, तो भाई को पङ्गुता, चतुर्थ भाव में हो, तो मामा और मन्दिर की रक्षा, पंचम में होने पर क्रोध वृद्धि, षष्ठ में होने पर सिंह से चोट, सप्तम में होने पर खानपान में भ्रष्टता और अष्टम स्थान में धूम हो, तो शस्त्र से चोट लगती है।

नवम भाव में धूम हो, तो तप की कमी, दशम स्थान में हो, तो स्वामी का नाश, लाभ भाव में धूम हो, तो अधिवासित मकान से भिन्न मकान का लाभ और व्यय भाव में धूम होने पर प्रवास होता है।

लग्नादि भावस्थत व्यतिपात का फल

यदि लग्न में व्यतिपात हो, तो कुष्ठी, द्वितीय में व्यतिपात हो, तो बोलचाल में निपुण, तृतीय स्थान में होने पर गायन कला में प्रवीण, चतुर्थ भाव में हो, तो अश्व आदि वाहनों का लाभ कहना चाहिए।

पंचम भाव में होने पर पुत्रजन्य दुःख, षष्ठस्थान में हो, तो अनेक बुराईयों और कठिनाईयों से युक्त तथा सप्तम स्थान में व्यतिपात हो, तो व्यक्ति निर्धन होता है।

अष्टम भाव में व्यतिपात होने पर सब कलाओं का वेत्ता, नवम स्थान में

हो, तो भाग्यहीन, दशम स्थान में हो, तो अग्निभय, लाभ स्थान में हो, तो राजा से सम्मान और यदि व्यय भाव में व्यतिपात हो, तो पृच्छक मनुष्य को भ्रष्ट जानना चाहिए।

लग्नादि भावस्थ परिवेष फल

तदनन्तर यदि लग्न में परिवेष हो, तो सर्प के काटने से मृत्यु होती है।

यदि द्वितीय या धन स्थान में परिवेष हो, तो निधि (गड़ा धन) मिलता है।

सहज या तृतीय भाव में हो, तो व्यक्ति भ्रान्तिमान् और सुख या चतुर्थ स्थान में हो, तो अपने घर में निवास नहीं होता।

पंचम भाव में परिवेष हो, तो व्यक्ति बन्धन युक्त तथा रिपु या षष्ठ भाव में हो, तो वह अपने घर की स्वयं चोरी करने वाला होता है।

सप्तम स्थान में परिवेष हो, तो व्यक्ति काना, निधन या अष्टम स्थान में हो, तो शस्त्र से चोट पाने वाला, नवम स्थान में हो, तो गुरु आदि पूज्यजनों में भक्ति न रखने वाला, दशम या कर्म भाव में हो, तो उदार, यदि एकादश भाव में हो, तो वाक्चातुर्य रहित या वाणी के दोष से ग्रस्त तथा यदि व्यय भाव में परिवेष हो, तो मनुष्य लम्बी बीमारी का शिकार होता है।

लग्नादि भावगत इन्द्रचाप का फल

यदि लग्न में इन्द्रचाप हो, तो समस्त शरीर वायु विकार से ग्रस्त, वह द्वितीय स्थान में हो, तो बहरा, तृतीय स्थान में हो, तो ब्राह्मणों की हत्या आदि भीषण कुकर्मों को करने वाला, चतुर्थ स्थान में हो, तो लोगों के सहयोग से सार्वजनिक सम्पत्ति का अपहरण करने वाला होता है।

यदि पंचम भाव में हो, तो लोकापवाद से भयभीत और मन्त्र शास्त्रवेत्ता, षष्ठस्थान में हो, तो शत्रु से डर-डर कर जीने वाला, यदि सप्तम स्थान में हो, तो आशावान् होकर मायाजाल फैलाता हुआ घूमता है।

नवम स्थान में इन्द्रचाप हो, तो बन्धन या पुत्र से मृत्यु कहनी चाहिए।

यदि दशम स्थान में हो, तो थोड़े कपड़े वाला (वस्त्रहीन) और शीघ्र खाना खाने वाला, यदि लाभ स्थान में हो, तो अत्यन्त पराक्रमी और शिकार का शौकीन तथा यदि व्यय स्थान में इन्द्रचाप हो, तो राजा के कोप से परदेश में प्रवास करने वाला होता है।

लग्नादि भावगत उपकेतु का फल

लग्नस्थ उपकेतु से आगे से केश रहित तथा दुर्बल, द्वितीय भावस्थ

उपकेतु से नाक के स्वर से बोलने वाला तथा कम बोलने वाला, तृतीय स्थानस्थ उपकेतु से दुर्बल और वाग्मी, यदि चतुर्थ स्थान में उपकेतु हो, तो उदरशूल रोग से पीड़ित, दो स्त्री और दो पुत्र वाला होता है।

शत्रु भाव में केतु होने पर वह अन्धा होकर दम घुटने से दूसरे के घर में मरता है।

सप्तम भाव में होने पर चोरी से और अष्टम स्थान में होने पर जहर खाने से मरता है।

यदि नवम स्थान में केतु हो, तो विक्रान्त और अपमृत्यु पाने वाला, यदि दशम स्थान में हो, तो वृक्ष से टकराने, चोट लगने या गिरने से मृत्यु पाता है।

यदि लाभ स्थान में केतु हो, तो निधि (गड़ा खजाना) प्राप्त करने वाला तथा व्यय स्थान में वह हो, तो शयन सुख रहित, दुःख और अपव्यय करने वाला होता है।

फल प्राप्ति काल

इस प्रकार समस्त भावों का लाभ, नाश आदि उपवर्णित फल कब मिलेगा? इस आकांक्षा रूप जिज्ञासा की पूर्ति के लिए फल प्राप्ति के समय को समझाने का प्रयत्न करते हैं।

जिस ग्रह से अर्थात् ग्रह की स्थिति, युति, दृष्टि या योग आदि से फल प्राप्ति की शास्त्रीय कल्पना की गई है, उस ग्रह के अयनादि अर्थात् अयन, ऋतु, मास, पक्ष, क्षण आदि काल को ग्रह के भुक्त नवांश की संख्या से गुणा कर प्राप्त काल में लाभ अथवा नाश आदि ऊपर कथित फल की प्राप्ति बतलानी चाहिए।

विशेष—इस प्रसङ्ग में वराहमिहिराचार्य ने अपने बृहज्जातक ग्रन्थ में सूर्यादि सात ग्रहों के अयन आदि काल को ग्रह के 'फल प्राप्ति काल' जानने हेतु उपयोग किया है, उसका आशय इस प्रकार जानना चाहिए—

योगकारक या फलदाता ग्रह उपरोक्त अयन, ऋतु, मास आदि जिस किसी काल खण्ड का प्रतिनिधित्व करता हो, उस काल का परिज्ञान करने के पश्चात् देखें कि विचारित फलदाता ग्रह किस नवांश में है?

अर्थात् ग्रह प्रथम नवांश में हो, तो उक्त अयनादि समय में; दूसरे नवांशगत हो, तो उसके दुगुने समय में; तीसरे नवांश में हो, तो उससे तिगुने समय में; चतुर्थ नवांश में हो, तो उससे चौगुने समय में जातक को लाभ या हानि जैसा भी हो, वैसा फल प्रदान करता है।

इसी तरह अग्रिम नवांश में ग्रह के रहने पर उससे उतने गुने समय की गणना कर लेना चाहिए; कहने का तात्पर्य यह है कि उपरोक्त प्रकार ग्रह के अयनादि काल को नवांश संख्या से गुणा कर ग्रह के फलप्राप्ति के समय का परिज्ञान कर लेना चाहिए।

हलांकि इस प्रकार साधित 'मध्यमसमय' होता है। उससे स्पष्ट समय जानने के लिए फलदाता ग्रह के उक्त अयन आदि काल को उस विचारित ग्रह के भुक्त नवांश की संख्या से गुणा कर और उस गुणन फल संख्या में ग्रह के वर्तमान नवांश की भुक्त कलाओं से त्रैराशिक इस प्रकार अयन आदि काल × भुक्त कला ÷ २०० से फल ज्ञात का जोड़ देने से फल प्राप्ति का स्पष्ट काल आ जाता है।

वाद-विवाद और जय-पराजय की फल-प्राप्ति

शत्रु से वाद-विवाद या जय-पराजय आदि प्रकार के प्रश्नों में फलदाता ग्रहों के नवमांशेश की अयनादि काल को प्रश्न लग्न के वर्तमान नवमांश की संख्या से गुणाकर फलप्राप्ति का समय जानना चाहिए। मुकद्मा, चुनाव, विवाद, लड़ाई-झगड़ा, युद्ध एवं द्यूत आदि विविध प्रश्नों में फलदाता ग्रह, जिस राशि के नवांश में स्थित हो, उसके स्वामी के अयनादि पूर्वोक्त काल का परिज्ञान कर लेना चाहिए। यदि लग्न में प्रथम नवांश हो तो उतना ही अयनादि समय, द्वितीय नवांश हो तो उससे दुगुना समय, तीसरा नवांश हो तो उससे तिगुना समय और अन्तिम नवांश हो, तो उतने ही अयनादि के नौ गुने समय में फल प्राप्ति होगी, कहना चाहिए।

रोगारम्भ काल

अर्थात् लग्नेश का वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, क्षण जो भी काल हो, उसे लग्न से जिस संख्यक राशि में पाप ग्रह हो उस संख्या से गुणा करने पर रोग के आरम्भ का समय ज्ञात हो जाता है।

सूर्य आदि ग्रहों के लग्नेश होने पर उन ग्रहों का क्रमशः अयन, क्षण, ऋतु, दिन, मास, पक्ष एवं वर्ष फलदान काल होता है।

फलदान काल ज्ञापक चक्र

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्नेश
अयन	क्षण	दिन	ऋतु	मास	पक्ष	वर्ष	**फलदान**
६ मास	१ क्षण	१ दिन	२ मास	१ मास	१ पक्ष	१ वर्ष	**काल**

पापग्रह लग्न से जितनी संख्या आगे वाली राशि में हो, उस राशि संख्या से लग्नेश ग्रह के उक्त काल को गुणा कर देना चाहिए।

इस प्रकार गणितागत समय में शरीर में रोग होता है। इस विधि से रोग होने के समय का निश्चय किया जाता है।

यहाँ पाप ग्रह का तात्पर्य शनि, गुलिक आदि पाप ग्रहों में से बलवान् पापग्रह से है।

फलदानकाल के प्रसङ्ग में विशेष विचार

ज्यौतिषशास्त्रान्तर्गत होराशास्त्र के अन्यान्य ग्रन्थों में शुभ एवं अशुभ फल की प्राप्ति का समय उपरोक्त विधि से भिन्न विधि के द्वारा बताया गया है, उसको भी अब यहाँ लिखा जा रहा है।

जिस विचारित भाव फल के मिलने का समय विचार करना है, उस विचारित भाव से भावेश दृश्यार्ध भाग अर्थात् सप्तमादि छः भाव में हो, तो उस भाव का फल शीघ्र मिलता है।

और यदि भावेश अदृश्यार्थ भाग अर्थात् लग्नादि छः भाव में हो तो विलम्ब से फल मिलता है।

यहाँ विचारित भाव से भावेश, जितना आगे की राशि में हो, उतने दिनों या महीनों या वर्षों में उस विचारित भाव का फल मिलता है।

भावेश, जिस राशि में हो, उस राशि में गोचर-क्रम से चन्द्रमा के पहुँचने पर उस विचारित भाव का फल मिलता है।

लग्न या फलदाता ग्रह की राशि या उसकी उच्च राशि में चन्द्रमा, सूर्य या फलदाता ग्रह गोचर-क्रम से पहुँचता है, तब उसकी फल-प्राप्ति जाननी चाहिए।

भूत या भविष्यत्काल में जब भी लग्न पर पापग्रहों का योग हो, उस समय अशुभ फल कहना चाहिए।

इस स्थिति में शुभ ग्रहों का योग होने पर पृच्छक को शुभ फल बतलाना चाहिए।

प्रकारान्तर से फलदान

सब ग्रहों के फल देने के कुछ अन्य समय भी होराशास्त्र के अन्य-अन्य ग्रन्थों में कहे गये हैं। अत: उनको भी यहाँ लिखते हैं।

प्राय: ग्रह अपने गुण या दोष सम्बन्धी सम्पूर्ण फल अपने नक्षत्र, दिन और ऋतुओं में देते हैं।

सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति, जिस समय गोचर चार के क्रम से अपनी अधिष्ठित (आश्रित) राशि में स्थित हों, उस समय में उनका फल मिलता है।

विशेष—उपरोक्त तीनों ग्रह जन्म या प्रश्न की कुण्डलियों में जिस-किसी राशि में स्थित हों और उसी राशि में गोचर क्रम से संचरण करते हुए वापस पुनः जब आ जाता है, तो उस समय वे अपना फल प्रदान करते हैं।

सब ग्रहों की दशा, अन्तर्दशा और उनके उदयकाल में उनका फल मिलता है। सूर्य उत्तरायण में और चन्द्रमा दक्षिणायन में अपना गुण या दोष सम्बन्धी फल दे सकते हैं। इस प्रकार से सभी विद्वानों को समझना चाहिए।

१. ग्रहों के नक्षत्र ज्ञानार्थ चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
नक्षत्र	कृति.	रोहि.	मृग.	आर्द्रा.	पुन.	पुष्य	आश्ले.	मघा.	पू.फा.
	उ.फा.	हस्त.	चित्रा	स्वाति	विशा.	अनु.	ज्येष्ठा	मूल	पू.षा.
	उ.षा.	श्रवण	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेवती	अश्विनी	भरणी

२. ग्रहों के ऋतुज्ञानार्थ चक्र

ग्रह	शनि	शुक्र	मंगल-सूर्य	चन्द्रमा	बुध	गुरु
ऋतु	शिशिर	बसन्त	ग्रीष्म	वर्षा	शरद	हेमन्त

यहाँ जो अनिष्ट भावों के अनुसार अशुभ दशाफल आदि संक्षेप में कहा गया है, उसे विस्तार से यहाँ कहा जा रहा है।

अनिष्ट व इष्ट स्थानस्थ सूर्य का फल

अनिष्ट स्थान में यदि सूर्य स्थित हो, तो राजा, शंकर एवं पितृ गणों का कोप आदि, हृदय, जंघा एवं नेत्र में रोग, अस्थिस्राव (एक रोग), पित्त विकार, अग्नि और पशुओं का भय, ताम्रनाश और आत्मा पीड़ित होती है।

सूर्य के इष्ट स्थान में स्थित होने पर सात्त्विकता, भगवान् शंकर, पितृगण और राजा का प्रेम; ताम्र-लाभ, धन-प्राप्ति, भ्रमण, तृण, सोना एवं औषधियों का व्यापार आदि शुभ फल होता है।

अनिष्ट और इष्ट स्थानस्थ चन्द्रमा का फल

यदि चन्द्रमा अनिष्ट स्थान में स्थित हो, तो रानी का कोप, माता का कोप या उसको रोग; कफ, वायु एवं रक्त सम्बन्धी रोग, अपने से अधिक बलवान् आत्मीय जनों से शत्रुता, दुर्गा का कोप तथा खेती, धन और यश का नाश होता है।

इष्ट स्थान में यदि चन्द्रमा स्थित हो, तो रानी, दुर्गा और माता की कृपा, मन्त्र, तिल, गुड़, वस्त्र, घी, विप्र, स्त्री, गौ, नौका, रत्नादि से धन लाभ तथा कृषि, धन, यश आदि की वृद्धि होती है।

अनिष्ट और इष्ट स्थानस्थ मंगल का फल

यदि अनिष्ट स्थान में मंगल हो, तो भाई आदि से विरोध, भूमि और स्वर्ण का नाश; अग्नि, चोर और शत्रु से भय; सेनानी (स्कन्ध या राजा) को कोप, रक्त विकार, ज्वर, नेत्र रोग; पात्रों (घर के बर्तनों) का टूटना, शस्त्र टूटना और अंगभंग होता है।

एवं मङ्गल इष्ट स्थान में हो, तो भूमि, सोना, स्वर्ण एवं शस्त्र की प्राप्ति; सेनानी (स्कन्ध या राजा) की प्रसन्नता और शत्रु के संहार, भाई एवं राजा आदि से धन लाभ होता है।

अनिष्ट और इष्ट स्थानस्थ बुध का फल

अनिष्ट स्थान में यदि बुध स्थित हो, तो विष्णु, युवक व्यक्ति और राजा का कोप, वाणी में दोष और चोरों से पीड़ा होती है।

एवं बुध इष्ट स्थान में स्थित हो, तो घोड़ा, सोना, खेत, मित्र, भूमि, देवता और गुरु से अर्थ लाभ; दूतकर्म और शिल्प से धन लाभ, विद्वानों के द्वारा अभिनन्दन, बौद्धिक प्रवृत्तियों की वृद्धि, धार्मिक क्रियाओं की सिद्धि, लिपि (लेखन) और गणित से धनप्राप्ति तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की कृपा प्राप्त होती है।

अनिष्ट और इष्ट स्थानस्थ बृहस्पति का फल

अनिष्ट स्थान में यदि बृहस्पति के हो, तो कान में रोग, पुत्र को रोग, ब्राह्मण और देवता का प्रकोप या धार्मिक व्यक्तियों से विरोध होता है।

एवं यदि बृहस्पति इष्ट स्थान में हो, तो बुद्धि और गुणों की वृद्धि, यज्ञ, वेदपाठ एवं तन्त्रजप से निरन्तर अर्थलाभ, राजा से धन लाभ, बान्धव, स्वर्ण, वस्त्र, घोड़ा एवं हाथी आदि की प्राप्ति तथा ब्राह्मण और देवताओं की कृपा प्राप्त होती है।

अनिष्ट और इष्ट स्थानस्थत शुक्र का फल

अनिष्ट स्थान में यदि शुक्र स्थित हो, तो पत्नी और परिवार की अन्य स्त्रियों को रोग, वस्त्रनाश, लक्ष्मी की हानि, प्रेमीजनों के कष्ट से मन में शोक; निषाद (हीन जाति के लोग), राजा और मन्त्री से द्वेष या विरोध और रूप्य (चाँदी या सम्पत्ति) का नाश होता है।

एवं यदि शुक्र इष्ट स्थान में स्थित हो, तो रूप्य (चाँदी या सम्पत्ति), वस्त्र, आभूषण, मणि (रत्न), निधि (खजाना), स्त्री, विवाह और अर्थ का लाभ, संगीत में रुचि, प्रणय, व्यापार आदि में प्रवृत्ति तथा भैंस, गाय, मित्र और मिठाई की प्राप्ति होती है।

अनिष्ट और इष्ट स्थानस्थ शनि फल

अनिष्ट स्थान में यदि शनि स्थित हो, तो वायु और कफ विकार; मूर्ख और चोर आदि का कोप, विपत्ति, तन्द्रा, परिश्रम, स्त्री और नौकरों से भर्त्सना, अंगों में विकलता और ईर्ष्या आदि की प्राप्ति होती है।

यदि शनि इष्ट स्थान में स्थित हो, तो दुःखनाश, परिणीता स्त्री का भोग, दास और लोहे से लाभ, नगर, जाति तथा ग्राम का प्रमुख या स्वामी होना और वरक (एक प्रकार का धान्य), भैंस आदि की प्राप्ति होती है।

राहु और केतु का फल

राहु शनि के समान तथा जिस राशि में वह स्थित हो उस राशि के स्वामी के समान तथा अपना स्वतन्त्र फल भी देता है। एवं केतु मंगल के समान और अपने गुण और दोष के अनुसार तथा उस ग्रह की भाँति फल देता है जिसकी राशि में वह स्थित होता है।

फलादेश विधि

यदि प्रश्न कुण्डली में केवल दोष ही हों, तो विरोधियों से अत्यन्त कष्ट अथवा विपत्तियाँ तथा उस प्रश्नकुण्डली में यदि केवल गुण ही हों तो सम्पत्ति लाभ कहना चाहिए।

यदि प्रश्न कुण्डली में गुण और दोष दोनों उपलब्ध हो, तो उनकी अधिकता के अनुसार फल कथन करना चाहिए अर्थात् दोष अधिक हों तो विपत्ति और गुण अधिक हों तो धनादि से सम्पन्नता कहनी चाहिए।

अथवा प्रत्येक स्थिति में दोषों के तारतम्य के अनुसार दोषजन्य फल ही कहना चाहिए। क्योंकि संसार में प्रायः सभी लोग भाग्य अर्थात् पूर्वजन्म में किए कर्मों से दुःखी होते हैं।

दोष युक्त ग्रह और भाव फल

दोषयुक्त ग्रह और लग्नादि भावों को विचार कर मृत्यु, असाध्य या कष्ट दायक रोग, आत्मीय जन का विरह, घर का दाह, स्थानच्युति (पदच्युति), राजकोप, लोगों से द्वेष अथवा विरोध, धन का अत्यधिक व्यय, चोरों के द्वारा धन

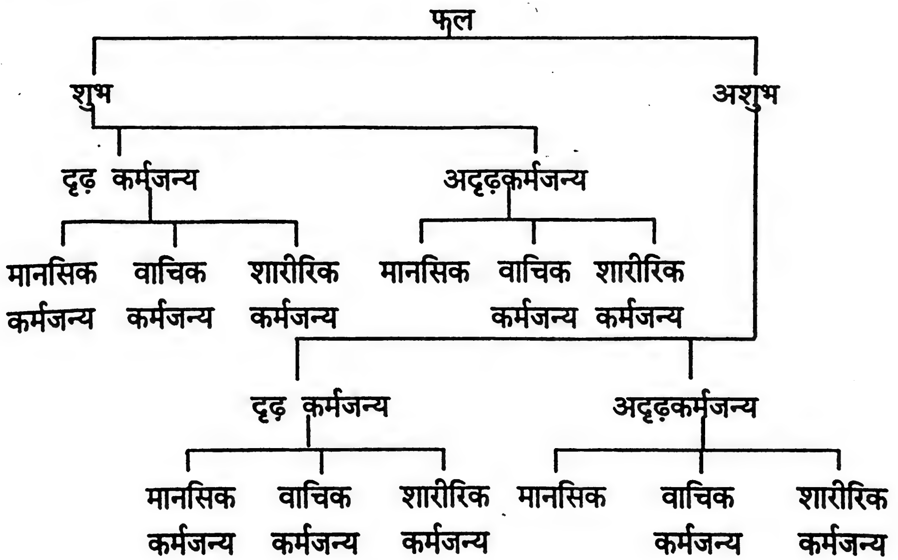
अथवा सम्पत्ति का अपहरण, मानहानि तथा अपयश आदि इस प्रकार की विपत्तियाँ कहनी चाहिएं।

गुणयुक्त ग्रह और भाव फल

इष्ट स्थान में स्थित और गुणयुक्त ग्रह तथा भावों का ऊहापोह पूर्ण विचार से आरोग्य, राजसम्मान, धनलाभ, नये मित्रों की उपलब्धि, सभी कार्यों में सफलता, निरन्तर मन में प्रसन्नता तथा कार्यों में प्रगति, स्थान (पद) की प्राप्ति, लोगों का प्रेम, कीर्ति तथा सन्तान की प्राप्ति आदि सम्पत्ति रूप शुभफलों को अभिव्यक्त करना चाहिए।

फल भेद

इस तरह शुभ और अशुभ फल दृढ़ एवं अदृढ़ कर्मजन्य होने के कारण वे दो प्रकार के हो जाते हैं तथा वे भी मन, वचन एवं कर्म से उत्पन्न होने के कारण पुनः तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—



अशुभ फल कारण

इस प्रकार छत्र राशि, आरूढ़ राशि, चन्द्राधिष्ठित राशि, लग्न राशि आदि चारों से द्वादश, षष्ठ और अष्टम स्थान में शुभ ग्रह तथा उनके केन्द्र, त्रिकोण आदि स्थानों में पाप ग्रह के स्थित होने पर दुष्कृतजन्य पाप फल की वृद्धि कहनी चाहिए।

यह दुष्कृतजन्य अशुभ फल उपरोक्त योगों में यथाक्रमेण देवकोप, ब्राह्मणों के शाप, शत्रु के अभिचार प्रयोग, लोगों के आक्रोश आदि इन चार कारणों से होता है।

यह अशुभ फल भी अदृढ़ और दृढ़ इन दो भेदों से दो प्रकार के कहे गये हैं।

मानसिक, वाचिक और शारीरिक कर्मजन्य फल भी अदृढ़ और दृढ़ भेद से दो प्रकार के कहे जाते हैं।

फलदाता ग्रहों में से बलवान् ग्रह के गोचरक्रम से चन्द्रमा के होरा आदि वर्ग में होने पर दृढ़फल अर्थात् स्थायी और निश्चित फल देता है अर्थात् वह सूर्य के वर्ग में होकर अदृढ़ अर्थात् अस्थायी या अनिश्चित फल देता है।

इतर वर्गों में ग्रह होने पर पुण्य व पाप कर्मों का फल अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रदत्त जानना चाहिए।

चित्तादि तीन स्थानों में निर्बल और पाप ग्रह हो, तो मानसिक आदि दोषोंसे फल की अनुभूति होती है अर्थात् पंचम स्थान पाप युक्त हो तो मानसिक दोष से, द्वितीय स्थान पापयुक्त हो तो वचन दोष से और दशम स्थान पाप युक्त हो तो कर्मदोष से फल की अनुभूति जाननी चाहिए।

इसी तरह पंचम, द्वितीय एवं दशम इन तीनों स्थानों में पापग्रह की स्थिति वश मन, वचन, कर्म आदि तीनों से पाप फल उत्पन्न होता है।

यदि दशम स्थान में शुभ ग्रह तथा पंचम एवं द्वितीय स्थानों में पापग्रह हों तो क्रियमाण अर्थात् किए जाने वाले कार्यों में मनोयोग न होने तथा अनिष्ट या अशिष्ट वाणी बोलने के कारण पाप फल मिलता है।

तथा पंचम स्थान में पाप ग्रह और द्वितीय एवं दशम स्थानों में शुभ ग्रह की स्थितिवश कार्य में श्रद्धा अर्थात् रूचि एवं विश्वास न होने से पाप फल उत्पन्न होता है।

यह पुत्र को कष्ट देने में अधिक समर्थ होता है।

जब पाप ग्रह द्वितीय स्थान तथा शुभ ग्रह दशम तथा पंचम स्थानों में स्थित हों, तब वचन दोष अर्थात् पाप फल उत्पन्न होता है।

यह दोष विशेष रूप से धन का नाश करता है।

एवं शत्रु राशि में, नीच राशि में और अस्तंगत होने की स्थिति में पाप ग्रह विशेष रूप से दोष युक्त होता है तथा उच्च राशि, स्वराशि और मित्र राशि में शुभ ग्रह विशेष रूप से गुणयुक्त होता है।

पिता आदि के बन्धन या कारावास योग

इस प्रकार सूर्य की आश्रित राशि से सप्तम, नवम और पंचम स्थानों में पापग्रह की राशि हो और उसमें दो पाम ग्रह हों, तो व्यक्ति के पिता को बन्धन देते हैं।

ग्रहों की प्रबलता के अनुसार अपने किए हुए कर्मों के कारण बन्धन मिलता है और ग्रहों की दुर्बलता के अनुसार ऋण आदि के कारण बन्धन मिलता है।

सूर्य की अधिष्ठित राशि के अनुसार दूर, पास आदि में बन्धन का विचार इस तरह करना चाहिए।

जैसेकि सूर्य के चर राशि में होने पर विदेश में अथवा जन्म स्थान से दूर स्थान में; जब वह स्थिर राशि में हो, तो निकट स्थान में तथा वह द्विस्वभाव राशि में हो, तो यात्रा करता हुआ यानि मार्ग में ही बन्धन का कारण प्राप्त होता है।

नवांशों के द्वारा भी यह योग होता है अर्थात् दूर, समीप आदि स्थान में बन्धन होता है।

पुत्र, भाई, माता आदि सम्बन्धियों के कारण ग्रहों से भी पुत्र आदि के बन्धन का विचार किया जाता है; जैसे गुरु से सप्तम आदि स्थानों में पापग्रह के कारण पुत्र को बन्धन; मङ्गल से सप्तम आदि स्थानों में पाप ग्रह के कारण भाई को बन्धन तथा चन्द्र से सप्तम आदि स्थानों में पापग्रह की स्थितिवश माता को बन्धन योग कहना, श्रेयस्कर है।

सूर्य के स्थान में लग्न को भी मानकर प्रश्नकर्त्ता के बन्धन का विचार करना चाहिए।

लग्न में चर, स्थिर एवं द्विस्वभाव राशियाँ होने पर क्रमशः दूर, पास एवं मार्ग में बन्धन कहना चाहिए।

वराहमिहिराचार्य ने भी अपने 'बृहज्जातक' नामक होराशास्त्र ग्रन्थ में बन्धन के लक्षणात्मक योग को अभिव्यक्त किया है, उसे भी यहाँ लिखा जा रहा है।

वराहोक्त बन्धन योग

व्यय, धन, पुत्र, धर्म आदि इन दो-दो स्थानों में पाप ग्रह की स्थिति हो, तो इन स्थानों में स्थित राशि के अनुसार बन्धन का विचार इस प्रकार करना चाहिए जैसे कि मेष व वृष राशि में पाश से; मिथुन में हथकड़ी से; कर्क राशि में गुफा आदि में बन्द कर देने से आदि प्रकार राशियों के स्वरूप और उनके निवास स्थानवश बन्धन होने की कल्पना कर लेनी चाहिए।

एवं सर्प, निगड और पाश भृत संज्ञक द्रेष्काणों पर बलवान् पाप ग्रहों की दृष्टिवश से भी उसी प्रकार बन्धन का विचार करना चाहिए; जैसे कि सर्पसंज्ञक द्रेष्काण रहने पर गुफा, तहखाने आदि में; निगड संज्ञक द्रेष्काण की स्थिति में हथकड़ी से तथा पाश भृत संज्ञक द्रेष्काण में पाश के द्वारा बन्धन होना, कहना चाहिए।

इन भावों में समसंख्यक पाप ग्रह के प्रबल प्रभाव अर्थात् युति, दृष्टि आदि की स्थिति में ही बन्धन होता है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार का अपना अनुभव भी है।

यदि व्यय स्थान में पापग्रह हो, तो वेश्या या ऋण के कारण बन्धन होता

है। पुनः धन स्थान में पाप ग्रह हो, तो राज्य के नियमों का उल्लंघन अर्थात् राज्य कर आदि की चोरी के कारण बन्धन होता है।

तथा पंचम स्थान में पाप ग्रह हो, तो पुत्र के द्वारा और नवम स्थान में पाप ग्रह हो, तो पिता के कारण बन्धन होता है।

इस तरह लग्न में स्थित मेषादि राशियों के अनुसार पाश आदि से पृच्छक बन्धन ग्रस्त होता है।

कृष्णीय ग्रन्थोक्त बन्धन योग

शनि के द्रेष्काण अर्थात् वृष और मिथुन राशियों के अन्तिम द्रेष्काण तथा कन्या और तुला का मध्य द्रेष्काण आदि में या राहु से युक्त द्रेष्काण में अथवा लग्न पर चन्द्रमा और शनि की दृष्टि होने की स्थिति में फलादेश करते हुए पृच्छक को बन्धन कहना चाहिए।

पाप ग्रह की राशियों से युक्त त्रिकोण, चतुरस्त्र (४, ८) एवं सप्तम स्थान में से किसी भी स्थान में स्थित शनि पर पाप ग्रहों की दृष्टि भी हो, तो शीघ्र बन्धन कहना चाहिए।

चर राशि अर्थात् मेष, कर्क, तुला एवं मकर में शनि हो, तो शीघ्र बन्धन से मुक्ति; स्थिर अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ राशि में काफी समय के बाद मुक्ति और द्विस्वभाव अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन राशि में शनि हो, तो मध्यम काल अर्थात् न तो शीघ्र और न ही अधिक दिनों में बन्धन मुक्ति होती है।

जिस प्रकार अशुभ फलदायक पाप ग्रहों का भेद ''कृष्णीय' ग्रन्थ में कहा गया है, उसी प्रकार अभीष्ट फलदायक शुभ ग्रहों का फल भी वहाँ बतलाया गया है। अतः उसको भी यहाँ लिखा जा रहा है।

शुभ एवं पाप ग्रह फल प्रकृति

इस प्रकार मंगल रोग पैदा करता है। शुक्र भोगोपभोग के लिए प्रस्तुत करता है। बुध आरोग्यता देता है। शनि मृत्यु देता है। सूर्य नाश करता है और गुरु दीर्घायु करता है।

मृत्युयोग

यदि रोग सम्बन्धी प्रश्न के समय मंगल और शनि दोनों सप्तम स्थान में बैठे हों; उन दोनों में से एक लग्न में और दूसरा सप्तम स्थान में हो; या वे दोनों बारहवें और दूसरे स्थान में हों तो मृत्यु होती है।

लग्न से चतुरस्त्र स्थान में स्थित पाप ग्रह मृत्युप्रद होते हैं। स्त्री आदि भाव,

उसके स्वामी तथा उनके कारक इन तीनों से भी उपरोक्त प्रकार से स्त्री आदि की मृत्यु का विचार करना चाहिए।

स्त्री-कलह एवं मातृकष्ट योग

यदि चन्द्र अथवा शुक्र पापयुक्त होकर सप्तम या चतुर्थ स्थान में स्थित हो, तो स्त्री से कलह होता है।

यदि चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह हो, तो बन्धुओं से कलह होता है।

सप्तम और चतुर्थ स्थान में स्थित पाप ग्रह माता के लिए क्लेशकारी होता है।

यदि बुध सप्तम स्थान में और पापग्रह चतुर्थ स्थान में हो, तो प्रश्नकर्त्ता स्त्री के प्रपंच का शिकार होकर अपनी माता को अधिक पीड़ा पहुँचाता है।

प्रश्नकर्ता नगर निवासी है

दृश्यार्ध भाग अर्थात् सप्तम आदि छः भाव को नगर तथा अदृश्यार्ध भाग अर्थात् लग्न आदि छः भाव को निर्जन स्थान कहते हैं।

लग्नेश जिस स्थान में स्थित होता है, प्रश्नकर्त्ता को उस स्थान का निवासी कहना चाहिए।

इसी प्रकार धन आदि अन्य भावों के फल की स्पष्टता और गूढ़ता का विचार उनके स्वामियों से करना चाहिए।

विचारित भाव के स्वामी के साथ सूर्य और चन्द्रमा के योग से भावफल की प्रकटता समझनी चाहिए।

विशेष—यहाँ भावेश के दृश्यार्ध भाग में होने पर भावफल स्पष्ट तथा उसका प्रत्यक्षानुभूतिदायक होता है, परन्तु भावेश के अदृश्यार्ध भाग में होने पर भाव फल गुप्त या प्रच्छन्न होता है और उसकी अनुभूति भी परोक्ष रूप में ही होता है।

उदाहरण के लिए अदृश्यार्ध भाग में सप्तमेश यदि स्थित हो, तो पृच्छक की रतिक्रिया अथवा प्रणय व्यापार या व्यभिचार का लोगों को पता नहीं चलता।

दृश्यार्ध भाग में यदि सप्तमेश हो, तो उसी रतिक्रिया अथवा प्रणय व्यापार या व्यभिचार का लोगों को पता चल जाता है।



दैवी पीड़ा और शान्ति

देवताओं, धर्म देवों, सर्पों, पितरों, गुरुजनों, ब्राह्मणों अथवा भूत-प्रेतों के द्वारा जो पीड़ा पहुँचाई जाती है, तत्पश्चात् जो दृष्टि दोष अथवा वाणी से उत्पन्न दोष होते हैं, उन सब की क्रमशः कारण तथा शान्ति की विधि पृच्छकों के कल्याण की इच्छा से यहाँ लिखा जा रहा है।

इस समय देवताओं की अनुकूलता रूप कृपा या प्रतिकूलता रूप कोप इसका प्राथमिकता के साथ विचार कर कोप या प्रतिकूलता की स्थिति में उनकी अनुकूलता रूप कृपा प्राप्त करने के लिए अनुष्ठान करना चाहिए।

इसलिए देवताओं की कृपा सम्पादन करने हेतु अनुष्ठान आदि विधियाँ लिखी जा रही हैं।

दैवी अनुकूलता और प्रतिकूलता

समस्त देवताओं का अपने-अपने नक्षत्रों में नित्य या सदा ही वास रहता है। अतः यदि नक्षत्र अनुकूल हो, तो सभी देवता भी प्रायः अनुकूल रहते हैं और उसके प्रतिकूलता की स्थिति में वे सब प्रतिकूल होते हैं।

ग्रह देवत्व

द्विस्वभाव राशि के प्रथम और द्वितीय द्रेष्काण से भिन्न शेष सभी राशियों में स्थित सूर्य शिव कहलाता है।

द्विस्वभाव राशि के प्रथम द्रेष्काण में सूर्य ग्रह तथा द्वितीय द्रेष्काण में विघ्नेश्वर गणपति के रूप में माना गया है।

मंगल की राशि में स्थित बलवान् चन्द्रमा को दुर्गा, विबल (मध्य बली) को काली तथा निर्बल को चामुण्डा आदि तामसी शक्ति के रूप में जाना जाता है।

राशि में अपनी स्थितियों के अनुसार मंगल कुमार (षडानन) या भैरव आदि के रूप में होता है अर्थात् सिंह और धनु इन दोनों सात्विक राशियों में मंगल हो तो कुमार और शेष राशियों में हो तो भैरव आदि के रूप में जाना जाता है।

यदि वह द्विस्वभाव राशि में हो तो चामुण्डा, भद्रकाली आदि शक्ति का प्रतिनिधि या वाचक होता है।

स्थिर राशियों से भिन्न अन्य राशियों में स्थित बुध श्रीविष्णु स्वरूप श्रीरामचन्द्र जी आदि अवतारों का प्रतीक होता है। वह स्थिर राशि के अन्तिम द्रेष्काण में हो कर बालकृष्ण कहलाता है।

इसके अन्तिम द्रेष्काण में वह विष्णु ही होता है और बृहस्पति सर्वेश्वर महाविष्णु कहा गया है। उसके भेद बृहस्पति के साथ अन्य ग्रहों तथा राशियों के योगों के आधार पर कल्पित करने चाहिए।

सात्त्विक गुण सम्पन्न ग्रहों की राशि में स्थित शुक्र अन्नपूर्णा, राजसिक गुण सम्पन्न ग्रह की राशि में लक्ष्मी और तामसिक गुण सम्पन्न राशि में यक्षिणी कहलाता है। शनि शस्त्र धारण करने वाला देवता और राहु नागराज माना जाता है।

यदि सूर्य आदि ग्रह बाधक स्थानों के स्वामी होकर अनिष्ट स्थानों में स्थित हों तो उनके उपरोक्त देवताओं की पीड़ा बतलायी जानी चाहिए।

इस बाधक स्थानों का वर्णन दृष्टि बाधा के प्रसंग में किया गया है।

षष्ठ, अष्टम एवं व्यय स्थान अनिष्ट स्थान होते हैं। शुभ ग्रह के लिए तृतीय स्थान भी अनिष्ट स्थान होता है।

कोई ग्रह बाधक स्थान का स्वामी होकर अनिष्ट स्थान में स्थित हो तभी देवपीड़ा होती है।

केवल बाधक स्थान का स्वामी होने मात्र से देवपीड़ा नहीं होती; क्योंकि कोई न कोई ग्रह सदैव बाधक स्थान का स्वामी होता हैं; परन्तु सदैव देवकोप नहीं होता।

अतः अनिष्ट स्थान में उसका बैठना ही देवकोप का प्रमुख कारण जानना चाहिए।

देवताओं के कोप का कारण तथा उनके कोप की शान्ति के लिए किये जाने वाले उपाय ग्रह, आरूढ़ लग्न एवं स्थान आदि के भेद से लिखे जा रहे हैं।

यदि देवकोपकारक सूर्य आदि ग्रहों से द्वादश स्थान में पापग्रह हो तो उन पूर्व कथित देवताओं के कोप के कारण शरीर में विकलता आ जाती है।

ग्रह से द्वादश स्थान में गुलिक और राहु के होने पर सर्प का स्पर्श होता है।

उस स्थान में शनि होने पर कमजोरी या अपवित्रता होती है तथा वहाँ मंगल होने से रक्षकों में मतभेद होने के कारण असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है।

यदि देवकोपकारक ग्रह लग्न में पापयुक्त हो, तो देवता की मूर्ति में दोष जानना चाहिए।

मंगल से युक्त होने के कारण मूर्ति खण्डित हो जाती है और अन्य पापग्रहों के कारण वह अपवित्र हो जाती है।

इस स्थिति में देवता की प्रसन्नतार्थ नई मूर्ति बनाकर विधिवत् उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

चतुर्थ स्थान में उपरोक्त बाधाकारक पापग्रह हो, तो देवालय जीर्ण-शीर्ण होता है। उसका जीर्णोद्धार करना चाहिए या नया मन्दिर बनाना चाहिए। इससे देवता प्रसन्न हो जाते हैं।

इस प्रकार सप्तम स्थान में पूर्व कथित ग्रह हो, तो देवता की प्रसन्नता के लिए नृत्य करना चाहिए।

वहाँ मंगल या सूर्य की राशि में पापग्रह होने पर दीपक जलाना चाहिए।

वह यदि शुक्र और चन्द्रमा की राशि में हो, तो खीर, दूध या घी समर्पित करना चाहिए।

यदि बुध की राशि में हो, तो चन्दन, बृहस्पति की राशि में होने पर माला या पुष्प तथा शनि की राशि में होने पर आभूषण एवं वस्त्र आदि अर्पित करना चाहिए।

यदि वह अष्टम या दशम स्थान में हो, तो विधिवत् पूजा या बलिदान करना चाहिए।

द्वादश स्थान में उसके होने पर देवता की प्रसन्नता के लिए गीत, भजन और वाद्य आदि का प्रयोग करना चाहिए।

उपरोक्त प्रसङ्ग में ग्रन्थान्तर से विचार

यदि बाधक ग्रह लग्न आदि भावों में हो, तो क्रम से मूर्ति, मन्त्रजप, देवपूजा, गृह का दान, तर्पण, प्रतिकार बलिहोम,नृत्य, बलि, उपासना, गणेश स्कन्द बलि और अभिषेक आदि उपायों से रोग की शान्ति होती है।

उपरोक्त देवबाधा के प्रसंग में एक आवश्यक कथन यह है कि बाधाकारक ग्रह यदि व्यय स्थान में हो, तो बाधा नहीं होती।

अनिष्टस्थान में सूर्य यदि स्थित हो या अनिष्ट स्थान में सूर्य की राशि में बाधक ग्रह यदि स्थित हो, तो पृच्छक को रोग शान्ति के लिए पुष्पांजलिपूर्वक देवता की आराधना, स्तुति पाठ आदि करना चाहिए।

अनिष्ट स्थान में चन्द्रमा यदि हो अथवा उसकी राशि में बाधक ग्रह यदि हो, तो जौ का हलुआ या लस्सी का दान और शंख द्वारा दूध की धारा से देवता के ऊपर अभिषेक करना चाहिए।

तथा अनिष्ट स्थान में मंगल या उसकी राशि में यदि ग्रह हो, तो दीपदान एवं हवन करना चाहिए।

यदि उस स्थान में बुध या उसकी राशि में ग्रह हो, तो नृत्य करना चाहिये।

यदि उस स्थान में गुरु या उसकी राशि में ग्रह हो, तो ब्राह्मण-भोजन और स्वर्ण आदि देवता की प्रसन्नता के लिए बांटना चाहिये।

और अनिष्ट स्थान में शुक्र या उसकी राशि में यदि ग्रह हो, तो रोग की शान्ति के लिए दिल खोलकर पर्याप्त अन्नदान करना चाहिए।

अनिष्ट स्थान में शनि या शनि की राशि में यदि ग्रह हो, तो नीच जाति के लोगों को रोग शान्ति के निमित्त अन्नदान और भूदान करना चाहिए।

लग्न में शुभ ग्रहों के साथ सूर्य आदि ग्रह यदि हो, तो पूर्वोक्त श्लो० ४-७ के अनुसार उनके देवता की पृच्छक पर कृपा कहनी चाहिए।

यदि नवमेश बाधक स्थान में हो, तो पूर्वकाल में विधि रहित उपासना या देवता की उपेक्षा के कारण इस समय व्यक्ति देवता के कोप का भाजन बन जाता है।

अत: अपने कल्याण के लिए पृच्छक को देवता की आराधना करनी चाहिए।

देवद्रव्य अपहरण

इस प्रकार बाधक आदि षष्ठ, अष्टम आदि स्थान के स्वामी ग्रह के लाभ और धन स्थान में स्थित होने पर उस ग्रह के स्वामी देवता के धन का अपहरण करने के कारण उसका कोपभाजन होता है।

धातु, मूल और जीव के प्रभाव

यदि लग्न में चर राशि अथवा धातु ग्रह (अग्राक्त श्लोक २४) हो, तो रोग या देवकोप का कारण धातु या द्रव्य होता है।

लग्न में स्थिर राशि या मूल संज्ञक ग्रह होने पर रोग आदि अनिष्टों का कारण मूल होता है तथा लग्न में द्विस्वभाव राशि या जीव संज्ञक ग्रह होने पर अनिष्टों का कारण कोई जीव जानना चाहिए।

वृक्ष आदि को मूल, स्वर्ण आदि को धातु तथा मनुष्य एवं चतुष्पद आदि को जीव कहते हैं। वे जीव राशि के समान कहने चाहिए।

इस प्रकार देव-कोप में उपरोक्तानुसार जीव यदि कारण हो, तो स्वयं ईश्वर के निमित्त पशु आदि देने का संकल्प करके फिर न देने से या अपनी जीविका चलाने के लिए देवता, मन्दिर या मठ के जीवों का अपहरण या उपयोग करने से अथवा देव के निमित्त जीवों को देने की बात कहकर न देने से देव कोप होता है।

देव कोप का ऊपर कथितानुसार विचार करते समय धातु यदि कारण हो,

तो देव के निमित्त मन में संकल्पित सोना, चाँदी आदि धातु न देने के कारण या देवस्थान या धार्मिक स्थान की सम्पत्ति लेने के कारण देव-कोप होता है।

इसी प्रकार इस प्रश्न में मूल यदि कारण हो, तो देवता के लिए अर्पित भूमि और उसमें उत्पन्न होने वाले धान्य, वनस्पति आदि का अपहरण या उपयोग करने से देव-कोप होता है।

धातु मूल व जीव विभाग

चन्द्रमा, मंगल, राहु और शनि धातु संज्ञक; सूर्य और शुक्र मूल संज्ञक तथा बुध और गुरु जीव संज्ञक कहे गये हैं।

चर राशियाँ अर्थात् मेष, कर्क, तुला और मकर धातु संज्ञक; स्थिर राशियाँ अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ मूल संज्ञक तथा द्विस्वभाव राशियाँ अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु और मीन जीव संज्ञक होती हैं।

कृष्णीय ग्रन्थानुसार धातु, मूल और जीव संज्ञा

चन्द्रमा, मंगल, राहु और शनि से धातु; सूर्य और शुक्र से मूल तथा गुरु और बुध से जीव का विचार करना चाहिए।

मेषादि राशियाँ तथा अश्विनी आदि नक्षत्र क्रम से धातु, मूल एवं जीव संज्ञक कहे गये हैं।

ग्रन्थान्तर से धातु आदि संज्ञा

बृहस्पति से जीव का और मंगल एवं राहु से धातु का विचार करना चाहिए, यह व्यवस्था सभी पक्षों (मतों) को स्वीकार है। सूर्य और शनि विकल्प से धातु और मूल अथवा ये दोनों धातु और मूल दोनों को देते हैं।

इसी प्रकार बुध और शुक्र जीव और मूलप्रद होते हैं। चन्द्रमा धातु और जीव दोनों को देता है तथा चर स्थिर एवं द्विस्वभाव राशियाँ क्रमशः धातु, मूल एवं जीव संज्ञक मानी गई हैं।

धर्मदैव बाधा

यदि बाधाधीश (बाधाकारक ग्रह) सुखस्थान (चतुर्थ स्थान) में जायँ या चतुर्थेश यदि बाधक स्थान में स्थित हो या बाधाधीश यदि चतुर्थेश द्वारा अधिष्ठित राशि में हो अथवा चतुर्थेश यदि बाधाधीश द्वारा अधिष्ठित राशि में हो, तो धर्मदैव की बाधा होती है।

इन लक्षणों की अधिकता अर्थात् दो या अधिक लक्षण से बाधा का आधिक्य पृच्छक को कहना चाहिए।

उपरोक्त के अनुसार चतुर्थेश का जो देवता हो, उसे धर्मदेव मानना चाहिए। उसकी प्रसन्नता के लिए अपने-अपने सम्प्रदाय के पूर्ववर्ती आचार्य जिस प्रकार पूजा, बलि आदि करते-कराते चले आए हैं, वे सब करना चाहिए।

अतएव देवताओं के कोप के कारण और उनकी शान्ति का जैसा विधान पहले कहा जा चुका है, उसका ऊहापोह पटु दैवज्ञ को आवश्यकता के अनुसार संयोजित करना चाहिए।

बाधा स्थान में चन्द्रमा और सूर्य यदि हो, तो धर्मदैव की बाधा होती है तथा सन्तति एवं सम्पत्ति की अभिवृद्धि के लिए प्रत्येक संवत्सर के दिन भक्तिपूर्वक इनके पूजन की व्यवस्था करनी चाहिए।

सर्पबाधा

जब बृहस्पति बाधाधीश होकर व्यय, अष्टम या षष्ठ स्थान में स्थित हो और वह राहु से केन्द्र में हो, तो श्रेष्ठ सर्पों की बाधा होती है।

तथा यदि वह बाधाधीश होकर षष्ठ, अष्टम या द्वादश स्थान में स्थित गुरु गुलिक से केन्द्र में स्थित हो तो अधम कोटि के सर्पों की बाधा जाननी चाहिए तथा बाधा स्थान में राहु के होने पर भी सर्पबाधा होती है।

उन बाधाप्रद सर्पों की श्रेष्ठता या अधमता का विचार चन्द्रमा और सूर्य की युति व दृष्टि आदि के अनुसार करना चाहिए।

शान्ति के उपाय

राहु यदि बाधक स्थान, षष्ठ, अष्टम या दशम स्थान में हो, तो सर्पों की प्रसन्नता के लिए सर्पबलि करनी चाहिए।

राहु यदि चतुर्थ स्थान में हो, तो चित्रकूटशिला की विधिवत् प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

उसके द्वादश स्थान में होने पर गान क्रिया अर्थात् गायन-वादन आदि करना चाहिए।

उसके लग्न और सप्तम में होने पर सुधा तथा दूध का वितरण करना चाहिए अथवा सप्तम स्थान में होने पर नृत्य करना चाहिए।

इन षष्ठ आदि स्थानों में राहु की स्थिति होने पर जब कीर्तन स्तुति की जाती है तो फिर और किसी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं रहती।

अथवा उपरोक्त समस्त स्थान के प्रसङ्ग में राहु की स्थितिवश सर्पबलि

अर्थात् नागबलि करने का निर्देश देना चाहिए। उत्तम श्रेणी के सर्प नागबलि से और निम्न श्रेणी के सर्प गाने-बजाने से संतुष्ट होते हैं।

परन्तु सभी प्रकार के सर्पों को सन्तुष्ट करने के लिए नागबलि कर्म ही बतलाना चाहिए। इस प्रकार सर्प-कोप जन्य रोगादि अनर्थ और सन्तति नाश आदि से मुक्त होकर आरोग्य एवं सन्तति लाभ के लिए सर्पों को अवश्य प्रसन्न करना चाहिए।

यदि लग्नस्थ चरराशि में राहु हो, तो अण्डों का नाश और द्विस्वभाव राशि में हो, तो किशोर अवस्था वाले सर्पों का नाश तथा लग्नस्थ स्थिर राशि में राहु हो, तो उपरोक्त दोनों का तथा वृक्षों का नाश बाधाकारक होता है।

निम्न श्रेणी के सर्पों की ताँबे से और उत्तम श्रेणी के सर्पों के सोने के अण्डे और सर्प के आकार की प्रतिमा बनाकर दान करना चाहिए।

यदि नागों का नाश हुआ हो तो उनको भी स्थापित करना चाहिए।

यदि लग्न में चर राशि हो, तो ग्यारह; द्विस्वभाव राशि हो,, तो सात तथा स्थिर राशि हो, तो नव अण्डे और नाग की पूर्वोक्त ताँबे या सोने की प्रतिमा देनी चाहिए, इस प्रकार का सर्प सम्प्रदाय वेत्ताओं का कथन, समझना चाहिए।

यदि राहु गुलिक से युक्त अथवा गुलिक से सातवें, नौवें या पाँचवें स्थान में हो तो पृच्छक को सर्पबाधा होती है।

यदि राहु से केन्द्र में मंगल हो तो सर्प के रहने के स्थान के पेड़ को काटना, भूमि को खोदना, सर्प को मारना अथवा सर्प की बाँबी को तोड़ना आदि को सर्प बाधा का कारण समझना चाहिए।

यदि कुण्डली में इस राहु से गुलिक केन्द्र में हो तो सर्पों के रहने के स्थान या उसके आसपास उपद्रव, सम्भोग या पेशाब करना, जूठी वस्तु फेंकना आदि सर्पबाधा के कारण होते हैं।

यदि सर्पों के निवास स्थान के आस-पास के वृक्ष आदि उखाड़े गये हों तो उनका पूर्ववत् रोपण करना चाहिए और फेंकी गयी जूठी वस्तु एवं मल-मूत्र आदि को उस स्थान से हटाकर उस स्थान को पूर्ववत् पवित्र करके वहाँ पुण्याह वाचन आदि भी करना चाहिए।

पितृ प्रकोप

यदि सूर्य बाधक स्थानगत होकर मंगल की राशि या नवमांश में स्थित हो तो पिता का शाप होता है।

इसी तरह बाधक स्थान में मंगल की राशि या नवमांश में चन्द्रमा स्थित हो तो माता का शाप जानना चाहिए तथा अनिष्ट स्थान में सूर्य और चन्द्रमा की राशि में पापग्रह के होने पर क्रम से पिता और माता का शाप होता है।

इस शाप के दुष्प्रभाव से बचने के लिए जीवित माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा और परलोक वासी माता-पिता का श्राद्ध आदि कर उनको प्रसन्न करना चाहिए।

देव विप्र शाप

तथा बाधक स्थान में पापग्रह गुरु के साथ या गुरु की राशि में स्थित होने पर ब्राह्मणों या देवताओं का शाप होता है।

यदि बाधक स्थान में पापग्रह सिंह राशि में या सूर्य के साथ बैठा हो तो पूर्वजों अर्थात् पिता, पितामह एवं प्रपितामह आदि या गुरुजनों का शाप होता है।

यदि वह पापग्रह मंगल हो तो यह शाप बलवान् होता है। इन लोगों के शाप से मुक्त रहने या होने के लिए देव, द्विज एवं अपने गुरुजनों के मन को सन्तुष्ट करने के सत्प्रयास के साथ उन्हें प्रसन्न रखना चाहिए।

यदि कुण्डली में षष्ठेश नवम स्थान में और नवमेश षष्ठ स्थान में हो तो पिता, गुरु अथवा अपने पूर्वजों का स्वाभाविक कोप जानना चाहिए तथा षष्ठ स्थान में सूर्य के स्थित होने पर या षष्ठेश के साथ सूर्य के स्थित होने पर पिता का कोप कहना चाहिए।

इसी तरह चन्द्रमा और चतुर्थेश का छठे भाव में स्थिति अथवा उसके स्वामी के साथ स्थित होने से माता का शाप समझना चाहिए।

प्रेत बाधा

वार्षिक श्राद्ध, दीक्षा अर्थात् दाहसंस्कार से सपिण्डीकरण आदि समस्त अन्त्येष्टि कर्म आदि के लोप होने अर्थात् विधिपूर्वक उसका निर्वाह नहीं करने से प्रेत (मृतात्मा) पिशाच योनि में पहुँच जाता है और वह अपने लौकिक सम्बन्धियों को पीड़ा अथवा बाधा पहुँचाता हुआ विचरण करता है, इस प्रकार मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि स्मृतियों में कहा गया है।

वैसे बाधक स्थान या अनिष्ट स्थान में गुलिक यदि स्थित हो, तो प्रेतजन्य बाधा कहनी चाहिए।

इस योग में गुलिक मंगल की राशि या नवांश में स्थित हो अथवा उससे युक्त या दृष्ट हो तो अग्निकाण्ड या शस्त्र प्रहार आदि (दुर्घटना) से मृत्यु होने के कारण मृतात्मा प्रेत हो जाता है।

इसी प्रकार गुलिक का शनि से सम्बन्ध अर्थात् उसकी राशि या नवांश में स्थिति अथवा उससे युति या दृष्टि हो तो मृतात्मा अपने पारिवारिक व्यक्ति, जातीय बन्धु या धन से (सहसा) रहित होकर प्रेत हो जाता है।

उपरोक्त प्रकार के गुलिक राहु से युत तथा दृष्ट हो, तो यह प्रेत सर्प के काटने से मरा होता है तथा पाप ग्रहों के साथ जलचर राशि में गुलिक के होने पर नदी आदि में डूबने से उसकी मृत्यु होती है।

इस प्रकार गुलिक के साथ पापग्रहों के सम्बन्ध से प्रेत की दुर्घटनावश मृत्यु कहनी चाहिए।

तथा गुलिक के नवांश विषम या समराशि के आधार पर प्रेत पुरुष या स्त्री है, इस प्रकार भेद करना चाहिए।

इस प्रकार गुलिक की तृतीय, चतुर्थ, षष्ठ, नवम आदि स्थानों में स्थिति अथवा इन स्थानों के स्वामी या कारक ग्रहों से गुलिक की युति-दृष्टि होने से उसके भाई, माता, पिता आदि सम्बन्धी के प्रेत होने की सूचना मिलती है।

गुलिक के स्थिर राशि में होने पर इसकी हाल ही में मृत्यु कहनी चाहिए।

यदि वह चर राशि में हो तो भूतकाल में मृत्यु जाननी चाहिए।

गुलिक के चतुर्थ में होने पर या चतुर्थेश से दृष्ट या युक्त होने पर प्रेत के घर वाले और सम्बन्धी होते हैं, अन्यथा ऐसी कल्पना नहीं करनी चाहिए।

प्रेत की आयु

यदि गुलिक राशि या नवांश के आदि में स्थित हो, तो प्रेत की बाल्यावस्था; राशि या नवांश के अन्त में स्थित हो, तो वृद्धावस्था तथा राशि के मध्य में स्थित हो, तो अनुपात से अवस्था की कल्पना करनी चाहिए।

यदि चन्द्र आदि ग्रहों की राशियों में गुलिक हो, तो 'एकं द्वे नव विंशतिधृतिकृती पंचाशदेषां क्रमाच्चन्द्रारेन्दुजशुक्रजीव दिनकृनैवाकरीणां समाः' इस आधार पर प्रेत की अवस्था १, २ आदि वर्ष माननी चाहिए।

इस प्रकार प्रेत की १ वर्ष की आयु होने पर उसे वास्तविक न मानकर चन्द्रमा की अपनी बाल्य आदि अवस्था के अनुसार प्रेत की अवस्था कहनी चाहिए।

प्रेत की जाति

यदि किसी कारणवश कहीं भी प्रेत की जाति जानने की इच्छा हो जाय, तो वहाँ गुलिक; जिस राशि या नवांश में स्थित हो, उस राशि के अनुसार प्रेत की जाति कहनी चाहिए।

राशियों की जाति स्पष्टार्थ चक्र

जाति	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
रा	कर्क	मेष	वृष	मिथुन
शि	वृश्चिक	सिंह	कन्या	तुला
याँ	मीन	धनु	मकर	कुम्भ

शान्ति की अवश्यकता

प्रेतबाधा है, इस प्रकार आपदग्रस्त विषय को जानकर उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप शान्ति कार्य अवश्य करनी चाहिए। प्रेत के प्रसन्न होने पर धन, पुत्र आदि सम्पत्तियाँ मिलती हैं जैसा कि इस विषय में कहा गया है—

प्रेत का कोप पुत्रनाश और रोग आदि अनर्थों को करने वाला होता है। उसकी प्रीति और संतुष्टि के लिए पार्वण आदि पितृजनों के मन को प्रसन्न करने वाले श्राद्ध करने चाहिए।

तथा मथुरा, गया आदि क्षेत्रों में पिण्डदान, तिलों से हवन तथा ब्राह्मण भोजन करना चाहिए। इन कार्यों से प्रसन्न हुए प्रेत समस्त सम्पत्तियों के साथ सन्तान भी देते हैं।

दृष्टि बाधा

इस प्रकार दृष्टिजन्य अर्थात् नजर लगने से उत्पन्न बाधायें कहते हैं। जो पुरुष अथवा स्त्रियाँ दृष्टिबाधा से ग्रस्त होते हैं, शास्त्रों में बतलाए गए उन स्त्री-पुरुषों की व्यथा-कथा को कहता हूँ।

दृष्टिबाधाग्रस्त पुरुष के लक्षण

लालच करने वाले, निर्दयी, भयभीत, स्त्रीभोग आदि से तृप्त अथवा प्रसन्न, अतिदुष्ट, पुरानी शत्रुता से ग्रस्त, धन की बर्बादी करने वाले, वियोगी, बदले की भावना से कुण्ठा युक्त, अपवित्र, रोगी, हास-विनोद में मस्त,सुन्दर शरीर वाले, धन सम्पत्ति नष्ट करने वाले, धैर्य रहित, प्रसाधनों से सुसज्जित या रात्रि में अकेले पुरुष को प्रतिकूल समय आने पर भगवान् शंकर के गण ग्रसित कर लेते हैं।

दृष्टि बाधा लगी स्त्री के लक्षण

तेल मालिश, उबटन से युक्त स्नान कर रही, प्रसूता, सद्यः उपभुक्ता अर्थात् सम्भोग की हुई, मद्यपान में अनुरक्ता, नग्ना, गर्भिणी, कामातुरा, आमोद-प्रमोद से मुग्ध, रथ में बैठी हुई, ऋतुमती अर्थात् ऋतुस्नाता, पर पुरुष की इच्छा

वाली, रोती हुई, एकांत में बैठी या सुन्दर शरीर वाली स्त्री को प्रतिकूल समय आने पर बुरे स्वभाव वाले गुह्यक ग्रस लेते हैं।

ग्रहपीड़ा के कारण

इस दृष्टि बाधा के प्रसंग में ग्रहों की पीड़ा के कारण और उनके स्थानों को और उनसे बचने के उपायों को कहते हैं।

अपमान, कर्जदारी, शत्रुता, कार्यों में विघ्न, भाग्य का विपर्यय और ईश्वर की इच्छा आदि इन छः कारणों का विचार ग्रहों की पीड़ा में विद्वानों को करना चाहिए।

ग्रहों के निवास स्थान

गुफा, अश्मकूट अर्थात् जहाँ झाँई अर्थात् प्रतिध्वनि सुनाई दे या पर्वतों के ऊपर के वन, उपवन, पर्वतों के शिखर, नदी, वापी, कुँआ, तालाब, जलाशय के तट, नदियों के संगम तथा आवर्त, गोशाला, निर्जन मन्दिर या मकान, एक वृक्ष वाली जगह, चिता की जगह, अपवित्र जगह, देवालय, निधि (खजाने) की जगह, कर्दमयुक्त स्थान, बिल का द्वार, चौराहा, गाँव की सीमा के पास, देवी का मन्दिर, धार्मिक क्षेत्र, तीर्थस्थान, बाग, वाटिका, विशाल भवन, महल और अट्टालिका जैसे स्थानों में अपनी योग्य क्रीड़ा में तत्पर ग्रह निवास करते हैं।

जो ग्रह मनुष्यों को पीड़ा देते हैं, उनकी संख्या, संज्ञा और स्वभाव अन्यान्य ग्रन्थों में बतलाए गए हैं। अब इन सब विषयों को भी यहाँ लिखा जा रहा है।

ग्रहों की संख्या

मनुष्य जाति को पीड़ित करने वाले जो ग्रह हैं, उनकी संख्या सत्ताईस है। उन ग्रहों में भी अट्ठारह महान पीड़ादायक और नौ लघु पीड़ादायक होते हैं। उन सबको यहाँ बतलाये जा रहे हैं।

अष्टादश महाग्रह

अमर (देवता), असुर, नाग, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, हेढ्रक, चल (कश्मल), निस्तेज, भस्मक, पितर, कृश, विनायक, प्रलाप, पिशाच, अन्त्यज, योनिज और भूत—ये अट्ठारह महाग्रह सुप्रसिद्ध है।

नव लघुग्रह

अपस्मार, द्विज, ब्रह्मराक्षस, अवनिभुक्, वैश्य, वृषल, नीच, चांडाल और व्यन्तर—ये नौ लघु ग्रह होते हैं।

अन्य ग्रह तथा ग्रहों के भेद

दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करते समय भगवान् रूद्र के क्रोध से उत्पन्न उपरोक्त ग्रह तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुत से ग्रह हैं।

सभी ग्रह बलि की इच्छा वाले, रमण की इच्छा वाले, मारने की इच्छा वाले आदि इस तरह तीन प्रकार के माने जाते हैं।

ये सब ग्रह सौम्य स्वभाव और क्रूर स्वभाव के भेद से दो प्रकार के होते हैं। इन भेदों की जानकारी ग्रह और उनकी स्थिति के भेद से करनी चाहिए।

इस प्रकार मारने की इच्छा वाले कुछ देव या ग्रह बाधा करते हैं। कुछ बलि अर्थात् पूजा-द्रव्य का भोग करने की इच्छा वाले और कुछ पुरुष या स्त्री का रमण करने की इच्छा वाले ग्रह या देव बाधा करते हैं।

उनमें से जो मारने की इच्छा वाले ग्रह होते हैं, वे व्यक्ति को मार ही डालते हैं।

जो बलि का भोग करने की इच्छा वाले होते हैं, वे बलि लेकर व्यक्ति को छोड़ देते हैं और जो रमण करने की इच्छा करने वाले ग्रह देवता होते हैं, वे सौ बार बलि देने से भी व्यक्ति को नहीं छोड़ते।

देवता, ग्रह आदि से पीड़ित व्यक्तियों के पृथक्-पृथक् लक्षण कहे गए हैं।

उन लक्षणों के अनुसार भी ग्रहों के अमर, असुर आदि भेद जानने चाहिए, जो इस प्रकार हैं।

देवावेश व्यक्तित्व लक्षण

देवता (अमर) के आवेश से प्रभावित व्यक्ति स्नान किया हुआ, सुगन्धि वाला, तेजस्वी, हृष्ट-पुष्ट, देवस्थानों का प्रेमी, कम बोलने वाला, सुगन्धि वाला, टट्टी व पेशाब कम करने वाला, स्वल्प भोजी, क्रोध न करने वाला, सुगन्धि और पुष्प मालाओं का प्रेमी, धैर्यशाली और सुन्दर नेत्र वाला होता है।

असुरों से पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

असुरों के प्रभाव से प्रभावित व्यक्ति देव निंदक, दैत्यों का प्रशंसक, ब्राह्मण द्वेषी, फेट या खुले नेत्र वाला, दुष्टात्मा, निर्भीक, अभिमानी, हँसी उड़ाने वाला, विस्मयकारी मुद्रा अर्थात् मुखाकृति या हाव-भाव वाला, बहु भोजी और कम्पित अंगों वाला होता है।

नागपीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

पानी, शर्बत, दूध आदिको पीने की इच्छा से युक्त, होठों पर जीभ फेरने

वाला, भूमि में घूमने या लौटने वाला, लाल-लाल आँखों वाला, क्रोधी, पर्वत पर रहने वाला, कम्पित अंगों वाला, दाँतों को किटकिटाने वाला और फूलों को चाहने वाला व्यक्ति नागों से पीड़ित होता है।

यक्षग्रस्त व्यक्तित्व लक्षण

धीर, त्यागी, शीघ्र चलने वाला, कुछ-कुछ लाल अग्नि के समान नेत्रवाला, भोगोपभोग में मस्त, किसी-किसी दिन निराहार रहने वाला और क्षमाशील व्यक्ति यक्ष से पीड़ित होता है।

गन्धर्व पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

अल्प बोलने वाला, सुगन्धि और माला से प्रेम करने वाला, गाने और नाचने वाला, नदी के किनारे पर रहने वाला, परोक्ष बात जानने वाला, मुख से वाद्य जैसी धुन बजाने वाला, दूध पीने वाला, हँसने वाला और खेलने वाला तथा हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति गन्धर्वों से पीड़ित होता है।

राक्षस से पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

तेज दौड़ने वाला, अपना मांस खाने वाला, मद्य और खून पीने वाला, निर्जन गांव में रहने वाला, ताँबे के समान रंग वाला, निर्लज्ज, निष्ठुर, रोगी, पवित्रता का द्वेषी और रात मे घूमने वाला व्यक्तित्व बलवान् राक्षस से पीड़ित होता है।

हेढ्रकपीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

विस्मयकारी मुखमुद्रा वाला, नीचे की ओर मुंह लटकाने वाला, कुछ न देखने वाला, मुट्ठी बन्द कर कपड़ों में छुपाने वाला, जंघा पर सिर रखने वाला और क्रूर दृष्टि वाला व्यक्ति हेढ्र से पीड़ित होता है।

कश्मलपीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

मल और कीचड़ का शरीर में लेपन करने वाला, अपवित्र, भस्म में सोने वाला, रोने और हँसने वाला, स्त्री द्वेषी, जीव-जन्तुओं को मारने या डराने वाला, सदा खाने की इच्छा वाला, कलहप्रिय, रोगी, दूसरों का धन हरने वाला, क्रोधी और अल्प बोलने वाला व्यक्ति कश्मल नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

निस्तेजग्रस्त लक्षण

तेजहीन, विह्वल, एकटक देखने वाला, कुछ न बोलने वाला और परिहास करने में निपुणता रखने वाला व्यक्ति निस्तेज नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

भस्मक पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

असंगत या निरर्थक वार्तालाप करने वाला, सबसे द्वेष करने वाला, ठण्डे

हाथ-पैर वाला, तिरछी दृष्टि वाला, खाने के बाद भी तृप्त न होने वाला, काले रंग वाला और निर्मल व्यक्ति भस्मक नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

पितृ पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

कुशाओं पर पिण्ड देने वाला, प्रेतों का तर्पण करने वाला, तिल, मांस और गुड़ का इच्छुक तथा शान्त स्वभाव वाला व्यक्ति पितृगणों से पीड़ित होता है।

कृशग्रस्त व्यक्तित्व लक्षण

एकान्तवासी, कमजोर अंगों वाला, दौड़ने वाला, कठोर ध्वनि करने वाला, पूछने पर भी न बोलने वाला और खाने पर भी तृप्त न होने वाला व्यक्ति कृश नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

विनायक व्यक्तित्व लक्षण

पैर की धूल धोने वाला, खूब डकार लेने वाला, बार-बार वमन करने वाला और दाँतों को कटकटाने वाला ग्रह विनायक ग्रस्त होता है।

प्रलापग्रह से पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

अंगों को तोड़ने-मरोड़ने वाला, कमजोर शरीर वाला, नाचने वाला, स्वस्थ, विना किसी बात के हँसने वाला, बहुभोजी और बहुत बोलने वाला व्यक्ति प्रलाप नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

पिशाच ग्रस्त व्यक्तित्व लक्षण

कठोर और रूखे स्वर वाला, निर्जन और टूटे-फूटे स्थान में रहने वाला, बकवास करने वाला, दुर्गन्धियुक्त शरीर वाला, अपवित्र और लालची व्यक्ति पिशाच नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

अन्त्यज पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

जनों को ताड़ित करने वाला, चंचल और लाल नेत्र वाला, लोभी, मल और कीचड़ लपेटने वाला, बहुभोजी, कम्पित अंगों वाला तथा दीन-हीन वाणी वाला व्यक्ति अन्त्यज नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

योनिज पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

बहु भोजी, चिन्तित रहने वाला, बातों को जानने वाला, मांस खाने वाला, चंचल नेत्रों वाला, मान-मर्यादा की चिन्ता न करने वाला, भेड़ जैसी गन्ध वाला और अकड़े हुए अंगों वाला व्यक्ति योनिज ग्रह से पीड़ित होता है।

भूत पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

जनों को मारने वाला, ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर चढ़ने वाला, अपशब्द बोलने

वाला, सबका अनुकरण करने वाला और विकृत-आकृति या शरीर वाला व्यक्ति भूत नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

अपस्मार पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

मुँह से झाग निकालने वाला, टेढ़ी-तिरछी आँखों वाला, मूर्च्छित होकर जमीन पर गिरने वाला, हाथ और पैर को सिकोड़ने अथवा मरोड़ने वाला, पीले रंग वाला, दाँत किटकिटाने वाला, होश में आकर पुनः बेहोश होने वाला व्यक्ति अपस्मार नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

विशेष—आयुर्वेद आदि चिकित्सा शास्त्र में 'मिर्गी' नामक रोग का अपर नाम अपस्मार भी है। अतः मिरगी की दौरा आने पर मनुष्य में प्रायः उपरोक्त चेष्टा या लक्षण दीखते हैं।

द्विज और ब्रह्मराक्षसग्रस्त व्यक्तित्व लक्षण

सफेद माला और वस्त्र धारण करने की इच्छा वाला, वेद पढ़ने वाला, कुशा, स्रुवा आदि धारण करने वाला, ब्राह्मणों की तरह अनुष्ठान करने वाला, शुद्ध तथा देवताओं का भजन करने वाला व्यक्ति द्विज नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

ब्रह्मराक्षस से पीड़ित व्यक्ति के लक्षण प्रायः द्विज ग्रह से पीड़ित व्यक्ति के उक्त लक्षणों के समान होते हैं।

नृप ग्रह पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

लाल फूल आदि को धारण करने वाला, दौड़ने वाला, नाचने, हँसने और लिखने वाला, सहनशील, क्षत्रियों जैसी चेष्टा करने वाला, गाने और गर्जने वाला व्यक्ति नृपग्रह से पीड़ित होता है।

वैश्य पीड़ित व्यक्तित्व लक्षण

जम्हाई लेने वाला, हँसने वाला, रोने वाला, आक्रोश करने वाला, खेती और व्यापार करने वाला, नाचने वाला, अभद्र वाणी बोलने वाला, कुपित रहने वाला और विनयहीन व्यक्ति वैश्य नामक ग्रह से पीड़ित होता है।

वृषल ग्रह पीड़ित लक्षण

मल-मूत्र खाने वाला, अस्पष्ट शब्द बोलने वाला, गुप्ताङ्ग का स्पर्श करने वाला, रोने और हँसने वाला, ब्राह्मण द्वेषी, स्त्रियों का प्रिय और कम्पित अंगों वाला व्यक्ति वृषल ग्रह से पीड़ित कहा गया है।

पूर्वोक्त चौबीस ग्रहों के जो लक्षण कहे गये हैं वे ही मिले-जुले लक्षण नीच, चाण्डाल एवं व्यन्तर ग्रहों से पीड़ित व्यक्तियों में जानने चाहिए।

कुछ दीजिये या मैं छोड़ दूँगा, ऐसा कहने वाला, गाने और हँसने वाला व्यक्ति सौम्य स्वभाव के ग्रहों से पीड़ित होता है।

'नही छोड़ूगाँ' ऐसा कहने वाला, अपने शरीर को पीटने वाला और कठोर बातें कहने वाला व्यक्ति क्रुद्ध स्वभाव के ग्रहों से पीड़ित होता है।

मारने की इच्छा वाले ग्रह असाध्य होते हैं। अत: उन्हें छोड़ देना चाहिए, उनके लिए कोई उपाय नहीं करना श्रेयस्कर है।

हिंसा आदि भाव प्रभावी ग्रह

मारने, बलि लेने और रमण करने की इच्छा वाले ग्रहों से पीड़ित व्यक्ति के लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

टीला एवं वृक्ष आदि से गिरने वाला, आग और अगाध अर्थात् अथाह या असीमित जल में घुसने वाला, बालों को बिखेरने वाला, विना किसी कारण हँसने वाला, चिकित्सक को देखकर जोर से बोलने वाला, रोते हुए नाचने वाला और लाल-लाल आँखों वाला व्यक्ति मारने की कामना वाले ग्रह से पीड़ित होता है।

चारों दिशाओं में देखने वाला, उद्विग्न, शूल एवं ज्वर आदि रोगों से पीड़ित, भूख और प्यास से दु:खी, सिरदर्द या सिर रोग से दु:खी तथा "दे दो या दीजिए" ऐसा वाक्य बोलने या कहने वाला व्यक्ति बलि की कामना करने वाले ग्रह से पीड़ित होता है।

उद्विग्न मन वाला, स्त्री के शरीर या स्तनों से खेलने वाला, वाद्यों का प्रेमी, उपद्रव न करने वाला, स्नान करके माला आदि अलंकार धारण करने वाला और अपवित्र हालत में रति या संभोग की याचना करने वाला व्यक्ति रमण करने की कामना वाले ग्रह से पीड़ित होता है।

बलि की कामना करने वाला ग्रह तान्त्रिक विधि से बलि देने पर और रमण की कामना करने वाला ग्रह यन्त्र-मन्त्र आदि से उपद्रव करना छोड़ देता है।

इस प्रकार इन दोनों ग्रहों के उपद्रव तान्त्रिक-मान्त्रिकों के द्वारा साध्य कहे गये हैं।

विभिन्न ग्रहों से पीड़ित व्यक्तियों की अलग-अलग कही हुई चेष्टाओं-व्यवहारों से देव, असुर आदि ग्रहों के भेद या प्रकार का निश्चय कर मन्त्रशास्त्रवेत्ता को एकाग्र मन से उनकी उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिए।

आगे इन उपरोक्त विविध प्रकार के ग्रहों का सूर्य आदि ग्रहों के साथ सम्बन्ध को कहा जा रहा है, साथ-साथ अन्यान्य ग्रन्थों में वर्णित बाधक स्थानों की चर्चा भी किया जा रहा है।

सारसंग्रह का विचार

सूर्य के रुद्रगण अर्थात् भगवान् शिव के गण, उग्रदेव अर्थात् भूत-प्रेत आदि और नागराज; चन्द्रमा के किन्नर, यक्ष आदि ग्रह और सर्प; मंगल के उग्र देव राक्षस ग्रह, भूत और भैरव आदि देव; बुध के अट्टालिका में रहने वाले किन्नर तथा बृहस्पति के गणेश आदि देव, देवता, कल्याणकारक सर्प और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नामक ग्रह कहे गए हैं।

शुक्र के यक्षिणी, मातृका गण और सर्प; शनि के भस्मक, रुक्ष, पिशाच, चल एवं निस्तेज नामक अशुभ ग्रह; राहु के सर्प, पिशाच, नाग आदि तथा केतु के प्रेत आदि ग्रह कहे गये हैं।

अनिष्ट- स्थान में स्थित सूर्य आदि ग्रह अपने उपरोक्त ग्रहों या रोगों के द्वारा सभी प्राणियों को पीड़ा देते हैं।

सन्तानदीपिका का विचार

बाधक स्थान में सूर्य होने पर शिव आदि गण और भूत आदि के कोप से रोग होते हैं।

इस बाधक स्थान में चन्द्रमा हो, तो दुर्गा के कोप द्वारा या धर्मदेव के कोप द्वारा रोग होता है।

इस बाधक स्थान में मंगल हो, तो स्कन्ध के प्रकोप से और भैरव आदि से पीड़ा मिलती है।

यहाँ बुध होने पर गन्धर्व, यक्ष आदि विमान स्थानवासी ग्रहों के कोप से रोग होते हैं। गुरु के बाधक स्थानों में होने पर ब्राह्मण के शाप और देवताओं के कोप से भी पीड़ा होती है।

शुक्र यदि बाधक स्थान में हो, तो यक्षों के कोप से रोग और ब्रह्मराक्षस से पीड़ा होती है।

यहाँ बाधक शनि हो, तो भूतों के स्वामी शिवगणों के कोप से पीड़ा होती है।

इस बाधक स्थान में राहु के होने पर सर्पकोप से रोग तथा केतु के होने पर चाण्डाल आदि देवों के कोप से रोग होता है।

बाधक स्थान में गुलिक या मान्दि के होने पर प्रेतकोप से रोग होता है। ऐसा बुद्धिमान् दैवज्ञों को बतलाना चाहिए।

बाधक स्थान एवं राशियाँ

आरूढ़ लग्न में चर राशि हो, तो एकादश राशि, आरूढ़ लग्न में स्थिर

राशि हो, तो नवम राशि और आरूढ़ लग्न में उभयोदय राशि हो, तो सप्तम राशि बाधक होती है।

वैसे अन्य मत में चर, स्थिर और उभयचरी राशियाँ यदि केन्द्र में हो, तो केन्द्र स्थित राशियाँ बाधक राशियाँ होती हैं।

लेकिन कुछ अन्य आचार्यों के अनुसार सभी चर राशियों की बाधक कुम्भ राशि और वृश्चिक, धनु, सिंह एवं कन्या की वृश्चिक तथा वृषभ की मकर, कुम्भ की कर्क, मिथुन की धनु और मीन की धनु राशि बाधक राशियाँ होती हैं।

बाधक राशि ज्ञापनार्थ चक्र

लग्न राशियाँ	मे०	वृ०	मि०	क०	सिं०	क०	तु०	वृश्चि०	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
आरूढ़ बाधक राशियाँ	११	१०	६	२	१	१२	५	४	३	८	७	६
अन्य बाधक राशियाँ	११	१०	६	११	८	८	११	८	८	११	४	६

बाधक राशियों का विचार करते समय उपरोक्त तीन प्रकारों को तीन पक्षों या पद्धतियों के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

इनमें से प्रथम और अन्तिम पद्धति सर्वत्र ग्राह्य है।

किन्तु 'त्रयाणां केन्द्रेषु चैषां' यह दूसरी रीति प्रेतबाधा आदि का विचार करते समय वैकल्पिक रूप से प्रयोग करना चाहिए। अत: दोनों प्रधान मतों को ही चक्र में स्पष्ट किया गया है।

दृष्टि बाधा योग

यदि बाधक स्थान का स्वामी लग्न या लग्नेश को पूर्ण दृष्टि से देख रहा हो तो उस समय दृष्टिजन्य बाधा होती है। यहाँ बाधकेश के त्रिदश, त्रिकोण और चतुरस्त्र दृष्टि स्वीकारने पर दृष्टिजन्य बाधा होती है अर्थात् शनि, गुरु व मंगल की क्रम से ३, १०; ५, ९ और ४, ८ स्थानों पर पड़ने वाली पूर्ण दृष्टि तथा शेष ग्रहों की एक पाद, द्विपाद व त्रिपाद दृष्टि उपरोक्त स्थानों में होती ही है।

अत: किसी भी दृष्टि प्रकार के घटित होने पर बाधा होनी निश्चित है।

सप्तमस्थान का स्वामी यदि बाधा स्थान में हो अथवा सप्तमेश और बाधाधिपति में परस्पर युति या दृष्टि हो, तो दृष्टिजन्य बाधा होती है।

यदि लग्न में चर राशि और सप्तम स्थान में मंगल हो तथा लग्न में पाप ग्रह भी हो, तो देवता के दर्शन से दृष्टिबाधा जन्य रोग होते हैं।

लग्न में पाप ग्रह, सप्तम स्थान में शनैश्चर और पाप ग्रहों द्वारा चन्द्रमा को देखे जाने पर पिशाच के दर्शन से रोग होते हैं।

ग्रहपीड़ा प्रयोजन

यदि बाधकेश ग्रह लग्नेश का मित्र हो तो रमण करने के लिए; यदि बाधकेश ग्रह उसका शत्रु हो तो मारने के लिए और यदि बाधकेश उसका सम हो तो बलि का भोग करने के लिए ग्रह पीड़ाकारक होता है।

इस प्रकार दैवज्ञ ग्रह पीड़ा के उपरोक्त तीन प्रयोजन कहते हैं।

अन्य विद्वानों का कथन है कि बाधकेश लग्नेश से दृष्ट या युक्त हो तो रमण करने के लिए, वह अष्टमेश और षष्ठेश से दृष्ट या युक्त हो तो मारने के लिए तथा इनके अलावा अन्य ग्रहों से बाधकेश दृष्ट या युक्त हो तो बलि का भोग करने के लिए ग्रह बाधा होती है।

यदि उक्त पक्षों में परस्पर विरोध हो तो "लग्नेश बन्धुर्यदि बाधकेशो०' इत्यादि पूर्व कथनों में प्रतिपादित रीति से ही ग्रह बाधा के प्रयोजन का निर्णय करना चाहिए।

यदि बाधक स्थान में स्थित ग्रह शुक्र की राशि में स्थित हो या शुक्र से दृष्ट हो तो पति-पत्नि के समागम के समय दृष्टिजन्य पीड़ा होती है।

बाधा-स्थान विचार

बाधक स्थान में स्थित राशि से बाधाकारक निश्चित देश अथवा स्थान का निर्णय करना चाहिए। अतएव मेष आदि राशियों के प्रदेश या स्थानों को कहता हूँ।

सोना, चाँदी, जस्ता आदि धातु और रत्नों की प्राप्ति के स्थान, छोटी नहरों वाली भूमि, सर्पों की बाँबियाँ और पूर्व दिशा के देश मेष राशि के स्थान कहे गये हैं।

किसानों के खेत, बगीचे और रमणीय भूमि वृष राशि के स्थान जानने चाहिए।

उद्यान, देवालय, रत्नजटित भूमि और रमणीय स्थान मिथुन राशि के स्थान होते हैं।

अप्सराओं के निवास स्थल, सुन्दर सरोवर और जल के समीप के प्रदेश कर्क राशि के स्थान जानने चाहिए।

पर्वतों के शिखर आदि जैसी ऊँची जगह, गौशाला, खेत, देव मन्दिर और ब्राह्मणों के निवास स्थान सिंह राशि के स्थान होते हैं।

देवालय, घुड़शाला, हाथियों के रहने की जगह तथा समुद्र के समीपवर्ती प्रदेश कन्या राशि के स्थान जानने चाहिए।

गली बाजार और वनों में तुला राशि का, वल्मीकि (बाँबी), सरोवर, बाग, छावनी और युद्ध के मैदान में वृश्चिक राशि का तथा किले के परकोट में धनु राशि का निवास कहा गया है।

नदियों के मुहाने, जंगल और निषादों के वास करने का स्थान, भीलों की बस्ती आदि मकर राशि के और ये ही स्थान कुम्भ राशि के कहे जाते हैं।

ताल, सरोवर, जलाशय और देव-मन्दिरों में मीन राशि का निवास होता है।

इस प्रकार से मेषादि राशियों का वासस्थान श्रेष्ठ मुनिजनों ने माना है।

वन, खेत, नगर, नहर,पर्वत, ग्राम, बाजार, कुंआ, दुर्गम स्थान, समुद्र, तालाब और नदी ये क्रमशः मेष आदि बारह राशियों के स्थान जानने चाहिए।

यहाँ पाठकों के हितार्थ बारह राशियों के निवास स्थान पुनः उद्धृत किया जा रहा है—

मेष—खानों का प्रदेश, नहर, सर्प बिल, पूर्वी प्रदेश या वन।

वृष—खेत, बाग-बगीचे, रमणीय प्रदेश।

मिथुन—उद्यान, मन्दिर, रत्न भूमि, सुन्दर स्थान।

कर्क—उच्च पर्वतीय स्थल, सुन्दर तड़ाग व जलप्रान्त भूमि।

सिंह—पर्वत शिखर, गौशाला, देवगृह, विप्रगृह।

कन्या—देवालाय, घुड़साल, हस्तीशाला, समुद्रतट प्रदेश।

तुला—गली, बाजार, वन।

वृश्चिक—बिल, सर, छावनी, युद्धस्थल, सेनास्थल।

धनु—किले व किले की प्राचीर।

मकर—कुम्भ—नदी का मुहाना, जंगल, भीलों की बस्ती।

मीन—ताल, देवस्थान आदि पवित्र स्थान।

जिह्वा दोष

यदि द्वितीयेश बाधाधिपति से दृष्ट या युक्त हो तो जिह्वा में दोष उत्पन्न होता है, इस आधार पर उस मनुष्य को वाक्रोग कहना चाहिए।

कुछ तीव्र वाणी, विषों के सेवन से, स्वर यन्त्र में विकार से, मानसिक अथवा स्नायविक दुर्बलता से या गलत अभ्यास आदि प्रकार से बोलने में जो विकृति उत्पन्न होती है, उसे जिह्वा दोष बतलाते हैं।

बाल ग्रह पीड़ा

पूतना आदि जो प्रसिद्ध बाल ग्रह हैं वे बाल शिशु को ही पीड़ा देते हैं, अतः अब उनके बारे में ही कहते हैं।

शनि और बुध इन दोनों में से कोई एक ग्रह अथवा मिथुन और मकर इन दोनों राशियों में से कोई एक राशि बाधक स्थान में स्थित हो तो बाल ग्रहों की पीड़ा बतलानी चाहिए।

विष भक्षण

यदि चतुर्थ, पंचम, सप्तम या अष्टम स्थान में मान्दि अथवा राहु स्थित हो, तो व्यक्ति जहर खाता है।

उपरोक्त चतुर्थ आदि चारों स्थानों में से किसी भी स्थान में मान्दि या गुलिक या राहु के साथ षष्ठेश हो तो व्यक्ति शत्रु के द्वारा दिया हुआ जहर खाता है।

यदि उक्त योग में षष्ठेश न हो तो दैवयोग या संयोग से खाद्य वस्तुओं में असावधानी बरतने से जहर खा लिया गया होता है।

यदि आरूढ़ लग्न में सिंह राशि हो, तो किसी कड़वे पेय में या पान आदि में मिलाकर जहर दिया जाता है।

आरूढ़ लग्न में मंगल की राशि हो, तो घी में मिलाकर, बुध की राशि हो, तो शहद में डालकर, शुक्र की राशि हो, तो मट्ठा या दही में मिलाकर; गुरु की राशि हो, तो मालपुआ आदि मिठाइयों में मिलाकर; शनि की राशि हो, तो नमकीन चीजों में डालकर और चन्द्रमा की राशि हो, तो पेय द्रव्य में घोलकर किसी भी प्रकार का जहर दिया गया, जानना चाहिए।

यदि लग्नेश और षष्ठेश में सम्बन्ध हो, तो जान से मारने के लिए जहर दिया जाता है तथा लग्नेश तथा सप्तमेश में सम्बन्ध हो, तो वशीकरण के लिए विष का प्रयोग किया गया, जानना चाहिए।

शत्रु-बाधा-त्रिदोषजन्य रोग

केवल बाधाजन्य और त्रिदोष के विकार से उत्पन्न होने वाले रोगों के दो भेद होते हैं। पहले उन दोनों भेदों का निरूपण करते हैं।

यदि आरूढ़ राशि बलवान् हो, तो बाधा द्वारा रोगोत्पत्ति होती है, इस तरह से विद्वान् कहते हैं।

लग्न यदि बलवान् हो, तो वात, पित्त एवं कफ इन तीनों विकारों से रोगों की उत्पत्ति होती है।

इसी प्रकार षष्ठेश के बलवान् होने पर बाधा द्वारा रोगों की उत्पत्ति बतलानी चाहिए और अष्टमेश यदि सर्वाधिक बली हो, तो त्रिदोष विकार से रोग होते हैं।

इस प्रकार रोगों के दो भेद बाधाजन्य और त्रिदोषजन्य होते हैं।

रोगपति ग्रह

षष्ठेश और अष्टमेश को रोगों के स्वामी ग्रह कहा गया है।

षष्ठेश यदि बलवान हो, तो बाधा से और अष्टमेश यदि बलवान् हो, तो त्रिदोष विकार से रोग उत्पन्न होते हैं।

बाधाधीश यदि षष्ठ स्थान में हो या षष्ठेश बाधक स्थान में हो या उन दोनों में युति या दृष्टि हो अथवा बाधाधीश और षष्ठेश एक-दूसरे की राशि में स्थित हो या बाधाधीश और षष्ठेश दोनों यदि एक साथ हो या वे दोनों एक दूसरे को देखते हो, तो इन सात योगों में से एकाधिक योग भी हो, तो शत्रु के द्वारा किया जाने वाला व्यभिचार अर्थात् मारण, उच्चाटन सम्मोहन, विद्वेषण, स्तम्भन आदि तान्त्रिक प्रयोग कहा जाना चाहिए।

क्षुद्र तथा महा अभिचार

यदि बाधकाधिपति शुभ ग्रह हों तो महा अभिचार और पापग्रह हों तो क्षुद्र अभिचार जानना चाहिए। इस प्रकार अभिचार के दो भेद होते हैं।

शत्रुओं के द्वारा किए जाने वाले मारण, उच्चाटन, स्तम्भन, विद्वेषण आदि तान्त्रिक प्रयोगों को महा अभिचार कहा गया है।

शत्रुओं द्वारा जो छोटे-छोटे तान्त्रिक प्रयोग या कीलन आदि किए जाते हैं, वे अभिचार कहलाते हैं।

अभिचार कर्त्ता और तान्त्रिक की जाति

अभिचार के लिए प्रेरणा या आग्रह देने या करने वाले शत्रु और मारण आदि महा अभिचार करने वाले (तान्त्रिक) इन दोनों की जाति इस विधि से जाननी चाहिए। आगे उसकी विधि को बतलाते हैं।

षष्ठस्थान की राशि की या षष्ठेश ग्रह की जैसी जाति होती है, वैसी ही शत्रु की जाति कहनी चाहिए। बाधक स्थान की राशि की जाति या बाधाधिपति ग्रह की जाति मारण आदि का प्रयोग करने वाले तान्त्रिक की जाति होती है।

मीन राशि ब्राह्मण, मेष क्षत्रिय, वृष वैश्य और मिथुन शूद्र जाति की होती है। प्रत्येक राशि से ५वीं और ९वीं राशि उसी जाति की होती है।

'विप्राहित: शुक्रगुरु' इत्यादि बृहज्जातक वराहमिहिरोक्त श्लोक से ग्रहों की जाति का ज्ञान कर लेना चाहिए।

षष्ठस्थान का बाधाधिपति के साथ दृष्टि या योग के द्वारा सम्बन्ध हो तो षष्ठ स्थानस्थ राशि की जाति शत्रु की जाति होती है।

यदि षष्ठेश का बाधक स्थान और उसके स्वामी ग्रह से दृष्टि या योग द्वारा सम्बन्ध हो तो षष्ठेश ग्रह की जाति शत्रु की जाति समझनी चाहिए।

बाधक स्थान का योग या दृष्टि द्वारा षष्ठेश से सम्बन्ध होने पर बाधक स्थान की राशि की जाति अभिचार करने वाले तान्त्रिक की जाति होती है।

यदि बाधाधिपति का षष्ठस्थान और षष्ठेश के साथ योग अथवा दृष्टि द्वारा सम्बन्ध हो तो बाधाधिपति ग्रह की जाति अभिचार करने वाले तान्त्रिक की भी जाति होती है।

ग्रहों की जाति

वराहमिहिर के अनुसार शुक्र और गुरु ब्राह्मण; मंगल और सूर्य क्षत्रिय, चन्द्रमा वैश्य, बुध शूद्र और शनि अन्त्यज जाति का कहा गया है।

यहाँ गुरु श्रेष्ठ ब्राह्मण होता है और शुक्र यदि अन्य ग्रह की राशि में हो, तो अधम कोटि का ब्राह्मण होता है; इस तरह इन दोनों ब्राह्मणसंज्ञक ग्रहों में भी भिन्नता है। वहीं सूर्य सार्वभौम राजा तथा मंगल माण्डलिक अर्थात् उससे छोटा प्रदेश का स्वामी होता है।

मंगल उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार रहित राजातुल्य व्यक्ति तथा बुध यज्ञोपवीतरहित विद्वान् होता है, जिसे देवदास कहते हैं।

उच्च से नीच पर्यन्त की राशियों में शनि की स्थितिवश देवदास से लेकर चाण्डाल तक की जातियाँ बतलानी चाहिए।

गुरु और शुक्र ब्राह्मण; मंगल और सूर्य नृपति या क्षत्रिय, चन्द्रमा वैश्य, बुध वृषल और शनि अन्त्यज (चाण्डाल) होता है।

शुक्र और गुरु ब्राह्मण, सूर्य और मंगल क्षत्रिय, बुध और चन्द्रमा वैश्य तथा शनैश्चर शूद्र संकर जाति का कहा गया है।

सूर्य का राजा या शूद्र या मंडलाधिप; चन्द्रमा का ब्राह्मण या वैश्य; मंगल का ब्राह्मण या शूद्र; बुध का शूद्र या वैश्य; शनि का शूद्र या अन्त्यज; बृहस्पति का ब्राह्मण और शुक्र का शूद्र, ब्राह्मण या स्त्री, वर्ण और व्यक्ति जानना चाहिए।

ये ग्रह नीच राशि, शत्रु राशि में या अस्तंगत हों तो इनकी नीच जाति जाननी चाहिए।

शत्रु और प्रयोगकर्ता तान्त्रिक की जाति रूप परिवार के विचार के इस प्रसंग में अन्य ग्रन्थों में शत्रुता का हेतु और उसके अनेक मतान्तर कहे गए हैं, उन्हें यहाँ प्रदर्शित करते हैं।

षष्ठेश ग्रह की जाति शत्रु की और दशमेश ग्रह की जाति तान्त्रिक की जाननी चाहिए तथा षष्ठेश जिस राशि में स्थित हो उस राशि और उसके स्वामी के अनुसार शत्रुता का हेतु होता है। उसे आगे कहा जा रहा है।

यदि षष्ठेश मंगल की राशि में हो तो विद्वान् भूमि को शत्रुता का हेतु कहते हैं।

षष्ठेश बुध की राशि में हो तो स्वर्ण, गुरु की राशि में हो तो व्यापार या फल, शुक्र की राशि में हो तो चाँदी, कपड़े, धान्य और पालतू पशु तथा शनि की राशि में हो तो चाण्डाल, सेवक और शस्त्र-अस्त्र और चन्द्रमा की राशि में हो तो बर्तन या जल तथा वह सूर्य की राशि में हो, तो मूल और फल शत्रुता के हेतु जानने चाहिए।

लग्न आदि बारह भावों में से जिस-किसी भाव में बाधाधिपति ग्रह स्थित हो, तो उस भाव के हेतु अभिचार का प्रयोग किया गया, ऐसा बतलाना चाहिए।

इसे इस प्रकार समझना चाहिए कि बाधापति धन भावस्थ हो, तो धन; तृतीय भाव में हो, तो सेवकों या सहायकों; चतुर्थ स्थान में हो, तो भूमि, भवन, वाहन के हेतु या कारण अभिचार किया गया, जानना चाहिए।

लग्न में स्थित राशि और लग्नस्थ ग्रह से तथा षष्ठेश और बाधकाधिपति ग्रहों की आश्रित राशियों से शत्रुता के धातु आदि हेतुओं का विचार करना श्रेष्ठ है।

शत्रु की पहचान

शत्रु पृच्छक का सम्बन्धी है या कोई अन्य व्यक्ति है? वह आसपास का है? या कहीं दूर का? इसका विचार आगे किया जा रहा है।

लग्न में चर अर्थात् मेष, कर्क, तुला एवं मकर राशि हो, तो अपना सम्बन्धी या रिश्तेदार शत्रु होता है।

लग्न में स्थिर अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ राशि हो, तो अपना कोई मित्र ही शत्रु होता है और लग्न में द्विस्वभाव अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन राशि हो, तो कोई अपरिचित या अज्ञात व्यक्ति शत्रु होता है।

अथवा चतुर्थेश यदि षष्ठ स्थान में हो, तो बान्धव, पंचमेश यदि षष्ठ स्थान में हो, तो पुत्र, भतीजा आदि, सप्तमेश यदि षष्ठ स्थान में हो, तो पत्नी और नवमेश यदि षष्ठ स्थान में हो, तो पिता, गुरु आदि शत्रु होते हैं या इनका शाप होता है।

लग्न में स्थिर अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ राशि हो, तो साथ

रहने वाला, लग्न में द्विस्वभाव अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन राशि हो, तो आस-पास के स्थान अथवा प्रदेश में रहने वाला और लग्न में चर अर्थात् मेष, कर्क, तुला एवं मकर राशि हो, तो दूर के स्थान में रहने वाला या अपना प्रियजन ही शत्रु होता है।

शत्रु निवास दिशा

षष्ठेश और षष्ठ स्थानस्थ राशि;. इन दोनों में से एक की 'बाधाधिप सम्बन्ध' इत्यादि चौथे श्लोकों में बतलाया गया वर्णोक्त दिशा शत्रु की दिशा होती है अर्थात् शत्रु उस दिशा में निवास करने वाला होता है।

बाधक स्थानस्थ राशि और उसका स्वामी इन दोनों में से एक की उपरोक्त विधि से जो दिशा हो वह दिशा अभिचार प्रयोग करने वाले तान्त्रिक की होती है।

पहले ही ग्रहों की दिशा और राशियों की दिशा का उल्लेख हुआ है। यहाँ शत्रु और तांत्रिक दूर, समीप अथवा मध्य में वास करते हैं, इसकी जानकारी उसके आश्रित राशि, नवांश में चर स्थिर और द्विवस्भाव राशि वश कहनी चाहिए।

यदि लग्न में चर राशि पर षष्ठेश की दृष्टि और लाभ स्थान में मंगल हो अथवा लग्न में स्थिर राशि पर षष्ठेश की दृष्टि और नवम स्थान में मंगल हो अथवा लग्न में द्विस्वभाव राशि पर षष्ठेश की दृष्टि और सप्तम स्थान में मंगल हो, तो इन तीनों में से किसी एक योग के भी रहने पर शत्रुओं के द्वारा किए या कराये गये अभिचार प्रयोगों के द्वारा रोग हुआ है, इस प्रकार से मनुष्यों को समझना चाहिए।

षष्ठेश यदि लग्न में हो और लग्नेश मंगल से युक्त हो या मंगल लग्न से केन्द्र स्थान में स्थित हो तो भी अभिचार बतलाया जाना चाहिए।

षष्ठेश यदि लग्न, दशम या सप्तम स्थान में हो और लग्न पर मंगल की दृष्टि हो या मंगल लग्न में स्थित हो तो भी अभिचार जानना चाहिए।

केतुकृत् अभिचार योग

यदि चतुर्थ स्थान, दशम स्थान या लग्न स्थान में केतु हो और लग्न में मंगल की स्थिति या लग्न पर मंगल की दृष्टि हो तो अभिचार जानना चाहिए।

क्षुद्र अभिचार योग

यदि चतुर्थ, दशम या लग्न स्थान में केतु हो और केन्द्र स्थान में गुलिक हो तो क्षुद्र अभिचार जन्य रोग समझना चाहिए।

यहाँ शत्रुओं के द्वारा मारण, उच्चाटन, विद्वेषण आदि के लिए जो चूर्ण

आदि बनाए और प्रयोग किये जाते हैं; उनसे उद्धार या मुक्त होने या आत्मरक्षा करने की विधि कही जा रही है।

यदि लग्न, आरूढ़ और चन्द्रमा से केन्द्र स्थान में गुलिक हो तथा वह शनि से युक्त या दृष्ट हो, तो शत्रु के द्वारा किया गया क्षुद्र अभिचार कहना चाहिए।

यदि चतुर्थ स्थान में या उसके नवांश में गुलिक हो तो घर के भीतर और जलचर राशि या उसके नवांश में हो तो जल में क्षुद्र अभिचार जन्य प्रभाव कहना चाहिए।

यदि वर्गोत्तम नवांश में गुलिक हो तो घर के भीतर और जल के अन्दर दोनों में अभिचार जन्य प्रभाव कहना चाहिए।

शनि या गुलिक से राहु यदि युक्त हो, तो सर्प की बाँबी के निकट क्षुद्र अभिचार कहना चाहिए।

यदि शनि या गुलिक से केन्द्र स्थान में रवि हो तो वृक्ष के पास, इन दोनों से केन्द्र में मंगल हो तो पर्वत पर, इनसे केन्द्र में गुरु हो तो घर में और वहाँ शुक्र हो तो शयन कक्ष में क्षुद्र अभिचार कहना चाहिए।

इस प्रकार यदि गुलिक से केन्द्र में शनि हो तो मलमूत्र त्याग करने की जमीन में क्षुद्र अभिचार होता है।

यदि गुलिक मेष से त्रिकोण अर्थात् धनु एवं सिंह राशि में स्थित हो या मेष के नवांश में स्थित हो तो सिंह या बिल्ली की खोपड़ी के कपाल कटोरी में क्षुद्र अभिचार होता है।

यदि गुलिक कर्क राशि और त्रिकोण अर्थात् कर्क, वृश्चिक एवं मीन राशि में स्थित हो तो कपाल नारियल की कटोरी का होता है।

गुलिक यदि संहार नक्षत्र अर्थात् कृत्तिका, आर्द्रा आदि में स्थित हो, तो मनुष्य की आकृति का पुतला बतलाना चाहिए।

गुलिक यदि कीट अर्थात् कर्क एवं वृश्चिक राशि में हो, तो यन्त्र या चौपाये की हड्डी होती हैं। इनकी संख्या गुलिक के भुक्त नवांशों के समान समझनी चाहिए।

इस तरह इस क्षुद्र अभिचार आदि के निर्णय में गुलिक की राशि और उसके नवांश की जो दिशा हो वह दिशा अभिचार आदि की कहनी चाहिए।

बाधाधिपति ऊर्ध्वमुख राशि में हो तो चूर्ण आदि अभिचार योग्य वस्तु वृक्ष के ऊपर रखे होते हैं।

वह अधोमुख राशि में हो तो वे जमीन में गड़े होते हैं और वह तिर्यग् मुख राशि में हो तो चूर्ण आदि पत्थर (जमीन) से वृक्ष शाखा के बीच कहीं रखे होते हैं, ऐसा बतलाया जाना चाहिए।

बाधाधिपति ग्रह तथा उससे आश्रित राशि इन दोनों से चूर्ण, गुटिका, कीलक, यन्त्र आदिं उपकरणों की स्थिति ज्ञात करनी चाहिए।

'शुभोऽशुभर्क्षे रुचिरं कुभूमिजं' इत्यादि पूर्व कथित विधि से वृक्षों की उत्तमता या हीनता का विचार करना चाहिए।

बाधाधिपति स्वांश से जितने आगे वाले नवांश में हो, वृक्षों की उतनी संख्या होती है। इन दोनों अर्थात् स्वांश एवं बाधकेश से आश्रित नवांश के मध्य में जितने नवांश हों उनके स्वामी ग्रहों की पूर्वोक्त रीति से वृक्षों की जातियाँ जान लेनी चाहिए।

इन वृक्षों में बाधेश ग्रह का जो वृक्ष हो, उस पर या उसके समीप में स्थित वृक्ष पर चूर्ण, गुटिका आदि बतलाना चाहिए।

यदि बाधाधिपति जलचर राशि में हो और यदि वह राशि ऊर्ध्वमुख हो तो नदी के किनारे पर, वह तिर्यग् मुख राशि हो तो जल में और यदि वह अधोमुख राशि हो तो जल की सतह के नीचे चूर्ण आदि गड़ा हुआ जानना चाहिए।

यदि बाधाधिपति ग्रह सूर्य या सूर्य से युंक्त हो तो देवमन्दिर के पास और वह चन्द्रमा हो या चन्द्रमा से युक्त हो तो जलीय प्रदेश या ऊसर (बंजर) भूमि में चूर्ण आदि की स्थिति समझनी चाहिए।

यदि बाधाधिपति ग्रह मंगल हो या वह मंगल से युक्त हो तो श्मशान सम्बन्धि अग्नि के समीप या युद्ध के मैदान में, यदि वह बुध हो या बुध से युक्त हो तो विद्यालय में या विहारस्थल (घूमने की जगह) पर चूर्ण आदि होता है।

यदि बाधाधिपति ग्रह गुरु हो या वह उससे युक्त हो तो देश की सीमा पर या कोषागार में, वह शुक्र हो या वह शुक्र से युक्त हो तो शयनागार या गाँव की सीमा पर और यदि वह ग्रह शनि हो या वह शनि से युक्त हो तो जूठन आदि फेंकने की जगह चूर्ण आदि कहना चाहिए।

बाधकेश यदि राहु, केतु या गुलिक से युक्त हो, तो सर्प की बाँबी के पास चूर्ण आदि होता है।

षष्ठेश की दिशा, बाधाधिपति की दिशा, बाधाधिपति की आश्रित राशि की दिशा या नवमांश की दिशा में चूर्ण आदि बतलाना चाहिए।

दैवी पीड़ा और शान्ति

बाधेश चर राशि में हो तो चूर्ण आदि का विना प्रयत्न से उद्धार हो जाता है। बाधेश के द्विस्वभाव राशि में होने पर प्रयत्न करने से उद्धार होता है और स्थिर राशि में होने पर उद्धार नहीं हो पाता।

क्षुद्र अभिचार शान्ति

इस प्रकार उपरोक्त रीति से क्षुद्र अभिचार में प्रयुक्त चूर्ण, गुटिका आदि तथा उसके स्थित-स्थान इन दोनों बातों को जानकर उस चूर्ण आदि को वहाँ से हटाकर या मन्त्र शास्त्रोक्त विधि से उसको प्रभावहीन करके स्थान रक्षार्थ शान्ति करनी चाहिए।

आगे महाभिचार के प्रतिकूल प्रभाव को दूर करने हेतु युक्तियों का निरूपण करते हैं।

महाभिचार शान्ति युक्ति

यहाँ षष्ठेश के स्पष्ट राशि आदि में लग्नेश के स्पष्ट राशि आदि जोड़कर जो राशि आता हो, यदि वह राशि सूर्य से युक्त या दृष्ट हो तो अघोरबलि करनी चाहिए।

यदि वह राशि चन्द्रमा से दृष्ट या युक्त हो तो कपालहोम करना चाहिए।

यदि वह राशि बुध से युक्त या दृष्ट हो तो चक्रहोम करना चाहिए।

वह राशि यदि गुरु से युक्त या दृष्ट हो, तो प्रतिकार बलि तथा शनि से यदि युक्त या दृष्ट हो, तो भी प्रतिकार बलि करनी चाहिए।

उपरोक्त अघोरबलि, कपाल हवन, चक्र हवन और प्रतिकारबलि आदि सभी मन्त्रशास्त्र के प्रचलित प्रयोग महाभिचार के प्रभाव से आत्मरक्षार्थ किया जाता है। यह शुद्ध रूप से तन्त्रागम का विषय है।

इसी प्रकार यदि उपरोक्त योग की राशि मंगल से युक्त हो तो भूतमारण बलि अथवा उक्त स्थिति में खडगरावण बलि या कृत्तिका बलि करनी चाहिए।

उपरोक्त योग राशि यदि शुक्र से युक्त या दृष्ट हो, तो प्रतिकार बलि या भूतमारण बलि रोग शान्ति के लिए करनी चाहिए।

यहाँ उपरोक्त योग राशि यदि किसी ग्रह से युक्त या दृष्ट न हो, तो आरूढ़ राशि से दशम राशि से, दशम में स्थित ग्रह से, दशम को देखने वाले ग्रह से या दशमेश ग्रह से ये अघोरबलि आदि क्रियायें करनी श्रेष्ठ है।

दूत के द्वारा प्रश्नार्थ उच्चारित वाक्य के प्रथम अक्षर के दीर्घ होने पर गान तथा अक्षर के संयुक्त होने पर नृत्य से रोग शान्ति कही गई है।

पृच्छक की दृष्टि शांन्ति

प्रश्नानुष्ठान पद्धति में पृच्छक की दृष्टि भेद के अनुसार भी प्रतिक्रिया शान्ति के उपाय प्रकार कहे गए हैं। अब उसकी विधि भी बतलाते हैं।

प्रश्न पूछने के लिए दैवज्ञ के समीप पहुँचते समय पृच्छक की दृष्टि दक्षिण भाग की ओर या ऊपर की ओर हो तो ब्राह्मणों के द्वारा रोग की शान्ति समझनी चाहिए।

उस समय पृच्छक की अधोदृष्टि हो तो देवता का गान करने वाले लोगों से रोग शान्ति सम्भव होती है।

वाम भाग की ओर ऊपर एकटक देखने पर चाण्डालों में श्रेष्ठ लोगों से और नीचे की ओर एकटक देखने पर अधम चाण्डालों से रोगशान्ति सम्भव समझनी चाहिए।

पृच्छक के अंगस्पर्श करने के अनुसार भी दृष्टि बाधा के प्रश्न में बाधा का भेद जानना चाहिए। प्राय: यह विधि इस विषय में अधिक उपयोगी है, जान लेनी चाहिए।

यदि पृच्छक प्रश्न करते समय वक्षस्थल, ललाट, गुप्तांग एवं नाभि का स्पर्श करे तो देवपीड़ा; यदि वह प्रश्न करते समय पसली, हाथ, अंगुली और गले का स्पर्श करे तो सर्पपीड़ा और भौं, कान तथा दोनों कक्षों का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे तो पिशाच पीड़ा समझनी चाहिए।

बाधास्थान में स्थित ग्रह द्वारा और बाधाधिपति ग्रह से पीड़ादायक देवताओं के भेद जानने चाहिए।

बाधास्थान में बाधाधिपति ग्रह की राशि तथा नवांश से भी देवताओं का भेद जाना जा सकता है। आगे उसे कहते हैं।

यदि बाधाधिपति बुध की राशि या बुध के नवांश में हो तो श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा अपने घर में स्थापित (प्रतिष्ठित) कर प्रतिदिन पूजा किया जाने वाला देवता बाधाकारक होता है।

बाधाधिपति यदि गुरु की राशि या उसके नवांश में हो तो देवालयवासी देवता बाधाकारक होते हैं।

बाधाधिपति यदि शनि की राशि या उसके नवांश में हो तो नीच लोगों के द्वारा पूजा जाने वाला देवता बाधाकारक होता है।

यदि बाधाधिपति अपनी राशि या अपने नवांश में हो तो भयंकर स्थान या उद्यान में रहने वाले देवता बाधाकारक होते हैं।

दैवी पीड़ा और शान्ति

यदि बाधाधिपति मंगल केतु के साथ हो, तो नाइयों द्वारा पूजित चामुण्डी (चामुण्डा) बाधाकारक होती है।

यदि बुध से युक्त और बुध की राशि में स्थित मंगल हो, तो पंचमी (स्कन्दमाता) को बाधाकारक कहना चाहिए।

विषम राशि या उसके नवांश में स्थित मंगल से भैरव एवं घण्टा-कर्ण आदि को बाधाकरक जानना चाहिए।

सम राशि या सम राशि के नवांश में स्थित मंगल से रक्तेश्वरी, रक्तचामुण्डी और अति भयंकरी काली आदि को बाधाकारक जाता है।

विषम और सम का भेद, राशि और नवांश दोनों में द्विविध होता है।

मेष आदि राशियों में स्थिति के भेद से दिवाकर आदि ग्रह की विशेषतायें यहाँ संक्षेप में बतलाते हैं। ग्रन्थान्तर में इस विषय को विस्तार से कहा गया है।

मेषादि राशि स्थित रवि देवता

इस प्रकार मंगल की राशियों में स्थित सूर्य यदि वृश्चिक राशि में हो तो शंकर और मेष राशि में हो तो ब्रह्मा उसका देवता होता है।

मेष राशि के १० अंशों तक परमोच्च में रवि हो तो श्रेष्ठ जनों से और इस राशि में १० अंश से अधिक अंशों पर वह हो तो नीच जनों से प्रतिष्ठापित देवता समझना चाहिए।

यदि यह सूर्य वृष राशि में स्थित हो तो यक्षिणी, तुला राशि में स्थित हो तो काली, कन्या राशि में स्थित हो तो रामचन्द्र आदि विष्णु के अवतार और यदि मिथुन राशि में स्थित हो तो विष्णु उसका देवता होता है।

कर्क राशि में स्थित सूर्य का धर्मदेव और नाग देवता होता है तथा सिंह राशि में स्थित होने पर उसका देवता वह होता है, जिस देवता की हम प्रतिदिन पूजा करते हैं।

धनु राशि में स्थित सूर्य का गन्धर्व और यक्ष और मीन राशि में स्थित सूर्य का उनकी स्त्रियां यक्षिणी और गन्धर्विणी देवता होता है।

चन्द्रमा देवता विचार

मेष राशि में स्थित चन्द्रमा का देवालय में स्थित चामुण्डी देवता होता है और वृश्चिक राशि में स्थित चन्द्र हो तो नीच जनों के द्वारा पूजित चामुण्डी देवता होता हैष्ट

और यदि मेष राशि में स्थित चन्द्र निर्बल हो तो उसका उपरोक्त दोनों देवता कहना चाहिए।

शुक्र की राशि में स्थित चन्द्रमा का यक्षिणी या धर्मदेव और बुध की राशि में स्थित चन्द्र का विमान सुन्दर या उसका स्त्री विमान सुन्दरी देवता होता है।

यदि स्वराशि में स्थित चन्द्रमा बली हो तो उसका नाग तथा धर्मदैव और सिंह राशि में स्थित चन्द्रमा हो तो उसका अन्य लोगों के द्वारा पूजित भगवती को देवता कहना चाहिए।

इस प्रकार धनु राशि में चन्द्रमा स्थित होने पर व्योमगन्धर्व और मीन राशि में चन्द्रमा स्थित होने पर उसकी (व्योमगन्धर्व की) स्त्री को तथा शनि की राशियों में चन्द्रमा बैठा होने पर प्रेत, शूल और पिशाच आदि को देवता समझना चाहिए।

कुज देवता

मेष राशि में मंगल स्थित होने पर भूतराक्षस और ब्रह्मराक्षस तथा वृश्चिक राशि में स्थित होने पर नरभक्षिणी या बाल भक्षिणी (घातिनी) को देवता जानना चाहिए।

तुला राशि में मंगल होने पर भैरव और यक्ष तथा वृष राशि में मंगल होने पर इनकी अर्थात् भैरव और यक्ष की स्त्रियों को देवता कहना चाहिए।

बुध की राशियों में मंगल होने पर गन्धर्व, रतिकाम, यक्षिणी और रुष्ट विष्णु को देवता कहना चाहिये।

कर्क राशि में मंगल स्थित होने पर परदेवता भगवती या कृष्ण और रक्तचामुण्डी को देवता समझना चाहिए।

तथा वह सिंह राशि में स्थित होने पर वनदेवता, शिव के गण भूत आदि और कुपित शंकर को देवता कहना चाहिए।

इस प्रकार धनु और मीन में मंगल होने पर कुक्षिशास्ता और वीरभद्र को देवता कहना चाहिये। मकर में मंगल हो तो अपने उत्सव के विध्वंस से कुपित देवता और कुम्भ राशि में मंगल होने पर दूसरे के द्वारा किये गये अभिचार से उत्पन्न देवता पीड़ादायक होता है।

बुध देवता

मंगल की राशि में बुध होने पर ज्वर, शुक्र की राशि में बुध होने पर गन्धर्व, स्वराशि में बुध होने पर गन्धर्व और किन्नर, चन्द्रमा की राशि में बुध होने पर जल पिशाच, सिंह में बुध हो तो नागकन्या, गुरु की राशि में बुध हो तो कुपित ब्राह्मण के द्वारा प्रेरित चामुण्डी और कवची तथा शनि की राशि में बुध होने पर युद्ध भूमि में स्थित शूल पिशाच और काल पिशाच पीड़ादायक होते हैं।

गुरु देवता

मंगल की राशि में यदि गुरु हो, तो क्रुद्ध शंकर के भूत आदि गण और ब्राह्मण के अभिचार से उत्पन्न दुर्देवता पीड़ादायक होते हैं।

शुक्र की राशि में गुरु के होने पर यक्षिणी और यक्ष तीव्र अपस्मार को उत्पन्न करते हैं।

बुध की राशि में गुरु हो तो ब्राह्मणों के अभिचार से उत्पन्न या देवकोप से उत्पन्न नपुंसक देवता पीड़ादायक होते हैं।

यदि उच्च राशि (कर्क) में गुरु स्थित हो तो अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर में रहने वाले गन्धर्व आदि देवता कष्टदायक होते हैं।

सिंह राशि में गुरु स्थित होने पर राजा के सेवकों द्वारा किये गये अभिचार से उत्पन्न देवता और स्त्रियों के पति के निमित्त सपत्नी द्वारा किये गये अभिचार से उत्पन्न दुर्देवता कष्टदायक होते हैं।

शनि की राशि में गुरु हो तो भस्मपिशाच, पिशाच और अधम गन्धर्व कष्टदायक होते हैं।

किन्तु स्वराशि में बाधाकारक गुरु हो, तो किसी देवता का कोप या बाधा नहीं कहना चाहिए।

शुक्र देवता विचार

यदि मंगल की राशि में स्थित शुक्र हो तो बृहस्पति के समान कुपित शंकर के भूत आदि गण तथा मेष में शुक्र हो तो यक्ष तथा राक्षस भी कष्टदायक हो जाते हैं।

स्वराशि और कर्क राशि में शुक्र हो तो यक्ष के साथ यक्षिणी, बुध की राशि में शुक्र होने पर विद्याभ्यास के लिये किए गए अभिचार से उत्पन्न देवता; सिंह राशि में शुक्र होने पर देवालय में प्रतिष्ठापित यक्षिणी, धनु राशि में शुक्र हो तो ब्राह्मण का शाप और मीन राशि में शुक्र होने पर दुर्गा पीड़ादायक कही जाती है।

शनि की राशि में शुक्र होने पर अपस्मार देवता, वातप्रभृति और कालपिशाच बाधक अर्थात् विघ्नकारक मानने चाहिए।

शनि देवता विचार

यदि मेष राशि में शनि हो तो असाध्य अपस्मार, वृश्चिक राशि में शनि के होने पर पूर्व जन्म में कुपित शिवालय या कैलाश का निवासी देवता अथवा शिव के भूत बाधादायक होते हैं।

यदि वृष राशि में शनि हो, तो अपस्मार यक्ष और ब्राह्मण का अपस्मार यक्षिणी शाप कष्टदायक होता है।

तुला राशि में होने पर उत्सव में विघ्न डालने से कुपित शास्त्रादिभूतेश भारी बाधक कहा गया है।

बुध की राशि में शनि होने पर वन देवता और मित्र के द्वारा प्रेषित प्रेत तथा कर्क राशि में यदि शनि हो तो नीचों की प्रार्थना से प्रेषित देव और सिंह राशि में शनि हो तो देवालाय में रहने वाले शस्त्रदेव और आखेट पिशाच तथा गुरु की राशि में शनि हो तो मणीसंघात अर्थात् सहस्रमणिमान् और आर्तव पुष्पशोभी नाम से प्रसिद्ध गन्धर्व तथा स्वराशि में शनि होने पर प्रेत और पिशाच पीड़ादायक कहा गया है।

रोगशान्ति

इस तरह आरूढ़ राशि से बाधा का और लग्न व्याधि रोग आदि की शांति का विचार करना चाहिए।

आरूढ़ राशि के पापग्रहों की युति या दृष्टि आदि दोषों से युक्त होने पर व्याधि का प्रकोप बीत चुका होता है।

प्रश्न लग्न यदि पापग्रहों की युति या दृष्टि आदि दोषों से युक्त हो, तो पृच्छक को व्याधि का प्रकोप या वृद्धि भविष्यत् काल में होना कहा गया है।

यदि नवम स्थान में शुभ ग्रह और बलवान् नवमेश इष्ट स्थान में स्थित हो, तो लग्नेश के बलवान् और नवम स्थान में होने पर तथा सूर्य और गुरु से दृष्ट या युक्त होने पर देवी-देवताओं की सेवा से रोग-शान्ति कहनी चाहिए और इसी प्रकार मन्त्रों के जप से भी रोग-शान्ति होती है।

लग्नेश और नवमेश के दोष युक्त (पापग्रहों से युक्त, दृष्ट एवं दुर्बल) होने पर रोग की शान्ति असम्भव होती है।

व्याधिशान्ति के प्रश्न में लग्न में पृष्ठोदय, कम जल की राशि, चर और इसके विपरीत शीर्षोदय, अधिक जल वाली, स्थिर और ऊर्ध्वमुख राशियाँ होने से व्याधि की शान्ति सम्भव नहीं होता है।

व्याधिशान्ति के प्रश्न में षष्ठ, अष्टम, व्यय एवं चतुर्थ स्थानों में पाप ग्रह के न होने पर तथा केन्द्र स्थानों में शुभ ग्रह होने पर व्याधि शान्ति कहा गया है—ऐसा विद्वान् दैवज्ञ को कहना चाहिए।

शान्ति कृत्यकर्त्ता

प्रतिक्रिया अर्थात् शान्ति के उपाय करने की विधि में बाधक ग्रह से आश्रित राशि और नवांश के अनुसार प्रतिकार करने वाले व्यक्ति का विचार अन्य ग्रन्थों में किया गया है। आगे उसको कहते हैं।

बाधाकारक ग्रह की आश्रित राशि और नवांश राशि के सत्त्व, रज और तमो गुणों का अच्छी तरह विचार कर सात्त्विक, राजस और तामस कर्मों का साधन करने वाले मनुष्य को बाधा की प्रतिक्रिया अर्थात् शान्ति के उपाय का कर्त्ता कहना चाहिए।

बाधक ग्रह के सूर्य और चन्द्रमा के नवांश में स्थित होने पर बाधा की प्रतिक्रिया ब्राह्मण को करनी चाहिए।

यदि बाधक ग्रह बृहस्पति के नवांश में हो तो देवता गायक प्रतिक्रिया करे।

वह बुध के नवांश में होने पर कुम्हार आदि प्रतिक्रिया करें और यदि वह शुक्र, मंगल या शनि के नवांश में हो तो उत्तम, मध्यम और अधम चाण्डाल बाधाकारक देवता को प्रसन्न करने के लिए प्रतिक्रिया करनी चाहिए।

बाधक ग्रह का गुलिक से त्रिकोण या केन्द्र सम्बन्ध होने पर पुल्कस अर्थात् चाण्डालों की एक जाति और बाधक ग्रह का केतु से त्रिकोण सम्बन्ध होने पर दिवाकीर्ति (नाई) प्रतिक्रिया को करनी चाहिए।

अन्य मत

जिस-किसी के द्वारा करायी गयी चिकित्सा से रोग शान्ति क्या सम्भव है? इस प्रश्न का विचार भी रोग-शान्ति के प्रश्न की तरह करना चाहिए तथा बलवान् ग्रह के अनुसार प्रतिक्रिया कर्म का साधन करना चाहिए।

इस प्रकार मृत्युञ्जय होम और गणपति होम आदि को करने वाले का विचार करते समय उसका अनुकूल नक्षत्र, जलवृद्धि राशि, दशम भाव की प्रबलता और ऊर्ध्वमुख लग्न का चिन्तन करना चाहिए।



जातक लक्षण

पूर्व पृष्ठों में रोग का आरम्भ, रोग की समाप्ति, बाधा और बाधा की प्रतिक्रिया सहित आयु सम्वन्धी प्रश्न का विचार किया गया है।

'पहले आयु की परीक्षा करनी चाहिए और वाद में लक्षण बतलाने चाहिए। इस प्रकार के कथन के आधार से आयु की परीक्षा करने के बाद आगे कुछ लक्षणों को प्रस्तुत करते हैं—

आरूढ़ राशिवश लक्षण

यदि आरूढ़ लग्न में चर राशि और चर नवांश हो, तो मनुष्यों का दूर देश में विचरण और स्थिति जाननी चाहिए।

आरूढ़ लग्न में स्थिर राशि और स्थिर नवांश होने पर व्यक्ति का विचरण नहीं होता, अपितु वह अपने स्थान के समीप ही रहता है।

आरूढ़ लग्न में द्विस्वभाव राशि होने पर प्रश्नकर्त्ता की बीच के देश में स्थिति तथा द्विस्वभाव नवांश होने पर कभी विचरण भी होता है और कभी नहीं होता।

आरूढ़ाधिपति तथा आरूढ़ लग्न में स्थित राशि और नवांश; इन दोनों के द्वारा उपरोक्त लक्षणों का विचार करना चाहिए।

इन दोनों में एकरूपता होने पर निश्चित रूप से उपरोक्त लक्षण घटित होते देखे जाते हैं।

कार्य सिद्धि योग

जन्मलग्न स्वामी और प्रश्नलग्न स्वामी ग्रहों की दिशाओं में शत्रु पर विजय आदि सभी कार्यों में बिना किसी प्रयत्न के सफलता मिलती है।

आरूढ़ या इससे सप्तम स्थान में उच्च राशि में ग्रह होने पर उस ग्रह का कथित द्रव्य पृच्छक का कहना चाहिए।

विशेष—किस ग्रह से किन द्रव्यों का विचार करना चाहिए, इसके लिए बृहज्जातक दशाफलाध्याय बाधानिरूपणाध्याय आदि देखना चाहिए।

आरूढ़ विषयक जो फल कहा गया है, वह समस्त फल आरूढ़ से जातक लक्षणों का विचार करते समय प्रयत्नपूर्वक कहना चाहिए।

ग्रह स्थिति लक्षण

यंदि चतुर्थ आदि छः भावों में शुभ ग्रह स्थित हों तो प्रश्नकाल के पश्चात्

प्रश्नकर्त्ता को सम्पत्ति मिलती है और यदि उपरोक्त भावों में पाप ग्रह हों तो पृच्छक को विपत्तियाँ प्राप्त होती हैं, ऐसा बतलाना चाहिए।

इस प्रकार लग्न में तुला आदि छः राशियों में से जो कोई एक राशि स्थित हो तथा दशम आदि छः भावों अर्थात् चक्र के पूर्वार्द्ध में शुभ या पाप ग्रह यदि स्थित हो, तो भूतकालिक शुभ या अशुभ फल दैवज्ञ को बतलाना चाहिए।

पुनः लग्न में मेष आदि छः राशियों में से जो कोई एक राशि स्थित हो तथा चतुर्थ आदि छः स्थानों अर्थात् चक्रोत्तरार्द्ध में शुभ या अशुभ ग्रह स्थित हो, तो दैवज्ञ को भूतकालिक शुभ या अशुभ फल बतलाना चाहिए।

चतुर्भेदनीति प्रयोग

इस समय साम, दाम, दण्ड और भेद आदि चतुर्नीति में से किस नीति का प्रयोग करना लाभदायक रहेगा? ऐसी जिज्ञासा करने वालों को बतलाने के योग्य कुछ लक्षण कहा जा रहा है।

साम नीति के प्रतिनिधि बृहस्पति और शुक्र, दण्ड नीति के प्रतिनिधि मंगल और सूर्य, दाम नीति का प्रतिनिधि चन्द्रमा और भेद नीति के प्रतिनिधि राहु, शनि, बुध और केतु को कहे गए हैं।

इन ग्रहों के बलवान् होने पर, उपचय स्थान में बैठने पर, लग्न या केन्द्र स्थान में होने पर व्यक्ति को उस ग्रह के वार या काल होरा में उस ग्रह की नीति अपनाने से निश्चित रूप से सफलता मिलती है।

गृहगत धन ज्ञान

क्या इस भवन या गृह में धन है या नहीं? इस प्रश्न के उत्तर को जानने की इच्छा करने वाले पृच्छक को समाधान बतलाने योग्य आगे इसके लक्षण प्रस्तुत करते हैं।

यदि लग्न से केन्द्र स्थानों में सभी शुभ ग्रह स्थित हों अथवा लग्न से एकादश स्थान में शुभ ग्रह स्थित हों तो घर में धन कहना चाहिए। बहुत ऊहापोह पूर्वक विचार करने के पश्चात् प्रवीण दैवज्ञ को धनभाव में स्थित राशि आदि की दिशा में खजाने का दरवाजा बतलाना चाहिए।

पूर्वोक्त विधि से केन्द्र या लाभ स्थान में स्थित शुभ ग्रह के गृह के जिस भाव या दिशा या विदिशा में पड़ता हो, गृह के उस हिस्से में उस ग्रह से सम्बन्धित कथित धन गड़ा होता है।

वह शुभ ग्रह अपनी उच्च राशि में हो तो धन काफी मात्रा में होता है।

वह शत्रु राशि या नीच राशि में हो तो अल्पमात्रा में धन होता है।

उपरोक्त रीति से पाप ग्रह गृह के जिस हिस्से में हों वहाँ शल्य आदि भी गड़ा हुआ बतलाना चाहिए।

पृच्छक वस्त्र कथन

इस प्रकार सूर्य कौसुम्भ वस्त्र (लाल वस्त्र) से सम्पन्न, चन्द्रमा सफेद वस्त्र पहने हुए, मंगल लाल वस्त्र वाला, बुध पलाश के पत्ते के समान हरे वस्त्र से युक्त, गुरु पीले वस्त्र वाला, शुक्र अनेक रंग के वस्त्र वाला और शनि काले वस्त्र से युक्त होता है।

प्रश्न के समय आरूढ़ राशि से केन्द्र और लाभ स्थान में स्थित ग्रहों के आधार पर उनके समान वस्त्र पहनने वाले व्यक्तियों का आगमन समझना चाहिए।

उनमें भी पुरुष और स्त्री ग्रहों के आधार पर आने वाले व्यक्तियों में पुरुष और युवतियों की संख्या का निर्धारण कर लेना चाहिए।

जहाँ कहीं भी प्रस्थान करने के लिए तैयार होते समय प्रस्थान लग्न से सप्तम स्थान या केन्द्र स्थान में स्थित बलवान् ग्रहों के आधार पर मार्ग में मिलने वाले व्यक्ति बतलाने चाहिए।

उनकी ब्राह्मण आदि जाति, स्त्री-पुरुष आदि लिंग और पहनने हेतु वस्त्र का विचार उस ग्रह से करना चहिए।

शरीरस्थ चिन्ह

इस प्रकार सूर्य शरीर में चोट का चिह्न देता है। मंगल भी चोट या चोट का चिह्न, गुरु काच नामक रोग, शनि बाएँ पैर पर चोट का निशान, शुक्र पार्श्व (कुक्षियों) में तिल का चिह्न, चन्द्रमा शरीर में मस्सा एवं तिल आदि की चिह्न तथा बुध उभरी हुई नसें देता है।

वर एवं वधू आदि के उपरोक्त कथित लक्षणों को मिलाकर उनके शरीर में चिह्न का निश्चय करना चाहिए।

विवाह प्रश्न में आरूढ़ राशि के स्वामी से वधू (कन्या) के और उसके सप्तमेश से वर के (शरीर के) चिह्नों को कहना चाहिए।

विवाह के अलावा अन्य प्रश्नों में लग्नेश से पृच्छक के, पंचमेश से पुत्र के, तृतीयेश से भाई के, चतुर्थेश से माता के और नवमेश से पिता के शरीर के चिह्न या लक्षण कहने चाहिए।

इस लोक में जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब धातु, मूल एवं जीवमय हैं। 'कृष्णीयम्' प्रभृति शास्त्रों से उनके भेदों का ज्ञान करना चाहिए।

शकुन विचार

यदि प्रस्थानकालिक लग्न से सप्तम स्थान में अशुभ ग्रह हों तो बुरे शकुन होते हैं और शुभ ग्रह हो, तो अच्छे शकुन मार्ग में दीखते हैं।

इसी प्रकार से आरूढ़ लग्न या प्रश्न लग्न से भी विचार किया जा सकता है।

यदि आरूढ़ादि कथित लग्नों से दशम व चतुर्थ भावों में भी बली ग्रह हों तो इसी प्रकार से शुभ या अशुभ शकुन कहने चाहिए।

उपरोक्त उन स्थानों में चतुष्पद संज्ञक यदि ग्रह हो, तो मातंग अर्थात् हाथी आदि पशु मार्ग में आते हुए दीखते हैं तथा उन उक्त स्थानों में पक्षि संज्ञक ग्रह हो, तो चकोर आदि पक्षी दिखलाई देते हैं।

यहाँ ध्यानार्ह है कि सूर्य और मंगल चतुष्पद; शनि एवं बुध पक्षी संज्ञक; चन्द्रमा सरीसृप अर्थात् रेंगने वाले जीव तथा राहु को इस ज्योतिषप्रश्न शास्त्र में आठ पैर वाला जीव कहा गया है।

यदि उपरोक्त स्थानों में राहु, केतु, गुलिक एवं शनि स्थित हों तो चाण्डाल का; यदि वहाँ शुक्र और चन्द्रमा हों तो नवयुवतियों का; यदि वहाँ बुध हो तो विद्वानों का; यदि गुरु हो तो ब्राह्मणों का और मंगल हो तो शस्त्रधारी व्यक्तियों का तथा यदि वहाँ सूर्य हो तो मार्ग में श्रेष्ठ पुरुषों का आगमन समझना चाहिए।

दिनगत घटिवश फल

यहाँ रवि आदि वारों में क्रम-से सूर्य आदि ग्रह अपने-अपने वार के प्रथम अष्टमांश में उदित होते हैं अर्थात् क्रम-से रविवार के प्रथम अष्टांश में रवि, द्वितीय अष्टांश में चन्द्रमा और फिर अष्टम अष्टांश में राहु का उदय होता है।

सोमवार को पहले अष्टांश में चन्द्रमा, दूसरे अष्टांश में मंगल और आठवें अष्टांश में सूर्य का उदय होता है। इसी तरह अन्य ग्रह भी अपने वारों में भोग करते हैं।

इस प्रकार गुरु, बुध और शुक्र के अष्टमांशों में सभी कार्य सिद्ध होते हैं। चन्द्रमा के अष्टमांश में धीरे-धीरे कार्य सिद्ध होता है।

अन्य ग्रहों के अष्टमांशों में कार्य सिद्ध नहीं होता, इस प्रकार दैवज्ञ को प्रश्न के समय अष्टमांश के अनुसार विचारपूर्वक फल करना चाहिए।

अष्टांश–साधन

प्रश्नकालिक दिनगत पलों अर्थात् पलात्मक इष्टकाल में २२५ का भाग देकर लब्धि तुल्य गत अष्टमांश और शेष वर्तमान अष्टमांश होता है।

अष्टमांश की गणना वर्तमान वार से करनी चाहिए। इस प्रकार प्रश्न के समय अष्टमांश विधि से ग्रहों का उदय बतलाया जाना चाहिए।

अनुष्ठान पद्धति के मत में दिनगत घटियों को ४ से गुणा कर ७ का भाग देकर १ आदि शेष हो, तो क्रम-से मृत्यु, मतिभ्रम, कलह, सुख, प्रवास (यात्रा), पत्नीसुख, बन्धन आदि फल विद्वान् दैवज्ञ को कहना चाहिए।

विशेष—उपरोक्त अष्टमांश साधन में गत व वर्तमान अष्टमांश का ज्ञान इष्टकाल पलात्मक में २२५ से भाग देंने पर होता है।

अत: इस अष्टमांश का ठीक-ठीक साधन विषुवदिन में, जब दिन रात समान होते हैं, तब करना उचित है।

अन्य समय में पलात्मक दिनमान का अष्टमांश ज्ञात करने में उपलब्ध लब्धि कभी २२५ से छोटा कभी बड़ा हो जाता है।

दूसरी बात कि जहाँ दिनमान ३० घटी लेकर अष्टमांश का साधन किया जाता है, वहाँ यदि गुरुवार इष्ट १५/३० पर किसी ने प्रश्न किया, तो इष्टपल ९३० में २२५ से भागने पर लब्धि ४, जो गत अष्टमांश और वर्तमान ५वाँ अष्टमांश गुरुवार से पाँचवाँ वार सोमवार होता है, अत: धैर्य रखें, विलम्ब से कार्य सिद्ध होगा, कहना चाहिए।

यहाँ तीसरी बात यह कि यदि १५/३० इष्ट घटि पर प्रश्नोत्तर ज्ञान का प्रयत्न किया जाता है, तो इसके लिए इष्ट घटि १५/३० × ४ = ६२ तथा इसमें ७ से भागने पर शेष ६ होने से कहना चाहिए कि आपको पत्नि का सुख प्राप्त होगा।

पंचभूतोदय का फल

दैवज्ञ अपनी श्वास या स्वर में, दूत के द्वारा उच्चारित वाक्य के प्रथम वर्ण के स्वर के अनुसार और दिनगत घटियों के अनुसार चलने वाले पृथिवी आदि पाँच तत्त्वों का इस प्रकार तीन प्रकार का उदय होता है।

यदि श्वास नाक के दोनों छिद्रों या पुटों के मध्य दण्डाकार चल रही हो तो पृथिवी तत्त्व, यदि नासिका से नीचे की ओर चल रही हो तो जल तत्त्व, यदि ऊपर की ओर चल रही हो तो अग्नि (तेज) तत्त्व, यदि श्वास तिरछी चल रही हो तो वायु तत्त्व तथा जब श्वास दोनों नासापुटों से निकल कर बीच में मिलकर चल रही हो तो आकाश तत्त्व का उदय समझना चाहिए।

इस प्रकार अपनी श्वास की गति से उदित या चलने वाले तत्त्व की कल्पना करनी चाहिए।

विशेष—यहाँ ध्यानार्ह है कि पूर्व कथित पञ्चमहाभूत लक्षण अर्थात् पृथ्वी आदि तत्त्वों के उदय विधि का उपयोग यहाँ करना उचित नहीं है।

दूतवाक्य के प्रथम वर्णवश पृथिवी आदि तत्व

भूमि का अकार, जल का इकार, अग्नि का उकार, वायु का एकार और आकाश का ओकार स्वर मनीषियों ने बतलाया है।

विशेष—उपरोक्त दूत वाक्य के पहिला अक्षर में जो भी स्वर प्राप्त हो, उसके अनुसार ही पृथ्वी आदि तत्त्वों की कल्पना करना चाहिए।

इसमें ह्रस्व और दीर्घ स्वर समान माने जाते हैं। यहाँ कथन में ऋ से अग्नि, ऌ से जल और अं से पृथ्वी तत्त्व लेना चाहिए, आचार्यों का ऐसा ही मानना है।

स्वर और तंत्त्व ज्ञापक चक्र

स्वर	अ	इ	उ	ऐ	ओ
तत्त्व	पृथिवी	जल	अग्नि	वायु	आकाश

पृथिवी आदि तत्त्वोदय विचार

यहाँ दिनमान का आठवाँ भाग और रात्रिमान का भी आठवाँ भाग याम कहलाता है।

इस प्रकार विषुव दिन में दिन और रात्रि के पौने चार घटी के १६ याम होते हैं। इन में विषम १, ३, ५, ७ आदि यामों में पृथिवी आदि तत्त्व क्रम से और सम २, ४, ६, ८ आदि यामों में आकाश आदि क्रम से दिन और रात में तत्त्वों का उदय माना गया है।

इस प्रकार पृथिवी तत्त्व का उदयकाल २० घटी, जल तत्त्व का उदय काल १६ घटी, अग्नि तत्त्व का उदय काल १२ घटी, वायु तत्त्व का उदयकाल ८ घटी और आकाश तत्त्व का उदयकाल ४ घटी कहा गया है।

पृथिवी आदि तत्त्वोदय फल

दैवज्ञ का स्वयं का स्वर, दूत के वाक्य के प्रथम अक्षर का स्वर और दिनगत घटी का स्वर इस प्रकार इन तीनों स्वरों के अनुसार तत्त्वों के उदय से पृच्छक के सभी शुभ एवं अशुभ कार्यों का विचार करना चाहिए।

पृथिवी तत्त्व का उदय हो, तो न तो मृत्यु और न ही रोग की शान्ति हो पाती है। जल जत्त्व का उदय हो, तो अभीष्ट कार्य में शीघ्र सफलता मिलती है।

वायु तत्त्व का उदय हो, तो गमन एवं आगमन आदि सभी चल कार्यों में सफलता मिलती है।

अग्नि तत्त्व का उदय होने पर रोग की शुरुआत, सम्पत्ति, सन्तान आदि का नाश, स्थिर कार्य और युद्ध आदि अशुभ कार्यों में ही सफलता प्राप्त होती है।

पूर्व में ही अपने स्वर के बारे में पाँचों तत्त्वों का फल विस्तार से कहा गया है, उसका भी यहाँ विचार करना चाहिए।

विपत्ति योग

यदि लग्नेश पापग्रह के साथ द्विपद संज्ञक मिथुन, कन्या, तुला, धनु एवं कुम्भ राशियों में हो तो पृच्छक को मनुष्यों से विपत्ति आती है।

यदि वह पापग्रहों के साथ चतुष्पद संज्ञक अर्थात् मेष, वृष, सिंह एवं धनु राशियों में हो तो पशुओं से विपत्ति आती है।

ग्रामचर राशि में होने पर पालतू पशुओं से और वनचर राशि में होने पर हिंसक पशुओं से विपत्ति समझनी चाहिए।

यदि वह सरीसृप संज्ञक अर्थात् कर्क और वृश्चिक राशि मैं हो तो सर्प आदि से विपत्ति आती है।

यदि वह जल संज्ञक अर्थात् मकर, कुम्भ, मीन एवं कर्क राशि में हो तो कुएँ में गिरना, नदी में डूबना और जल जन्तुओं से विपत्ति जाननी चाहिए।

इस प्रकार कृत्तिका, आर्द्रा आदि संहार संज्ञक नक्षत्रों में बैठा हुआ शनि, मंगल से युक्त या दृष्ट हो तो प्रश्नकर्त्ता के मकान को जलाया जाता है।

यदि वह शनि केतु से युक्त या दृष्ट हो तो भी पृच्छक का मकान जल जाता है।

संहार संज्ञक नक्षत्र में स्थित लग्नेश यदि पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो कुष्ठकारक होता है।

इसी प्रकार संहार संज्ञक नक्षत्र में स्थित लग्नेश यदि राहु से युक्त या दृष्ट हो, तो पृच्छक को सर्प काट लेता है।

विविध वस्तु लाभ और नाश योग विचार

यदि प्रश्न लग्न में सूर्य और धनस्थान में शुक्र हो, तो स्वर्ण का आगमन होता है तथा लग्न में शुक्र और व्यय स्थान में सूर्य हो, तो स्वर्ण का नाश कहना चाहिए।

यदि लग्न में शनि और धन स्थान में बुध हो, तो लोहे का लाभ होता है तथा व्यय स्थान में शनि और लग्न में बुध हो, तो लोहे का नाश कहना चाहिए।

यदि लग्न में शुक्र और धन स्थान में मंगल हो तो ताँबे का लाभ जानना चाहिए तथा यदि लग्न में मंगल और व्यय स्थान में शुक्र हो, तो ताँबे का नाश होता है।

लग्न में मंगल और धन स्थान में शनि हो, तो अर्थ लाभ कहना चाहिए तथा व्यय स्थान में मंगल और लग्न में शनि हो, तो धननाश समझना चाहिए।

यदि लग्न में सूर्य हो, तो पालतू पशु, हाथी और घोड़ों का नाश कहना चाहिए। वहाँ सूर्य और बुध हो, तो चूहा, टिड्डी एवं कीड़ों से फसल को हानि होती है।

लग्न में मंगल के होने से मृत्यु का भय होता है।

लग्न में बुध होने पर मित्र एवं पुत्र को विपत्ति कहनी चाहिए।

इन ग्रहों के नीच राशि या शत्रु राशि में अथवा सूर्य के साथ अस्त होने पर उपरोक्त फल कहा गया है अर्थात् नीच राशि में या शत्रुराशि में या अस्तङ्गत आदि तीनों दोष के अभाव में उपरोक्त फल नहीं मिलता।

अपनी उच्च राशि में गुरु या शुक्र लग्न में चन्द्रमा के साथ स्थित हो तो सभी जनों का प्रेम मिलता है और पन्द्रह दिन के भीतर पशुओं का लाभ होता है।

दूत प्रथम वाक्य वर्ण संख्या फल

दूत कथित प्रथम वाक्य की वर्ण संख्यावश कुछ लक्षणों को कहा जा रहा है; जैसा कि अन्य सम्प्रदायों में वर्णन किया गया है।

दूत कथित प्रथम वाक्य की वर्ण संख्या को ५ से गुणा कर ८ से भाग देने पर वहाँ १, २ आदि शेष होने पर इन्द्र एवं अग्नि आदि दिक्पाल रोगकारक होते हैं। इनका फल आगे कहा गया है।

दूत के द्वारा कहे गए वाक्य की वर्ण संख्या में ३ का भाग देने पर यदि एक शेष बचे तो रोग साध्य होता है।

यदि वहाँ दो शेष हो तो रोग निश्चित रूप से असाध्य होता है और शून्य शेष हो, तो रोग दुःसाध्य अर्थात् कठिनाई या देरी से ठीक होने वाला जानना चाहिए।

दिक्पालवश रोग के कारण और शान्ति उपाय

इन्द्रदेव बलि, पूजा एवं उत्सव आदि उपायों से रोगों का शमन करने वाला होता है।

अग्नि मृत्युञ्जय होम आदि उपायों से रोगनाश करता है। यम पितरों की पूजा एवं श्राद्ध आदि से रोगों को नष्ट करता है।

राक्षस (नैर्ऋति) ब्रह्मराक्षस के आवेश से पीड़ित लोगों की सूचना देता है।

इसकी शान्ति के लिए बुद्धिमान व्यक्ति को पूर्वोक्त विधि से उपाय करने चाहिए।

यहाँ वरुण तैलाभिषेक, घृताभिषेक या शिव लिङ्ग पर अविरल जलधारा पूर्वक अभिषेक से रोगों का शमन करता है।

यहाँ नियमित रूप से किए जाने वाले कर्मों का अभाव को रोग का कारण कहना चाहिए।

वायु माला चढ़ाने, चन्दन, अगर एवं गुग्गुल की धूप देने से और आभरण समर्पित करने के द्वारा देव की कृपा प्राप्त करने से मनुष्यों के रोगों को दूर करने वाला होता है।

सोम देव और ब्राह्मणों की पूजा आदि करने से रोग शान्त होता है तथा शिव (ईशान) गीत, नृत्य, भरतनाट्य एवं वेदपाठ आदि से देवता को सन्तुष्ट कर रोग आदि अनिष्टों से मनुष्यों की रक्षा करता है।

ताम्बूलसंख्या से फल

प्रश्नकर्त्ता के द्वारा लाये गये ताम्बूलों (पान) से तन्वादि द्वादश भावों का समस्त शुभ एवं अशुभ फल कहना चाहिए। अब उसका फल कहने की पद्धति लिखते हैं।

पूर्वाह्न और अपराह्न के समय क्रम-से पृच्छक के द्वारा लाये गये ताम्बूलों (पान) को ऊपर से नीचे की ओर तथा नीचे से ऊपर की ओर गिनकर लग्न आदि बारह भावों की परिकल्पना करनी चाहिए।

गणना में पहिला पान लग्न, दूसरा धन भाव तीसरा सहज भाव एवं बारहवाँ व्यय भाव मानना चाहिए।

जिस भाव से सम्बन्धित पान मुरझाया हुआ, टूटा हुआ या छेदवाला हो, उस भाव का अनिष्ट फल होता है।

तथा जिस भाव से सम्बन्धित पान बड़ा एवं साफ हो उस भाव के फल की वृद्धि तथा लाभ आदि होता है।

इस प्रकार पृच्छक के द्वारा लाये गये पानों से समस्त शुभाशुभ फल कहना चाहिए।

पृच्छक के द्वारा लाये गये पानों की संख्या को द्विगुणित कर फिर ५ से गुणाकर और गुणनफल में १ जोड़कर ७ से भाग देना चाहिए।

यहाँ एक शेष हो तो सूर्योदय, दो शेष हो तो चन्द्रोदय, शून्य शेष हो तो शनि का उदय।

इस प्रकार शेष से ग्रहों के उदय की कल्पना करनी चाहिए।

तथा इस रीति से जिस ग्रह का उदय हो वह ग्रह जिस राशि में स्थित हो उस राशिको प्रश्न लग्न मानना चाहिए।

इस प्रकार सूर्य का उदय दु:खकारक, चन्द्रमा का उदय सुखकारक, मंगल का उदय कलहकारक, बुध और गुरु दोनों का उदय धनदायक, शुक्र का उदय समस्त मनोरथों में सिद्धिदायक तथा शनि का उदय पृच्छक को मृत्युदायक समझना चाहिए।

लग्न आदि भावों में स्थित ग्रहों से भी उपरोक्तानुसार फल कहना चाहिए।

वाहन प्रश्न

इस समय मुझे हाथी मिलेगा या नहीं? ऐसा कोई राजा पूछे तो उसको बतलाने के लिए कुछ लक्षण कहते हैं।

गजलाभ के प्रश्न में लग्न, सप्तम, नवम या पंचम स्थान में कन्या राशि या उसके नवांश में शुक्र हो तो राजा को गजलाभ होता है।

इस योग में लाभेश चतुष्पद राशियों का स्वामी हो तथा वह केन्द्र या त्रिकोण स्थान में हो तो निश्चित रूप से हाथी प्राप्त होता है।

यदि दशमेश एवं भाग्येश दोनों केन्द्र स्थानों में बैठे हों तो शीघ्र हाथी मिलता है।

गुलिक स्थितिवश लक्षण

प्रश्न के समय सर्वप्रथम स्पष्ट गुलिक का साधन कर अन्य ग्रहों को भी प्रश्नकालीन स्पष्ट बनाना चाहिए, तत्पश्चात् गुलिक आदि ग्रहों के अनुसार लक्षण फल कहना चाहिए।

यदि सूर्य गुलिक से युक्त या दृष्ट हो, तो घर में किसी पुरुष में रोग या दोष उत्पन्न होता है। अन्यायपूर्वक घर में किसी पुरुष का राजा द्वारा आगमन होता है।

यदि चन्द्र गुलिक से युक्त अथवा दृष्ट हो, तो घर में स्त्रियों में कलह होती है या स्त्रियों के कारण किसी से कलह होता है अथवा किसी अन्य प्रकार का कलह पुरुष और स्त्री विषयक प्रश्नकर्त्ता के घर में दूर से सुनाई देता है।

मंगल यदि गुलिक से युक्त या दृष्ट हो, तो घर के आस-पास कलह होता है या कुत्तों और व्याघ्रों में परस्पर लड़ाई होती है या पास में शव लाया जाता है अथवा मांस लाया जाता है।

यदि बुध गुलिक से युक्त या दृष्ट हो, तो नया घड़ा लाया जाता है या

राक्षस (नैर्ऋति) ब्रह्मराक्षस के आवेश से पीड़ित लोगों की सूचना देता है।

इसकी शान्ति के लिए बुद्धिमान व्यक्ति को पूर्वोक्त विधि से उपाय करने चाहिए।

यहाँ वरुण तैलाभिषेक, घृताभिषेक या शिव लिङ्ग पर अविरल जलधारा पूर्वक अभिषेक से रोगों का शमन करता है।

यहाँ नियमित रूप से किए जाने वाले कर्मों का अभाव को रोग का कारण कहना चाहिए।

वायु माला चढ़ाने, चन्दन, अगर एवं गुग्गुल की धूप देने से और आभरण समर्पित करने के द्वारा देव की कृपा प्राप्त करने से मनुष्यों के रोगों को दूर करने वाला होता है।

सोम देव और ब्राह्मणों की पूजा आदि करने से रोग शान्त होता है तथा शिव (ईशान) गीत, नृत्य, भरतनाट्य एवं वेदपाठ आदि से देवता को सन्तुष्ट कर रोग आदि अनिष्टों से मनुष्यों की रक्षा करता है।

ताम्बूलसंख्या से फल

प्रश्नकर्त्ता के द्वारा लाये गये ताम्बूलों (पान) से तन्वादि द्वादश भावों का समस्त शुभ एवं अशुभ फल कहना चाहिए। अब उसका फल कहने की पद्धति लिखते हैं।

पूर्वाह्ण और अपराह्ण के समय क्रम-से पृच्छक के द्वारा लाये गये ताम्बूलों (पान) को ऊपर से नीचे की ओर तथा नीचे से ऊपर की ओर गिनकर लग्न आदि बारह भावों की परिकल्पना करनी चाहिए।

गणना में पहिला पान लग्न, दूसरा धन भाव तीसरा सहज भाव एवं बारहवाँ व्यय भाव मानना चाहिए।

जिस भाव से सम्बन्धित पान मुरझाया हुआ, टूटा हुआ या छेदवाला हो, उस भाव का अनिष्ट फल होता है।

तथा जिस भाव से सम्बन्धित पान बड़ा एवं साफ हो उस भाव के फल की वृद्धि तथा लाभ आदि होता है।

इस प्रकार पृच्छक के द्वारा लाये गये पानों से समस्त शुभाशुभ फल कहना चाहिए।

पृच्छक के द्वारा लाये गये पानों की संख्या को द्विगुणित कर फिर ५ से गुणाकर और गुणनफल में १ जोड़कर ७ से भाग देना चाहिए।

यहाँ एक शेष हो तो सूर्योदय, दो शेष हो तो चन्द्रोदय, शून्य शेष हो तो शनि का उदय।

इस प्रकार शेष से ग्रहों के उदय की कल्पना करनी चाहिए।

तथा इस रीति से जिस ग्रह का उदय हो वह ग्रह जिस राशि में स्थित हो उस राशिको प्रश्न लग्न मानना चाहिए।

इस प्रकार सूर्य का उदय दु:खकारक, चन्द्रमा का उदय सुखकारक, मंगल का उदय कलहकारक, बुध और गुरु दोनों का उदय धनदायक, शुक्र का उदय समस्त मनोरथों में सिद्धिदायक तथा शनि का उदय पृच्छक को मृत्युदायक समझना चाहिए।

लग्न आदि भावों में स्थित ग्रहों से भी उपरोक्तानुसार फल कहना चाहिए।

वाहन प्रश्न

इस समय मुझे हाथी मिलेगा या नहीं? ऐसा कोई राजा पूछे तो उसको बतलाने के लिए कुछ लक्षण कहते हैं।

गजलाभ के प्रश्न में लग्न, सप्तम, नवम या पंचम स्थान में कन्या राशि या उसके नवांश में शुक्र हो तो राजा को गजलाभ होता है।

इस योग में लाभेश चतुष्पद राशियों का स्वामी हो तथा वह केन्द्र या त्रिकोण स्थान में हो तो निश्चित रूप से हाथी प्राप्त होता है।

यदि दशमेश एवं भाग्येश दोनों केन्द्र स्थानों में बैठे हों तो शीघ्र हाथी मिलता है।

गुलिक स्थितिवश लक्षण

प्रश्न के समय सर्वप्रथम स्पष्ट गुलिक का साधन कर अन्य ग्रहों को भी प्रश्नकालीन स्पष्ट बनाना चाहिए, तत्पश्चात् गुलिक आदि ग्रहों के अनुसार लक्षण फल कहना चाहिए।

यदि सूर्य गुलिक से युक्त या दृष्ट हो, तो घर में किसी पुरुष में रोग या दोष उत्पन्न होता है। अन्यायपूर्वक घर में किसी पुरुष का राजा द्वारा आगमन होता है।

यदि चन्द्र गुलिक से युक्त अथवा दृष्ट हो, तो घर में स्त्रियों में कलह होती है या स्त्रियों के कारण किसी से कलह होता है अथवा किसी अन्य प्रकार का कलह पुरुष और स्त्री विषयक प्रश्नकर्त्ता के घर में दूर से सुनाई देता है।

मंगल यदि गुलिक से युक्त या दृष्ट हो, तो घर के आस-पास कलह होता है या कुत्तों और व्याघ्रों में परस्पर लड़ाई होती है या पास में शव लाया जाता है अथवा मांस लाया जाता है।

यदि बुध गुलिक से युक्त या दृष्ट हो, तो नया घड़ा लाया जाता है या

कोई प्रधान आदमी आता है या लोहा, ताँबा आदि धातुओं की वस्तुएँ लायी जाती हैं अथवा स्त्री एवं पुरुष में लड़ाई होती है।

यदि चर राशि में गुरु गुलिक से युक्त या दृष्ट हो, तो वृक्ष टूटकर गिरता है।

यदि स्थिर राशि में गुलिक से युक्त या दृष्ट हो, तो वह वृक्ष जड़ सहित गिरता है।

यदि द्विस्वभाव राशियों में से मीन या धनु राशि में उक्त गुरु हो, तो बीच का पेड़ या पेड़ का बीच वाला हिस्सा गिरता है या दुःखी मन वाले ब्राह्मण का आगमन होता है या पके हुए फल अथवा मिठाई आदि लाया जाता है या अपने पूर्वजों के कारण आपत्ति अथवा उनकी ऊर्ध्व दैहिक क्रिया होती है।

शुक्र यदि गुलिक से युक्त अथवा दृष्ट हो, तो चूहे के द्वारा वस्त्र में छेद, दही के पात्र का टूटना, दूध लाना, आकस्मिक रूप से ब्राह्मण का आगमन या चूहा या बिल्ली अथवा मुर्गे का सामने से आगमन कहना चाहिए।

शनि यदि गुलिक से युक्त या दृष्ट हो, तो कोई दीक्षित (सन्यासी या तान्त्रिक) प्रश्नकर्त्ता के घर आता है या उसके घर से कोई कुपित होकर जाता है।

पृच्छक के घर के पास चाण्डाल की मृत्यु या चाण्डालों में लड़ाई होती है अथवा लोहा आदि धातुओं की चोरी होती है।

राहु यदि गुलिक से युक्त या दृष्ट हो, तो कुत्तों और व्याघ्रों में लड़ाई, सर्प का काटना, सर्प के जोड़े का आना या दूध लाना ये बातें विद्वान् दैवज्ञ को कहनी चाहिए।

यहाँ केतु का फल राहु के समान ही होता है।

पिता के अन्तिम संस्कार सम्बन्धी प्रश्न

क्या यह पिता का अन्तिम संस्कार करेगा या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर बतलाने के लिए भी आगे लक्षण बतलाते हैं।

यदि सूर्य और नवमेश स्वांश, स्वराशि, चर राशि या चर नवांश में स्थित हो, अथवा उक्त दोनों लग्न से द्वादश भाव में स्थित हो या उनकी द्वादश भाव पर दृष्टि हो तो इस प्रकार दोनों योगों में से एक योग भी हो, तो पिता की सम्यक् रूप से दीक्षा होती है।

यदि इन कथित योगों में से एक भी न हो तो दीक्षा नहीं होती है और यदि दीक्षा की सम्भावना भी हो तो रोग आदि होने से दीक्षा में विघ्न पड़ जाता है।

यदि नवम स्थान में पापग्रह हों और इस स्थान पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो ये दीक्षा को नष्ट करते हैं।

यदि इस स्थान पर शुभ और पाप दोनों प्रकार के ग्रह की दृष्टि-युति हो तो दीक्षा में बीच में विघ्न आते हैं।

और यदि शुभ ग्रह पाप ग्रह से अंश कला आदि की दृष्टि से पीछे हो तो उसे पितृ दीक्षा कहते हैं।

मातृ दीक्षा का विचार करते समय नवम, नवमेश एवं सूर्य इन उपरोक्त भाव एवं ग्रहों के स्थान पर यथाक्रम से चतुर्थ भाव, चतुर्थेश एवं चन्द्रमा का ग्रहण करना श्रेष्ठ है।

यदि पुत्र पिता की अष्टम राशि वाले लग्न में जन्म लिया हुआ हो और जिस पुत्र की जन्म लग्न में पिता का अष्टमेश बैठा हो वे दोनों ही अपने पिता की अन्तिम क्रिया करते हैं।

यदि पुत्र पिता के जन्म चन्द्र से अष्टमेश के तीन नक्षत्रों में जन्म लिया हो वह पुत्र अपने पुत्र-पौत्र आदि के साथ अपने पिता की विधिवत् दीक्षा करता है।

पिता के जन्म चन्द्रमा से दशम राशि वाले लग्न में उत्पन्न पुत्र अपने पिता के समान होता है और पिता का दशमेश ग्रह पुत्र के लग्न में हो, तो पुत्र पिता से प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने वाला होता है।

जिसकी चन्द्राधिष्ठित राशि अर्थात् जन्म राशि अपने पिता के नवम, एकादश या द्वितीय स्थान की राशि हो उसे सदैव अपने पिता का अनुयायी समझना चाहिए।

जिसके पिता की जन्मराशि अपने पुत्र की जन्मराशि से लाभ या त्रिकोण स्थान में स्थित राशि हो अथवा अपने पुत्र के लग्नेश के अधिष्ठित राशि से लाभ या त्रिकोण स्थान में स्थित राशि हो, तो वह पिता के द्वारा अर्जित सम्पूर्ण धन सम्पत्ति प्राप्त करता है।

यदि लग्न से नवमेश लग्न से लाभ स्थान में और चन्द्रमा से नवमेश ग्रह चन्द्रमा से लाभ स्थान में हो तो वह पुत्र अपने पिता के जीवन काल में सुश्रूषा से और मृत्यु के बाद दीक्षा से उन्हें प्रसन्न करता है।

यदि लग्नेश नवमेश से या सूर्य से युक्त हो अथवा लग्नेश नवम भाव में बैठा हो तो पुत्र अपने पिता के समान व्यवसाय करता है और उन्हीं के समान विद्या प्राप्त करता है।

जिसके पिता की जन्मराशि से द्वादशेश के तीनों नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में जन्म हुआ हो, तो वह दूर-देश में जाने के कारण पिता को दुःख देता है।

यदि पिता की जन्मराशि से षष्ठेश के नक्षत्रों में जन्म हो तो वह अपने पिता का सदैव शत्रु रहता है। पिता का जन्मकालीन राशिपति ग्रह जिसके व्ययेश के साथ हो इन दोनों योगों में उत्पन्न व्यक्ति निश्चित रूप से अपने पिता का लिया हुआ कर्जा प्राप्त करने वाला होता है।

ग्रह नक्षत्र ज्ञानार्थ चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
	कृति	रोहि.	मृग.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	आश्ले.	मघा	पू.फा.
नक्षत्र	उ.फा.	हस्त	चित्रा	स्वाति	विशाखा	अनु.	ज्येष्ठा	मूल	पू.षा.
	उ.षा.	श्रव.	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेवती	अश्विनी	भरणी

यदि नवम भाव में चर राशि हो और नवमेश चर राशि में हो, अथवा नवमेश व्यय या अष्टम स्थान में हो अथवा सूर्य व्यय अथवा अष्टम स्थान में हो तो पिता की मृत्यु के समय वह व्यक्ति अपने पिता के पास नहीं होता।

यदि नवम भाव में द्विस्वभाव राशि हो और नवमेश द्विस्वभाव राशि में बैठा हो तो मार्ग में पिता की मृत्यु का समाचार मिलता है।

यदि नवम स्थान में स्थिर राशि हो और नवमेश स्थिर राशि में हो, अथवा नवम स्थान पर नवमेश की दृष्टि हो अथवा नवमेश सूर्य हो तो व्यक्ति अपने पिता की मृत्यु के समय उनके पास होता है।

वासगृह दोष

क्या इस समय मेरे निवास गृह में कोई गृहदोष है? इस प्रश्न के पूछे जाने पर उसका उत्तर बतलाने के लिए आगे लक्षण कहा जा रहा है।

भूमि लग्न ज्ञान

वास स्थान के नाम के प्रथम अक्षर से भूमि की राशि का निश्चय इस तरह किया जाता है। यदि नाम के प्रारम्भ में अ, क, ल अक्षर हों तो मेष; आ, ङ, व अक्षर हों तो वृषभ; इ, च अक्षर हों तो मिथुन; ई, भ ल, अक्षर हों तो कर्क; उ, ठ अक्षर हों तो सिंह; ऊ, ण, न अक्षर हों तो कन्या; ऐ, त, ल, अक्षर हों तो तुला; ए, न, व अक्षर हों तो वृश्चिक; ऐ, प, अक्षर हों तो धनु; ओ म, ल अक्षर हों तो मकर, ओ, य अक्षर हों तो कुम्भ और यदि औ, र, न अक्षर हों तो भूमि की लग्न मीन राशि होती है।

मेषादि राशि वर्ण ज्ञानार्थ चक्र

राशि	मेष	वृष	मिथु.	कर्क	सिंह	क.	तुला	वश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
वर्ण	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऐ	ए	ऐ	ओ	ओ	औ
	क	ङ	च	भ	ठ	ण	त	न	प	म	य	र
	ल	व		ल	०	न	ल	व	०	ल	०	न

उपरोक्त लग्नराशि के अनुसार गुरु से अधिष्ठित राशि को यहाँ बताये जा रहे हैं तथा त्रिकोण शब्द से लग्न, पंचम एवं नवम तीनों राशियों का ग्रहण किया गया है। मेष, सिंह एवं धनु; उन तीनों में एक चर राशि, दूसरी स्थिर राशि और अन्य द्विस्वभाव राशि होती हैं। लग्न से त्रिकोण में गुरु को मानना चाहिए। लग्न में चर राशि होने पर नवम भाव की त्रिकोण में द्विस्वभाव राशि में, लग्न में द्विस्वभाव राशि हो, तो चर राशि में और लग्न में स्थिर राशि हो, तो लग्न में गुरु को माना जाता है।

भूमि नक्षत्र

भूमि के नाम के प्रथम अक्षर के अनुसार अ, व क ह ड चक्र विधि से उसका जन्म नक्षत्र जानना चाहिए और नक्षत्र का निश्चय करने के पश्चात् नक्षत्र के अनुसार चन्द्र की राशि और उसकी राशि विशेष में स्थिति का ज्ञान करना चाहिए।

यहाँ कृत्तिका से आश्लेषा तक, मघा से विशाखा तक, अनुराधा से श्रवण तक और धनिष्ठा से भरणी तक ये अभिजित सहित २८ नक्षत्रों के ४ वर्ग कहे गये हैं।

भूमि के नाम का प्रथम अक्षर अ, व, क, ह, ड में से कोई हो तो प्रथम वर्ग; म, ट, प, र, त में से कोई हो तो द्वितीय वर्ग; न, य, ब, श, ज में से कोई हो तो तृतीय वर्ग और ग, स, द, च, ल में से कोई हो तो चतुर्थ वर्ग जानना चाहिए।

यहाँ प्रत्येक अ, व, क, ह, ड आदि अक्षर अ, इ, उ, ए, ओ, इन स्वरों से युक्त होने पर ५ प्रकार का हो जाता है।

इस प्रकार अ, व, क, ह, ड आदि प्रत्येक वर्ग में ५ × ५ = २५ अक्षर निष्पन्न हो जाते हैं।

इन २५ अक्षरों में से पहले ४ अक्षरों से प्रथम नक्षत्र, अग्रिम ४ अक्षरों से द्वितीय नक्षत्र, उससे आगे के ४ अक्षरों से तृतीय नक्षत्र, फिर आगे के एक

अक्षर से चतुर्थ नक्षत्र, फिर आगे के ४ अक्षरों से पंचम, अग्रिम ४ अक्षरों से षष्ठम और अन्तिम ४ अक्षरों से सप्तम नक्षत्र होता है।

इस प्रकार प्रत्येक वर्ग में अक्षरों से नक्षत्र का निर्धारण किया जाता है।

यदि नक्षत्र का निश्चय हो जाय, तो नक्षत्र के अक्षरों से उसके चरण का विचार किया जाता है।

केवल प्रत्येक वर्ग के चतुर्थ नक्षत्र में एक अक्षर होने से चरण का ज्ञान सम्भव नहीं है। किन्तु इन नक्षत्रों में दो राशियाँ नहीं होती। अत: चरण का निश्चय किए बिना ही नक्षत्र से राशि का ज्ञान सम्भव है।

ब्राह्मण के लिए नाम के नक्षत्र में जन्म नक्षत्र का आधा फल होता है। क्षत्रिय और वैश्यों का नाम नक्षत्र और जन्म नक्षत्र दोनों एक समान फल देते हैं और शूद्रों को नाम नक्षत्र का फल जन्म नक्षत्र से भी अधिक समझना चाहिए।

यहाँ गृह के नाम के प्रथम अक्षर से निर्णीत चन्द्रराशि में, गृह की लग्नराशि में या इन दोनों से अष्टम राशि में जब पाप ग्रह स्थित हों, तब गृह में रहने वाले गाय आदि जीवों या मनुष्यों की मृत्यु कहनी चाहिए।

इन स्थानों में पाप ग्रह चतुष्पद राशि में हों तो पशुओं की मृत्यु और द्विपद राशि में हों तो मनुष्यों की मृत्यु समझनी चाहिए।

यहाँ लग्न से पंचम या नवम स्थान में अथवा चन्द्रराशि से पंचम या नवम स्थान में जब गोचर क्रम से गुरु प्रवेश करता हो, तो उस समय मकान में रहने वाले जीवों का गर्भाधान होता है।

पंचम और नवम स्थान में स्थित राशिवश स्त्री, गाय, भैंस अथवा अन्य जीवों के उस भूमि में गर्भोत्त्पत्ति कहनी चाहिएं।

कहने का तात्पर्य यह कि उपरोक्त स्थानों में मेष राशि हो तो भेड़-बकरी के, वृष राशि हो तो गाय-भैंस के एवं मिथुन राशि हो तो स्त्री का गर्भ जानना चाहिए।

इस प्रकार लग्न एवं चन्द्रमा से छठे या तीसरे स्थान में गोचर-क्रम से गुरु के आने पर घर में रहने वाले लोगों में कलह कहनी चाहिए।

लग्न और चन्द्रमा से अष्टम स्थान में गुरु के आने पर राजदण्ड तथा व्यय स्थान में गुरु के आने पर वध अथवा मृत्यु सम्भव है।

आधिपत्यता का ज्ञान

यहाँ पर राजकुल या उच्चकुल में जन्मा कोई व्यक्ति यह पूछता है कि

मेरा आधिपत्य होगा या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए भी आगे लक्षण कहते हैं।

इस प्रकार के प्रश्न का विचार करते समय सर्वप्रथम प्रश्नकर्त्ता के जन्म कालीन स्पष्ट ग्रहों का साधन करना चाहिए और फिर ध्यानपूर्वक उन नक्षत्रों का विनिश्चय करना चाहिए, जिनमें ग्रह स्थित हों।

पृच्छक के जन्मकालीन सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, लग्नेश एवं दशमेश ये पाँच जिन नक्षत्रों में स्थित हों, उन नक्षत्रों में आद्यंशपति अपने अंश (राशि) से ११वीं राशि में हों या पृच्छक के जन्म लग्न से त्रिकोण में बलवान् हों तो प्रश्नकर्त्ता शीघ्र ही अपने परिवार का मुखिया अथवा अधिपति बन जाता है।

यदि वह पृच्छक की जन्म लग्न से छठे, आठवें या बारहवें स्थान में हो तो आधिपत्य नहीं मिलता।

इन दोनों से भिन्न राशि या स्थान में होने पर विलम्ब से आधिपत्य मिलता है।

जन्मकालिक सूर्य से केतु पर्यन्त नौ ग्रहों में से कम से कम तीन ग्रह यदि नैर्ऋत्य कोण और पूर्व दिशा के नक्षत्रों में स्थित हो या अनुराधा से श्रवण पर्यन्त अभिजित सहित आठ नक्षत्रों में तीन या तीन से अधिक ग्रह हो, तो व्यक्ति को परिवार या कुल में प्रमुखता या प्रधानता मिलती है।

ईशान कोण से प्रारम्भ कर प्रदक्षिण क्रम से चारों तरफ सभी आठ दिशाओं में कृत्तिका आदि अभिजित सहित अट्ठाईस नक्षत्र क्रम-से स्थित हैं। इस प्रकार प्रत्येक दिशा में साढ़े तीन नक्षत्र होते हैं।

कालचक्रस्थ नक्षत्र स्थिति लक्षण

यहाँ कालचक्र में स्थित नक्षत्र, योगिनी और मृत्युवश अन्य सम्प्रदायों में कथित कुछ लक्षणों को आगे कहा जा रहा है।

काल चक्र रचना

अब कालचक्र की रचना विधि को कहा जा रहा है, जहाँ काल चक्र की रचना के लिए अन्दर, मध्य और बाहरी भाग में तीन चतुर्भुज की रचना करनी चाहिए तथा फिर पूर्व से पश्चिम तक एक, अग्नि कोण से वायव्य कोण तक दो, दक्षिण से उत्तर तक तीन और नैर्ऋत्य कोण से ईशान कोण तक चार दण्डों या रेखाओं को बनाना चाहिए।

इस प्रकार इन दण्डों को चतुर्भुजों के साथ छः योग बिन्दुओं में और एक मध्य बिन्दु में इस प्रकार प्रत्येक सात-सात स्थानों में गणना के लिए अभिजित सहित अट्ठाईस नक्षत्रों को स्थापित करना चाहिए।

यहाँ दण्ड के अग्रभाग से मध्य तक और फिर कोण में स्थित दण्ड से निकलकर पुनः दिशा के दण्ड से मध्य में प्रविष्ट होकर और कोण के दण्ड से निकलकर इस विधि से छः नक्षत्रों की चार आवृत्ति से अट्ठाईस नक्षत्रों की स्थापना होती है और इसी कथित विधि से गणना भी की जाती है।

पुनः पूर्व के दण्ड के अग्रभाग से (जहाँ १ लिखा है वहाँ से) सूर्य के नक्षत्र से प्रश्नदिन के नक्षत्र तक गणना करें।

इस प्रकार कालचक्र में जहाँ दिन का नक्षत्र हो वहाँ प्राण जानना चाहिए।

फिर पूर्व के दण्ड के अग्रभाग में प्रश्नकर्त्ता के नाम का नक्षत्र मान कर कथित विधि से प्रश्न दिन नक्षत्र तक प्रदक्षिण क्रम से गणना करनी चाहिए।

इस प्रकार काल चक्र में जहाँ दिन नक्षत्र आता हो वहाँ 'देह' होता है।

एतदनन्तर ईशान कोण में जहाँ अट्ठाईस अंक लिखा है वहाँ कृत्तिका नक्षत्र मानकर विलोम क्रम से दिन के नक्षत्र तक गणना करनी चाहिए।

इस प्रकार काल चक्र में जहाँ दिन का नक्षत्र हो वहाँ 'मृत्यु' का स्थान जानना चाहिए।

प्राण, देह एवं मृत्यु; तीनों यदि एक दण्ड में स्थित हो, तो प्रश्न पूछने वाले की मृत्यु होती है।

यदि काल चक्र में 'मृत्यु' और 'देह' एक दण्ड में हों तो रोग बढ़ता है और लम्बे समय तक रहता है और मृत्यु और जीव (प्राण) की एक दण्ड में स्थिति हो, तो रोगी को मूर्च्छा एवं आलस्य (कमजोरी) होती है।

पूर्वोक्त '१' संख्या वाले स्थान में कृत्तिका नक्षत्र को न्यस्त की पूर्वोक्त विधि से गणना करने पर गुलिक नक्षत्र, पृच्छक का जन्म नक्षत्र एवं सूर्य नक्षत्र; ये तीनों पूर्वापर दण्ड को छोड़कर यदि अन्य किसी एक दण्ड में हों तो रोगी या पृच्छक की मृत्यु जाननी चाहिए।

योगिनी, सूर्य का नक्षत्र एवं पृच्छक का नक्षत्र; यदि ये तीनों एक स्थान में हों तो पृच्छक की मृत्यु तथा यदि ये तीनों किसी एक दण्ड में हों तो पृच्छक के सम्बन्धियों में से किसी एक की मृत्यु होती है।

पूर्व दण्ड के अग्र भाग में १ संख्या वाले स्थान में कृत्तिका नक्षत्र को रखकर नीचे की ओर प्रदक्षिण क्रम से गणना करनी चाहिए।

इस चक्र में प्रत्येक बार योगिनी वक्ष्यमाण प्रकार से विचरण करती है।

योगिनी का उदय

रवि, मंगल, गुरु, बुध, शुक्र, शनि एवं सोमवार में योगिनी का क्रम-से पूर्व आदि आठ दिशाओं में इस प्रकार उदय होता है।

योगिनी-उदय स्पष्टार्थ चक्र

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
योगिनी उदय दिशा	पूर्व	उत्तर	आग्नेय	नैर्ऋत्य	दक्षिण	पश्चिम	वायव्य

इस प्रकार योगिनी उदित होकर और आठों दिशाओं में विचरण कर सायंकाल पुन: अपने उदय स्थान में आ जाती है।

प्रथम याम अर्थात् दिन के आठवें भाग में उदय दिशा के दण्ड से मध्य में प्रविष्ट होकर बायीं ओर के दो दण्डों को छोड़कर तृतीय दण्ड से बाहर आती है और फिर द्वितीय याम में उसी से मध्य में प्रविष्ट होती हुई योगिनी सायंकाल उदय स्थान पर आ जाती है। याम का षष्ठांश साढ़े सैंतीस पल योगिनी प्रत्येक स्थान पर रहती है।

गृह के पूर्व बहिर्वृति, अन्तर्वृत्ति, अन्तर्मध्यमाङ्कणसंनिकृष्ट प्रदेश, मध्याङ्गण मध्य, गृह के अग्नि कोण में मध्यमाङ्कासंनिकृष्ट प्रदेश अन्तर्वृत्ति, बाह्यवृत्ति आदि इसी प्रकार अन्यों का भी विचार कर लेना चाहिए।

उपरोक्त की गणितक्रिया

इस प्रकार दिन की गत घटियों को ६० से गुणा कर फिर गुणनफल में अवशिष्ट पलों को जोड़कर २२५ (मुखर) का भाग देना चाहिए।

यहाँ लब्धि सूर्योदय से गत याम की संख्या होती है। शेष में साढ़े सैतींस का भाग देने से पृच्छक के गृह में बहिर्वृत्ति आदि गत स्थान विशेष ज्ञात हो जाता है।

काल चक्र में योगिनी के समान कथित विधि से वामक्रम से 'मृत्यु' का संचार होता है।

इस विषय में मतान्तर यह है कि "अर्कारार्यबुधाच्छमन्द शशिषु" क्रम से 'मृत्यु' का संचार न होकर इसका प्रतिदिन (सभी वारों में) वायु कोण में ही उदय होता है, जैसा कि 'मरुद्यमेशम्बुप वह्नि साम' वक्ष्यमाण श्लोक में कहा जा रहा है।

कालचक्र में स्थित 'मृत्यु' सूर्योदय से लेकर प्रतिदिन आठों यामों में क्रमशः वायव्य, दक्षिण, ईशान, पश्चिम, आग्नेय, उत्तर, नैर्ऋत्य एवं पूर्व में वामक्रमेण आठ बार उदित होकर आठवें याम के अन्त में अपने उदय स्थान पर आ जाता है।

मृत्यु और योगिनी का पूर्व आदि दिशाओं में उदय मेष आदि चर राशियों के अन्त में तथा आग्नेय आदि कोणों में उदय मिथुन आदि द्विस्वभाव राशियों के मध्य में होता है।

योगिनी स्वरूप

दो दंष्ट्राओं अर्थात् आगे निकले बड़े-बड़े दांतों से भयङ्कर दीखने वाली, लाल-लाल और गोल आंखों वाली, अपने घोष से दिगन्तों को गूञ्जाने वाली, वध (हनन) करने की रुचि वाली, सन्ध्याकालीन बादलों के समान लाल वस्त्र वाली, मेद, मांस, वसा और शिराओं से सुशोभित शरीर वाली, श्रेष्ठ सर्पों के आभूषण वाली, खड्ग धारण करने वाली तथा मद्यपान से मदोन्मत्त योगिनी समस्त जीवों को मारती है।

इस प्रकार वह योगिनी अपनी राशि से चौथी राशि या चौथी राशि वाले व्यक्ति को दृढ़तापूर्वक पैर से लात मार कर तथा सप्तम राशि या सप्तम राशि वाले व्यक्ति को खड्ग प्रहार से मारती है।

वारवश योगिनी के उदय

रवि आदि वारों में योगिनी के उदय में कोई अन्य पक्ष या मतभेद नहीं है। किन्तु योगिनी के संचार के विषय में वह मतभेद अवश्य है। अब वह मत आगे कहते हैं।

अब यहाँ योगिनी संचार विषय को मतान्तरों के साथ बतलाया जा रहा है—

रविवार आदि सात वारों में आठ यामों या प्रहरों में योगिनी का संचार जिन-जिन दिशाओं में होता है, उन दिशाओं की पूर्वादि क्रम से संख्या यहाँ बतलायी गयी है।

रविवार को योगिनी का प्रथम याम में पूर्व में उदय, द्वितीय याम में उत्तर में संचार, तृतीय याम में अग्निकोण में संचार, चतुर्थ याम में नैर्ऋत्य कोण में संचार पंचम याम में दक्षिण में, षष्ठ याम में पश्चिम में, सप्तम याम में वायव्य कोण में और अष्टम याम में ईशान कोण में योगिनी का संचार (विचरण) होना कहा गया है।

सोमवार को आठ यामों के क्रम-से ७,५,८,२,१,३,४ एवं ६ संख्यक दिशाओं में योगिनी का संचार होता है।

मंगलवार को आठों यामों में वह क्रम-से २,८,३,५,४,६,७ एवं १ संख्यक दिशाओं में संचरण करती है।

बुधवार को वह आठ यामों में क्रम-से ४,२,५,७,६,८,१ एवं ३ संख्यक दिशाओं में घूमती है।

गुरुवार को वह प्रत्येक याम में ३, १, ४, ६, ५, ७, ८ एवं २ संख्यक दिशाओं में संचार करती है।

शुक्रवार को वह क्रम-से आठ यामों में ५,३,६,८,७,१,२ एवं ४ संख्यक दिशाओं में संचरती है।

तथा शनिवार को वह क्रम-से आठ यामों में ६,४,७,१,८,२,३ एवं ५ संख्यक दिशाओं में संचरण करती है।

यहाँ एक आदि संख्याओं के द्वारा पूर्व-आग्नेय आदि दिशाओं को अभिव्यक्त की गयीं हैं।

प्रत्येक वार के प्रथम याम में उक्त दिशा में योगिनी का उदय होता है और पुनः एक-एक याम में अन्य दिशाओं में योगिनी का भ्रमण होता रहता है। इस तरह रविवार आदि वारों में योगिनी जिस दिशा में उदित होती है उससे अन्य दिशा में याम क्रम से विचरण कर अष्टम याम में उदय की दिशा से आठवीं दिशा में जा चुकी होती है।

मृत्यु–योगिनी स्पष्ट क्रम

दिनगत या रात्रिगत इष्टघटी को ९६ से गुणाकर दिनमान या रात्रिमान से भाग देना चाहिए। यहाँ लब्धि राशि संख्या होती है।

शेष को ३० से गुणाकर उपयुक्त भाजक दिनमान या रात्रिमान का भाग देने से अंश और शेष को ६० से गुणा कर उपयुक्त भाजक दिनमान या रात्रिमान का भाग देने से कला होती है।

इस प्रकार आगत स्पष्ट योगिनी या मृत्यु १२ राशि से अधिक हो तो १२ राशियाँ घटानी चाहिए।

इस प्रकार आनीत स्पष्ट योगिनी या मृत्यु की शोधित चक्रसंख्या (१२ राशियों की संख्या) के अनुसार 'केसरी भोग शेषो०' इत्यादि श्लोकोक्त विधि से तथा 'मरुद्यमेशाम्बुपवह्निसोम रक्षाः सुराधीश्वर दिक्षु' इत्यादि क्रम से योगिनी और मृत्यु की दिशा जाननी चाहिए। इस प्रकार वे स्पष्ट हो जाती हैं।

यहाँ आठ दिशाओं में एक-एक याम के क्रम से योगिनी के संचार का नियम इस प्रकार है; प्रथम याम में उदय की दिशा में योगिनी होती है, द्वितीय

याम में उससे सातवीं दिशा में, तृतीय याम में उससे चौथी दिशा में, चतुर्थ याम में उससे तीसरी दिशा में, पंचम याम में उससे आठवीं दिशा में षष्ठ याम में उससे तीसरी दिशा में योगिनी संचरण करती है।

इस प्रकार प्रथम याम में योगिनी का जिस दिशा में उदय होता है उससे अष्टम याम में वह आठवीं दिशा में स्थित रहती है।

पूर्वोक्त क्रम से मृत्यु के संचार का विचार कर इन श्लोकों से उसका फल जानना चाहिए।

प्रश्न के समय मृत्यु का अन्त: प्रवेश मृत्युदायक होता है, किन्तु उसका निर्गम होने पर मृत्यु नहीं होती।

वह पूर्व दिशा में हो तो वृक्ष का पतन, अग्नि कोण में हो तो गाय की मृत्यु, दक्षिण में हो तो घर रहने वाले किसी व्यक्ति की मृत्यु, नैर्ऋत्य कोण में हो तो मृग (पशु) की मृत्यु, पश्चिम में हो तो भैंसा की मृत्यु, वायव्य में हो तो चाण्डाल की मृत्यु, उत्तर में हो तो चाण्डालों में भी निकृष्ट व्यक्ति की मृत्यु और वह ईशान कोण में हो तो ब्राह्मण की मृत्यु होती है।

अन्य प्रकार

नैर्ऋत्य कोण में 'मृत्यु' के रहने पर भृत्यनाश (सेवकों की मृत्यु या हानि) तथा पश्चिम में उसके होने पर चौपायों की मृत्यु होती है।

तथा इन निर्गम आदि के होने पर रोगी निश्चित रूप से जीवित रहता है।

पूर्व में अन्त: प्रवेश होने पर स्वामी की मृत्यु, अग्निकोण में अन्त: प्रवेश होने पर अग्नि भय, दक्षिण में सुपारी खाने (लग जाने) से किसी को मूर्च्छा, नैर्ऋत्य में सुपारी खाने से स्वयं की तबियत खराब होना, पश्चिम में अतिसार, छर्दि, शोक, जल रोग, आदि वायव्य में चोर के कारण कोलाहल, उत्तर में सिंह आदि की बाधा और ईशान कोण में अन्त:प्रवेश होने पर पृच्छक को मूर्च्छा आती है।

मृत्यु के अन्त: प्रवेश एवं निर्गम के पूर्व में जो लक्षण कहे जा चुके हैं यदि प्रश्नकाल में वे हों तो नि:सन्देह पृच्छक की मृत्यु होती है।

मृत्यु एवं काल का संचार

रविवार को पूर्व में, मंगलवार को अग्नि कोण में, गुरुवार को दक्षिण में, बुधवार को नैर्ऋत्य कोण में, शुक्रवार को पश्चिम में, शनिवार को वायव्य कोण में और सोमवार को उत्तर में उदित होकर मृत्यु प्रदक्षिण क्रम से और काल अप्रदक्षिण क्रम से संचार करते हैं।

१० घटियों में ये एक प्रदक्षिणा पूरी कर लेते हैं, इस प्रकार दिन और रात में ये राशियों में तीन-तीन बार प्रदक्षिणा अथवा परिभ्रमण करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट मृत्यु एवं काल का साधन पूर्वोक्त रीति से किया जा चुका है।

मृत्यु और यम के साथ योगिनी प्रतिदिन वार की दिशा में उदित होती है तथा एक याम तक उन दोनों के साथ वहीं रहती है।

द्वितीय याम में अग्रिम वार की दिशा में और तृतीय याम में उससे अग्रिम वार की दिशा में रहती है।

इस प्रकार सात यामों को सात दिशाओं में ले जाकर सात यामों में सात दिशाओं में जाकर अष्टम याम में प्रतिदिन ईशान कोण में आ जाती है।

उदाहरणार्थ रविवार को प्रथम याम में पूर्व में, द्वितीय याम में उत्तर में, तृतीय याम में अग्निकोण में, चतुर्थ याम में नैर्ऋत्य कोण में, पंचम याम में दक्षिण में, षष्ठ याम में पश्चिम में, सप्तम याम में वायव्य कोण में और अष्टम याम में ईशान कोण में योगिनी रहती हैं।

सोमवार को वह प्रथम आदि यामों में क्रमशः उत्तर, आग्नेय, नैर्ऋत्य, दक्षिण, पश्चिम, वायव्य, पूर्व एवं ईशान में रहती है।

इसी प्रकार मंगलवार आदि वारों में भी प्रत्येक याम में योगिनी की दिशा जाननी चाहिए।

एवं पूर्वोक्त के अनुसार पूर्व आदि दिशाओं में दो-दो राशियाँ होती है। अतः पूर्व आदि दिशाओं में योगिनी याम के पूर्वार्द्ध में प्रथम राशि में और याम के उत्तरार्द्ध में द्वितीय राशि में रहती है तथा कोण में वह पूरे याम तक एक-एक राशि में रहती है।

जिस राशि में योगिनी स्थित हो उससे सप्तम राशि को वह देखती है।

यदि उसकी पूर्व में मेष एवं वृष राशि में स्थिति हो तो उसकी दृष्टि तुला और वृश्चिक पर होती है।

इसी प्रकार दक्षिण आदि दिशाओं में भी जानना चाहिए।

दिशाओं में वह यामार्द्ध पर्यन्त एक राशि में और कोणों (विदिशाओं) में याम पर्यन्त एक राशि में रहती है।

यथा योगिनी से अधिष्ठित राशि या उससे सप्तम राशि पृच्छक की आरूढ़ राशि हों तो पृच्छक की मृत्यु होती है जैसा कि पूर्व में ही कहा गया है।

चर एवं स्थिर राशियों में योगिनी की स्थिति यामार्द्ध पर्यन्त तथा द्विस्वभाव राशि में उसकी स्थिति एक याम पर्यन्त होती है।

इस प्रकार वह योगिनी पूर्व, उत्तर, आग्नेय, नैर्ऋत्य, दक्षिण, पश्चिम एवं वायव्य कोण में क्रम-से रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार को उदित होती है।

तथा उदय की दिशा में इसी क्रम से सात यामों में उक्त सात दिशाओं में एक-एक याम रहकर दिन और रात के अन्तिम यामों में ईशान कोण में आकर अधिवास करती है।

तिथि योगिनी

एवं प्रतिपदा से अष्टमी पर्यन्त आठ तिथियों के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में दिन और रात की तरह आठ-आठ याम होते हैं।

इनमें योगिनी का संचार वक्ष्यमाण प्रकार से कहते हैं।

विशेष—दोनों तिथ्यर्द्ध (पूर्व-उत्तर) में योगिनी का उदय एवं संचार एक समान होता है।

तिथि योगिनी संचार

यहाँ प्रतिपदा से अष्टमी पर्यन्त आठ तिथियों के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के प्रथमादि यामों में योगिनी निम्न संख्यक दिशाओं में रहती है।

यहाँ प्रत्येक तिथि के ८ यामों में योगिनी के वास की दिशा की संख्यायें पठित की गई हैं।

यहाँ १, २ आदि संख्यायें पूर्व, आग्नेय आदि दिशाओं के वाचक हैं।

प्रतिपदा के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के ८ यामों (अष्टमांशों) में योगिनी क्रमशः १, ७, २, ४, ३, ५, ६ एवं ८ संख्यक दिशाओं में रहती है।

द्वितीया के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में वह क्रमशः ७, ५, ८, २, १, ३, ४ एवं ६ संख्यक दिशाओं में रहती है।

तृतीया के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में वह २, ८, ३, ५, ६, ७ एवं १ संख्यक दिशाओं में रहती है।

चतुर्थी के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में वह ४, २, ५, ७, ६, ८, १ एवं ३ संख्यक दिशाओं में रहती है।

पंचमी के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में वह ३, १, ४, ६, ५, ७, ८ और २ संख्यक दिशाओं में रहती है।

षष्ठी के दोनों दलों में वह ५, ३, ६, ८, ७, १, २ एवं ४ संख्यक दिशाओं में रहती है।

सप्तमी के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में वह ६, ४, ७, १, ८, २, ३ एवं ५ संख्यक दिशाओं में रहती है।

तथा अष्टमी के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के आठो यामों वह योगिनी क्रमशः ८, ६, १, ३, २, ४, ५ एवं ७ संख्यक दिशाओं में रहती है।

दिशा संख्या पूर्वादि क्रम से १-२-३-४ आदि हैं। इस प्रकार क्रम-से ईशान की ८ संख्या हो जाती है।

इस प्रकार प्रतिपदा के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के आठों यामों में योगिनी का क्रम-से पूर्व, उत्तर, आग्नेय, नैर्ऋत्य, दक्षिण, पश्चिम, वायव्य एवं ईशान कोण में संचार होता है।

द्वितीया के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के आठों यामों में उसका क्रम-से उत्तर, पश्चिम, ईशान, आग्नेय, पूर्व, दक्षिण, नैर्ऋत्य एवं वायव्य कोण में विचरण होता है।

तृतीया के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के आठों यामों में वह क्रम-से आग्नेय, ईशान, दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य, वायव्य, उत्तर एवं पूर्व दिशा में विचरण करती है।

चतुर्थी के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के आठों यामों में वह क्रम-से नैर्ऋत्य, आग्नेय, पश्चिम, उत्तर, वायव्य, ईशान, पूर्व एवं दक्षिण दिशा में घूमती है।

पंचमी के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के आठों यामों में उसका संचार क्रम-से दक्षिण, पूर्व, नैर्ऋत्य, वायव्य, पश्चिम, उत्तर ईशान एवं अग्नि कोण में होता है।

षष्ठी के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के आठ-आठ यामों में उसका संचार क्रम-से पश्चिम, दक्षिण, वायव्य, ईशान, उत्तर, पूर्व, आग्नेय एवं नैर्ऋत्य कोण में होता है।

सप्तमी के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के आठ-आठ यामों में उसका संचार क्रम-से वायव्य, नैर्ऋत्य, उत्तर, पूर्व, ईशान, आग्नेय, दक्षिण एवं पश्चिम दिशा में होता है।

तथा अष्टमी के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के आठ-आठ यामों में योगिनी क्रम-से ईशान, वायव्य, पूर्व, दक्षिण, आग्नेय, नैर्ऋत्य, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में विचरण करती है।

तिथि-योगिनी ज्ञापनार्थ चक्र

याम	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम	षष्ठ	सप्तम	अष्टम
प्रतिपदा नवमी	पूर्व	उत्तर	आग्नेय	नैर्ऋत्य	दक्षिण	पश्चिम	वायव्य	ईशान
द्वितीया दशमी	उत्तर	पश्चिम	ईशान	आग्नेय	पूर्व	दक्षिण	नैर्ऋत्य	वायव्य
तृतीया एकादशी	आग्नेय	ईशान	दक्षिण	पश्चिम	नैर्ऋत्य	वायव्य	उत्तर	पूर्व
चतुर्थी द्वादशी	नैर्ऋत्य	आग्नेय	पश्चिम	उत्तर	वायव्य	ईशान	पूर्व	दक्षिण
पंचमी त्रयोदशी	दक्षिण	पूर्व	नैर्ऋत्य	वायव्य	पश्चिम	उत्तर	ईशान	आग्नेय
षष्ठी चतुर्दशी	पश्चिम	दक्षिण	वायव्य	ईशान	उत्तर	पूर्व	आग्नेय	नैर्ऋत्य
सप्तमी अ.पू.	वायव्य	नैर्ऋत्य	उत्तर	पूर्व	ईशान	आग्नेय	दक्षिण	पश्चिम
अष्टमी	ईशान	वायव्य	पूर्व	दक्षिण	आग्नेय	नैर्ऋत्य	पश्चिम	उत्तर

नोट—उपरोक्त कोष्ठक में सप्तमी के साथ अमावस्या अथवा पूर्णिमा जानना चाहिए।

जिस प्रकार प्रतिपदा आदि तिथियों के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के आठ-आठ यामों में योगिनी उपरोक्त दिशाओं में विचरण करती है, उसी प्रकार नवमी आदि तिथियों के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के आठ-आठ यामों में भी उन्हीं दिशाओं में उसी क्रम से ही योगिनी का संचार होता है। इस प्रकार तिथि योगिनी का संचार कहा गया।

मृत्युदायक योग

यदि प्रश्नलग्न और प्रश्नकालीन आरूढ़ राशि अथवा जन्मलग्न और जन्म राशि योगिनी से दृष्ट हों अर्थात् इनसे सप्तम राशि में योगिनी हो, तो ये योग मृत्युदायक होते हैं।

यदि प्राण जो तीन प्रकार का होता है। द्वितीय तथा योगिनी के मुख में हों, अर्थात् योगिनी और प्राण दोनों साथ-साथ एक राशि में हों तो व्यक्ति की मृत्यु होती है।

मेरा नरक मे पतन या स्वर्ग में निवास होगा?

क्या मेरा नरक में पतन होगा या स्वर्ग में निवास होगा? और किस तरह से धन लाभ होगा? इन प्रश्नों के पूछने पर इस तरह फलादेश करना चाहिए।

१. स्थूण, २. कण्टक स्थूण, ३. रक्त स्थूण, ४. विष घटिका, ५. विष्टिकरण, ६. गण्डान्त, ७. वैधृति, ८. लाट, ९. परिवेष, १० व्यतिपात, ११. धूम, १२ एकार्गल, १३. शन्युदय, १४. राहूदय, १५. केतूदय, १६. गुलिकोदय; ये १६ दोष लग्न, चन्द्रमा या सूर्य में हों तो मनुष्य इस लोक में दुःख, मानहानि एवं निर्धनता जैसे नरकों को भोगता है।

यदि चन्द्रमा में उपरोक्त दोष हों तो व्यक्ति को इन नारकीय कष्टों से अत्यधिक पीड़ा मिलती है।

स्थूण आदि साधन

प्रश्नकालीन सूर्य के नक्षत्र से मूल तक गणना करने से जो संख्या मिले, पुनः मूल से उतनी संख्या आगे जो नक्षत्र हो, वह कण्टक संज्ञक होता है।

इसी प्रकार मंगल के नक्षत्र से मूल नक्षत्र तक गणना करने से जो संख्या मिले पुनः मूल से उतनी संख्या आगे वाला नक्षत्र स्थूण संज्ञक होता है।

इसी प्रकार सूर्य के नक्षत्र और मंगल के नक्षत्र इन दोनों से पृथक्-पृथक् मूल नक्षत्र तक गणना करने से जो संख्या मिले उसका योग २७ से अधिक हो तो २७ से घटाकर शेष का पुनः मूल से उतनी अर्थात् योग तुल्य संख्या आगे वाला नक्षत्र कण्टकस्थूण नामक होता है।

सिंह राशि के १८ अंश (४/१८) में से स्पष्ट मंगल के राशि अंश घटाकर शेष का नक्षत्र रक्त-स्थूण होता है।

यहाँ जन्म लग्न के उपरोक्त विष आदि दोषों से युक्त होने पर परलोक में अन्ध तामिस्त्र आदि नरक मिलते हैं।

आरूढ़ राशि या प्रश्नकालीन चन्द्रराशि के विष आदि दोषों से युक्त होने पर इस लोक में ही दुःख, दरिद्रता, एवं मानहानि जैसे नरक (नारकीय दुःख) मिलते हैं।

प्रश्नकालीन सूर्य के विष आदि दोषों से युक्त होने पर मृत्यु के बाद परलोक में नरक में पतन होता है।

युग नक्षत्र और आयु

इस प्रकार सतयुग (कृतयुग) के समय में मनुष्यों की आयु १ हजार वर्ष की थी।

त्रेता युग में उससे आधी ५०० वर्ष और द्वापर युग में उससे आधी २५० वर्ष थी।

कलियुग में मनुष्यों की आयु हजार का आठवाँ भाग १०००/८ = १२५ वर्ष कही गयी है।

सतयुग की राशि और नवांश में स्थित ग्रह अपने पूरे वर्ष, त्रेतायुग की राशि और नवांश में स्थित ग्रह अपने आधे वर्ष, द्वापर युग की राशि और नवांश में स्थित ग्रह अपने चौथाई वर्ष तथा कलियुग की राशि और उसके नवांश में स्थित ग्रह अपने अष्टमांश १/८ के तुल्य वर्ष देता है।

मेष आदि से त्रिकोण में राशियाँ कृतयुग आदि की राशियाँ होती हैं—

अर्थात् सतयुग की मेष, सिंह, धनु। त्रेता की वृष, कन्या, मकर। द्वापर की मिथुन, तुला, कुम्भ व कलि की कर्क, वृश्चिक, मीन राशियाँ हैं।

युग राशि जन्मवश धन लाभ

जिस व्यक्ति का जन्म कृतयुग की राशियों अर्थात् मेष, सिंह एवं धनु में होता है, उस व्यक्ति को सभी लोग दैवयोग से मिलकर धन देते हैं।

त्रेतायुग की राशियों में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति को देशाटन से धन लाभ होता है।

द्वापर की राशियों में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति को व्यापार से धनलाभ होता है।

किन्तु कलियुग की राशियों में उत्पन्न व्यक्ति को किसी भी तरह से धनलाभ नहीं होता।

इस प्रकार कृतयुग आदि युगों की राशियों में स्थित ग्रह फलदायक कहे गये हैं।

अपनी दशा एवं अन्तर्दशा आदि में तथा प्रश्नकाल में पूर्वोक्त रीति से ग्रहों के फल का विचार करना चाहिए तथा योग आदि के अनुसार भी फल का विचार करना चाहिए।



विवाह प्रसङ्ग निरूपण

यहाँ इस ग्रन्थ के पूर्व के प्रसङ्गों में आयु का निरूपण करने के पश्चात् इसी ग्रन्थ में विवाह प्रसङ्ग से सम्बन्धित प्रश्नों को विस्तार से प्रस्तुत किया जा रहा है।

विवाह का प्रयोजन

सर्वप्रथम कन्या एवं वर दोनों की आयु का तथा सन्तान की दृष्टि से भी सभी बातों का विचार करते हुए दैवज्ञ प्रश्न लग्न से भावी दाम्पत्य जीवन के शुभाशुभ का फलादेश करें, क्योंकि सन्तानोत्पत्ति के लिए ही विवाह किया जाता है और इस प्रकार वंशवृद्धि होने से पितरों को बड़ी प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

प्रश्न पूछने के शिष्टाचार

आचार्य बृहस्पति और माधव ने कहा है कि सर्वप्रथम दैवज्ञ को भक्तिभाव से प्रणाम करना चाहिए तत्पश्चात् उसका यथाशक्ति पूजन कर वर-वधू का जन्म नक्षत्र या नाम बतलाकर एक बार में ही विवाह के प्रसङ्ग में प्रश्न पूछना चाहिए।

प्रश्न लग्न के अनुसार विद्वान् दैवज्ञ को भावी दाम्पत्य सुख की शुभता या अशुभता का कथन करना चाहिए।

विवाह लग्न की तरह ही सभी ग्रहों की स्थिति का फल कहना चाहिए; किन्तु विवाह लग्न से सप्तम स्थान का ग्रह रहित होना शुभ माना जाता है। लेकिन उस विवाह प्रश्न में सप्तम स्थान में शुभ ग्रहों की स्थिति शुभफल देने वाली होती है।

विवाह प्रश्न

यहाँ इस प्रकार के वर के साथ विवाह होने से यह कन्या सौभाग्यवती एवं पुत्रवती होगी या नहीं? प्रमुख रूप से इसी को विवाह प्रश्न कहा जाता है।

वधू एवं वर के जन्म राशि सम्बन्धित नाम को बतला कर विवाह प्रश्न पूछना चाहिए।

यह वधू प्रधान प्रश्न है अर्थात् इस में प्रश्नकर्त्ता रूप वधू ग्रहण की जाती है।

आचार्य बृहस्पति के अनुसार प्रश्नलग्न से वधू का और उसके सप्तम भाव से उसके पति का लक्षण कथन करना चाहिए।

इस आधार पर प्रश्न लग्न से कन्या का गुण, स्वभाव और अन्य योगायोग का तथा प्रश्न लग्न से जो सातवाँ स्थान, उससे वर का गुण, स्वभाव, आयु, दाम्पत्य सुख आदि का विचार करना उचित है।

विशेष यहाँ यह कि वधू प्रधान प्रश्न है; यह कथन तभी उपयुक्त है, जब वधूपक्ष प्रश्नकर्त्ता हो। यदि वर पक्ष दैवज्ञ से प्रश्न करे, उस स्थिति में लग्न से वर सम्बन्धी और सप्तम स्थान से वधू सम्बन्धी विचार करना अधिक व्यावहरिक होगा।

अनुष्ठान पद्धति के अनुसार

यदि प्रश्न कुण्डली या आरूढ कुण्डली में नीच या शत्रु ग्रह की राशि में स्थित सूर्य हो, परन्तु लग्न अथवा आरूढ़ लग्न को वह नहीं देखता हो, तो स्त्री का पिता नहीं होता।

यदि इस प्रकार की स्थिति में चन्द्रमा हो, तो उसकी माता नहीं होती।

इसी प्रकार यदि प्रश्न एवं आरूढ़ लग्न की कुण्डली में शत्रु या नीच ग्रह की राशि में सूर्य हो, परन्तु सप्तम भाव पर उसकी दृष्टि न हो, तो वर का पिता नहीं होता तथा जब इस प्रकार की स्थिति में चन्द्रमा हो, तो वर अपनी माता से वंचित है, कहना चाहिए।

इस प्रकार पूर्व कथित समय आदि सभी बातों का भलीभाँति विचार करना चाहिए।

उनके शुभ होने पर पति, पुत्र एवं सम्पत्ति का लाभ और अशुभ होने पर लाभ नहीं होता है।

विवाह सम्बन्धि प्रश्न में उपयोगी जो-जो बातें पूर्व में कही गयीं हैं, उन सभी विषयों और वस्तुओं का विचार बुद्धिमान ज्योतिषज्ञ को करना चाहिए।

'कुजेन्दुहेतुः प्रतिमासमार्त्तव' वराहमिहिर विरचित बृहद्‌जातक के इस श्लोक के पूर्वार्द्ध से कन्या के ऋतुकाल और विवाह में विघ्न का तथा उत्तरार्ध से विवाह होने का दैवज्ञों द्वारा पृच्छकों को फलादेश करना चाहिए।

विवाह होगा या नहीं?

बृहस्पति के अनुसार यदि प्रश्नलग्न से समराशि में चन्द्रमा कृष्ण पक्ष का हो और पापग्रहों से दृष्ट हो अथवा अष्टम स्थान में बैठा हो, तो विवाह नहीं होता।

शकुनादि ज्ञान

इस प्रकार दाहिनी भुजा एवं शिर का स्पर्श करते हुए प्रश्न किया गया हो, तो विवाह होगा, ऐसा कहना चाहिए।

जानु और पैर का स्पर्श करत्ते हुए प्रश्न पूछा गया हो, तो विवाह में विलम्ब होगा, कहना चाहिए।

तथा बायीं भुजा, पीठ एवं कमर का स्पर्श करते हुए प्रश्न किया गया हो, तो विवाह में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं।

यदि लग्नेश और सप्तमेश अथवा लग्नेश और शुक्र ये दोनों ग्रह एक-दूसरे की राशि में हों, मित्र राशि अथवा उच्च राशि में हों अथवा परस्पर देखते हों या दोनों एक साथ स्थित हों, तो विवाह में निश्चित सफलता कहनी चाहिए।

दम्पती रोग और चरित्र

पापग्रहों से दृष्ट पापग्रह प्रश्न लग्न से अष्टम स्थान में नीच या शत्रु राशि में स्थित हों, तो विवाह के समय किसी भी प्रकार से बाधाएँ पैदा करते हैं।

इसी प्रकार ये ग्रह षष्ठ स्थान में हों, तो वर-वधू को रोगी बनाते हैं।

उनके अर्थात् वर-वधू के बन्धु-बान्धवों के द्वारा प्रश्न के समय पशु-पक्षी या सर्प आदि का मैथुन दिखलाई दे, तो वधू व्यभिचारिणी होती है।

दम्पत्ति मृत्यु योग

पापग्रहों से युक्त चन्द्रमा लग्न से आठवें या छठवें स्थान में स्थित हो, तो आठवें वर्ष में दम्पति की मृत्यु होती है।

यदि उपरोक्त स्थान में स्थित चन्द्रमा से दूसरे या आठवें स्थान में मंगल हो, तो नौवें वर्ष से पहले ही पुत्र के कारण मृत्यु होती है।

यदि लग्न और उससे सातवें स्थान में चन्द्रमा और मंगल स्थित हों, तो सातवें महीने में मृत्यु होती है।

विवाह सुख का अभाव

आरूढ़ राशि से बारहवें, आठवें या छठवें स्थान में यामशुक्र या कर्मेश के होने पर अथवा यामशुक्र से उपरोक्त स्थानों में से किसी स्थान में शुक्र हो, तो विवाह नहीं होता।

यामशुक्र लग्नेश एवं शुक्र का योग हो तथा लग्न में गुलिक और केतु हो या उनकी दृष्टि होने पर विवाह के बाद वधू को पति का सुख नहीं मिलता।

यहाँ यामशुक्र प्रतिदिन ४-४ घड़ी के लिए होता है। सूर्योदय से अधोलिखित घड़ी बीत जाने पर 'यामशुक्र' होता है।

रविवार २२-२६ घड़ी, चन्द्रवार १८-२२ घड़ी, मंगल १४-१८, बुध १०-१४ घड़ी, गुरु ६-१० घड़ी, शुक्र २-६ घड़ी, शनि २६-३० घड़ी।

उपरोक्त इष्टकाल से लग्न साधन की तरह यामशुक्र स्पष्ट हो जाता है।

विवाह प्रश्न के शकुन

यदि प्रश्न पूछने के समय वहाँ दो स्त्रियों सहित एक पुरुष आ जाता हो अथवा कोई विवाहित पति-पत्नी आ जाते हों अथवा ऐसा दृश्य दीख जाय जिसमें एक गाय के पीछे-पीछे दो बैल जा रहे हों, तो समझना चाहिए कि वधू का द्वितीय विवाह होगा।

तथा यदि उस समय कोई विरोधीस्वभाव सूचक फूल (फल न देने वाला फूल) दिख जाय, तो विवाह में बाधा उत्पन्न होगी, ऐसा बतलाना चाहिए।

विवाह प्रसङ्ग में प्रश्न करने के समय लाल पुष्प दिखाई दे तथा खुजलाते हुए रजोदर्शन से अथवा रक्त देखने से विवाह में बाधा आती है।

खून निकलने, शोर सूनने, हाथियों का लौल्य, लाल पुष्प देखने पर अथवा चक्र के मध्य बनाए गए लाल कमल पर हाथ रखने से भी उपरोक्त फल प्राप्त होता है।

हाथों को अलग करने, पिशाच दिखलाई देने, मृत्यु का दृश्य देखने, तथा कलह (झगड़ा-झंझट) की आवाज सुनाई देने से निश्चित रूप से क्लेश होता है। अब इसके बाद शीघ्र विवाह होने के शकुन कहते हैं—

सद्यः विवाह शकुन

विक्रय योग्य वस्त्र लाना, धुले हुए कपड़े लाना, कमर में धुला कपड़ा पहन कर आना, प्रश्न के समय इच्छित सम्बन्धी का आना अथवा किसी जीव का सम्भोग देखना आदि प्रश्नकर्त्ता का शीघ्र विवाह होने का सूचक है।

प्रश्न के समय खोदना, तोड़ना एवं चीरना आदि की ध्वनि सुनाई देने पर वधू में दोष समझना चाहिए।

शकुन व कन्या दोष

विवाह प्रसङ्ग के प्रश्न के समय कोई पुरुष या स्त्री अर्धनग्न हो जाय अथवा उनके कपड़े खुल जाये, तो कन्या दुष्टा होती है।

लोहे का पात्र, पूँछ युक्त मुकुर, तूँबा एवं सोने और चाँदी से बनी चीजें दीख जाना, पशुओं का दस्त निकलना, बना हुआ यज्ञोपवीत देखना ये सब शकुन शीघ्र विवाह होने के सूचक हैं।

यदि दो विरोधी प्रकृति की वस्तुओं के जोड़े एक साथ बँधे दिखलाई दें अथवा दम्पत्ति साथ दीख जाय या आ जाय अथवा ऊनी धागे पैर में बांधे व्यक्ति दिखलाई दें या गायकों का आगमन हो जाय और सुन्दर वस्तुएँ दिखलाई दे, तो शीघ्र विवाह होगा, ऐसा बतलाना चाहिए।

प्रश्नलग्न से दाम्पत्त्य सुख

'प्रश्नरत्न' ग्रन्थ में कहा गया है कि प्रश्न लग्न से उपचय स्थान (३, ६, १०, ११) में शुक्र एवं सप्तमेश की स्थिति समृद्धिप्रद होती है तथा विवाह के पश्चात् यह योग सन्तानदायक भी होता है।

विद्वज्जनवल्लभा के अनुसार

'विद्वज्जनवल्लभा' ग्रन्थ में कहा गया है कि यदि समराशि में शुक्र और स्त्री राशि के नवांश में चन्द्रमा स्थित हो और ये दोनों बलवान् होकर लग्न को देखते हों, तो कन्या का लाभ होता है अर्थात् विवाह शीघ्र होता है।

लग्न में यदि समराशि का द्रेष्काण अथवा त्रिंशांश और स्त्री राशि का नवांश भी हो तो दुःस्थान (६, ८, १२) में स्थित चन्द्रमा के रहते भी स्त्री-लाभ होता है।

यदि केन्द्र और त्रिकोणस्थान में स्थित शुभ ग्रह से सप्तम स्थान में स्थित शुभ ग्रह देखा जाता हो तो सुरूप अर्थात् सुन्दर पत्नी मिलती है।

यदि उपरोक्त प्रकार का योग पाप ग्रहों के द्वारा बन रहा हो, तो कुरूप पत्नी मिलती है।

यदि सप्तम, उपचय और धन स्थान में शुभ ग्रहों से दृष्ट चन्द्रमा स्थित हो और लग्न मिथुन, कुम्भ, कन्या अथवा तुला राशि का हो तथा सप्तम में शुक्र और चन्द्रमा की युति हो, अथवा इन दोनों शुक्र और चन्द्र की युति चतुर्थ भाव में हों, आरूढ़ राशि अथवा लग्न से सप्तम स्थान में गुरु, बुध एवं शुक्र स्थित हो अथवा ये ग्रह केन्द्र में स्थित हों, तो शीघ्र विवाह होता है।

विवाह प्रसङ्ग के प्रश्न के समय यदि लग्न, सप्तम, अष्टम, पञ्चम एवं नवम स्थान अपने स्वामी से युक्त अथवा दृष्ट हो तथा पापग्रहों से दृष्ट या युक्त न हो, तो वधू को शुभ फलदायक होते हैं।

यदि इसके विपरीत योग हो, तो बुद्धिमान् व्यक्ति को विवाह नहीं करना चाहिए।

शुभ ग्रह के नवांश में स्थित लग्न और चन्द्रमा शुभ फलदायक तथा पापग्रह के नवांश में हो, तो वे मृत्युदायक होते हैं।

दम्पती मृत्यु योग

यदि पापग्रहों से लग्न युक्त हो और लग्न में नीच अथवा शत्रु राशिगत ग्रह भी हो तथा अष्टम और सप्तम स्थान में भी पापग्रह नीच अथवा शत्रु राशिगत हो, तो दम्पत्ति का मरण कहना चहिए।

कुलटा मृतपुत्र योग

यदि पञ्चम स्थान में अपनी नीच राशि में पापग्रह अपने शत्रुग्रह से दृष्ट हो, तो इस योग में कन्या को कुलटा अथवा मृतवत्सा कहना चाहिए।

बन्ध्या-मृतपुत्रा-पुत्रहन्त्री योग

यदि पापी ग्रहों से युक्त पञ्चम स्थान हो, तो वन्ध्या अथवा मृतपुत्रा कन्या होती है।

यदि उपरोक्त ग्रह नीच या शत्रु राशि में स्थित हों, तो वह स्वयं अपने पुत्र की हत्या करने वाली होती है। यह मत प्रश्नानुष्ठान पद्धति में व्यक्त किया गया है।

प्रश्न रत्न के अनुसार

'प्रश्नरत्न' का विचार है कि यदि सप्तमेश बलवान् हो, तो विवाह सुखप्रद एवं धनदायक होता है।

सप्तमेश यदि नीच या शत्रु राशि में हो,तो दरिद्र स्त्री के साथ विवाह होता है तथा धनलाभ भी नहीं होता और स्त्री रूप एवं गुण से हीन भी होती है।

यदि स्त्रीग्रह मित्रराशि में स्थित होकर लग्न में स्थित हो और पुरुष राशि को देखता हो, तो पुरुष को पत्नी का स्नेह मिलता है, अन्यथा नहीं।

वराहमिहिर विरचित होराशास्त्र के स्त्रीजातकाध्याय में जो त्रिशांश के अनुसार फल कथन किया गया है, उसका भी विवाह के प्रश्न में विचार करना चाहिए।

प्रश्न संग्रह के अनुसार

'प्रश्न संग्रह' में अभिव्यक्त विचार के अनुसार प्रश्न के समय जिस किसी भी प्रकार की कन्या के प्रसङ्ग में चर्चा हो या कोई कन्या जिस-किसी भी प्रकार की दिखलाई दे, वैसी ही आकृति एवं रूप-रङ्ग की कन्या के साथ विवाह होता है।

आरूढ़ राशि का स्वामी एवं लग्नेश इन दोनों में जो बलवान् हो उसकी राशि वाली अर्थात् आरूढ़ या लग्न की राशि वाली कन्या सन्तान सिद्धि के लिए विवाह के लिए स्वीकार करनी चाहिए।

विवाह काल निर्णय

यदि विवाह का योग बनता हो, तो विवाह की तिथि का निश्चय इस प्रकार से करना चाहिए—

(क) उस समय जबकि चन्द्र, स्वयं स्थित राशि की द्वादशांश राशि के पञ्चम अथवा नवम स्थान पर गोचर करता है।

(ख) जब आरूढ़ राशि से सप्तमेश अधिष्ठित राशि में चन्द्रमा गोचर करता है।

(ग) जब चन्द्रमा 'स्वाभिलाष' संज्ञक राशि में गोचरवश आता है।

चन्द्राभिलाष व चन्द्रवेला

प्रश्नकालिक चन्द्र स्पष्ट की राश्यादि की कला बना कर उस को ८०० से विभक्त करने पर लब्धि को छोड़ कर शेष को दो स्थानों पर स्थापित करना चाहिए।

एक स्थान पर इन शेष कलाओं को तीन से गुणा कर २०० का भाग देने पर लब्धि में जो राशि आदि में होगा 'चन्द्राभिलाष' राशि होगी।

दूसरे स्थान में कलात्मक शेष को ९ से गुणा कर २०० से विभक्त करने पर लब्धि 'चन्द्रवेला' राशि का राश्यादि स्पष्ट होगा।

विवाह दिशा परिज्ञान

राशि चक्र की जो राशि आरूढ़ या लग्न की राशि हो निःसन्देह उस राशि की दिशा में जमाता होता है अर्थात् उस दिशा में कन्या का विवाह सम्भव हो सकेगा।

इस प्रकार प्रश्न लग्न विचार करने के पश्चात् शुभ शकुन घटित होने पर शुभ सुमुहूर्त्त में विवाह करना शुभफलदायक होता है।



शुभकाल में सन्तान प्रश्न

विवाह प्रसङ्ग में बतलाने के पश्चात् अब सन्तान विषयक प्रश्नों के बारे में लिखते हैं।

इस प्रसङ्ग में सर्वप्रथम दैवज्ञों का यह कहना है कि यह प्रश्न अन्यतम शुभकाल में ही करना चाहिए।

इस प्रकार विवाह के पश्चात् पति का सहवास पाकर काल की महिमा (प्रभाव) कन्या रूप पत्नि से गर्भ धारण कर अल्प दिनों में पुत्र को जन्म देने वाली माता के रूप में पत्नी प्रशस्त मानी गई है।

इसलिए सब लोगों को शुभ लग्न में ग्रहों की शुभ स्थिति होने पर स्त्री, पुत्र तथा धनादि का विचार करना और कराना चाहिए।

इस पुरुष का इस पत्नि से पुत्र होगा या नहीं? इस प्रश्न में दम्पत्ति के नक्षत्रों को बतलाकर सन्तान के प्रसङ्ग में प्रश्न पूछना चाहिए।

सन्तानोत्पत्ति में बाधा

उपरोक्त सन्तान विषयक प्रश्न निश्चय ही साधारण और स्वाभाविक है, फिर भी प्रश्न संग्रह ग्रन्थ के अनुसार उसका विचार आरूढ़ से करना चाहिए।

इस तरह आरूढ़ राशि का स्वामी और नवमेश ये दोनों अस्त हों, तो क्षेत्र (पत्नी) में दोष समझना चाहिए और इस प्रकार दूसरी बार सन्तानार्थ विवाह करना पड़ता है।

इसी प्रकार यदि लग्नेश एवं पञ्चमेश दोनों अस्त हों, तो बीज (पति) में दोष कहना चाहिए, चूँकि विवाह सन्तानोत्पत्ति के लिए होता है।

अत: उपरोक्त दोष होने पर सन्तानोत्पत्ति के लिए पहली स्थिति में भगवान् विष्णु का तथा द्वितीय स्थिति में ब्राह्मणों का अर्चन करना चाहिए।

इस प्रकार दोष नष्ट होने पर पुत्र का जन्म होता है।

दुर्लभ पुत्र योग -

'सन्तान दीपिका' के अनुसार आरूढ़ राशि से उपचय स्थानस्थ अथवा लग्न से अन्य स्थान अर्थात् अनुपचय राशियों में चन्द्रमा होने पर लग्न एवं आरूढ़ राशि में स्त्री राशि अथवा कन्या, वृश्चिक, वृष या सिंह राशि होने पर, लग्नों में अग्नि द्योतक राशि के होने पर तथा बृहस्पति के निष्फल स्थिति में होने पर पुत्र का जन्म दुर्लभ माना गया है।

मनुष्यों की नि:सन्तानत्व योग, दत्तक आदि पुत्र योग, पुत्रशोक, अल्प पुत्र या अधिक पुत्र योग होना—ये सब अब बतलाते हैं।

अनपत्य योग

पञ्चम भाव का कारक ग्रह गुरु, लग्नेश, सप्तमेश एवं पञ्चमेश; इन सब ग्रहों के बलहीन होने से अनपत्य योग अर्थात् नि:सन्तान होने का योग कहना चाहिए।

यदि पञ्चम स्थान में पापग्रह हो, नीच राशि में पञ्चमेश हो तथा इन ग्रहों पर शुभग्रह की दृष्टि न हो, तो अनपत्यता कहनी चाहिए।

इस प्रकार यदि गुरु, लग्न एवं चन्द्रमा से पाँचवें स्थान में पापग्रह हो तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो, तो अनपत्य अर्थात् नि:सन्तान योग बतलाना चाहिए।

दत्तक योग

यदि पञ्चम स्थान में बुध या शनि की राशि हो तथा उक्त स्थान शनि एवं गुलिक से दृष्ट अथवा युक्त हो, तो दत्तक आदि पुत्र होगा, कहना चाहिए।

सम्पूर्ण रूप से बलवान् शुभ ग्रह पञ्चम स्थान में हो, लेकिन वह पञ्चमेश से देखा नहीं जाता हो, तो दत्तक आदि पुत्र की प्राप्ति होती है।

पुत्रनाशयोग

यदि पञ्चम भाव में मकर या मीन राशिस्थ गुरु हो, तो व्यक्ति को पुत्र शोक होता है।

कर्क राशि में वहाँ यदि बृहस्पति हो, तो अनेक कन्याओं का जन्म होता है, ऐसा मुनिजनों ने कहा है।

यदि पञ्चम स्थान में अष्टमेश हो तथा अष्टम स्थान में अथवा शत्रु या नीच राशिगत पञ्चमेश हो तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट नहीं हो, तो सन्तति का नाश कहना चाहिए।

यदि दो पापग्रहों के बीच में गुरु स्थित हो और शुभग्रह की दृष्टि या युति से भी रहित हो तथा पञ्चमेश बलहीन हो, तो सन्तान का नाश होगा; ऐसा कहना चाहिए।

यदि पञ्चम स्थान दो पाप ग्रहों के बीच में हो तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट या युत नहीं हो और पञ्चमेश पापग्रहों से युक्त हो, तो सन्तति का नाश कहना चाहिए।

यदि पञ्चमेश नीच राशि में, शत्रु राशि में या अस्तगंत हो अथवा अष्टमेश,

षष्ठेश एवं व्ययेश के साथ स्थित हो अथवा पञ्चम स्थान में शुभ ग्रहों की दृष्टि का अभाव हो, तो मुनिजनों ने पुत्रनाश होना बतलाया है।

सन्तान योग

यदि पञ्चमेश बलवान् हो, लग्न स्थान में उसकी दृष्टि या युति हो और पञ्चम स्थान में पाप ग्रह न हो, तो सन्ततिलाभ कहना चाहिए।

यदि पञ्चम स्थान में मेष, सिंह, वृश्चिक या मीन राशि में गुरु से दृष्ट या युक्त मंगल हो, तो पुत्र लाभ होता है।

दो शुभ ग्रहों के मध्य में पञ्चम स्थान हो या इस भाव पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा पञ्चमेश से भी दृष्ट अथवा युत हो, तो पुत्र लाभ होता है।

बारहवें, आठवें और छठे स्थान के अतिरिक्त अन्य स्थानों में स्थित होकर पञ्चमेश बलवान् हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो, तो पुत्र की प्राप्ति होती है।

बलवान् पञ्चमेश यदि पञ्चम, सप्तम या लग्न भाव में स्थित हो और वह पाप ग्रहों से दृष्ट अथवा युत न हो, तो सन्तान प्राप्ति होती है।

बलवान् बृहस्पति यदि पञ्चम, सप्तम या लग्न भाव में स्थित हो और पापग्रहों से दृष्ट अथवा युत न हो, तो अवश्य सन्तति लाभ कहना चाहिए।

यदि पञ्चमेश बलवान् हो अथवा दो शुभ ग्रहों के मध्य में स्थित हो अथवा शुभ ग्रहों से दृष्ट या युक्त हो, तो पुत्र जन्म होता है।

बहुपुत्र जन्म योग

यदि पञ्चम स्थान में शुक्र, गुरु, बुध एवं पञ्चमेश बलवान् होकर स्थित हो अथवा उपरोक्त ग्रहों से पञ्चम स्थान दृष्ट हो, तो आचार्य अनेक पुत्रों का जन्म बतलाते हैं।

यहाँ विशेषता से पञ्चमेश के बलानुसार इसका विचार करना चाहिए।

यदि परमोच्च में पुरुष राशि के नवांश में पञ्चमेश स्थित होकर शुभ ग्रह से दृष्ट हो और पञ्चम स्थान पर पाप ग्रहों की दृष्टि या युति न हो, तो आचार्य जन अनेक पुत्र बतलाते हैं।

जिस-किसी भी भाव में पञ्चमेश, गुरु, मंगल एवं सूर्य पुरुष राशि एवं उस पुरुष राशि के ही नवांश में स्थित हों, तो मुनिजन अनेक पुत्र बतलाते हैं तथा पञ्चमेश के बल के अनुरूप पुत्र के अच्छा-बुरा होने का विचार करना चाहिए।

बहुकन्या जन्म योग

पञ्चमेश; चन्द्रमा एवं शुक्र यदि स्त्री राशि एवं स्त्री राशि के नवांश में स्थित हो, तो उपरोक्त प्रकार अनेक क़न्यायें होना दैवज्ञ को बतलाना चाहिए।

कन्या अथवा पुत्र जन्म

यदि लग्न भाव में चन्द्र की होरा तथा वाम स्वर चलता हो, तो कन्या तथा उस (लग्न भाव) में सूर्य की होरा और दक्षिण स्वर चलता हो, तो पुत्र उत्पन्न होता है।

कठिनता से पुत्र प्राप्ति योग

यदि लग्न से द्वादश तथा द्वितीय भाव पर छाद्य और छादक स्त्रीकारक ग्रहों की युति या दृष्टि या अन्य प्रकार से प्रभाव हो अथवा लग्नस्थ पुरुष ग्रह स्त्री ग्रहों के बीच में हो अथवा यदि लग्न या चन्द्र लग्न वृश्चिक राशि या सिंह राशि का हो अथवा यदि लग्न भाव में अग्नि तत्त्व की राशि मेष, सिंह व धनु स्थित हो, तो पुत्र की प्राप्ति बहुत कठिनता से होती है।

छादकादि ग्रहों का विवेचन स्वननामधन्य आचार्य कालीदास विरचित ग्रन्थ उत्तरकालामृत अध्याय ४ श्लोक २० में किया गया है।

वैसे उसे विस्तार से वहीं देखना चाहिए, पाठक के हितार्थ संकेत मात्र किया जाता है कि किसी भाव से द्वितीय भाव छादक है और छादक का व्यय स्थान छाद्य होता है।

पुत्र प्राप्ति योग

पञ्चमेश लग्न, तृतीय एवं धन स्थान में अथवा सप्तमेश एवं लग्नेश पञ्चम स्थान में अथवा गुरु पञ्चम भाव में स्थित हो, तो पुत्रदायक होता है।

सन्तान विषयक प्रश्न में गुरु भी पञ्चमेश के सदृश फल देता है।

लग्नेश और पञ्चमेश एक साथ स्थित हों अथवा एक-दूसरे को देखते हों अथवा एक-दूसरे की राशि में स्थित हों, तो ये तीनों पुत्रप्रद योग कहे गये हैं।

गर्भाधान कालिक शुभता

आरूढ़ राशि से अनुपचय भाव में स्थित चन्द्रमा स्त्रीकारक होने के कारण शुभफलप्रद कहा गया है।

इनसे भिन्न अर्थात् उपचय स्थानों में स्थित चन्द्रमा शुभप्रद नहीं होता। यहाँ लग्न के पुरुषकारक होने से उपरोक्त का विपरीत फल होता है।

इस प्रकार आचार्य माधव ने मुहूर्त्त विवेचन के प्रसङ्ग में कहा है।

गर्भाधान काल

स्त्री के अनुपचय स्थान में स्थित चन्द्र यदि मंगल से दृष्ट हो, तो उस समय मासिक धर्म होना निश्चित रूप से उसको गर्भ धारण कराता है।

इसके विपरीत समय में मासिक धर्म होना निष्फल रहता है।

उपरोक्त योग के समय स्वराशि या उपचय स्थान में स्थित गुरु की दृष्टि हो, तो मूल नक्षत्र में, शुभ मुहूर्त्त में तथा पर्व आदि कालों का त्याग करते हुए मनुष्यों को गर्भाधान करना चाहिए।

इस प्रकार सन्तान प्रश्न के विचार की निश्चय ही बहुत-सी विधियाँ हैं। उनमें से गुरुजनों के द्वारा बतलाई गई विधि को उपरोक्त के अनन्तर कहते हैं।

अनुभूत सन्तान योग

सर्वप्रथम लग्न और यमकण्टक का विधिवत् स्पष्ट साधन कर आपस में उसे जोड़ना चाहिए।

वह स्पष्ट योग जिस राशि एवं नवांश में हो उसे जान कर उसके राशि तथा नवांश में, जो अधिक बली हो उससे प्रश्नकर्त्ता के सन्तति विषयक प्रश्न का फलादेश करना चाहिए।

यदि सन्तति सम्बन्धी स्पष्टयोग की स्थिति ऊर्ध्वमुख, शीर्षोदय अथवा विषम राशि में हो और वह शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट भी हो, तो प्रश्नकर्ता को निश्चित रूप से शीघ्र ही सन्तति लाभ होना चाहिए, कहें।

यदि संतति सम्बन्धी स्पष्टयोग की स्थिति पृष्ठोदय, अधोमुख अथवा सम राशि में हो और वह नपुंसक एवं पापग्रहों से दृष्ट या युक्त हो, तो अभीष्ट अर्थात् सन्तति लाभ नहीं होता।

इस प्रकार पुरुष राशि और उसके नवांश में स्पष्ट योग होना ही सन्ततिदायक होता है।

जैसे लग्न स्फुट और यमकण्टक स्फुट के योग से सन्तान का विचार किया गया है, इसी प्रकार आरूढ़ लग्न के स्वामी के स्पष्ट और यमकण्टक के स्पष्ट से भी बतलाना चाहिए। यह सन्तान सम्बन्धी परम आदेश हमारी गुरु परम्परा में है।

यदि पञ्चमेश गुरु और यमकण्टक दोनों नपुंसक एवं पापग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हों तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट न हों और वह अनिष्ट स्थान में हों, समराशि एवं उसके नवांश में हों, पञ्चम स्थान में उपरोक्त सम राशि समनवांश योग हो, सन्तानप्रश्न कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि के बाद पूछा गया हो, तो उपरोक्त योगों में से किन्हीं दो अथवा तीन योगों में सन्ततिविषयक प्रश्न पूछने पर सामान्यतया सन्तान नहीं होती और यदि होती है तो केवल धर्म के प्रभाव से।

बृहस्पति, यमकण्टक और पञ्चमेश शुभ स्थान में हो, पुरुष राशि और उसके नवांश में हो, शुभ ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो, पाप एवं नपुंसक ग्रहों से युक्त

अथवा दृष्ट नहीं हो, पञ्चम स्थान में भी उपर्युक्त शुभ स्थिति हो तथा सन्तान का प्रश्न शुक्लपक्ष की पञ्चमी के बाद पूछा गया हो तो निश्चित रूप से गर्भपात नहीं होता, सन्तान होती है।

प्रश्न लग्न से जन्मकाल

लग्नस्थ द्वादशांश से पाँचवीं राशि के स्वामी लग्न में स्थित हो, तो उसके एक वर्ष के भीतर प्रश्नकर्ता को सन्तान की प्राप्ति होती है।

यदि षष्ठ भाव से पहले हो, तो उस भाव की संख्या के समान वर्षों में सन्तान होती है।

षष्ठ, अष्टम एवं व्यय स्थान में उपरोक्त पञ्चमेश हो, तो सन्तान नहीं होती।

पञ्चमेश की अन्यत्र स्थिति हो, तो धर्माचरण अर्थात् शांति कार्य आदि करने पर बिलम्ब से सन्तान होती है।

इस प्रकार उपरोक्त दोनों स्पष्टों के योग की राशि अथवा नवांश राशि से त्रिकोण या सप्तम या एकादश स्थान में जिस समय बृहस्पति गोचर क्रम से संचार करे उस समय पृच्छक को सन्तान होना बतलाना चाहिए।

इन स्थानों में शुभ ग्रहों की दृष्टि युति हो, तो शुभ फल अन्यथा गर्भ हानि कहनी चाहिए।

यदि लग्न, चन्द्र, यमकण्टक और गुलिक इन चारों के स्पष्ट राश्यादि के योग से प्राप्त राशि गुरु से त्रिकोण या केन्द्र स्थान में, विषम राशि या उसके नवांश में हो और शनि, बुध, राहु और केतु से केन्द्र और त्रिकोण में न हो, तो प्रश्नकर्ता को सन्तान होगी, कहना चाहिए।

इसके विपरीत योग में निश्चित रूप से सन्तान नहीं होती।

गर्भाधान काल

लग्न से पञ्चमेश आश्रित राशि में अथवा पञ्चमेश आश्रित नवांश राशि में गोचर क्रम से गुरु स्थित हो अथवा लग्न में जो नवांश हो उसके स्वामी ग्रह की राशि या नवांश राशि में सप्तमेश गोचर क्रम से स्थित हो या लग्नेश जिस राशि अथवा नवांश में हो उसमें चन्द्रमा गोचर क्रम से स्थित हो, तो बुद्धिमान् दैवज्ञ को गर्भाधान का समय है, प्रश्नकर्त्ता को निर्देशित करना चाहिए।

लग्न और चन्द्र के स्पष्ट राश्यादि को जोड़ने से सूर्य नवांश तुल्य होता हो और चन्द्रमा के स्पष्ट राशियादि में भी नवांश सूर्य ही की राशि हो, तो उस दिन लग्न और चन्द्र के स्पष्ट राश्यादिकों के उपरोक्त योग से प्राप्त नवांश राशि में जिस समय

सूर्य स्थित हो उस मास में, लग्न और चन्द्र के स्पष्ट राश्यादिकों से प्राप्त राशि में जब गुरु की स्थिति हो उस वर्ष में, लग्न सूर्य, मान्दी और चन्द्रमा के स्पष्ट राश्यादिकों के योग से प्राप्त राशि की लग्न में सन्तान का गर्भाधान या जन्म कहना चाहिए।

पञ्चमेश की जिस-किसी विप्र आदि वर्ण के ग्रह से दृष्टि या युति सम्बन्ध हो या विप्र आदि वर्ण वाली राशि से सम्बन्ध हो, तो उस वर्ण की पत्नी से पुत्र का जन्म होता है।

गुरु और शुक्र के साथ पञ्चमेश का सम्बन्ध हो, तो अपनी परिणीता पत्नी से पुत्र पैदा होता है।

दत्तक पुत्र योग

यदि लग्न में मिथुन आदि द्विस्वभाव संज्ञक राशि में यमकण्टक सहित मंगल तथा शनि स्थित हो और उन पर सूर्य तथा बुध की दृष्टि हो, तो "साधु" नाम का योग बनता है।

जिसके कारण किसी प्रकार की दत्तक आदि सन्तान भी प्राप्त नहीं होती; परन्तु यदि उपरोक्त के साथ ही गुरु तथा शुक्र की भी दृष्टि हो, तो फिर दत्तक पुत्र की प्राप्ति की सम्भावना होती है।

गर्भ प्रश्न ज्ञान

इस प्रकार गर्भ प्रश्न का विचार करते समय गर्भस्थ सन्तान और उसके माता-पिता का शुभाशुभ फल कहना चाहिए। अब इसके निर्णय की विधि कहते हैं—

लग्न और यमकण्टक के स्पष्ट राश्यादिकों के योग से जो राशि प्राप्त हो, वह लग्न तथा चन्द्रमा ये दोनों लग्न (माता) हैं, लग्न गुरु तथा सातवें भाव को पिता समझ कर, इन उपरोक्त स्थानों में अशुभ प्रभाववश गर्भ का अनिष्ट आदि फल विचार करना चाहिए।

गर्भ प्रसङ्ग में दम्पति मृत्यु

यदि लग्न भाव, सप्तम भाव, चन्द्रमा, सूर्य और गुरु; ये सभी भाव और ग्रह बलहीन, पापग्रहों से दृष्ट या युक्त तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट अथवा युक्त न हों, तो निश्चित रूप से दम्पत्ति की मृत्यु होती है तथा सन्तान भी नहीं होती है।

यदि इनमें गुरु बलवान् हो, तो केवल नवजात शिशु बच जाता है।

पिता, पुत्र और माता मृत्यु योग

लग्न, लग्नेश एवं चन्द्रमा बलहीन तथा पापग्रहों से युत अथवा दृष्ट हो, तो स्त्री (माता) की मृत्यु होती है।

गुरु के बलहीन होने पर जन्म के बाद पुत्र की मृत्यु होती है।

इसी तरह यदि सूर्य, सप्तम भाव एवं सप्तमेश निर्बल तथा पाप प्रभाव ग्रस्त हों, तो पिता की मृत्यु कहनी चाहिए।

ऐसी स्थिति में गुरु के बलवान् होने पर पहले पुत्र का जन्म और उसके पश्चात् पिता की मृत्यु होती है।

सूर्य मंगल से युक्त हो, तो पिता को तथा चन्द्रमा शनि से युक्त हो, तो माता को रोग होता है।

चन्द्रमा शनि, मंगल एवं राहु से दृष्ट अथवा युक्त हो तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट अथवा युत न हो, तो सगर्भा स्त्री की मृत्यु होती है।

इसी प्रकार सूर्य शनि, मंगल एवं राहु से दृष्ट अथवा युत हो, तो सन्तान के जन्म से पहले पिता की मृत्यु होती है।

उपरोक्त तीनों ग्रह शनि, मंगल एवं राहु से बृहस्पति के दृष्ट या युत होने पर मरी हुई सन्तान होती है।

सन्तान अभाव योग

प्रश्नकालिक कुण्डली में व्ययेश एवं गुरु के स्पष्ट राश्यादिकों की जो योग राशि है उनसे व्यय स्थान में क्रूर ग्रह हो, तो सन्तान नहीं होती।

यदि जन्मकालीन कुण्डली में भी उपरोक्त योग हो, तो निश्चित रूप से सन्तान नहीं होती।

यमकण्टक से युक्त गुलिक जिस नक्षत्र में हो वह नक्षत्र, दम्पति का वध नक्षत्र, पञ्चम और तृतीय नक्षत्र प्रश्न में हो, तो भी सन्तान नहीं होती। यह प्रश्न संग्रहकार ने कहा है।

सन्तान अभाव का कारण

सन्तान दीपिका नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि यदि पञ्चम स्थान में या पञ्चमेश के साथ राहु हो और शुभ ग्रह की दृष्टि न हो, तो सर्पशाप से पुत्रनाश बतलाना चाहिए। भृगुसूत्र में इसकी पुष्टि की गई है।

यदि लग्न में तथा त्रिकोण स्थान में गुलिक के साथ शनि हो और शुभ ग्रहों से दृष्ट न हो, तो पितृशाप से पुत्रनाश होता है।

यदि पञ्चमेश मंगल या षष्ठेश से युक्त हो और शुभ ग्रहों से दृष्ट न हो, तो शत्रु के प्रयास से पुत्रनाश होता है।

यदि पञ्चम स्थान में मंगल या षष्ठेश हो और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो, तो भी शत्रु के प्रभाववश पुत्रनाश होता है।

यदि शुभ ग्रहों की दृष्टि से रहित पञ्चमेश पाँचवें स्थान में हो तथा इस पर पापग्रहों की दृष्टि हो, तो देवशाप से पुत्रनाश होता है।

यदि चतुर्थ भाव में पापग्रह पञ्चमेश के साथ शनि तथा व्यय स्थान में पापग्रह हो, तो मातृदोष से पुत्रनाश होता है।

यदि नवम स्थान में पापग्रह हो तथा पञ्चमेश के साथ शनि हो और त्रिकोण में गुलिक हो, तो पितृदोष से पुत्रनाश होता है।

प्रश्न संग्रह में सन्तानाभाव का कारण

यदि गुरु, पञ्चमेश एवं लग्नेश निर्बल हो तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं नवमेश भी निर्बल हो, तो देवशाप के प्रभाववश सन्तान हानि कहनी चाहिए।

उपरोक्त योग में यदि गुरु और शुक्र खर अर्थात् पाप युक्त हों, तो ब्राह्मण के शाप से और यदि सूर्य एवं चन्द्रमा शत्रु अथवा नीच राशि में हों और पाप युक्त भी हों, तो पितृ शाप से सन्तान हानि कहनी चाहिए।

स्वकर्म आदिवश सन्तान हानि

यदि लग्नेश, पञ्चमेश एवं गुरु निर्बल हों तथा छठवें, आठवें और बारहवें स्थान में स्थित हों एवं दशमेश पापग्रहों से दृष्ट अथवा युक्त हो, तो अपने दुष्कर्मों से सन्तान की प्राप्ति नहीं होती।

उपरोक्त तीनों निर्बल ग्रह यदि मंगल और षष्ठेश से युक्त हों या षष्ठेश एवं मंगल पञ्चम स्थान में हों, तो शत्रु के अभिचार से सन्तान हानि होती है।

स्थान आदि दोषवश सन्तान हानि

यदि बृहस्पति, पञ्चमेश एवं लग्नेश भी बलवान् हो और पाप ग्रह चतुर्थ स्थान में स्थित हो तथा चतुर्थेश भी छठे, आठवें या बारहवें में स्थित हो, तो स्थानदोष से सन्तान हानि होती है।

उपरोक्त तीनों ग्रह से राहु युक्त होकर पञ्चम स्थान में हो, तो सर्पशाप से सन्तान हानि होती है।

यदि उपरोक्त योग में राहु मंगल के साथ हो, तो सर्प की शत्रुता से सन्तान हानि होती है।

पितृ आदि दोषवश सन्तान हानि

उपरोक्त तीनों ग्रह अर्थात् बृहस्पति, पञ्चमेश एवं लग्नेश बलवान् हो तथा नवम भाव पापग्रहों से युक्त हो और उसमें सूर्य स्थित हो, तो पितृ दोष से पिता के मर जाने के पश्चात् सन्तान होती है।

इसी स्थिति में चन्द्रमा के साथ और चतुर्थ स्थान में पापग्रह हों, तो स्थानदोष से या मातृदोष से माता की मृत्यु के पश्चात् सन्तान होती है।

तत्त्वानुसार सन्तान हानि

यदि लग्न में वायु संज्ञक भूत अर्थात् तत्त्व का उदय हुआ हो, तो सन्तान हानि का कारण पितरों को और यदि अग्नि अथवा आकाश भूत अर्थात् तत्त्व का उदय हुआ हो, तो सन्तति हानि का कारण देवताओं को बतलाया जाना चाहिए।

परन्तु यदि भूमि अथवा जल तत्त्व का उदय हुआ हो, तो इस योग में सन्तान शीघ्र प्राप्त होती है।

विलम्बित पुत्र प्राप्ति योग

यदि प्रश्न के समय लग्न में सूर्य की होरा और दैवज्ञ का वाम स्वर चल रहा हो।

अथवा लग्न में चन्द्र की होरा हो और दैवज्ञ का दक्षिण स्वर चल रहा हो।

अथवा यदि प्रश्न लग्न विषम राशि में हो और आरूढ़ लग्न सम राशि में हो।

अथवा यदि जन्म कुण्डली का पञ्चमेश तथा प्रश्न कुण्डली का पञ्चमेश एक राशि में स्थित हों।

अथवा परस्पर देखते हों अथवा एक-दूसरे की राशि में स्थित हों, तो इस प्रकार के उपरोक्त योगों में पृच्छक को बिलम्ब से सन्तान की प्राप्ति कहनी चाहिए।

निश्चित सन्तान प्राप्ति योग

यदि राश्यादि स्पष्ट सूर्य, चन्द्र एवं गुरु के योग के नवांश का स्वामी तथा गुलिक के नवांश का स्वामी ग्रह परस्पर एक-दूसरे को देखते हों या एक-दूसरे से त्रिकोण में हों, अथवा लग्नेश एवं पञ्चमेश राशि और नवांश से त्रिकोण में गुलिक हो, तो निश्चित रूप से इन योगों में सन्तान प्राप्ति होती है।

गर्भ का अभाव

आरूढ़ लग्न पर मंगल की दृष्टि हो, तो यह गर्भ होने का लक्षण माना जाता है।

यदि इस योग के विपरीत मंगल की दृष्टि का अभाव हो और उसकी राशि या नवांश आदि की अधिकतर प्रभाव हो तो फिर गर्भ की सम्भावना नहीं ही करनी चाहिए।

सन्तानोत्पत्ति काल

यदि प्रश्नकालिक गुलिकाश्रित भाव से त्रिकोण में अपने अष्टकवर्ग के अधिक बिन्दु वाली राशि में गुरु, सूर्य एवं चन्द्रमा हो अथवा वे लग्न की नवांश राशि से त्रिकोण में स्थित हों, तो सन्तान का जन्म कहना चाहिए।

गर्भलक्षण

गर्भ स्थिति के प्रसङ्ग में स्त्रियों के द्वारा प्रश्न किया गया हो, तो इस स्थिति में यदि आरूढ़ राशि में प्रश्न लग्न अथवा छत्र में राहु स्थित हो, तो गर्भ है, ऐसा कहना चाहिए।

यदि लग्न या चन्द्रलग्न से त्रिकोण अथवा सप्तम स्थान में बृहस्पति स्थित हो या उसे देखता हो, तो स्त्री गर्भिणी होती है।

प्रश्न के समय परिधि अर्थात् स्त्री का अन्तरंग अंग दृष्ट होने पर भी स्त्री गर्भवती है, कहना चाहिए।

उस समय वह यदि अस्त ग्रह से प्रभावित हो, तो उससे विद्वानों को पुत्र अथवा पुत्री के भेद को भी कहना चाहिए।

वहाँ यदि चन्द्र शुभ ग्रह से युक्त होकर स्थित हो, तो स्त्री को गर्भिणी कहनी चाहिए।

प्रश्न संग्रह के अनुसार

प्रश्न समय में यदि पञ्चमेश विषम राशि और उसके नवांश में तथा लग्नेश गुलिक से केन्द्र में स्थित हो, तो गर्भकारक कहना चाहिए।

यदि वह पञ्चमेश शीर्षोदय राशि में स्थित हो, तो निश्चित रूप से गर्भ जानना चाहिए। यदि वहाँ मंगल एवं शनि हो, तो गर्भपात होता है।

यदि वह पञ्चमेश स्थिर या अधोमुख राशि में हो, तो गर्भ नहीं होता। यदि वहाँ मंगल एवं शनि हो, तो गर्भपात होता है।

यदि वह पञ्चमेश स्थिर या अधोमुख राशि में हो और मंगल तथा शनि से प्रभावित हो, तो भी गर्भपात होता है।

गर्भ प्रश्न के शुभ शकुन

गर्भ सम्बन्धी प्रश्न के समय गर्भिणी स्त्री या शिशु का दिखना, पैसा, सोना, चाँदी का शब्द, द्वन्द्वयुद्ध, सन्तान की चर्चा, हाथ गिरना, किसी को अपनी ओर खींचना, आरूढ़ राशि या प्रश्न लग्न में शुक्र की युति या दृष्टि अथवा पाँचवें स्थान में शुक्र की स्थिति आदि लक्षणों में से किसी एक की भी स्थिति हो, तो गर्भस्थ शिशु कहना चाहिए।

सन्तानप्रद योग

प्रश्नकाल में गुलिक और चन्द्रमा की युति; पाँचवें स्थान में पञ्चमेश की गुलिक से युति; किसी भी स्थान में स्थित चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि; किसी भी स्थान

में स्थित चन्द्रमा और मंगल की युति; नवम स्थान में शुभ ग्रहों की स्थिति; पञ्चमेश का गुलिक के साथ योग; पञ्चमेश पर गुलिक की दृष्टि तथा गुलिक और चन्द्रमा के नवांशेषों का सम्बन्ध; ये सभी योग गर्भप्रद कहे गये हैं।

भूमि चक्र में जिस राशि में गर्भिणी की अपनी स्थिति के योग्य गर्भलक्षण योग परिलक्षित हो और उस राशि के स्वामी भी बली हो, तो उस ग्रह के रस में गर्भिणी की रुचि कहनी चाहिए।

यदि वह बलवान् न हो, तो उसे उस रस सम्बन्धी रोग होना समझना चाहिए।

गर्भपात शकुन

प्रश्न के समय किसी दूत का शीघ्र जाना या अन्य किसी का वहाँ आकर शीघ्र जाना अथवा कान आदि से मल का परित्याग करना अथवा पृच्छक के द्वारा फैलाए हुए पानों में से पाँचवें पान का खण्डित होना अथवा शव का दिखलायी देना; ये पाँच गर्भपात के सूचक शकुन कहे गये हैं।

गर्भपात के योग

इस प्रकार प्रश्न समय में मंगल एवं सूर्य केन्द्र में हों अथवा अष्टम स्थान में पापग्रह हो अथवा केन्द्र से अन्यत्र गुरु हो अथवा केन्द्र में चन्द्रमा हो अथवा अष्टमं में कोई ग्रह हो अथवा चन्द्रमा लग्न में तथा अठारहवें द्रेष्काण में पापग्रह हो अथवा केन्द्र में गुरु तथा लग्न और तीसरे स्थान में क्रमशः मंगल और शनि हो, तो ये सब योग गर्भपातकारक होते हैं।

प्रश्न पूछने के नियम के अन्तर्गत यदि स्त्रियों की नाभि या कटिप्रदेश या अध:कटिवस्त्र या कोई अंतरंग भाग दिखलाई दे जाय, तो गर्भनाश होता है। ऐसा ज्ञानप्रदीपिका में कहा गया है।

पुत्र-पुत्री परिज्ञानार्थ विचार

यदि प्रश्न लग्न से विषम स्थान में चन्द्र स्थित हो, तो पुत्र और समस्थान में चन्द्रमा स्थित हो, तो कन्या उत्पन्न होती है।

वार, नक्षत्र और राशि के स्वामियों में से कोई पुरुष या स्त्री हो, तो भी क्रम से पुत्र अथवा कन्या का जन्म कहना चाहिए।

यदि लग्न से तीसरे, नौवें, दशवें अथवा ग्यारहवें स्थान में सूर्य हो, तो पुत्र होता है। इन्हीं स्थानों में शनि होने पर भी पुत्र होता है।

सभी ग्रह विषम भावों में स्थित हों, तो पुत्र और यदि समभावों में स्थित हों, तो निस्सन्देह कन्या का जन्म समझना चाहिए।

यदि लग्न में पुरुष राशि का वर्ग अधिक संख्या में हो तथा बलवान् पुरुष ग्रहों की दृष्टि भी हो, तो पुत्र का जन्म होता है।

लग्न में समराशि का अधिकता वर्ग और स्त्री ग्रहों की दृष्टि हो, तो कन्या का जन्म होता है। लग्न में बुध होने पर भी गर्भ में कन्या होती है।

आर्यासप्तति के अनुसार पञ्चम और एकादश स्थान में शुभ ग्रह हो, तो स्त्री को गर्भिणी कहनी चाहिए।

गुरु, सूर्य, लग्न एवं चन्द्रमा विषम भावों में हों, तो पुत्रकारक होते हैं। ये सब समभाव में हों, तो कन्यादायक होते हैं।

यदि ये सब विषम एवं सम दोनों राशियों में हों, तो बल की अधिकता के आधार पर पुत्र या कन्या का जन्म कहना चाहिए।

लग्न से विषम भाव में स्थित शनि पुत्रदायक कहा गया है।

यदि प्रश्न के समय बलवान् गुरु और सूर्य विषम राशि में हो, तो पुत्र का जन्म कहना चाहिए। शुक्र, मंगल एवं चन्द्रमा समराशि में हों, तो कन्या उत्पन्न होते हैं।

षट्पञ्चाशिका के अनुसार यदि विषम स्थान में शनि हो, तो पुत्र का और सम स्थान में शनि हो, तो कन्या का जन्म होता है।

विषम स्थान में शनि हो, तो पुरुष को स्त्री का भोग मिलता है, अन्य प्रकार की स्थिति होने पर नहीं।

अनुष्ठान पद्धति में आया है कि सूर्य, मंगल, गुरु एवं शनि प्रश्न कुण्डली में लग्न से सप्तम स्थान में हों, तो पुत्र जन्मकारक होते हैं। शेष ग्रह सप्तम में हों, तो पुत्रीकारक होते हैं।

लग्न में सूर्य मंगल और गुरु पुत्रदायक हैं। शेष ग्रह लग्न में हों, तो विपरीत फलदायक होते हैं अर्थात् पुत्रीप्रदायक होते हैं। शनि का फल पुत्रीकारक होता है, अर्थात् शनि लग्न में पुत्री देता है।

यदि राशि चक्र के दक्षिण कोण में शरीर के दक्षिण भाग में स्थित पुरुष ग्रह का स्पर्श करे तो पुत्र का अन्यथा कन्या का जन्म होता है।

मिश्रित स्थिति में गर्भ का नाश होता है। यदि लग्नारूढ़ राशि और नवांश स्त्री संज्ञक हो और दो स्त्री ग्रहों से दृष्ट हो, तो कन्या का जन्म होता है इसके विपरीत योग होने पर दो पुत्रों का जन्म बतलाना चाहिए।

तथा त्रिकोण या केन्द्र स्थान में गुरु होने पर पुत्र का जन्म कहना चाहिए।

इस प्रकार देखे और सूने समस्त शकुनों को भली-भाँति विचार कर सन्देह से मुक्त हो कर प्रसव का निर्णय करना चाहिए।

पुत्र अथवा कन्या जन्म

सभा स्थित पुरुषों की दृष्टि अथवा उनके द्वारा कथन अथवा आरूढ़ राशि का पुरुष होना, पुरुष ग्रहों की युति एवं दृष्टि, पृच्छक की शीघ्र गति, लग्न में विषम राशि एवं दक्षिण स्वर अथवा दक्षिण की ओर पृच्छक का होना आदि पुत्र जन्मदायक संकेत समझना चाहिए। इससे विपरीत स्थिति को कन्या जन्मकारक जानना चाहिए।

प्रश्नकर्त्ता द्वारा शिर या दाहिने अंगों को स्पर्श करना, लग्न के नवांश में पुरुष दिशा संज्ञक राशि होना तथा विषम लग्न में बलवान् बुध के साथ शनि होने से पुत्र का जन्म कहना चाहिए, अन्यथा कन्या का जन्म समझना चाहिए।

वराहमिहिर के अनुसार कन्या-पुत्र जन्म

वराहमिहिर के कथनानुसार विषम राशि के लग्न और विषम राशि के नवांश में बलवान् सूर्य और चन्द्रमा हों, तो पुत्र का जन्म कहना चाहिए।

समराशि और समराशि के नवांश में उपरोक्त लग्न, सूर्य एवं चन्द्रमा हो, तो कन्या का जन्म समझना चाहिए।

गुरु और सूर्य विषम राशि में हों, तो पुत्र का और चन्द्रमा, शुक्र एवं मंगल सम राशि में हों, तो कन्या का जन्म बतलाना चाहिए।

द्विस्वभाव राशि और उसके नवांश में स्थित उपरोक्त ग्रह अपने बलाबल के अनुसार पुत्र या कन्याओं को उत्पन्न करते हैं।

लग्न को छोड़कर लग्न से विषम स्थान में स्थित शनि को भी पुत्र जन्मकारक मानना चाहिए।

उपरोक्त ग्रहों के बल का विचार कर प्रसव के समय पुत्र या कन्या का जन्म समझना चाहिए।

कन्या-पुत्र जन्म निर्णय

इस प्रकार पुत्र जन्म के चौदह लक्षण होते हैं तथा उतने ही कन्या जन्म के लक्षण होते हैं।

उपरोक्त कथित कन्या एवं पुत्र जन्म योग तथा कन्या जन्म के आगे पीछे कहे अन्य योग इन सब योगों में से पुत्र एवं कन्या के जन्म योगों के घटित होने पर उतनी उतनी गुटिकाएं पृथक्-पृथक् रख देनी चाहिए।

उन गुटिकाओं को गिन कर पुरुष या स्त्री जन्म योग में से जिस योग की संख्या अधिक हो उसका जन्म कहना चाहिए।

पुत्र अथवा कन्या जन्म

विषम राशि और विषम राशि के नवांश में पुत्र जन्म होता है।

लग्न एवं आरूढ़ राशि इन दोनों के नवांश समसंज्ञक हों तथा वे स्त्री संज्ञक ग्रहों से युक्त हों, तो दो कन्याएँ होने को सूचित करती हैं।

इसके विपरीत स्थिति में दो पुत्रों का योग कहना चाहिए।

शरीर के दक्षिण भाग में स्थित पुरुष राशि का दाहिने हाथ से स्पर्श करना पुत्रोत्पत्ति को सूचित करता है।

इसके विपरीत स्थिति को कन्या का सूचक जानना चाहिए।

यहाँ प्रश्नकाल में दक्षिण हस्त से वाम अंग का स्पर्श करने पर स्त्री की तथा वाम हस्त से दक्षिण अंग का स्पर्श करने पर पुरुष की मृत्यु कहनी चाहिए।

इस प्रकार पुरुष चेष्टा से पुरुष और इसके विपरीत स्त्रियों के बारे में समझना चाहिए।

प्रसवकाल

राशि रहित लग्न के अंश आदि की कला बनाकर तीन से गुणा कर ३५२ का भाग दें।

इस प्रकार लब्ध राश्यादि को लग्न की राशियों में जोड़ने से प्रसवकालीन सूर्य होता है अथवा सूर्य को १०८ से गुणाकर चन्द्रमा, उसमें लग्न और सूर्य जोड़कर जो नवांश आये, उस राशि में सूर्य के आने पर प्रसव होता है।

उदित लग्न की राशि के कक्षाधिपति के द्वादशांश सम्बन्धी राशि में चन्द्रमा स्थित हो, तो उस समय प्रसवकाल शुरू होता है तथा उसके नवांश में चन्द्रमा स्थित हो, तो उस समय प्रसवकाल की समाप्ति कहनी चाहिए।

उसके त्रिशांश के स्वामी की राशि प्रसूति का लग्न होता है। वह राशि सूर्य की होरा में हो, तो दिन में, नहीं तो रात्रि में जन्म होता है।

प्रश्नकालिक सूर्य और चन्द्रमा की द्रेष्काण राशि जानकर सूर्य और चन्द्र में से जो बलवान् हो उससे पञ्चम अथवा नवम राशि ग्रहण करना चाहिए।

इस बात का निर्णय सूर्य अथवा चन्द्र की द्रेष्काण राशि से ही करना। चन्द्र के उपरोक्त त्रिकोण राशि पर आने पर जन्म होता है।

इसी प्रकार यदि सूर्य चन्द्र की नवांश राशि से बलवान् हो, तो उससे पञ्चम अथवा नवम पर चन्द्र के आने के समय जन्म जानना चाहिए।

अथवा चन्द्र की द्वादशांश राशि जानकर जो संख्या मिले उसको मेष से गिनते हुए चन्द्र जब इस राशि पर आवे तब जन्म होता है।

प्रश्नकालिक लग्न से जो राशि त्रिकोण में हो और उससे आगे अधोमुख राशि में चन्द्रमा स्थित हो, तो जन्म होता है।

यहाँ गुलिक की युति एवं दृष्टि के अनुसार निर्णय करना चाहिए।

लग्न और चन्द्रमा की योग राशि को १२ में से घटाकर जो राशि प्राप्त हो उस राशि में या उसके नक्षत्र में जन्म होता है।

चन्द्रमा में लग्न जोड़कर और उसमें १२ से गुणाकर जो संख्या प्राप्त हो, जन्मनक्षत्र से उतनी संख्या वाला नक्षत्र १०वें महीने में प्राप्त हो, तो निःसन्देह रूप से जन्म कहना चाहिए।

अथवा चन्द्रमा और सूर्य के नवांश या इनकी राशि में गोचर क्रम से चन्द्र स्थित हो, तो जन्म होता है।

इन सब पद्धतियों से बहुमत से प्राप्त समय में प्रसव कहना चाहिए।

प्रश्न लग्न की द्वादशांश राशि शिशु के जन्म का लग्न होता है अथवा द्वादशांश स्वामी ग्रह जिस नवांश में स्थित हो वह राशि जन्म का लग्न होती है।

यदि इनमें से किसी के चार वर्ग हों अथवा उस पर गुलिक की दृष्टि अथवा युति द्वारा प्रभाव हो, तो यह प्रभाव निर्णायक होता है।

यदि जन्म रात्रि का हो, तो मान्दी की राशि या मान्दी अधिष्ठित राशि का नवांश अथवा इनसे त्रिकोणस्थ राशि में जब चन्द्र स्थित हो, तो जन्म कहना चाहिए।

प्रश्न लग्नस्थ सूर्य की द्वादशांश राशि में अथवा द्वादशांश के त्रिकोण राशि में शिशु का जन्मकालीन सूर्य होता है।

लग्न में जो द्वादशांश हो, तो उसकी राशि या उस द्वादशांश के स्वामी के नवांश की राशि प्रसव लग्न होती है।

यहाँ बलाबल के अनुसार निर्णय बतलाना चाहिए तथा गुलिक से जिस राशि का सम्बन्ध हो वह निर्णायक होती है।

उपरोक्त चारों वर्गों में नवांश प्रथम है। फिर नवांश से नवम है। फिर नवांश तथा द्वादशांश और फिर केवल द्वादशांश ये वर्ग होते हैं। इन चारों वर्गों के कार्यों को जानकर संबंध का विचार करना चाहिए।

प्रश्न के समय आरूढ़ और उसके त्रिकोण में जो राशि अधोमुख हो उसमें चन्द्रमा स्थित हो, तो प्रसव होता है। यह इस विषय का रहस्य है।

सन्तति बाधा शान्ति

सन्तति विषयक प्रश्न में बाधक ग्रहस्थिति एवं विरोधकारक योगों के रहने पर उसकी शान्ति के उपायों को कहते हैं।

विषम राशि में अनिष्ट स्थान में चन्द्रमा के साथ सूर्य या शनि हो, तो सन्तान प्राप्ति के लिए पितृदेवों का पूजन करना चाहिए।

युग्म राशि में सूर्य यदि अनिष्ट स्थान में हो, तो तीर्थ क्षेत्रों में पिण्डदान करना चाहिए।

समराशि में अनिष्ट स्थान में यदि शनि हो, तो पितृदेवों को प्रसन्न करने के लिए मिष्टान्न दान करना चाहिए। अनिष्ट स्थान में सम या विषम राशि में सूर्य हो, तो मन्त्रों का जप करना चाहिए।

इस प्रकार का चन्द्रमा अर्थात् अनिष्ट स्थान और सम या विषम राशि में चन्द्र स्थित हो, तो गया आदि क्षेत्रों में श्राद्ध आदि करना चाहिए और पुत्र प्राप्ति के लिए मन्दिरों में नृत्य और गीत आदि आयोजित करना चाहिए।

प्रेत बाधा और चन्द्रमा या सूर्य के साथ पापग्रहों के योग का दोष दूर करने के लिए गान और पिण्डदान करना चाहिए।

इस तरह विषम-स्थान विषम राशि में मंगल हो, तो षड्रस व्यंजनों से स्कन्द देवता की पूजा और ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

वह यदि समराशि में हो, तो स्कन्द देव की तरह दुर्गा की अराधना करनी चाहिए।

फिर जब दु:स्थान में बुध हो, तो पञ्चामृत एवं पायस से विष्णु भगवान् का पूजन, ब्राह्मणों को भोजन एवं सन्तान गोपाल के मन्त्र का जप करना या कराना चाहिए।

इस प्रकार यदि विषम राशि एवं दुष्ट स्थान में गुरु हो, तो कल्याण घृत आदि औषधि तथा अन्य पुत्रदायक औषधियों को अभिमन्त्रित कर सेवन करना चाहिए तथा गणनाथ होम कर्म का सम्पादन करना चाहिए।

यदि गुरु समराशि में हो, तो सन्तान प्राप्ति के लिए शंकर और माधव की सेवा तथा एक हजार ब्राह्मणों को मिष्टान्न भोजन से सन्तुष्ट करना चाहिए।

यदि विषम राशि में शुक्र हो, तो मालपुआ, सुगन्ध, द्रव्य, वाद्य एवं गीत आदि के साथ यक्ष की पूजा करनी चाहिए तथा उसके समराशि में होने पर नैवेद्य समर्पण, हवन, तर्पण एवं ब्राह्मणों को मिष्ठान भोजन कराना अपेक्षित है।

यदि विषम राशि में शनि हो, तो सर्पबलि (नागबलि) रूप कर्म सम्पन्न करने चाहिए।

सम राशि में हो, तो पुत्र प्राप्ति के लिए गीत और नृत्य तथा वह द्विस्वभाव राशि में होकर दुष्ट स्थान में हो, तो सर्पों की दो मूर्तियाँ दान में देनी चाहिए।

सन्तान तिथि प्रकर्म

यहाँ सन्तान रवि और सन्तान चन्द्रमा से तिथि का आनयन कर इससे सन्तान का विचार करना चाहिए। अब इसके प्रकारों को बतलाते हैं—

इष्टकाल की गत विघटियों में ५०० का भाग देने से प्राप्त राशि आदि को एक स्थान में मेष राशि में से घटा कर और दूसरे स्थान में धनु राशि के अर्ध में जोड़कर दोनों को पृथक्-पृथक् पाँच से गुणा करने पर सन्तान रवि और सन्तान चन्द्रमा हो जाते हैं।

इनका आरूढ़ राशि या लग्न राशि में बल के अनुसार ग्रहण करना चाहिए।

कुछ आचार्यों का मत है कि प्रश्नकालीन चन्द्रमा को पाँच से गुणा करने से सन्तान चन्द्रमा और स्पष्ट लग्न को पाँच से गुणा करने से सन्तान रवि होता है।

सन्तान सूर्य को सन्तान चन्द्रमा में से घटाने पर शेष यदि शुक्लपक्ष हो, तो सन्तान होती है और यदि कृष्ण पक्ष हो, तो कष्ट से सन्तान होती है।

इस प्रसंग में जो कुछ विशेषता है उन बातों को कहते हैं अर्थात् शुक्लपक्ष में षष्ठी से पहले विलम्ब से और दशमी के बाद में शीघ्र सन्तान होती है।

इस स्थिति में शुक्लपक्ष में विष्णु की अर्चना और कृष्ण पक्ष में शिव की आराधना करनी चाहिए। शुक्ल पक्ष में षष्ठी से पहले की तिथियों में पुत्र लाभ होता है।

षष्ठी में गुह की आराधना से और सप्तमी आदि चार तिथियों में पुनर्विवाह करना चाहिए। श्रवण नक्षत्र में पर्व के दिन भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन आदि से संतुष्ट कराने से सन्तान होती है।

तत्पश्चात् अग्रिम तिथियों में दत्तक पुत्र होता है। इस तरह पर्व (अमावस्या और पूर्णिमा) तिथि में दत्तक पुत्र भी नहीं होता है।

कुछ पितर सन्ततिनाशक होते हैं तथा प्रसन्न हो जाय, तो सन्तानदायक होते हैं। इसलिए पार्वण श्राद्ध आदि कर्मों से उन्हें प्रसन्न करना चाहिए।

प्राय: पितृकर्म (श्राद्ध) आदि न करने से मनुष्यों को सन्तान प्राप्ति में बाधा आती है अर्थात् उसका अभाव होता है।

इस प्रकार पुत्र प्राप्ति के लिए षष्ठी में कुमार, चतुर्थी में गणपति, नवमी में दुर्गा, द्वादशी में सूर्य, सप्तमी एवं पञ्चमी में नाग तथा अमावस्या में पितर देवों की पूजा करनी चाहिए।

दोनों पक्षों में रिक्ता तिथि सन्तति प्रश्न के विचार में शुभ फलदायक नहीं होती। उनमें अभिचार अर्थात् तान्त्रिक प्रयोग की सम्भावना रहती है।

शुक्लपक्ष और कृष्ण पक्ष में इसकी शान्ति के लिए पुराणों की कथा सूनना विशेष कर चतुर्थी में उत्तम माना गया है।

नवमी में अभिचार कर्ता क्रूर और चतुर्दशी में वह नीच होता है। भद्रा में सर्पों का शाप होता है।

शुक्ल और कृष्णपक्ष के भेद से यह शाप क्रम से हाल ही का या पुराना बतलाया जाना चाहिए।

प्रत्येक माह में दोनों पक्षों की चारों भद्रा तिथियों में क्रम से प्रमुख, मध्यम, नीच, एवं अति नीच नागों का शाप होता है।

इसके शान्त्यर्थ नागबलि कर्म सम्पादन करनी चाहिए। उत्तम नागों की प्रसन्नता के लिए नागरूपात्मक बलि देनी चाहिए तथा अन्यों के लिए उपरोक्तवत् बलि देनी चाहिए।

इस प्रकार पुत्र प्राप्ति हेतु अशुभ एवं बाधक कारणों से निवृत्ति रूप शान्ति कार्य सम्पतन्न करने चाहिए।

इस प्रकार सन्तान तिथियों के द्वारा जो लक्षण बतलाये गए हैं, इससे पृथक् अन्य सम्प्रदाय भी हैं। यहाँ उसे भी कहते हैं।

सन्तान तिथि का अन्य प्रकार

प्रश्नकालिक सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट राश्यादि को पृथक्-पृथक् ५ से गुणाकर फिर पञ्चगुणित चन्द्रमा में से पञ्चगुणित सूर्य घटाकर तिथि का साधन करें और तिथियों से सन्तान प्रश्न का विचार करना चाहिए।

यदि शुक्ल पक्ष हो, तो प्रारम्भ की ५ अर्थात् प्रतिपदा से पंचमी पर्यन्त की तिथियों में अल्प सन्तति, बीच की ५ अर्थात् षष्ठी से दशमी पर्यन्त की तिथियों में मध्यम सन्तति और दशमी के बाद की अर्थात् एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त की तिथियों में अनेक पुत्र होते हैं।

पुत्र आदि सन्तान की संख्या तिथि की संख्या से एक घटा कर कहनी चाहिए। कृष्णपक्ष की अमावस्या और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि से एक ही सन्तान बतलानी चाहिए।

सप्तमी में भतीजा और अष्टमी में अपने गोत्र का दत्तक पुत्र बताना चाहिए तथा नवमी तिथि प्राप्त हो, तो दोनों प्रकार के दत्तक पुत्र उपयुक्त रहते हैं।

दशमी में भानजा और एकादशी में अन्य गोत्रज दत्तक पुत्र होता है। द्वादशी में निकट सम्बन्धी सर्वस्व का अपहरण कर लेते हैं।

त्रयोदशी में सम्पत्ति देवस्व (देवता का धन) तथा चतुर्दशी में सम्पत्ति का राजा के द्वारा अपहरण होता है। अमावस्या में समस्त लोग यथेच्छ रूप से अपहरण करते हैं।

इस प्रकार सन्तान तिथियों के भेद से सन्तति प्राप्ति के लिए प्रायश्चित्त एवं शान्ति कर्म के उपाय महर्षियों ने बतलाए हैं। एतदनन्तर उन्हें कहते हैं।

शुक्लपक्ष में भद्रा और रिक्ता तिथियाँ शुभ नहीं होती। चतुर्थी में गणनाथ अर्थात् गणेश जी का होम, नवमी में दुर्गा की पूजा और चतुर्दशी में भगवान् शिव की आराधना करनी चाहिए।

यहाँ पर पूर्णिमा तिथि में देवता के मन्दिर में पुरुष सूक्त या गायत्री मन्त्र का जप या वेद का पाठ करना चाहिए और तत्पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

चन्द्रमा के उपद्रव (अशुभ प्रभाव) का शमन करते हुए नैमिशीय (पुराण) का श्रवण करना चाहिए यदि पूर्णमासी तिथि हो।

यदि कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि हो, तो सन्तान गोपाल का मन्त्र और गायों की सेवा आदि कार्य करना चाहिए।

यदि कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि हो, तो पञ्चगव्य एवं घृत आदि से उनकी पूजा करनी चाहिए।

यदि तृतीया हो, तो दुर्गा की पूजा और चतुर्थी हो, तो घृत, गुग्गुल एवं मधु से गणनाथ होम कर्म करना चाहिए।

पञ्चमी में इष्टदेव की आराधना और कृष्णपक्ष की षष्ठी में गुह की साधना करनी चाहिए।

सप्तमी में शिव और विष्णु का भजन और अष्टमी में नागों की पूजा करनी चाहिए।

कृष्णपक्ष की नवमी में १००० ब्राह्मणों को भोजन और दशमी में गणनाथ का होम कर्म कराना चाहिए।

यदि एकादशी हो, तो आमलक आदि क्षेत्रों में पिण्डदान करना चाहिए।

द्वादशी तिथि और श्रवण नक्षत्र में ब्राह्मणों को अन्नदान और त्रयोदशी में पुत्र प्राप्ति के लिए विधिवत् 'जया' नामक बलि करनी चाहिए।

यदि चतुर्दशी हो, तो सोमवार को ब्राह्मण भोजन और पुण्यक्षेत्र में पिण्डदान करना चाहिए।

अमावस्या में अष्टक और पार्वण श्राद्ध करने चाहिए तथा इसी प्रकार कृष्णपक्ष की प्रतिपदा आदि तिथियों में तिलों की आहुति से हवन करना चाहिए।

इस प्रकार प्रश्न एवं जातक शास्त्र में सन्तान तथा गुरु आदि के द्वारा सुचिन्तित कुछ अन्य सम्प्रदायोक्त विषयों को भी यहाँ लिखते हैं।

यहाँ पञ्च गुणित और यमकण्टक से युक्त गुरु कष्ट से पुत्रोत्पत्ति करने वाला होता है।

सन्तान गुरु का नवांश यदि शुक्र से दृष्ट या युक्त हो या इसका स्वामी शुक्र के नक्षत्र में हो, तो ये तीनों योग पुनर्विवाहकारक होते हैं।

इस प्रसंग में पञ्चगुणित शुक्र ग्रहण करने की परम्परा है, केवल शुक्र नहीं। शुक्र से दृष्ट या युत ग्रहों की संख्या के अनुसार विवाह की संख्या से अर्थात् शुक्र की राशि और नवांश को देखने वाले सप्तमस्थ ग्रह के बलाबल का विचार पहले, दूसरे या अन्य विवाह से पुत्र प्राप्ति कहना चाहिए।

यदि सन्तान शुक्र का नवांश नपुंसक ग्रह का हो या नपुंसक ग्रह से दृष्ट अथवा युत हो, तो तीसरें विवाह से पुत्र की प्राप्ति कहनी चाहिए।

सन्तति संख्या

सन्तान गुरु में यमकण्टक जोड़ने से प्राप्त संख्या को ९ से गुणा करने से स्पष्ट सन्तान योग होता है। इससे ही अब सन्तान संख्या बतलाये जाते हैं।

इस स्पष्ट सन्तान योग के भुक्त प्रति ५ अंशों से अंश संख्या के तुल्य पुत्रों की संख्या बतलानी चाहिए। इन वर्गों में से यदि तीन गुरु के हों, तो ६ से अधिक पुत्र होते हैं।

उपरोक्त स्पष्ट सन्तान योग के द्रेष्काण का स्वामी नीच या शत्रु राशिगत हो और इसके स्पष्ट में उतने पाँच अंशों के वर्ग हों जितने स्पष्ट सन्तान योग के हों, तो उतनी संख्या वाला पुत्र मर जाता है। वृष, सिंह, वृश्चिक और कन्या में स्पष्ट सन्तान योग होने पर सन्तान नहीं होती।

यदि स्पष्ट सन्तान योग के वर्गों में तीन नपुंसक ग्रह सम्बन्धी हों, तो जुडवाँ बच्चे होते हैं। उनकी मृत्यु का निश्चय बल के अनुसार करना चाहिए।

दत्तक सन्तान हानि

शनि, बुध और पञ्चमेश के स्पष्ट राश्यादि को जोड़कर ५ से गुणा करना चाहिए।

इस स्फुट राश्यादि में ९ दोषों में से कोई भी हो, तो दत्तक सन्तान स्वीकार करने से भी उस सन्तान की हानि हो जाती है।

अत: अभिप्राय इस प्रकार अभिव्यक्त हो सकता है कि शनि, बुध और पञ्चमेश का योग पञ्चगुणित होने पर 'दत्तकस्फुट के रूप में उसे मानकर उपरोक्त विष, उष्ण, लाट आदि ९ दोष होने पर उपरोक्त की तरह फल कहा जाना चाहिए।

सन्तान प्राप्तिकाल

इस प्रकार सन्तान गुरु के स्थान से त्रिकोण स्थानों में गोचर क्रम से भ्रमणशील गुरु पुत्रप्रद होता है।

ऐसा तभी होता है, जब मेषादि ६ राशियों में गुलिक हो और यदि वह तुलादि ६ राशियों में हो, तो सन्तान बृहस्पति के नवांश से त्रिकोण में गुरु के स्थित रहने पर सन्तान होती है।

यमकण्टक और गुलिक के योग के नवांश राशि से पुत्र एवं कन्या के प्रकार का विचार कर लेना चाहिए।

विषम या समराशि में विषम नवांश पुत्र तथा समनवांश कन्या को उत्पन्न करने वाला होता है। यहाँ नवांश की प्रधानता जाननी चाहिए।

इस तरह सन्तान गुरु, यमकण्टक और सन्तान गुलिक इन तीनों को जोड़कर ८१ से गुणा कर उस योग से प्राप्त नक्षत्र और नवांश से त्रिकोण में चन्द्र होने पर पुत्रजन्म कहना चाहिए।

इस प्रकार अनेक रीतियों से पुत्रहानि, सन्तान का अभाव, आदि बातों की सन्तान तिथि आदि उपरोक्त पद्धति से विचार कर दोष के अनुसार प्रश्नकर्ता को यथायोग्य प्रायश्चित बतलाना चाहिए।

दत्तक का ग्रहण, पुनर्विवाह या उत्तराधिकारी का लक्षण आदि तात्कालिक गुरु, सूर्य एवं चन्द्रमा की राशि से बतलाने चाहिए।

यदि गर्भ हो, तो उस स्थिति में पुत्र एवं कन्या के भेद का भली-भाँति चिन्तन कर निश्चयपूर्वक फल कथन करना चाहिए।

स्थिति भेद से विभिन्न सम्प्रदायों के अनुरूप विस्तारपूर्वक इस सन्तान प्रश्न का विचार मैंने (ग्रन्थकार) अन्यान्य ग्रन्थों के अनुसार किया है।



जन्मकुण्डलीवश सन्तान ज्ञान

सन्तान का अभाव या न होना, उस सन्तान की प्राप्ति और उसका प्राप्ति का काल आदि का आगे जन्मकालीन ग्रहों अर्थात् जन्मकुण्डली के अनुसार विचार करते हैं।

सन्तान होगी या नहीं?

यदि स्त्री जन्म कुण्डली में लग्न से सप्तम भाव पर ग्रहों की दृष्टि हो और अनुपचय स्थान में चन्द्रमा स्थित हो, तो पुत्र होते हैं।

इसी तरह पुरुष की जन्म कुण्डली में उपचय स्थान में स्थित चन्द्रमा यदि बलवान् ग्रह से दृष्ट या शुभग्रह से युक्त हो, तो कभी सुखपूर्वक और कभी कष्ट से (बाधा या विलम्ब से) सन्तान होती है।

वर-वधू के उपरोक्त स्थानों से अन्यत्र यदि चन्द्रमा हो और उक्त ग्रहों से न देखे जाते हों, तो निश्चित रूप से पुत्र नहीं होता।

रक्त और वीर्य विकार से पुत्राभाव

पुरुषों में शुक्राणुओं की कमी या अभाव हो तथा स्त्रियों के गर्भाशय में विकार आदि दुर्बलता हो, तो पुत्र (सन्तान) का अभाव होता है।

अत: अब इन दोनों बातों का विचार किया जा रहा है।

वीर्य की क्षमता और स्थिति

सूर्य से वीर्य की गर्भाधान में समर्थता और शुक्र से वीर्य की स्थिति का विचार करना चाहिए।

यदि वे दोनों अर्थात् सूर्य और शुक्र बलवान् अर्थात् अनुकूल हों तथा पुरुष राशि या उसके नवांश में स्थित हों, तो मनुष्यों को सन्तान रूप पुत्र की प्राप्ति होती है।

रक्त के गुण व शक्ति

तत्पश्चात् स्त्रियों के रक्त गुण का मंगल से और गर्भधारण करने की शक्ति का चन्द्रमा से विचार करना चाहिए।

यदि वे दोनों पृथक्-पृथक् सम संख्यक राशि युक्त भाव में बलवान् हों, तो साधारण रूप से रतिकाल में गर्भाधान हो जाता है और इन दोनों का व्यत्यय होने पर अर्थात् एक सम और दूसरा विषम राशि युक्त भाव में हो, तो गर्भाधान नहीं होता।

गुरु के अधिष्ठित नक्षत्र की गत घटियों में ५ का भाग देने से लब्धि राशि

और शेष को ३० से गुणा कर ५ का भाग देने से अंश तथा पुनः शेष को ६० से गुणाकर ५ का भाग देने से कला आदि सब का विधिवत् साधन कर दो स्थानों पर रखना चाहिए।

इस प्रकार सूर्य एवं शुक्र के नक्षत्र से भी साधित उस फल को उपरोक्त फल में जोड़ देना चाहिए, इस तरह वह बीज होता है तथा उसे मंगल एवं चन्द्रमा की राशि में जोड़ने से स्पष्ट क्षेत्र होता है।

यदि उपरोक्त बीज स्फुट विषम राशि और विषम नवांशों में स्थित तथा शुभ ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट भी हों, तो वीर्य में बलवत्ता (जनन शक्ति) होती है, अन्यथा वीर्य को क्षीण समझना चाहिए।

यदि वे समराशि और समराशि के नवांश में स्थित तथा शुक्र एवं शुभ ग्रहों से दृष्ट हों, तो 'क्षेत्र' (गर्भाशय) बलवान् (गर्भ धारण करने योग्य) होता है, अन्यथा नहीं।

सन्तति बाधक का कारण

इस प्रकार शुभ ग्रहों के वर्ग में उनकी क्षेत्र अथवा क्षेत्र स्फुटों की स्थिति भी बीज और क्षेत्र के लिए इष्ट (शुभ) होती है तथा पापग्रहों के वर्ग में उनकी स्थिति नेष्ट होती है। यदि राहु के वर्ग में हो, तो सर्पों की बाधा, गुलिक के वर्ग में हो, तो प्रेत बाधा, शनि के वर्ग में हो, तो पूर्वकृत पाप प्रभाव और मंगल के वर्ग में हो, तो पुत्र के जन्म में भैरव एवं चामुण्डा आदि बाधक होते हैं।

क्षेत्र और बीज निरूपण पद्धति

जन्म काल में प्राप्त ग्रह स्थिति के अनुरूप पुरुषों के 'बीज' एवं स्त्रियों के क्षेत्र का उपरोक्त पद्धति से विचार करना चाहिए। प्रश्नकुण्डली में विचार करने की विधि अन्य प्रकार से कही गयी है, जिसमें पाँच स्पष्ट ग्रहों के प्रयोग की विधि दी गई है।

इस प्रकार बीज और क्षेत्र का विचार करना चाहिए। यहाँ कुछ आचार्यों ने इसका विचार अन्य पद्धति से भी किया है। यहाँ पर उस पद्धति को भी अब लिखते हैं। इसके अनुसार भी विचार करना चाहिए।

क्षेत्र और बीज की शुभत्वाशुभत्व

इस तरह गुरु की स्पष्ट राश्यादि में एक स्थान पर सूर्य और शुक्र तथा दूसरे स्थान पर चन्द्रमा और मंगल के स्पष्ट राश्यादिकों को जोड़ना चाहिए।

इस प्रकार क्रमशः पुरुषों का बीज एवं स्त्रियों का क्षेत्र होता है।

विषम एवं सम राशि तथा उसके नवांश में यथा क्रम से स्थित बीज और क्षेत्र पर नपुंसक और पापग्रह की दृष्टि हो, तो वह नेष्ट होती है तथा बीज से पञ्चम

और नवम भाव पर भी उपरोक्त ग्रहों की स्थिति नेष्ट होती है; किन्तु उपरोक्त बीज एवं क्षेत्र पर शुभ ग्रहों की दृष्टि शुभ फलदायक होती है।

सन्तान प्राप्ति काल

इस प्रकार बीज और क्षेत्र के निर्बल होने पर सन्तान नहीं होती और इन दोनों के बलवान् होने पर सन्तान होती है।

यदि पञ्च स्फुटों की युति का स्थान केन्द्र या त्रिकोण हो, तो वय के प्रथम भाग में, यदि उनकी युति पणफर स्थान में हो, तो वय के मध्य भाग में और यदि उनकी युति आपोक्लिम स्थान में हो, तो वय के अन्तिम भाग में सन्तान होती है। इस पद्धति से मनुष्य के सन्तान होने का समय जानना चाहिए।

क्षेत्र व बीज की दुर्बलता और उसका निदान

यदि बीज और क्षेत्र दुर्बल हो, तो भी शुभ ग्रहों की दृष्टि के फलस्वरूप प्रायश्चित्त, जप, होम, औषधि आदि करने से सन्तान होती है। इस दुर्बलता का निज और बाह्य दो भेदों में निदान कहा गया है। वहाँ पित्त, कफादि विकार ''निज'' श्रेणी में है। उनके लिए विद्वान् को चिकित्सा बतलानी चाहिए।

जो पाप जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित किया गया है, वह भी रोग के रूप में मनुष्य को प्राप्त होता है। उसकी शान्ति श्रेष्ठ मुनियों ने जप, होम, दान एवं औषधि से बतलायी है।

राक्षस, पिशाच आदि प्रकार की पीड़ाओं और ब्राह्मण, देवताओं आदि के शाप आदि को बाह्य प्रकार के निदान से मुक्त होने का विधान बताया गया है। जिनको जानकर अपने कर्म को ध्यान देकर करना चाहिए।

सन्तान त्रिस्फुट

इस प्रकार सन्तान का विचार 'सन्तान ग्रहों' से भी करना चाहिए। यहाँ सन्तान ग्रह जानने के दो प्रकार पूर्व में कहा गया है लेकिन यहाँ पञ्च गुणित ग्रह को ही प्रामाणिक सन्तान ग्रह मानते हैं।

सूर्य स्पष्ट, चन्द्र स्पष्ट व गुरु स्पष्ट को जोड़कर पाँच से गुणा करने से सन्तानत्रिस्फुट होता है।

(१) यह त्रिस्फुट यदि जन्म नक्षत्र से तीसरा, पाँचवा या सातवाँ नक्षत्र में पड़े।

अथवा (२) यदि पति या पत्नी के जन्म लग्न से छठे, आठवें या बारहवें स्थानों में पड़े, तो व्यक्ति को सन्तान लाभ नहीं होता।

यदि पति-पत्नी में से किसी एक की कुण्डली में त्रिस्फुट इस प्रकार हो, तो शान्ति उपायों से सन्तान सम्भव होता है।

पुत्र और कन्या मृत्यु योग

यदि सन्तानत्रिस्फुट से सम्बन्धित अनिष्ट नक्षत्र पुत्र या पुरुष संज्ञक नक्षत्र हो, तो पुत्र की मृत्यु होती है और यदि वह स्त्री संज्ञक नक्षत्र हो, तो कन्या की मृत्यु होती है।

यदि मंगल और शनि केन्द्र में हों, तो पुत्र का जन्म ही नहीं होता।

यदि सन्तान त्रिस्फुट से केन्द्र में सूर्य हो, तो पुत्र होता है।

यदि वहाँ चन्द्र हो, तो दूसरी स्त्री से सन्तान होती है।

यदि वहाँ सूर्य और चन्द्र दोनों हों, तो पुनः विवाह होता है, किन्तु प्रथम विवाहिता पत्नी से पुत्र होता है।

यदि सन्तान त्रिस्फुट से केन्द्र में गुरु हो, तो तीसरे विवाह से तथा शुक्र हो, तो चौथे विवाह से सन्तान होती है।

त्रिस्फुट से पाँचवें या सातवें स्थान में शनि हो, तो पितरदेवों का शाप तथा इन स्थानों में राहु हो, तो सर्पों का शाप कहा जाना चाहिए। इस प्रकार बुद्धिमान् दैवज्ञ को इन सभी बातों का विचार करना चाहिए।

पूर्व में कहा गया 'स्फुट' नक्षत्र के साथ शनि युति से पुत्राभाव में पुत्र प्राप्ति के लिए कुछ प्रायश्चित्त होते हैं, जिसे अब कहते हैं।

सन्तानार्थ प्रायश्चित

यदि सन्तान त्रिस्फुट धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी और कृत्तिका तक आठ नक्षत्रों में से किसी पर भी स्थित हो, तो दुर्गा का पूजन तथा अगले चार नक्षत्रों अर्थात् रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा और पुनर्वसु में से किसी नक्षत्र पर हो, तो गणहोम करना चाहिए।

इसी तरह पुनर्वसु से अगले सात नक्षत्रों पर सर्प बलि करनी चाहिए और सभी शेष नक्षत्रों पर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

वंशनाश योग

(१) पापग्रह चतुर्थ में, शुक्र सप्तम स्थानमें और चन्द्रमा दशम भाव में हो अथवा (२) सभी पापग्रह व्यय, लग्न, पञ्चम एवं अष्टम स्थानों में हों अथवा (३) क्रूर ग्रह चतुर्थ में, शुक्र और बुध सप्तम में तथा गुरु पञ्चम स्थान में हो, तो वंश का विनाश करने वाले इन तीन योगों को उपरोक्त में बतलाया गया है।

सन्तान अभाव योग

इस प्रकार पुत्र स्थान पाप ग्रहों से दृष्ट और शुभग्रहों की दृष्टि से रहित हो। इस भाव में सर्वाष्टक वर्ग की संख्या ५० से कम हो।

वृष आदि सम राशियों में से कोई राशि पञ्चम स्थान में हो या जन्म नक्षत्र का स्वामी पञ्चम स्थान में हो, तो इन चार प्रकार के योगों में निश्चित रूप से सन्तान का अभाव कहना चाहिए।

सन्तान प्रतिबन्धक कारण

विद्वानों ने स्त्री के उदर विकार की स्थिति में सन्तान का प्रतिबन्धक योग कहा है और स्त्रियों के उपरोक्त दो दोष हों, तो नीच देवता की पीड़ा भी सन्तान प्राप्ति में बाधाकारक होती है।

यदि इन दोषों में से दो दोष हों, तो सन्तान की प्राप्ति के लिए शान्ति के उपाय करने पर कन्या की प्राप्ति हो सकती है।

यदि तीन दोष हों, तो उपाय से भी सन्तान प्राप्त नहीं होती

पुत्र का अभाव योग

(१) यदि लग्नेश, पञ्चमेश, गुरु एवं सप्तमेश, ये सब अधिकतर दुर्बल हों।

(२) यदि लग्न से, चन्द्र से तथा गुरु से पञ्चम भाव तीनों शुभ ग्रहों की दृष्टि से रहित और पापग्रहों से युक्त हो।

(३) शुभ ग्रहों की दृष्टि से रहित और पाप ग्रहों से युक्त पञ्चम स्थान को बलवान् पापी ग्रह देखते भी हों।

जिस व्यक्ति की कुण्डली में इन उपरोक्त तीन योगों में से कोई एक भी योग हो, तो वह पुत्र रहित होता है।

पुत्राभाव योग

पञ्चम भाव में पापग्रह हो, नीच राशि में स्थित पञ्चमेश पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो, शुक्र और चन्द्रमा यदि एक स्थान में हो या सप्तम स्थान में मंगल हो, तो पुत्र नहीं होता।

क्षीण चन्द्रमा पञ्चम स्थान में और पापग्रह सप्तम स्थान एवं लग्न में हों, जिसके जन्म के समय यह योग हो वह पुत्र एवं पत्नी से रहित होता है।

सप्तम, पञ्चम, लग्न, जन्मराशिस्वामी और गुरु की निर्बलता; ये पाँच तथा यमकण्टक की अष्टम, षष्ठ एवं द्वादश स्थान में स्थिति, पापग्रहों से दृष्ट या युक्त पंचम स्थान, नपुंसक योग, कृष्णपक्ष की अष्टमी के बाद की तिथियाँ और जीवाष्टक वर्ग में पापी ग्रहों का प्रभाव; ये सभी सन्तान सम्बन्धी प्रश्न के प्रसङ्ग में दोष होते हैं।

सप्तमेश आदि की प्रबलता, लाभ स्थान एवं केन्द्र आदि स्थानों में इसकी स्थिति, पञ्चम स्थान शुभ ग्रहों से दृष्ट या युत, गुरु के अष्टक वर्ग में शुभ ग्रहों का प्रभाव और सन्तान तिथियों का शुभ होना सन्तान सम्बन्धी प्रश्न के प्रसङ्ग में गुण होते हैं।

उपरोक्त सभी दोषों के स्थित रहने पर निश्चित रूप से दत्तक पुत्र भी नहीं सम्भव होता और गुण तथा दोष दोनों की स्थिति रहने पर सत्कर्म करने से शान्ति हो जाती है।

जातक शास्त्र में सन्तान तिथियों से भी सन्तान का विचार करना चाहिए; ऐसा आप्त अर्थात् ऋषि-मुनियों से सिद्ध वचन है। अब उस पद्धति को भी कहते हैं।

सन्तान तिथि

सूर्योदय के समय से सूर्य मेषान्त से विलोम या अवरोह क्रम से ५०-५० पलों में १-१ राशि का तथा धनु राशि के पूर्वार्द्ध बाद (मध्य) से २५-२५ पलों में सीधी गति से चन्द्रमा १-१ अंश में विचरण करता है।

इस प्रकार प्रश्नकालिक सूर्य और चन्द्रमा के इष्टकालिक अंश आदि का साधन करना चाहिए।

फिर इन दोनों के अंशादि को पाँच से गुणा कर ६० से भाग देना चाहिए।

इस प्रकार से सन्तान कारक सूर्य और सन्तान चन्द्रमा का साधन कर फिर सन्तान चन्द्रमा में से सन्तान सूर्य घटाकर तिथि को लाकर देखें कि तिथि यदि शुक्लपक्ष की है, तो वह पुत्रदायक कहनी चाहिए।

पूर्वोक्त प्रकार से सन्तान चन्द्रमा और सन्तान सूर्य के अन्तर से कृष्णपक्ष की तिथि होने पर दत्तक आदि पुत्र होता है।

इस प्रकार जन्मकालीन या प्रश्नकालीन समय से पूछने वाले को बतलाना चाहिए।

पुत्र दर्शन पूर्व-पश्चात् पिता मृत्यु

इस प्रकार क्षीण चन्द्रमा के लग्न में, सूर्य के प्रकाश द्वारा रश्मिहीन बृहस्पति के शनि की राशि में तथा पाप ग्रहों के त्रिकोण स्थान में स्थित होने पर पुरुष की मृत्यु पुत्र का मुख देखे जाने के पूर्व ही हो जाती है।

पञ्चम भाव में बुध , चतुर्थ अथवा लग्नस्थ धनु राशि तथा नवम और पञ्चम स्थान में अशुभ ग्रह के होने पर पिता पुत्र को देखता तो है; परन्तु देखकर जल्द ही मर जाता है।

वृद्धावस्था में पुत्रयोग

(१) लग्नस्थ मंगल, अष्टमस्थ चन्द्रमा और अल्प प्रजा संज्ञक अर्थात् वृष, सिंह, कन्या व वृश्चिक राशि में सूर्य स्थित हो।

अथवा (२) अष्टम स्थानस्थ गुरु, द्वादश स्थानगत मंगल, नवांशस्थ शनि और पञ्चम स्थान में अल्पप्रजासंज्ञक राशि स्थित हो।

अथवा (३) गुरु और पञ्चम भाव पापयुक्त हों, लग्न में कई ग्रह स्थित हों और चन्द्रमा लाभ स्थान में स्थित हो।

इस प्रकार उपरोक्त तीनों योगों में मनुष्यों को वृद्धावस्था में पुत्र की प्राप्ति होना, कहा गया है।

पुत्रजन्मपूर्व पिता मृत्यु योग

यदि क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो व अस्तंगत बृहस्पति शनि की राशि में हो और सभी पाप ग्रह त्रिकोण में हो, तो पुत्र को देखने से पहले ही व्यक्ति की मृत्यु होती है।

यदि बुध पाँचवें भाव में हो, लग्न या चतुर्थ में पाप ग्रह हो तथा पञ्चम और नवम स्थान में भी पापग्रह हो, तो वह व्यक्ति पुत्र का मुख नहीं देखता।

पुत्रमृत्यु योग

पाप ग्रह पञ्चम स्थान में स्वराशि को छोड़कर अन्य राशियों में स्थित हों तथा बलवान् शुभ ग्रहों से दृष्ट न हों, तो पुत्र के लिए मृत्युदायक होते हैं।

यदि स्वराशि मुक्त पञ्चमस्थ पापग्रह अष्टम स्थान के स्वामी भी हों, तो क्या कहना है और ऐसा मंगल उत्पन्न होने वाले प्रत्येक (सभी) पुत्र को मार डालता है और वह गुरु से दृष्ट हो, तो केवल पहले पुत्र को मारता है।

इस प्रकार मंगल के फल में भेद की कल्पना कर लेनी चाहिए। पञ्चम स्थान में मीन राशि में स्थित बृहस्पति यदि शनि से दृष्ट हो, तो पुत्र को मारता है।

यदि पञ्चमेश पाप ग्रहों के नवांश में हो और शुभ ग्रहों का साथ भी न हो तथा पापग्रहों से दृष्ट या दुःस्थान अर्थात् छठे, आठवें एवं बारहवें स्थान में हो, तो पुत्रनाश कहना चाहिए।

पञ्चमेश, व्ययेश से युक्त नवांश के स्वामी के द्रेष्काण के स्वामी के साथ हो अथवा उससे दृष्ट हो, तो पुत्र को पीड़ा विद्वानों द्वारा कही जाती है।

पुत्र पीड़ा योग

यदि पञ्चमेश दुःस्थान और क्रूर षष्ठ्यंश में हो तथा क्रूरग्रह से युक्त या दृष्ट हो, तो आचार्यजन पुत्र को पीड़ा बतलाते हैं।

दत्तक पुत्र योग

सन्तान और गुरु लग्न, इनमें से जो बलवान् हो उससे या इनसे पञ्चम स्थान में शनि या बुध की राशि हो और वहाँ शनि या बुध की दृष्टि अथवा युति हो या वहाँ चन्द्रमा की दृष्टि अथवा युति हो, तो दत्तक पुत्र होता है।

यदि पञ्चम भाव बलवान् हो, तो पुत्र उत्पन्न होता है। यहाँ पाँच से गुणित लग्न 'सन्तान लग्न' होती है।

यदि शनि के नवांश में बुध और चन्द्रमा के साथ पञ्चमेश हो, तो मनुष्यों को दत्तक पुत्र होता है।

यदि जन्मकुण्डली में पञ्चमेश शनि के नवांश में स्थित हो और शुक्र एवं गुरु स्वराशि में हों, तो दत्तक पुत्र होता है।

गुरु के अष्टक वर्ग में और उससे पञ्चम स्थान में शनि का नवांश, उसकी स्थिति, दृष्टि आदि से भी दत्तक पुत्र होता है।

पूर्णबली शुभ ग्रह भी पञ्चम स्थान में हो; परन्तु यदि वह पञ्चमेश से दृष्ट न हो, तो दत्तक पुत्रदायक होता है।

पुत्र भावस्थ ग्रह सम्बन्धी विशिष्ट फल

यदि पञ्चम स्थान में कर्कराशि में शनि हो, तो मनुष्यों के कई पुत्र होते हैं।

इसी प्रकार इस पञ्चम स्थान में स्थित शुक्र, सूर्य एवं मंगल दो पत्नी वाले व्यक्तियों के लिए पुत्रदायक होते हैं।

इस स्थान में स्थित चन्द्रमा और गुरु अल्प पुत्र और अधिक कन्या पैदा करते हैं तथा वहाँ कर्क राशि में स्थित बुध कठिनाई से एक पुत्र देने वाला कहा गया है।

इस प्रकार पञ्चम स्थान में स्थित ग्रहों का विशेष फल जानना चहिए।

यदि पञ्चम स्थान में स्वराशि में पापग्रह हों, तो पुत्र होकर नाश को प्राप्त हो जाते हैं और यदि इस स्थान में स्वराशि में शुभग्रह हो, तो पुत्र कम होते हैं। पञ्चम भाव में वृश्चिक, सिंह, वृष, और कन्या राशि हो, तो भी पुत्र कम होते हैं।

इसी प्रकार वृष, कन्या, सिंह एवं वृश्चिक राशि में चन्द्रमा हो, तो पुत्र कम होते हैं। कन्या में चन्द्रमा पञ्चम या चतुर्थ स्थान में हो, तो कन्याओं की अधिकता समझनी चाहिए।

जिसकी जन्म कुण्डली में पञ्चम स्थान शुभ ग्रहों से दृष्ट या युत हो अथवा उसमें शुभग्रह की राशि हो, उन लोगों को सन्तान होती है।

इसके विपरीत पञ्चम स्थान पर पापग्रहों की दृष्टि या युति या पापग्रह की राशि हो, तो सन्तान का अभाव रहता है।

जिनके लग्न, चन्द्रमा एवं गुरु से पञ्चम स्थान में शुभग्रह हो, तो उनके अपने आत्मजों द्वारा गुणों के उत्कर्ष की अभिवृद्धि होती है।

पुत्रसंख्या

स्पष्ट पञ्चम भाव की राशि को छोड़कर अंश आदि की कला बनाना चाहिए। शुभ अथवा अशुभ सभी ग्रहों की उपरोक्त पञ्चम भाव पर षष्टि अंशात्मक दृष्टि की मात्रा निकाल सभी दृष्टियों का योग कर लेना चाहिए।

इस प्रकार पञ्चम भाव की कला को दृष्टियोग से गुणा कर जो उत्तर आये उसको ६० तथा २०० से विभक्त करने पर जो उत्तर आये वह होने वाली सन्तान की कुल संख्या होती है।

विशेष—षष्टि अंशात्मक दृष्टि निकलने की विधि हमारी केशवी जातक पद्धति ग्रन्थ में देख लेनी चाहिए।

इसी प्रकार द्रष्टा पापग्रहों की षष्टि अंशात्मक दृष्टि से उपरोक्त पञ्चम भाव की कलाओं को गुणा कर ६० तथा २०० का भाग देना चाहिए।

यहाँ लब्धि की संख्या के समान पुत्रों का क्षय होता है, ऐसा आप्तजनों ने कहा है।

पञ्चमेश के भुक्त नवांशों की संख्या के तुल्य सन्तान होती है। उक्त नवांशों में जितने पुरुष ग्रहों के नवांश हों उतने ही पुत्र और जितनी स्त्री ग्रहों के नवांश हों उतनी कन्याएँ होती हैं।

सन्तान मृत्यु

यदि पुरुष ग्रह समराशियों में हों, तो पुत्र की मृत्यु होती है और यदि स्त्री ग्रह विषम राशियों में हों, तो कन्याओं की मृत्यु होती है। यहाँ नवांश के स्वामियों के बल का भी अवश्य विचार कर लेना चाहिए।

यदि उपरोक्त नवांशाधिपति नीच राशिगत या अस्तंगत या शत्रु राशिगत हो अथवा बलहीन हो, मन्द किरणों वाले हों, तो सन्तान की अल्पायु करते हैं।

गुरु के अष्टकवर्ग में उससे पञ्चम भाव में जितने बिन्दु हों, उनमें से मन्दरश्मि, शत्रुराशिगत, अस्तंगत एवं नीच राशिगत ग्रहों की संख्या के बिन्दुओं की संख्या घटाकर जो संख्या बचे उतने बच्चे होते हैं।

उच्च आदि राशि में हो, तो इस संख्या (निर्धारित) से गुणा करना चाहिए। पुरुष और स्त्री संज्ञक ग्रह क्रमशः पुत्र एवं स्त्रीकारक कहे गये हैं।

विशेष—ग्रह के उच्च होने पर तीन संख्या लेनी चाहिए अर्थात् एक के स्थान पर तीन।

पञ्चमेश एवं गुरु की रश्मियों से भी पुत्रों की संख्या का ज्ञान किया जाता है। गुरु प्रोक्त रीति से उसके आनयन का प्रकार बतलाते हैं।

रश्मिसाधन

सूर्य की १०, चन्द्रमा की ९, गुरु की ७, शुक्र की ८, मंगल, शनि एवं बुध की ५-५ अधिकतम रश्मियाँ होती हैं।

ग्रह में से उसका नीच घटाने पर जो शेष हो, उसे और यदि शेष ६ राशियों से अधिक हो, तो उसे १२ राशि में से घटाकर जो शेष हो, उसे अपनी रश्मि संख्या से गुणाकर ६ का भाग देना चाहिए।

इस प्रकार यहाँ प्राप्त रश्मियों में वक्रता एवं अस्तंगतता के अनुसार वृद्धि एवं क्षय करना चाहिए।

यदि ग्रह वक्री अथवा उच्च हो, तो उसकी रश्मि संख्या को त्रिगुणित और जो अपने अथवा मित्र के नवांश में स्थित हो उनकी रश्मि संख्या को द्विगुणित तथा जो नीच अथवा शत्रु नवांश में स्थित हों उनकी रश्मियों का सोलहवाँ भाग ग्रहण करना चाहिए और ग्रह के अस्त होने पर सब रश्मि संख्या का त्याग एवं यहाँ शनि-शुक्र की आधी रश्मि संख्या का त्याग करना चाहिए।

यह विचार पञ्चम भाव से अथवा गुरु से, जो भी अधिक बलवान् हो, करना चाहिए। उन रश्मियों की संख्या के समान सन्तान होती है।

पञ्चमेश के बलवान् होने पर उपरोक्त विधि से साधित सन्तान की संख्या में जो अधिक हो उसे ग्रहण करना चाहिए और पञ्चमेश के बलहीन होने पर जो न्यून हो, उस संख्या का ग्रहण करना चाहिए।

पुत्रोत्पत्ति समय विचार

पञ्चम भाव या लग्नेश के समीप पञ्चमेश हो, तो युवावस्था के प्रारम्भ में पुत्र का जन्म होता है।

यदि यह इनसे दूर हो, तो युवावस्था के अन्त में पुत्र पैदा होता है। पञ्चमेश केन्द्र, पणफर तथा आपोक्लिम में हो, तो पुत्र जन्म क्रमशः युवावस्था, मध्यमावस्था तथा वृद्धावस्था में होता है।

लग्नेश, पञ्चमेश एवं गुरु, इन तीनों में से दो के नवांश के स्वामी, सप्तमेश, पञ्चम स्थान को देखने वाले और पञ्चम स्थान में स्थित ग्रहों की जब महादशा या अन्तर्दशा चल रही हो उस समय में मनुष्यों को पुत्र का जन्म बतलाना चाहिए।

पञ्चमेश अधिष्ठित राशि, उसके नवांश की राशि, गुलिक अधिष्ठित राशि,

उसके नवांश की राशि तथा त्रिकोण की राशि अष्टक वर्ग में इन ग्रहों तथा गुरु द्वारा अधिक बिन्दु पाने वाली राशि पर गोचरीय क्रम से विचरण करता हुआ गुरु पुत्रदायक होता है।

यहाँ पञ्चमेश का विचार चन्द्रमा, लग्न और गुरु तीनों से करना चाहिए।

जब गुरु, पञ्चमेश, लग्नेश तथा चन्द्रमा की अधिष्ठित राशि का स्वामी गोचरक्रम से संचार करते हुए पञ्चम भाव पर से अथवा पञ्चमेश पर से अथवा इनसे त्रिकोण स्थान में से संचरित हो अथवा जब सप्तमेश, लग्नेश एवं पञ्चमेश इन तीनों का गोचर में कहीं योग हो तो मनुष्यों को सन्तान प्राप्ति होती है; ऐसा शास्त्रज्ञों द्वारा कहा गया है।

अष्टक वर्ग में गुरु के स्थान से पञ्चम भाव में बिन्दु प्रदान करने वाले ग्रह की राशि और नवांश में से जो बलवान् हो उस पर गोचरवश चन्द्र के आने पर सन्तान होती है।

ग्रह के प्रथम द्रेष्काण में होने से इन पर से, द्वितीय द्रेष्काण होने में इनसे पञ्चम और तृतीय द्रेष्काण में होने पर इनसे नवम पर चन्द्र के आने पर सन्तान होती है।

बिन्दु के स्वामी ग्रह की कलाओं को १३५ से गुणा कर १८०० का भाग दें तो नक्षत्र और उसकी घड़ियाँ प्राप्त होंगी जिनके अनन्तर जन्म होगा।

यहाँ चन्द्र की स्थिति तो पहले से ही ज्ञात होती है।

पञ्चम भाव में स्थित ग्रह, उस पर दृष्टि डालने वाला ग्रह और अभिमत भाव में स्थित अथवा अन्य किसी पुत्रदायक ग्रह के अनुसार पुत्रोत्पत्ति की कल्पना करें।

उन योगकारक ग्रहों के नवांश और राशि से त्रिकोण में चन्द्रमा के होने पर भी पुत्र होता है।

इस प्रकार द्वादश भावों का विचार करते समय जिन दोष और गुणों को बतलाया गया है, इस सन्तान भाव का विचार करते समय भी उन सब का ध्यान रखना चाहिए।

प्रधान पुत्र भाव

पुत्र का मुख देखने से मनुष्य पितृ-ऋण रूप पाश बन्धन से मुक्त हो जाता है और वही पुत्र उसका श्राद्ध आदि भी करता है।

अतएव अन्य भावों की तुलना में पुत्र (पञ्चम) भाव की प्रधानता आचार्यों ने मानी है।

सप्तम भाव निरूपण

प्रत्येक प्रश्न के फल का निर्णय प्रश्नशास्त्र एवं जातकशास्त्र की एकवाक्यता से ही सम्भव होता है।

इसलिए अब जातकशास्त्र के अनुसार सप्तम भाव का फल विचार किया जाता है। प्रश्नानुसार फल विचार पहले ही हो चुका है।

विवाह प्रयोजन

चूँकि पुत्र का विचार जो पूर्व में किया गया है, वह पत्नी रहित व्यक्तियों में नहीं घटित होता है; क्योंकि श्रोत, स्मार्त्त एवं गृह सम्बन्धी प्रत्येक कार्य आवश्यक रूप से करने होते हैं। अत: कर्म एवं सन्तान दोनों की सिद्धि के लिए विवाह करना भी आवश्यक है।

इसलिए महान् आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विवाह प्रविधि को नवीनतर वाक्यों के द्वारा कह रहा हूँ।

विवाह साधन

इस प्रकार सप्तम स्थान, उसका स्वामी, उसको देखने वाला ग्रह, उसमें स्थित ग्रह, उसका कारक ग्रह शुक्र आदि विवाह सम्बन्धी गुण-दोष निरूपण करने के वास्तविक साधन होते हैं।

सप्तमस्थ राशि व पत्नी का स्वभाव विचार

सप्तम स्थान स्थित राशि अपने स्वामी की विशेषता अर्थात् स्वभाव, मनोभाव व्यवहार आदि के समान गुणों से युक्त स्त्री को भार्या या पत्नी बनाती है।

अत: अब सप्तम स्थान में स्थित मेष आदि राशियों के अनुसार मनुष्यों के स्वभाव बतलाते हैं।

सप्तम भाव में मेष आदि राशियों की स्थितिवश भार्या का स्वभाव आदि यथाक्रम से (१) देवताओं के दर्शन में तत्पर (२) अन्न दान देने वाली, (३) बर्तनों को साफ करने वाली, (४) स्नान एवं नवीन वस्त्रों का उत्सुक, (५) सुगन्ध प्रेमी, (६) बर्तनों के संग्रह की रुचिवाली, (७) गम्भीर एवं चतुरतायुक्त वाणी वाली, (८) कहकर न करने वाली, (९) शास्त्र आदि को सूनने वाली, (१०) स्पर्श-सुख की इच्छा वाली (११) अन्य लोगों से संग्रह की रुचि वाली (चतुरा), (१२) अच्छे कार्य करने वाली तथा वाक्चातुर्य सम्पन्न होती है।

अविवाहित रहने का योग विचार

(१) सप्तम भाव के निर्बल होने पर, (२) सप्तमेश के निर्बल अथवा शत्रु या नीच नवांश में स्थित या अस्तंगत होने पर, (३) सप्तम भाव और सप्तमेश दोनों

पर पाप दृष्टि होने पर, (४) सप्तम स्थान पर उसके स्वामी को छोड़कर अन्य पाप ग्रह की दृष्टि-युति होने पर; (५) शुक्र के भी निर्बल, नीच आदि नवांश में स्थित या व्यय, षष्ठ अथवा अष्टम स्थान में स्थित होने पर प्रायः मनुष्य अविवाहित रह जाता है और विवाह हो भी जाता है तो उसकी भार्या मर जाती है।

भार्या मृत्यु के अन्यान्य योग

सप्तम भाव में मंगल के स्थित होने पर सदैव पत्नी का विरह या उसकी मृत्यु होती है। इस भाव पर शनि की दृष्टि होने तथा अन्य ग्रहों की दृष्टि न होने पर पत्नी मर जाती है।

सप्तम स्थान में मकर राशि में गुरु तथा इसी भाव में वृश्चिक राशि में स्थित शुक्र ये दोनों पत्नी को मृत्युदायक होते हैं।

सप्तम स्थान में वृष राशि में स्थित बुध पहली पत्नी की निश्चित रूप से मृत्यु करने वाला होता है।

सप्तम भाव में मीन राशि में स्थित शनि निश्चित रूप से पत्नी की मृत्यु का कारण होता है तथा कन्या राशि में सप्तम भावस्थ गुरु और यदि साथ ही चतुर्थ स्थान में कोई पापग्रह (मंगल) हो, तो भी पत्नी की मृत्यु कहनी चाहिए।

अष्टमेश अथवा पञ्चमेश सप्तम (पत्नि) भाव में स्थित हो, तो वह मनुष्यों की परिणीता पत्नी को मार देता है।

यदि सूर्य और शुक्र साथ-साथ सप्तम, नवम या पञ्चम भाव में स्थित हों, तो पत्नी बीमार (रोगावस्था में) रहती है। ऐसे में पत्नि रूप स्त्री के किसी अंग की हानि की सम्भावना भी व्यक्त करनी चाहिए।

यदि दो पाप ग्रहों के मध्य में स्थित शुक्र शुभ ग्रहों से युत अथवा दृष्ट न हो, तो पत्नि के कारण विपत्तियाँ आती हैं अथवा पत्नी की मृत्यु होती है।

शुक्र से चतुर्थ या अष्टम स्थान में पापग्रह हो तथा उनके साथ शुभ ग्रहों की दृष्टि अथवा युति न हो, तो पूर्वोक्त फल होता है।

इसी प्रकार जिस व्यक्ति की कुण्डली में सप्तम स्थान में सूर्य एवं राहु दोनों हों, उसको स्त्री के जाने से सभी प्रकार का नुकसान होता है अर्थात् उस पुरुष का सर्वस्व नष्ट हो जाता है अथवा पार्थक्य हो जाता है।

भार्या–आचरण

यदि चरराशि में स्थित शुक्र दो पाप ग्रहों के बीच में हो और वह शनि से दृष्ट या युक्त हो, तो उसकी स्त्री भ्रष्ट आचरण वाली होती है।

जिस व्यक्ति की कुण्डली में मंगल की राशि या मंगल के नवांश में शुक्र हो

या वह मंगल द्वारा दृष्ट या युक्त हो, तो उसकी स्त्री किसी क्रूर व्यक्ति को चाहती है अर्थात् काम क्रीड़ा में वह अत्यन्त प्रगल्भा होती है।

जिस-किसी व्यक्ति की कुण्डली में शनि की राशि में या शनि के नवांश में शुक्र हो और शनि से युक्त या दृष्ट हो अथवा शुक्र नीचराशि के नवांश या नीचराशि में हो वह पुरुष निकृष्ट आचरण के परिवार की स्त्री को चाहता है।

भार्या मृत्यु योग

शुक्र के अष्टक वर्ग में उससे सप्तम भाव में अधिक पापग्रहों की रेखाएं हो और उस में गुलिक हो, तो एसे मनुष्य की पत्नी मर जाती है।

भार्याग्निदाह योग

मंगल या सूर्य की राशि में स्थित शुक्र यदिं इन दोनों से दृष्ट या युक्त हो तथा अग्नितत्व वाले भावादि में स्थित हो, तो मनुष्य की पत्नी या भार्या अग्नि में जल कर मर जाती है।

सर्पदंश से भार्या मृत्यु

शुक्र यदि गुलिक के साथ हो और केन्द्र या त्रिकोण स्थान में राहु स्थित हो, तो सर्प के काटने से स्त्री की मृत्यु होती है।

भार्या मृत्यु के अन्यान्य योग

शुक्र यदि शनि के साथ हो और शुक्र से अष्टम स्थान में पाप ग्रह हो, तो दुर्घटनावश पत्नी की मृत्यु होती है।

यदि चतुष्पद राशि में शुक्र हो, तो हिंसक चौपाये के कारण उसकी मृत्यु होती है तथा गृध्रसंज्ञक द्रेष्काण में शुक्र हो, तो पक्षियों से, जल राशियों में शुक्र हो, तो जल के किनारे और चर राशियों में चन्द्रमा के साथ शुक्र यदि हो, तो जल (नदी आदि) की लहर एवं भंवर आदि में फंसकर डूबने से उसकी मृत्यु कहनी चाहिए।

शुक्र से ग्रहयोगवश भार्या स्वभाव

यदि सूर्य के साथ शुक्र हो, तो भार्या या पत्नी भूत-प्रेत आदि से पीड़ित और परिवार की प्रधान होती है।

यदि चन्द्रमा के साथ शुक्र हो, तो वह बड़े दिल वाली होती है।

यदि मंगल के साथ शुक्र हो, तो वह व्यभिचारिणी होती है और वह राक्षसों से पीड़ित होती है।

यदि बुध के साथ शुक्र हो, तो वह ललित चेष्टा वाली विदुषी एवं मृदु स्वभाव की होती है।

यदि गुरु के साथ शुक्र हो, तो वह विद्याधर से पीड़ित, गुणवती एवं पुत्रवती होती है।

और यदि शनि के साथ शुक्र हो, तो वह गन्धर्वों से पीड़ित, दुराचारी व्यक्ति

में आसक्त बुद्धि वाली, दुराचारिणी, कपटयुक्त व्यवहार करने वाली होती है। इस प्रकार इन ग्रहों की राशियों में स्थित शुक्र से उक्त प्रकार फल कहना चाहिए।

वहीं यदि केतु तथा राहु से युक्त शुक्र हो, तो मनुष्य की भार्या नीच व्यक्ति में आसक्त और राहु से युक्त हो, तो विशेष रूप से अङ्गहीना होती है।

अर्द्धप्रहर के साथ गुलिक आदि तीन ग्रहों से शुक्र यदि युक्त हो, तो उसकी शीघ्र मृत्यु होती है।

शुक्र के अष्टक वर्ग में उसी से सप्तम स्थान में सूर्य आदि ग्रहों के बिन्दु हो, तो वह यदि सूर्य के हों, तो यक्ष, भूत आदि से पीड़ित, चन्द्र के हों, तो मनोवल्लभा, यदि बुध के हो, तो सत्कर्म करने वाली तथा पति का अनुसरण करने वाली, सन्तति वाली और शुक्र का ही होने पर पति को रति-सुख देने वाली तथा यदि शनि के हो, तो मूर्ख एवं कार्य करने में दासी के समान होती है।

भार्या के शरीर सौन्दर्य

सप्तम स्थान में स्थित गुरु और शुक्र सुन्दर स्त्री देने वाले होते हैं तथा इस स्थान में स्थित अन्य ग्रह हो, तो सप्तमेश-स्थित नवांश राशि के स्वामी तथा सप्तमेश अधिष्ठित राशि के स्वामी में जो बलवान् हो उसके समान भार्या का शरीर सौष्ठव अर्थात् बाह्य-व्यक्तित्व होता है।

शुक्र, सप्तमेश एवं सप्तम स्थान में स्थित ग्रहों में जो बलवान् हो उसके समान पत्नी का वर्ण एवं गुण आदि कहना चाहिए।

साध्वी भार्या योग

यदि शुक्र से नवम स्थान में शुभ ग्रह हो तथा शुक्र स्थित स्थान का स्वामी बलवान् हो, तो पत्नी धार्मिक स्वभाव वाली, सुपुत्र जननी और भाग्यवती होती है।

सप्तमेश शुभ ग्रह हो और वह शुभ ग्रहों से युत और दृष्ट हो अथवा सप्तमेश जिस राशि में हो उससे पाँचवें, सातवें, ग्यारहवें एवं नौवें स्थान में शुभ ग्रह हो या कोई अन्य बलवान् ग्रह हो, तो अच्छे पुत्र वाली स्त्री होती है।

यदि इसके विपरीत योग हो, तो पत्नी वन्ध्या या रोगिणी होती है।

सप्तम भाव अपने स्वामी एवं शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट या दोनों हों अथवा सप्तमेश यदि बलवान् हो और शुक्र के अभीष्ट भाव में स्थित होने पर मनुष्यों को पत्नी का सुख खूब मिलता है।

धनी एवं निर्धन भार्या-पिता विचार

सप्तमेश यदि पूर्णबली हो, तो पुरुष का धनाढ्य परिवार में विवाह होता है।

सप्तमेश के निर्बल होने पर दरिद्र के परिवार में विवाह होता है और पत्नी भी रूपवती नहीं होती है।

वर-वधू मेलापन

विवाह से पहले जन्म नक्षत्र आदि के द्वारा वर और वधू की परस्पर अनुकूलता का विचार करना चाहिए तथा इनका अनुकूल मेलापक हो, उस प्रकार का प्रयास करना चाहिए। उस मेलपान की रीति को अब कहते हैं।

दैवज्ञ कर्त्तव्य

राशि, ग्रह और नक्षत्र के वश बतलायी गई राशि, नक्षत्र सम्बन्धी वर्ण; मनुष्य, पक्षी, पशु आदि योनियों अथवा गणों; चारों तत्त्व, रज्जु के द्वारा शुभाशुभत्व, अष्टकवर्ग, आयु, शक्ति आदि इन सब बातों का सब प्रकार से विचार कर प्रश्नशास्त्र के विद्वान् को विवाह करने का निर्देश देना चाहिए।

वर और वधू की राशियों का मेलापन

यहाँ जन्मनक्षत्र, जन्म राशि और जन्म कुण्डली की ही प्रधानता है अर्थात् उसी से यह देखा जाता है कि वर वधू के योग्य है अथवा नहीं; इसके लिए दोनों की कुण्डलियों का मेलपान किया जाता है।

स्त्री की जन्मराशि से दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठवीं राशि में उत्पन्न व्यक्ति से विवाह वर्जित करना चाहिए।

ऐसे में एक ही राशि में वर-कन्या उत्पन्न हों, परन्तु उनके नक्षत्र भिन्न हों, तो विवाह शुभ कहा गया है।

यहाँ विषम राशि में उत्पन्न स्त्रियों की राशि से छठी और आठवीं राशि में पुरुष की राशि मध्य श्रेणी की होती है; किन्तु युग्म राशि में उत्पन्न स्त्रियों से छठी राशि में उत्पन्न पुरुष का विवाह वर्जित करना चाहिए; परन्तु उनसे अष्टम राशि में उत्पन्न पुरुष से विवाह शुभ कहा गया है।

माधवीयम ग्रन्थ के अनुसार

इस प्रकार स्त्री की जन्मराशि से पुरुष की जन्म राशि दूसरी होने पर धननाश, पाँचवीं राशि होने पर पुत्रनाश, छठी राशि हो, तो व्यसन, रोग, विपत्ति एवं वियोग आदि, तीसरी राशि हो, तो दुःख और यदि चौथी राशि हो, तो स्त्री-पुरुष में विरोध होता है।

बृहस्पति का मत

यदि स्त्री और पुरुष दोनों की राशियों के स्वामियों की एकाधिपत्यता न हो, तो उनकी परस्पर छठी और आठवीं राशि (षडष्टक) हो, तो उन दोनों की मृत्यु होती है।

यदि स्त्री और पुरुष की राशि के स्वामी परस्पर मित्र हों या एक-दूसरे के वश्य में हों, तो षडष्टक होने पर भी दोष नहीं होता।

वर-कन्या की जन्म राशियों में नवम-पञ्चम और द्विर्दादश योग की स्थिति सदैव अधिक दोषकारक होती है।

यदि वे दोनों राशियाँ भिन्न हों; उन दोनों के राशीशों में शत्रुता हो, तो भी उनकी परस्पर समसप्तक या समान सातवीं राशि होना श्रेष्ठ होता है।

मुहूर्त रत्न के अनुसार

यदि वर और कन्या की जन्म राशियों में षडष्टक हो, तो मृत्यु, शत्रुता, वियोग आदि दोष, द्विर्दादश हो, तो निर्धनता तथा नवम पञ्चम हो, तो अनपत्यता होती है। इनसे भिन्न प्रकार का सम्बन्ध हो, तो अनेक सुख और सम्पत्तियाँ मिलती हैं।

षडष्टक आदि में वैर-वेध होने पर, एक राशि दूसरी राशि की वश्य होने पर दोष नहीं होता, अपितु सद्यः सुख मिलता है।

विशेष—यहाँ वर और वधू की विरुद्ध योनि के साथ नवम पञ्चम योग युक्त राशि हों, तो निश्चित ही पुत्र की मृत्यु होती है।

यदि पति और पत्नी का जन्मकालीन चन्द्रमा कन्या, वृश्चिक, वृष और सिंह राशि में हो अथवा लग्न में इन राशियों का नवांश हो, तो उनके लिए पुत्र का दर्शन दुर्लभ होता है।

यह स्थिति दोनों की कुण्डली में देखनी चाहिए। यदि दोनों की कुण्डली में इस प्रकार नवांश या चन्द्रमा की स्थिति हो, तो पुत्र का अभाव होता है।

स्थूल योनि

मकर और मीन विहंग, वृश्चिक और कर्क सरीसृप, सिंह, मेष एवं वृष पशु तथा शेष राशियाँ मनुष्य योनि की हैं।

यह योनि विचार स्थूल है तथा राशि के अनुसार कहा गया है।

वर और वधू की एक योनि हो, तो उत्तम माना गया है। पशु और मनुष्य योनि का सम्बन्ध मध्यम है। सरीसृप और विहङ्ग के साथ पशु राशि का मेलापन अधम है। तिर्यङ् और मनुष्य का कभी भी सम्बन्ध नहीं करना चाहिए।

मुहूर्त्त संग्रह के अनुसार—

स्त्री की जन्मराशि से सप्तम भाव आदि छः राशियों में उत्पन्न पुरुष विवाह के लिए शुभ होता है।

छठी राशि में उत्पन्न व्यक्ति मध्यम होता है। अन्य चार राशियों में उत्पन्न व्यक्ति का त्याग करना चाहिए।

जातकपद्धति के अनुसार–

वर और वधू का एक ही नक्षत्र में जन्म हो, तो विवाह किया जा सकता है; परन्तु ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, पुष्य, आश्लेषा, मघा, हस्त, रोहिणी, धनिष्ठा, शततारा, आर्द्रा और भरणी इन नक्षत्रों में से नहीं होना चाहिए।

मुहूर्त्तरत्न का विचार

वर और वधू की एक राशि और भिन्न नक्षत्र हों, तो पुत्र-पौत्र आदि की वृद्धि होती है। एक नक्षत्र होने पर विष से भय उत्पन्न होता है और समसप्तक की स्थिति होने पर अत्यन्त प्रेम होता है। यदि दोनों राशियों में द्विर्दादश योग हो और चन्द्रमा राशि सन्धि में हो, तो दरिद्र रहना पड़ता है।

परस्पर अनुकूल (वश्य) राशि ज्ञान

स्त्री या पुरुष की राशि अधोलिखित वर्गों में कहीं एक वर्ग में पड़े तो परस्पर वश्य अर्थात् एक-दूसरे के वशीभूत प्रेम बना रहता है।

प्रत्येक राशि की वश्य राशियाँ इस प्रकार हैं अर्थात् एक का दूसरे से परस्पर वश्य प्रकार प्रसिद्ध द्विपदादि वश्यों से पृथक् है।

स्त्री या पुरुष की जन्म राशि के अनुसार इसे जानना चाहिए।

मेष—सिंह, वृश्चिक।	तुला—मिथुन।
वृष—कर्क, तुला।	वृश्चिक—मिथुन, कन्या।
मिथुन—कन्या।	धनु—कर्क, मीन।
कर्क—धनु, वृश्चिक।	मकर—कुम्भ, मेष।
सिंह—मिथुन।	कुम्भ—मेष।
कन्या—तुला।	मीन—मकर।

स्त्री के जन्म नक्षत्र की वश्य संज्ञक राशि में उत्पन्न पुरुष शुभ फलदायक होता है।

अन्य आचार्यों का मत है कि कन्या की चन्द्रराशि अपनी जन्मराशि से वश्य संज्ञक होने पर शुभ होता है।

ग्रह मैत्री

सूर्य आदि सात ग्रहों के क्रमशः बान्धव या सहयोगी इस प्रकार होते हैं। जैसे सूर्य का गुरु, चन्द्र का बुध एवं गुरु, मंगल का शुक्र एवं बुध, बुध का सूर्य के

अलावा अन्य ग्रह, गुरु का मंगल को छोड़कर अन्य ग्रह शुक्र का चन्द्रमा और सूर्य के अलावा अन्य ग्रह तथा शनि का मंगल चन्द्रमा एवं सूर्य के अलावा अन्य ग्रह बान्धव होते हैं।

यहाँ जन्म राशि के स्वामियों में एकता और मित्रता होना शुभ होता है।

जो मनुष्य किसी के राशीश की मूल त्रिकोण राशि से चतुर्थ, द्वितीय, पञ्चम, नवम, अष्टम, एवं द्वादश राशि में उत्पन्न हुआ हो या उसकी उच्च राशि में उत्पन्न हुआ हो वह उसका मित्र होता है।

अन्य राशियों अर्थात् उससे प्रथम, तृतीय, षष्ठ, सप्तम, दशम, एकादश भाव में पड़ने वाली राशियों में उत्पन्न व्यक्ति शत्रु होता है।

नक्षत्र की आधानादि संज्ञा

जन्म नक्षत्र से आगे १०वाँ नक्षत्र आधान संज्ञक और उससे १०वाँ नक्षत्र कर्मसंज्ञक होता है।

जन्म नक्षत्र से ५वाँ नक्षत्र विपत् संज्ञक होता है। इनमें उत्पन्न व्यक्ति अभीष्ट नहीं होता।

इन नक्षत्रों से क्रमश: तृतीय और चतुर्थ अंश में उत्पन्न व्यक्ति को वर्जित करना चाहिए।

कर्मसंज्ञक नक्षत्र से उक्त अंशों में उत्पन्न व्यक्ति भी वर्जित होता है।

आधान नक्षत्र से इन नक्षत्रों में यदि पापग्रह हो, तो उत्पन्न व्यक्ति उत्तम होता है।

आचार संग्रह का मत

स्त्री के जन्मनक्षत्र से सातवें या तीसरे नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक कष्टदायक होता है तथा पाँचवें नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति को विशेष रूप से कष्टदायक जानना चाहिए।

स्त्री के जन्मकालीन नवांश से ८८वें नवांश में उत्पन्न व्यक्ति अति कष्टदायक होते हैं। इसी प्रकार पुरुष की जन्मराशि स्त्री के नवांश से दूसरी राशि होना कष्टप्रद है।

माहेन्द्र उपेन्द्र संज्ञा

कन्या के जन्मनक्षत्र से पुरुष का नक्षत्र यदि चौथा और सातवाँ, दशवाँ तारा हो, तो शुभ फलदायक मानी गई है।

स्त्री के जन्मनक्षत्र से पुरुष जन्म नक्षत्र अधिक दूर होना भी शुभ होता है।

स्त्री जन्मनक्षत्र से पुरुष का जन्मनक्षत्र चौथा हो, तो माहेन्द्र संज्ञक होता है; ऐसा विद्वानों ने कहा है। उससे चतुर्थ नक्षत्र उपेन्द्र संज्ञक होता है।

माहेन्द्र नक्षत्र में यदि विवाह हो, तो धन-धान्य का लाभ और उपेन्द्र में हो, तो सन्तान प्राप्ति कहनी चाहिए।

इस प्रकार यहाँ स्त्री के जन्म नक्षत्र से वर के जन्मनक्षत्र तक गणना करनी चाहिए। यहाँ यदि १५ से अधिक संख्या हो, तो स्त्रीदीर्घ योग होता है, जो शुभदायक होता है।

अब इस प्रकार जाति या वर्ण का विचार करते हैं। अवकहडाचक्र से यह पृथक् प्रकार है। यहाँ अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र नक्षत्र हैं। मृगशिरा की अनुलोम संज्ञा व आर्द्रा की प्रतिलोम संज्ञा है।

इसी प्रकार ६-६ नक्षत्रों की क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अनुलोम व प्रतिलोम संज्ञा जाननी चाहिए।

तत्पश्चात् पूर्वाभाद्रापद आदि शेष तीन नक्षत्र की क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य संज्ञा समझनी चाहिए। चक्र से इसे और स्पष्ट करते हैं।

एक जाति के अर्थात् सवर्ण वर एवं वधू का संयोग (विवाह) अति शुभ फलदायक कहा गया है।

नक्षत्र ब्राह्मण आदि वर्ण ज्ञानार्थ चक्र

	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	अनुलोभ	प्रतिलोभ
नक्षत्र	अश्वि.	भरणी	कृत्ति.	रोहि.	मृग	आर्द्रा
	पुन.	पुष्य	आश्ले	मघा	पू.फा.	उ.फा.
	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनु.	ज्येष्ठा
	मूल	पू.षा.	उ.षा.	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा
	पू.भा.	उ.भा.	रेवती			

यदि उत्तम जाति का पुरुष और हीन जाति की स्त्री हो, तो भी विवाह श्रेष्ठ होता है। इसके विपरीत होने पर निश्चय ही कष्टदायक होता है। अनुलोम वर्ण वाले स्त्री और पुरुष का विवाह मध्यम तथा प्रतिलोम वर्ण वाले स्त्री पुरुषों का विवाह कभी शुभ नहीं होता।

बृहस्पति का विचार

एक जाति (वर्ण) हो, तो संयोग (विवाह) शुभ और वर्ण के विचार क्रम में

उत्तमोत्तम होता है। भिन्न जाति होने पर अनुलोम विचार क्रम में विवाह मध्यम फलदायक होता है तथा प्रतिलोम विचार क्रम से विवाह करने को अधम कहा गया है।

इस प्रकार विवाह में दो वर्णों से अधिक का अन्तर निन्दनीय होने से त्याज्य है।

योनि-विचार

योनि विचार में दो पक्ष (मत) कहे गए हैं। उनमें से प्रथम पक्ष इस प्रकार है—

पुरुष का जन्म पुरुषसंज्ञक नक्षत्र में और स्त्री का जन्म स्त्री संज्ञक नक्षत्र में होने पर दम्पति को सम्पत्ति लाभ होता है। स्त्री और पुरुष दोनों का जन्म स्त्री संज्ञक नक्षत्र में होने पर क्षति और पुरुष संज्ञक नक्षत्र में होने पर दोषदायक होता है।

यदि विरुद्ध योनि में अर्थात् स्त्री का पुरुष संज्ञक नक्षत्र और पुरुष का स्त्री नक्षत्र में जन्म हो, तो भी कष्टप्रद होता है।

यहाँ पुष्य, आश्लेषा, मघा, अश्विनी, रेवती, ज्येष्ठा, मूल, पू.षा., उ.षा., श्रवण, स्वाति, विशाखा, पूर्वाभाद्रपद एवं उत्तराभाद्रपद नक्षत्र पुरुष संज्ञक तथा शेष नक्षत्र स्त्री संज्ञक होते हैं।

अथवा अश्विनी, पुष्य, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, हस्त, श्रवण, पुनर्वसु एवं अनुराधा पुरुष संज्ञक नक्षत्र हैं।

मूल, मृगशिरा एवं शतभिषा नपुंसक तथा शेष नक्षत्र स्त्री संज्ञक होते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों का जन्म पुरुष संज्ञक नक्षत्र में होने पर शुभ फलदायक होता है।

नपुंसक संज्ञक नक्षत्र में उत्पन्न स्त्री नपुंसकसंज्ञक नक्षत्र में पैदा हुए व्यक्ति को अच्छी होती है। इसके अलावा अन्य नक्षत्रों में उत्पन्न कन्या निन्दित होती है।

गण विचार

पुष्य, अश्विनी, अनुराधा, श्रवण, स्वाति, पुनर्वसु, मृगशिर, हस्त और रेवती नक्षत्रों का देवगण होता है।

भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रप्रदा, आर्द्रा, रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा एवं उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रों का मनुष्य गण तथा शेष नक्षत्रों का राक्षस गण होता है।

देव और राक्षस गण के स्त्री-पुरुषों में कलह एवं मृत्यु भय होता है। देव-मनुष्य तथा मनुष्य देवगण के स्त्री-पुरुष सम होते हैं।

यहाँ दम्पत्ति का एक गण होना अति शुभ फलदायक होता है। देव एवं राक्षस गण में उत्पन्न व्यक्तियों के लिए मनुष्यगण की स्त्री हो, तो देवताओं के लिए शुभ फलदायक परन्तु राक्षसों के लिए मध्यम होती है।

मनुष्य गण में उत्पन्न व्यक्ति को देवगण की स्त्री दोषप्रद होती है; किन्तु राक्षस गण की कन्या उसके लिए वर्जित है; ऐसा गणों के भेद के अनुसार बतलाया गया है।

नक्षत्र गोत्र

अभिजित सहित अश्विनी आदि नक्षत्रों के क्रम-से मरीचि, वसिष्ठ, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु; इन श्रेष्ठ ऋषियों के नाम का गोत्र होते हैं।

एक ऋषि के गोत्र वाले नक्षत्र में उत्पन्न वर-वधू का विवाह विपत्तिकारक होता है। भिन्न गोत्र वाले ऋषियों के नक्षत्रों में उत्पन्न वर-वधू का विवाह सम्पत्तिदायक होता है।

जन्मराशि के अतिरिक्त जन्मलग्न के नक्षत्र के आधार पर दोनों (वर और वधू) का एक गोत्र होना मध्यम कहा गया है।

नक्षत्र विहग

अश्विनी से प्रारम्भ कर ५, ६, ६, ५ एवं ५ नक्षत्रों के क्रम-से भारण्डक, पिङ्गल, काक, ताम्रचूड एवं शिखण्डी नामक विहग या पक्षी संज्ञा होती है। वर एवं वधू दोनों के नक्षत्र एक पक्षी वाले हों, तो श्रेष्ठ होता है।

नक्षत्र विहग ज्ञानार्थ चक्र

पक्षी नाम	भारण्डक	पिंगल	काक	ताम्रचूड	शिखण्डी
नक्षत्र	अश्विनी भरणी कृत्तिका रोहिणी मृगशिरा	आर्द्रा पुन पुष्य आश्लेषा मघा पू.फा.	उ.फा. हस्त चित्रा स्वाती विशाखा अनुराधा	ज्येष्ठा मूल पू.षा. उ.षा. श्रवण	धनिष्ठा शतभिषा पू.भा. उ.भा. रेवती

नक्षत्र मृग

अश्विनी आदि नक्षत्रों के वाचक निम्नोक्त मृग या चतुष्पद योनि होते हैं। इनकी स्वाभाविक प्रकृति से ही मित्रता और शत्रुता का विचार दम्पत्ति के लिए करना चाहिए।

नक्षत्रनाम–योनि	नक्षत्रनाम–योनि	नक्षत्रनाम–योनि
अश्विनी—घोड़ा	मघा—चूहा	मूल—कुत्ता
भरणी—हाथी	पू.फा.—चूहा	पूर्वाषाढ़ा—वानर/हरिण
कृत्तिका—बकरी	उ.फा.—ऊँट	उत्तराषाढ़ा—बैल
रोहिणी—साँप	हस्त—भैंसा	श्रवण—रीछ
मृगशिरा—साँप	चित्रा—सिंह	धनिष्ठा—वानर
आर्द्रा—कुतिया	स्वाती—भैंसा	शतभिषा—भैंस
पुनर्वसु—बिल्ली	विशाखा—बाघ	पूर्वाभाद्रपदा—अंग
पुष्य—बस्त	अनुराधा—हरिण	उत्तराभाद्रपद—हाथी/सूर्य
आश्लेषा—बिलाव	ज्येष्ठा—हरिण	रेवती—हाथी।

गज और अश्व, वानर और रीछ, बस्तक और विडाल; ये सभी परस्पर शुभ होते हैं; किन्तु व्याघ्र और सर्प मृत्युदायक होते हैं।

विडाल और सर्प, श्वान और मूषक परस्पर विरोधी होते हैं। महिष और अश्व एक-दूसरे के शत्रु होते हैं। सिंह सभी को शुभ होता है। श्वान, मूषक, मार्जार, सिंह और सर्प परस्पर एक-दूसरे के शत्रु होते हैं।

श्वान, गौ, वानर, महिष, मृग, भेड़ और वानर इन सबका व्याघ्र शत्रु है। कुत्ते के गौ, बस्त, प्लवग और मृग शत्रु हैं। बिल्ली एवं मूषक परस्पर एक-दूसरे के शत्रु होते हैं।

मृग और गज, महिष और अश्व, बिल्ली और सर्प, हाथी और अश्व, मूषक और सर्प; ये एक-दूसरे के शत्रु होते हैं।

इस प्रकार योनियों की मित्रता या एकता विवाह में श्लाघ्य अर्थात् शुभ होती है और शत्रुता अश्लाघ्य अर्थात् अशुभ होती है।

बार्हस्पत्यादि के ग्रंथों में व्याघ्र को विचित्र योनि बतलाया गया है और मुहूर्तरत्न में सिह को। अतः विद्वानों से इस सम्बन्ध में परामर्श करना उचित है।

गेहारम्भ में वेध

विवाह या गृहारम्भ के प्रसंग में कहा गया निषिद्ध वेध का न होना श्लाघ्य होता है। यह वेध पाँच श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है।

उन श्रेणियों का क्रमशः फल इस प्रकार होता है—वैधव्य, धन-हानि, अनेक देशों में व्यर्थ भ्रमण, व्यसन (दुःख), मृत्यु तथा पुत्र हानि होता है।

कण्ठ, कटि, चरणद्वय, शिर एवं कुक्षि में होने वाला पाँच तरह का वेध बतलाया गया है।

(१) रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, स्वाती, हस्त एवं शतभिषा नक्षत्र प्रथम वर्ग में; (२) भरणी, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद एवं पुष्य द्वितीय वर्ग में; (३) ज्येष्ठा, रेवती, अश्विनी, आश्लेषा, मघा एवं मूल तृतीय वर्ग में; (४) चित्रा, धनिष्ठा और मृगशिर चतुर्थ वर्ग में तथा (५) पूर्वाभापद, विशाखा, कृत्तिका, उत्तराषाढ़ा, पुनर्वसु एवं पूर्वाफाल्गुनी पञ्चम वर्ग में—इस प्रकार ये पाँच वर्ग होते हैं।

इन वर्गों के अन्तिम नक्षत्र, वेध से दूषित नक्षत्र माने जाते हैं और उन नक्षत्रों में, जिन पर ग्रह हों गेहारम्भ में त्याज्य होते हैं।

मुहूर्त्तरत्न का विचार

शिरोवेध पति को और कुक्षिवेध पत्नी को मृत्युदायक कहा गया है। नाभिवेध सन्तान को नष्ट करता है। कुक्षिवेध कुल का नाश करता है तथा पादवेध पतन और दरिद्रता देता है।

वर्गार्ध नक्षत्रों पर शिरोवेध, उससे अगले और पिछले नक्षत्र पर कुष्ठ वेध तथा उसके समीप वाले अन्य नक्षत्रों पर क्रमशः अन्य वेध कहे गए हैं।

अश्विनी एवं ज्येष्ठा, भरणी एवं अनुराधा, श्रवण एवं आर्द्रा, विशाखा एवं कृत्तिका, स्वाति एवं रोहिणी, मूल एवं आश्लेषा, मघा एवं रेवती, पुष्य एवं उत्तरा आषाढ़ा, मृगशीर्ष एवं चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त एवं शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद एवं पुनर्वसु, तथा धनिष्ठा, मृगशिर एवं चित्रा, ये बारह विभाग माधवीयम् में नक्षत्रों के बतलाये गये हैं।

पूर्वोक्त नक्षत्रों में (वर-वधू का उक्त नक्षत्रों के एक ही वर्ग में स्थित होने से) जो वेध उत्पन्न होता है वह चूँकि राशियों में षडष्टक स्थिति भी उत्पन्न करता है।

अतः यदि वश्य आदि अन्य बलवान् गुण भी चाहे क्यों न विद्यमान हों इस वेध के कारण वर और कन्या का नाश कहना चाहिए।

नक्षत्र तत्त्व

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश; ये पाँच तत्त्व अश्विनी से प्रारम्भ कर ५, ६, ५, ६ एवं ५ कुल सत्ताईस नक्षत्रों के बोधक होते हैं।

वर एवं वधू का नक्षत्र एक तत्त्व के हों या वायु एवं अग्नि तत्त्व हो तो विवाह करना अनुकूल होता है।

पृथ्वीतत्त्व सब तत्त्वों के साथ शुभ होता है। जल और अग्नि तत्त्व परस्पर निन्दित होते हैं तथा आकश अन्य सभी तत्त्वों के साथ मध्यम होता है।

नक्षत्र तत्त्व स्पष्टार्थ चक्र

पृथ्वी	जल	तेज	वायु	आकाश
अश्विनि	आर्द्रा	उ.फा.	अनुराधा	धनिष्ठा
भरणी	पुन.	हस्त	ज्येष्ठा	शतभिषा
कृत्तिका	पुष्य	चित्रा	मूल	पू.भा.
रोहिणी	श्लेषा	स्वाती	उ.भा.	पू.षा.
मृगशिरा	मघा	विशाखा	रेवती	उ.षा.
	पू.फा.			श्रवण

अश्विनी से प्रारम्भ कर यथाक्रम से ५, ६, ५, ६ एवं ५ नक्षत्र पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकश तत्त्व वाले होते हैं।

कोई आचार्य कहते हैं कि सूर्य आदि ग्रहों की राशियों के नक्षत्र क्रमशः तेज, जल, अग्नि, भूमि, आकाश, जल एवं वायु तत्त्व वाले होते हैं।

सर्वसिद्धिकार का विचार

अश्विनी से लेकर ५, ६, ५, ६ एवं ५ नक्षत्र क्रम-से पृथ्वी आदि तत्त्व वाले होते हैं।

वर-वधू के नक्षत्र एकतत्त्व वाले हों, तो शुभ, अग्नि एवं जल तत्त्व वाले हों, तो निन्द्य और अन्य तत्त्व वाले हों, तो विवाह करना मध्यम होता है।

रज्जु–विचार

अश्विनी से प्रारम्भ कर ३-३ नक्षत्र एक-एक अंगुलि पर यथाक्रम से स्थापित करने के पश्चात् देखना चाहिए कि दम्पति के जन्म नक्षत्र क्या एक ही अंगुली में तो स्थित नहीं हैं, यदि हैं, तो उसे वर्जित करना चाहिए।

वधू की आयु से वर की आयु त्रिगुणित श्रेष्ठ होती है तथा द्विगुणित आयु मध्यम होती है।

उक्त आयु से कुछ अधिक होना कष्टकारक तथा कम होना कुल के लिए नाशदायक होता है।

प्रायः यह नियम आजकल युक्ति, तर्क एवं व्यवहार के आधार पर बिल्कुल निरर्थक प्रतीत होता है।

अष्टकवर्ग–आचार संग्रहोक्त विचार

कन्या के जन्मकालीन चन्द्रमा के अष्टकवर्ग में अधिक बिन्दु वाली राशि में पुरुष का जन्म होना शुभफलदायक होता है।

इसी प्रकार पुरुष के जन्मकालीन चन्द्र के अष्टक वर्ग में अधिक बिन्दु वाली राशि में स्त्री का जन्म होना शुभफलप्रद है।

भचक्र की प्रत्येक राशि के अष्टक वर्ग में लग्न, शनि, गुरु, सूर्य, मंगल, शुक्र, बुध एवं चन्द्रमा क्रम-से स्थित होते हैं।

प्रत्येक राशि के अष्टम भाग को कक्षा कहते हैं। इस प्रकार एक राशि में आठ कक्षायें होती हैं।

वर और वधू के अष्टक वर्ग में किसी एक के जन्मकालीन चन्द्रमा से आश्रित कक्षा का स्वामी यदि किसी राशि को प्रभावित करता हो, तो वह राशि विशेष रूप से वर अथवा वधू की जन्म राशि के रूप में शुभ होती है; यह विशेषतापूर्वक विचारणीय है।

अन्योन्याश्रय सम्बन्ध का महत्त्व

दम्पत्ति की परस्पर मनोनुकूलता और एक-दूसरे के प्रति अच्छे विचार विशेष रूप से शुभदायक होते हैं। लोगों को विवाह के समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

जिस कन्या में मन आसक्त या अनुरक्त हो, बुद्धिमान व्यक्ति उसी के साथ विवाह करे। मेलापक में बतलाए गए समस्त गुणों के न होने पर भी मनोनुकूलता सर्वोपरि कही गयी है।

आय-व्यय ज्ञान

कन्या के जन्मनक्षत्र से वर के जन्मनक्षत्र तक गणना से प्राप्त संख्या को ३ से गुणा करके ७ का भाग देना चाहिए। यहाँ शेष व्यय होता है।

इसी प्रकार वर के जन्मनक्षत्र से कन्या जन्मनक्षत्र तक गणना कर प्राप्त संख्या से पूर्ववत् आय का साधन करना चाहिए।

आय एवं व्यय साधन में दोनों जगह ७ शेष रहने पर पूर्णता समझनी चाहिए।

आय अधिक होने पर कन्या ग्राह्य होती है। उसके साथ विवाह करने से सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है। व्यय अधिक होने पर अपने पास के धन का नाश और दरिद्रता मिलती है।

विशेष ज्ञातव्य

अश्विनी से प्रारम्भ कर वर और कन्या के जन्मनक्षत्र तक गणना से जो संख्या प्राप्त हो, उन दोनों संख्याओं को जोड़कर १३ मिलाकर कुल ३२ घटाना

चाहिए। फिर इस फल में ५ का भाग दें। एक आदि शेष होने पर क्रमशः पुत्र प्राप्ति, मृत्यु, धनवृद्धि, रोग तथा सम्पत्ति फल कहना चाहिए।

उपरोक्त योग में से यदि ३२ न निकल सके तो गणना जन्मनक्षत्र से अश्विनी तक करने के बाद शेष क्रिया पूर्ववत् करनी चाहिए।

वर और वधू की जन्म कुण्डली के अनुसार अश्विनी से लेकर जन्मनक्षत्र तक गणना कर प्राप्त संख्याओं को जोड़कर ५ का भाग दें।

एक आदि शेष के अनुसार क्रमशः लक्ष्मीप्राप्ति, ऋद्धि, विपत्ति, अधिक सम्पत्ति और अधिक आपित्त इस प्रकार फल कहना चाहिए।

आर्द्रा, हस्त, पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तरा भाद्रपद इन नक्षत्रों के वर्ग में यदि वर-वधू के जन्म नक्षत्र पड़ें तो अधिक समृद्धिदायक होता है।

कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा ज्येष्ठा, मूल और धनिष्ठा, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपद ये तीन-तीन नक्षत्र सभी वृद्धिदायक होते हैं; परन्तु वर-वधू के जन्म नक्षत्र रेवती, अश्विनी, भरणी, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, चित्रा, विशाखा, उत्तराषाढा अथवा श्रवण हों, तो ऋणदायक समझना चाहिए।

इसी प्रकार धर्म, अर्थ, काम नामक ३ वर्ग कहे गये हैं—उपरोक्त नक्षत्रों में कथित पहले चार धर्म के, अगले १२ अर्थ के और अन्तिम ११ काम वर्ग के नक्षत्र हैं।

दम्पत्ति के जन्मनक्षत्र यदि एक ही वर्ग में हो, तो अपने नाम जैसा फल देते हैं।

मेलापन सम्बन्धी विशेष फल

दिन की अनुकूलता से दीर्घायु, माहेन्द्र से पुत्र-पौत्र की प्राप्ति, स्त्री दीर्घम् से सदैव मंगल (कल्याण) प्राप्ति, योनि से स्थिर सम्पत्ति, गुण से परस्पर रमणीयता तथा दम्पत्ति के आय-व्यय विचार से मनोहारिता जैसा फल किसी-किसी आचार्यों ने बतलाया है।

राशि से चार प्रकार का विचार, राशि स्वामी से एक प्रकार का विचार, शक्ति एवं आयु विचार तथा नक्षत्रों से सोलह प्रकार का विचार, इस प्रकार मेलापक में तेईस प्रकार की अनुकूलता का चिन्तन किया जाता है।

मेलापन क्रम में पूर्वोक्त विचारणीय बातों में से कुछ बलशाली एवं कुछ दुर्बल अथवा गौण होती हैं। अब इनकी प्रधानता एवं न्यूनता को कहते हैं।

मेलापन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण

इस प्रकार पुरुष एवं स्त्री के मेलापन-क्रम में उपरोक्त २० विचारणीय विषयों से राशि, राशीश, वश्य, माहेन्द्र एवं योनि का विचार प्रमुखता से करना चाहिए।

पुनः कहा जाता है कि राशि, राशीश, वश्य, माहेन्द्र, गण, योनि के दोनों भेद एवं स्त्री दीर्घ आदि आठ विषयों का विवाह में प्रमुखता से विचार करना चाहिए।

वर-वधू के मेलापनार्थ कही गई उपरोक्त बातों में से राशि, राशीश, माहेन्द्र, योनि एवं वश्य ये ५ बातें प्रमुख मानी गई हैं।

माधवीयकार का विचार

माहेन्द्र, योनि, दिन, राशि एवं राशीश ये सामान्यतया अधिक महत्त्वपूर्ण विषय कही गई हैं तथा अन्य मध्यम होती हैं।

ऋषियों के अनुसार ब्राह्मणों के लिए गोत्र विचार और क्षत्रिय आदि अन्य वर्णों के लिए जाति विचार करना श्रेष्ठ होता है।

इस प्रकार वश्य, माहेन्द्र, योनि, राशि एवं राशीश ये पाँच विषय सर्वसम्मत हैं।

अतः ये पाँच विषय प्रमुख रूप से विचारणीय हैं।

अन्य विषयों का यथासम्भव विचार करना भी श्रेष्ठ है।

क्षत्रिय आदि वर्णों के लिए जाति का विचार (जाति की एकता) तथा ब्राह्मणों के लिए गोत्रविचार अर्थात् एक गोत्र न होने का विचार अवश्य करना चाहिए।



ग्रह गोचर ज्ञान

वराहमिहिराचार्य ने बृहत्संहिता (वाराहीसंहिता) में गोचर-क्रम में ग्रहचार का जो विस्तारपूर्वक फल कहा है, उसे सार-संक्षेप में यहाँ बतलाये जा रहे हैं।

सूर्य गोचर फल

जन्म राशि में सूर्य यदि हो, तो कार्यों में अधिक प्रयास, वैभवनाश, यात्रा और रोग सम्भव होता है।

द्वितीय स्थान में सूर्य हो, तो अर्थक्षय, वंचना एवं जल सम्बन्धी रोग अर्थात् जलोदर आदि रोग होते हैं।

तृतीय स्थान में सूर्य हो, तो स्थानलाभ, शत्रुनाश, अर्थलाभ एवं स्वास्थ्य लाभ होता है।

चतुर्थ स्थान में सूर्य हो, तो स्त्री-सम्भोग के प्रसङ्ग से बाधा या हानि और रोगोत्पत्ति होती है।

पञ्चम स्थान में सूर्य हो, तो जनों को शत्रु और रोगों से पीड़ा कहनी चाहिए।

षष्ठ स्थान में सूर्य हो, तो रोग, शत्रु एवं शोक का नाश होता है।

सप्तम स्थान में सूर्य हो, तो यात्रा से निवृत्ति और कुक्षि में रोग होते हैं।

अष्टम स्थान में सूर्य हो, तो स्त्री से विमुखता, राजा से भय एवं रोग सम्भव कहना चाहिए।

नवम स्थान में यदि सूर्य हो, तो आपत्ति, दीनता, भयानक बीमारी और आर्थिक या व्यावसायिक हानि होती है।

दशम स्थान में सूर्य होने पर कार्यों में सफलता और सभी जगह जीत होती है।

यदि एकादश स्थान में सूर्य हो, तो पदप्राप्ति, वैभव लाभ एवं शरीर में आरोग्यता आती है।

यदि द्वादश स्थान में सूर्य हो, तो व्यापार में सफलता और अन्य शुभफल प्राप्त होता है।

चन्द्रमा गोचर फल

जन्म राशि में यदि चन्द्रमा हो, तो मिष्ठान्न, शय्या एवं वस्त्र आदि की प्राप्ति होती है।

द्वितीय स्थान में चन्द्रमा हो, तो सभी कार्यों में विघ्न, मान एवं अर्थ का नाश होता है।

यदि तृतीय स्थान में चन्द्रमा हो, तो स्त्री, वस्त्र, सुख और धन की प्राप्ति और विजय मिलती है।

चतुर्थ स्थान में हो, तो भय उत्पन्न होता है।

तथा पञ्चम स्थान में चन्द्रमा होने पर रोग, शोक और मार्ग (यात्रा) में विघ्न बाधायें आती हैं।

यदि षष्ठस्थान में चन्द्रमा हो, तो सुख एवं धन की प्राप्ति तथा शत्रु और रोग का नाश होता है।

सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो, तो अच्छा भोजन, सम्मान, धन, शयनसुख तथा आदेश देने का अवसर मिलता है।

तथा अष्टम स्थान में चन्द्रमा हो, तो भय लगता है।

यदि नवम स्थान में चन्द्रमा हो, तो बन्ध, भय, एवं कुक्षि में रोग होते हैं।

दशम स्थान में चन्द्रमा होने पर राजप्रवृत्ति तथा लाभस्थान में हो, तो बन्धु एवं अच्छी मात्रा में धन मिलता है।

किन्तु व्ययस्थान में चन्द्रमा हो, तो अनेक प्रकार के दोष और व्यय होते हैं।

मंगल गोचर फल

यदि जन्मराशि में मंगल हो, तो चोट लगना तथा वह यदि द्वितीय स्थान में हो, तो राजा, चोर, अग्नि एवं शत्रुओं से पीड़ा, रोगों से दुर्बलता और चिन्ता होती है।

तृतीय स्थान में मंगल होने पर बल, धन एवं गुह्यकों की कृपा मिलती है तथा शत्रुओं का मर्दन होता है तथा चतुर्थ स्थान में होने पर दुष्टों की संगति, उदर रोग, ज्वर और शरीर से रक्तस्राव होता है।

पञ्चम स्थान में मंगल हो, तो शत्रु, व्याधि भय तथा पुत्र के द्वारा शोक प्राप्त होता है और षष्ठ स्थान में मंगल हो, तो तांबा, सोना आदि का लाभ, कलह भय एवं विद्वानों से वियोग होता है।

सप्तम स्थान में मंगल होने पर कुक्षि रोग एवं पत्नी से कलह होता है तथा अष्टम स्थान में मंगल होने पर अंग-भंग होने से शरीर रक्तरञ्जित होता है तथा मनोबल एवं सम्मान घटता है।

यदि नवम स्थान में मंगल हो, तो धननाश, पराजय और व्याधि होती है। दशम स्थान में होने पर अनेक प्रकार के लाभ एवं लाभ स्थान में हो, तो जनपद आदि का अधिकार (स्वामित्व) प्राप्त होता है।

व्यय स्थान में मंगल होने पर अनेक अनर्थों की उत्पत्ति, अनेक प्रकार से अपव्यय, पित्त आदि रोगों से पीड़ा एवं नेत्र विकार होता है।

बुध गोचर फल

यदि जन्म राशि में बुध हो, तो अपने बन्धुओं से कलह, दुर्वचन एवं धन का अपहरण होता है। द्वितीय स्थान में होने पर धन की वृद्धि और तृतीय स्थान में होने पर राजा एवं शत्रु से भय होता है।

यदि चतुर्थ स्थान में बुध हो, तो धनलाभ, मित्र या कुटुम्ब की वृद्धि होती है और पञ्चम स्थान में होने पर स्त्री एवं पुत्रों से विवाद और विरोध होता है।

यदि षष्ठ स्थान में बुध हो, तो विजय, उन्नति एवं भाग्योदय होता है। सप्तम स्थान में होने पर विरोध और अष्टम स्थान में होने पर विजय, पुत्र, वस्त्र, धन एवं निपुणता की प्राप्ति तथा हर्ष एवं उदय होता है।

यदि नवम स्थान में बुध हो, तो रोगकारक होता है और दशम स्थान में होने पर शत्रुनाश, धनलाभ, स्त्रीभोग, मधुर वाणी एवं अनेक प्रकार से सुखदाता और उत्कर्ष करने वाला होता है।

यदि लाभ स्थान में बुध हो, तो पत्नी, पुत्र एवं मित्रों से मिलन तथा स्थायी संतुष्टि प्रदान करने वाला होता है और व्यय स्थान में शत्रुओं से पराजय तथा रोगों से पीड़ा देने वाला होता है।

गुरु गोचर फल

यदि जन्म राशि में गुरु हो, तो स्थानहानि, धननाश, कलह एवं बुद्धि में जड़ता लाता है। लेकिन द्वितीय स्थान में होने पर धन का लाभ, शत्रुनाश एवं स्त्रियों का भोग कराने वाला होता है।

यदि पञ्चम स्थान में गुरु हो, तो घोड़ा, धन, पुत्र, स्वर्ण, रत्न, स्त्री सहवास एवं मकान की प्राप्ति होती है; परन्तु षष्ठ स्थान में गुरु होने पर साधन होने पर भी सुख नहीं प्राप्त होता है।

यदि सप्तम स्थान में गुरु हो, तो बुद्धि एवं वाणी में चतुरता, आर्थिक उन्नति तथा स्त्रीभोग की प्राप्ति होती है और अष्टम स्थान में होने पर तीव्र दुःख, बन्धन एवं सतत् यात्रा के असवर मिलते हैं।

नवम स्थान में गुरु होने पर पत्नी, पुत्र एवं धन का लाभ, निपुणता तथा कार्य एवं आदेश में सफलता मिलती है। दशम स्थान में गुरु होने पर स्थान एवं धन आदि नष्ट होता है।

गुरु यदि लाभ स्थान में स्थित हो, तो अपेक्षित धन का लाभ, दूसरों से स्थान की प्राप्ति आदि सम्भव होता है।

परन्तु व्यय स्थान में गुरु की स्थिति होने पर दीर्घकालीन यात्रा, उग्रता, दु:ख देने वाली घटनायें आदि सम्भव होती है।

शुक्र गोचर फल

यदि जन्म राशि में शुक्र हो, तो मिष्टान्न भोजन, प्रेयसी का संगम, कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तु, शयन एवं वस्त्र आदि की प्राप्ति होती है।

यदि तृतीय स्थान में शुक्र हो, तो आदेश, धन, पद भौतिक पदार्थ सम्मान एवं वस्त्र को नष्ट करता है।

परन्तु चतुर्थ स्थान में शुक्र होने पर बन्धु और नवयुवति में अनुरक्ति तथा इन्द्र के समान भोग्येय भोग मिलता है।

यदि पञ्चम स्थान में शुक्र हो, तो धन, पुत्र एवं गुरुजनों से सन्तोष की प्राप्ति होती है।

यदि षष्ठ स्थान में हो, तो पराजय और सप्तम स्थान में होने पर स्त्री के कारण उपद्रव होता है।

यदि अष्टम स्थान में शुक्र हो, तो मन्दिर, घरेलू वस्तुएँ, स्त्री, रत्न एवं भोग आदि की प्राप्ति होती है।

नवम स्थान में हो, तो धन और धर्म का लाभ, स्त्री सम्भोग तथा सुख आदि मिलते हैं।

दशम स्थान में स्थित शुक्र कलह और अपमानजनक स्थिति उत्पन्न करने वाला होता है।

लाभ स्थान में स्थित होकर वह मिष्टान्न सुगन्धि एवं बन्धुओं से मिलाने वाला होता है।

व्यय स्थान में स्थित होकर शुक्र बहुत धन, वाहन एवं वस्त्र आदि की प्राप्ति का कारण होता है।

शनि गोचर फल

यदि जन्मराशि में शनि हो, तो विष एवं अग्नि से भय, सम्बन्धी की मृत्यु, देशत्याग, पुत्र, पारिवारिक लोग एवं धन की हानि और दूर देश की यात्रा होती है।

यदि धन स्थान में शनि हो, तो धन, सुख एवं शरीर की कान्ति मन्द होने लगती है, किन्तु तृतीय स्थान में शनि हो, तो हाथी आदि उपयोगी पशु, धन, आरोग्य एवं अन्य मनोरथ पूर्ण होते हैं।

यदि चतुर्थ स्थान में शनि हो, तो मन में कुटिलता, स्त्री एवं अपने निकट

सम्बन्धियों का वियोग होता है तथा पञ्चम स्थानं में शनि होने पर सब लोगों के साथ कलह और पुत्र का वियोग होता है।

यदि नवम स्थान में शनि हो, तो शत्रुता, अपने धर्म की हानि और हृदय रोग होता है, परन्तु दशम स्थान में शनि हो, तो विद्या, कीर्ति एवं धन नष्ट होता है तथा नया कार्य का आरम्भ होता है।

यदि लाभ स्थान में शनि हो, तो परस्त्री से सम्भोग, धन, लाभ, प्रताप वृद्धि और प्रगति होती है तथा व्यय स्थान में शनि होने पर परम्परा से दुःख की प्राप्ति एवं जल या समुद्र में डूबने का भय होता है।

इस प्रकार द्वादश स्थानों में गोचर क्रम से ग्रहों कर परिभ्रमण शुभ और अशुभ फल देने वाला होता है।

शुभ स्थान या अनिष्ट स्थान में स्थित होने पर मन्त्र, रत्न, औषधि, दान एवं स्नान आदि उपायों से व्यक्ति को इष्ट फल देकर ग्रह मुदित अर्थात् सन्तुष्ट करने वाला होता है।

ग्रहफलदान काल और दृष्टि फल

यहाँ ग्रहों के फल प्रदान करने के समय को कहा जा रहा है। ग्रहों में सूर्य और मंगल राशि के प्रारम्भ में ही अपना शुभ या अशुभ फल प्रदान करने वाले होते हैं।

गुरु और शुक्र राशि के मध्य में; चन्द्रमा और शनि राशि के अन्त में और बुध राशि में जितने समय रहता है उतने समय फल देता है।

अनिष्ट स्थान में स्थित परन्तु अन्य शुभग्रहों से दृष्ट ग्रह शुभ फल देने वाला होता है। शुभ स्थान में स्थित किन्तु पापग्रहों से दृष्ट ग्रह अपना पूरा शुभ फल नहीं दे पाता है।

ग्रह की शान्ति

सूर्य और मंगल लाल, चन्द्रमा और शुक्र सफेद, शनि काली, गुरु पीली तथा बुध हरी वस्तुओं को धारण करने से; इस रंग के पुष्प, वस्त्र आदि सामग्री द्वारा आराधना करने से; इन रंगों के रत्न धारण करने से, वस्त्र पहनने से तथा स्तुति, नमस्कार एवं ग्रहों के मन्त्रों से हवन करने आदि-आदि प्रकार से ग्रह शान्त होते हैं।

ग्रहरत्न और दान वस्तु तथा कर्म

इस प्रकार अनिष्ट स्थान में स्थित ग्रहों के शान्त्यर्थ धारण करने योग्य रत्न, दान की वस्तुएँ तथा वर्जित वस्तुऐं बतलाये जाते हैं।

ग्रहों के रत्न क्रम से कहा जा रहा है।—सूर्य का माणिक्य, चन्द्रमा का मोती, मंगल का मूंगा, बुध का गारुड़ अर्थात् पन्ना, गुरु का पुखराज, शुक्र का हीरा, शनि का नीलम, राहु का गोमेद और केतु का वैदूर्य रत्न होता है।

सूर्य की प्रसन्नता के लिए कपिला गौ, चन्द्रमा के लिए शंख, मंगल के लिए लाल वर्ण वाला वृषभ, बुध के लिए सोना, गुरु के लिए पीत वस्त्र, शुक्र के लिए सफेद घोड़ा एवं चाँदी, शनि के लिए कृष्ण गौ, राहु के लिए भेड़ और केतु के लिए भेड़ एवं हाथी दान करना चाहिए।

प्रतिदिन देवता एवं ब्राह्मणों की वन्दना से, नित्य गुरु की आज्ञा का पालन करने से, साधुओं के उपदेश से, वेदध्वनि सूनने से, होम एवं होता के दर्शन से, शुद्ध विचारों से तथा दान से ग्रह किसी ऐसे व्यक्ति को सम्भवतया कभी पीड़ा नहीं देते हैं।

प्रतिदिन स्नान से, बौधायनोक्त अभिषेक से, ग्रहों की कथित औषधियों के स्नान से, ग्रहण एवं व्यतिपात आदि के दिन तीर्थ स्नान से ग्रहों की पीड़ा नहीं होती है।

प्रतिकूल गोचर वर्ज्यकृत्य

अस्तव्यस्त दिनचर्या, शिकार, दु:साहसिक कार्य, विदेश यात्रा, हाथी घोड़े के सवारी एवं दूसरों के घर जाना; ये सब कार्य ग्रहों की प्रतिकूलता की स्थिति में राजा को निश्चयपूर्वक वर्जित करना चाहिए।

वेध विचार

तत्पश्चात् फल का निर्णय करने के लिए ग्रहों के गोचर स्थान, वेध एवं प्रतीप वेध बतलाये जाते हैं—

अष्टक वर्ग में चन्द्रमा से अभीष्ट स्थान गोचरीय ग्रह से विद्ध हो या अन्य ग्रह पर वेध हो, तो शुभ फल नहीं करता।

यदि गोचर में वेध राशि में अन्य ग्रह आ जाय तो वेधयुक्त नक्षत्र में स्थित ग्रह शुभ फल देता है। वेध एवं वामवेध; ये वेध के दो भेद होते हैं।

इस प्रकार जन्म राशि से लाभ स्थान में सभी ग्रह; तीसरे, दशवें और छठे स्थान में सूर्य; तीसरे और छठवें स्थान में मंगल एवं शनि; तीसरे, पहिले, दसवें, दूसरे और छठे स्थान में चन्द्रमा, छठे एवं सातवें तथा ग्याहरवें को छोड़ कर अन्य स्थान में शुक्र; पाँचवें, छठे, सातवें एवं दूसरे स्थान में गुरु; छठवें, दूसरे, आठवें, चौथे और दसवें स्थान में बुध शुभ होता है।

यदि ये ग्रह गोचर पद्धति के अन्तर्गत अन्य ग्रहों से विद्ध न हो।

सूर्य ११, ३, १० एवं ६ठे स्थान में हो, तो शुभदायक होता है; किन्तु वह ५, ९, ४, एवं १२वें स्थान में स्थित शनि को छोड़कर अन्य ग्रहों से विद्ध न हो, तो शुभ होता है।

चन्द्रमा ७, १, ६, ११, १० ३ और २रे में शुभ फल देता है यदि वह बुध को छोड़कर २, ५, १२, ८, ९ एवं ४थे स्थान में स्थित ग्रहों से विद्ध न हो।

यदि १२, ५ एवं ९वें स्थान में स्थित ग्रहों के वेध से रहित मंगल ३, ११ एवं ६ठे स्थान में हो, तो शुभ होता है।

इसी प्रकार शनि भी ३, ६, ११ स्थानों में शुभ होता है और १२, ५, ६ स्थानों में स्थित ग्रहों से विद्ध होने पर शुभ नहीं होता है। पिता और पुत्र होने से शनि को सूर्य द्वारा वेध नहीं होता है।

यदि बुध २, ४, ६, ८, १० और ११वें स्थान में स्थित हो और ५, ३, ९, १ और ८वें स्थान में स्थित अन्य ग्रहों से विद्ध न हो, तो शुभदायक होता है।

यदि गुरु २, ११, ९, ५ एवं ७वें स्थान में स्थित हो तथा १२, ८, १०, ४ एवं ३रे स्थान में स्थित ग्रहों से विद्ध न हो, तो शुभदायक होता है।

यदि शुक्र १, २, ३, ४, ५, ८, ९, १२ एवं ११वें स्थान में स्थित हो तथा ८, ७, १, १०, ९, ५, ११, ६ एवं ३रे स्थान में स्थित ग्रहों से विद्ध न हो, तो शुभ होता है।

इस प्रकर वेध युक्त ग्रह गोचर में अपना शुभ फल नहीं देते; किन्तु गोचर में अशुभ ग्रह भी वाम वेध की पद्धति से शुभ फल देते हैं।

शत्रु से दृष्ट, शत्रु या नीच राशि में स्थित शुभ ग्रह गोचर में शुभ हो कर भी शुभ फल नहीं करता।

विपरीत वेध

गोचर के फल में परिवर्तन करने योग्य दो कारण रूप वेध एवं विपरीत वेध शास्त्र में बतलाये गये हैं। अब उनके बारे में कहते हैं—

जन्म राशि से ३ एवं ९, ६ एवं १२, १० और ४, ११ एवं ५ दो-दो राशियाँ सूर्य की वेध-वेधक राशियाँ कही गयी हैं।

जन्म राशि से १ एवं ५, ३ एवं ९, ६ एवं १२, ७ एवं २, १० एवं ४ तथा ११ एवं ८ ये दो-दो राशियाँ उपरोक्तवत् चन्द्रमा की वेध-वेधक राशियाँ होती हैं।

जन्मराशि से ३ एवं १२, ६ एवं ९, ११ एवं ५ राशियाँ मंगल और शनि

की वेध्य-वेधक राशियाँ बतलायी गई हैं।

४ एवं ३, ६ एवं ९, ८ एवं १, १० एवं ८, ११ एवं १२ राशियाँ पूर्ववत् बुध की वेध्य-वेधक राशियाँ होती हैं।

२ एवं १२, ५ एवं ४, ९ एवं १०, ७ एवं ३, ११ एवं ८ राशियाँ निश्चित रूप से पूर्ववत् गुरु की वेध्य-वेधक राशियाँ होती हैं।

जन्म राशि से १ एवं ८, २ एवं ७, ३ एवं १, ४ एवं १०, ५ एवं ९, ८ एवं ५, ९ एवं १०, ७ एवं ३, ११ एवं ८—ये दो-दो राशियाँ शुक्र की वेध्य-वेधक राशियाँ कहलाती हैं।

राहु एवं केतु के भी वेधत्रय शनि की तरह मानने चाहिए।

शुभ राशि में स्थित भी जो ग्रह अन्य ग्रहों से विद्ध हो वह अपना गोचर सम्बन्धी फल नहीं देता है।

शनैश्चर सूर्य को अथवा सूर्य शनैश्चर को वेधित नहीं करता।

इसी प्रकार चन्द्र एवं बुध परस्पर एक-दूसरे को वेधित नहीं करते। ऐसा वेध के तत्त्व को जानने वाले आचार्यों ने बतलाया है।

उपरोक्त वेधों से विद्ध ग्रह गोचर में अपना फल नहीं दे पाते। यहाँ विशेषता यह है कि यदि पापग्रह भी विपरीत वेध से वेधित हों, तो शुभ हो जाते हैं।

उपरोक्त प्रकार वेध की विधि, बलाबल एवं ग्रह गोचर के गुण-दोषों को न जानते हुए जो मूर्ख अर्थात् अल्प बुद्धि वाले जन फलादेश करते हैं, उनका फलादेश सदैव निष्फल होता है।

इस प्रकार उपरोक्त पद्धति से जन्म राशि से ग्रह गोचरजन्य फल कहना चाहिए। गोचर का यह परम रहस्य युक्त पद्धति महर्षि वशिष्ठ ने प्रवर्तित किया है।



कर्मविपाक निरूपण

अब कर्मविपाक में बतलायी गयी रोग शान्ति की विधियों को कहा जा रहा है, जिनके विषय में पहले ही १३वें अध्याया में चर्चा की जा चुकी है।

तपेदिक रोग कारण और शान्ति

ब्राह्मण की हत्या, गुरुजनों से द्वेष, संक्रमण-ग्रहण आदि पर्व के समय स्त्रीसम्भोग; ये सब तपेदिक (टी.बी.) होने के कारण हैं।

शिव सहस्रनाम या रुद्र सूक्त का जप, चन्द्र एवं अग्नि के वैदिक मन्त्रों से हवन एवं इन दोनों के सूक्तों का जप इसकी शान्ति के लिए करना-कराना चाहिए।

कमजोरी कारण और शान्ति

इस प्रकार स्मृति ग्रंथों में कमजोरी का कारण अन्न की चोरी करना को कहा गया है। इसकी शान्ति के लिए शंकु के आकार की स्वर्ण की प्रतिमा दान करनी चाहिए।

कुष्ठ रोग कारण और उसकी शान्ति

ब्राह्मण की हत्या, गुरु-पत्नी के साथ सम्भोग, निन्दनीय आचरण एवं विश्वास करने वाले व्यक्ति को धोखे से जहर देना कुष्ठ रोग के कारण हैं।

अत: उसकी शान्ति के लिए रौद्रायु नामक सूक्त का जप, सोने की सूर्य और वृष की प्रतिमा का दान तथा विधिवत् कूष्माण्ड मन्त्रों से हवन करना चाहिए।

श्वेतकुष्ठ में भी कुष्ठ की तरह प्रायश्चित्त करना चाहिए। इसके होने का कारण कांसा रूई, नमक एवं वस्त्रों का अपहरण करना होता है।

विसर्प रोग-कारण एवं शान्ति

विसर्प रोग होने का कारण सर्प की हत्या या सर्प के द्वारा किसी की हत्या होना, कहा गया है।

उसकी शान्ति के लिए स्मृति ग्रन्थों में नागदान की विधि कही गई है। इस रोग में शरीर पर सर्पाकार एग्जीमा जैसा संक्रमण होता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा ग्रन्थों में इस रोग के कई प्रकार बतलाए गए हैं।

पाण्डुरोग-कारण और उसकी शान्ति

देवता और ब्राह्मणों के धन का अपहरण करना तथा अपथ्य भोजन पाण्डु रोग का कारण बतलाया गया है।

इस रोग की शान्ति के लिए कूष्माण्ड मन्त्रों से हवन और स्वर्णदान करना श्रेयस्कर है।

अतिसार-संग्रहणी कारण तथा शान्ति

यहाँ वापी, कूप आदि को नष्ट करना आदि भौतिक कारणों से अतिसार का

होना कहा गया है। उसकी शान्ति के लिए रुद्र एवं वरुण सूक्त का जप करने के लिए श्रेष्ठ मुनियों ने कहा है।

अपथ्य के सेवन से अतिसार और उसके कारण संग्रहणी होता है। अतिसार की शान्ति के लिए बतलाया हुआ कृष्ण गौ के साथ गोपालक का दान करना संग्रहणी को भी शांत करता है।

मुखरोग–कारण और शान्ति

दूसरे को होंठ काटना या उसका दाँत तोड़ना, जीभें काटना, गुरु की बात का उल्लंघन करना, कठोर और झूठ बोलना तथा झूठी गवाही देना; ये सब मुखरोग के कारण हैं।

इसकी शान्ति के लिए कूष्माण्ड मन्त्रों से होम, गायत्री मन्त्र का जप, सर्वौषधि, सोना एवं धान्य स्पर्श कर दान करना चाहिए।

बवासीर रोग–कारण और शान्ति

ब्राह्मण, विद्वान् एवं अन्धों के धन का अपहरण, यात्रा आदि के समय में स्त्रीसम्भोग एवं पशुओं की हत्या बवासीर रोगकारक हैं।

स्वर्ण एवं गौ का दान इसका शमन करता है।

नेत्ररोग–कारण व शान्ति

मनुष्यों के नेत्र रोग का कारण उसकी कृतघ्नता, उसके द्वारा छल से परस्त्री को देखना एवं दूसरों की आँख फोड़ना आदि को बतलाए गए हैं।

इसकी शान्ति के लिए मूँग, खीर, सोना एवं घी का दान, अम्बकरक्षक अणु हवन करना अथवा जप करना श्रेयस्कर माना गया है।

रतौंधी का उपाय

रतौंधी अर्थात् रात्रि में दिखाई नहीं देना का कारण गायों की आँखें फोड़ना है। इसका प्रायश्चित्त गोपालदान करने को कहा गया है।

कर्ण रोग–कारण और शान्ति

चुगलखोरी, दूसरे का कान या काम बिगाड़ना कर्णरोग का कारण कहा गया है।

इसके शान्त्यर्थ सुवर्ण, अनाज, भूमि एवं कम्बल का दान तथा सूर्य के वैदिक मन्त्रों का जप करना को श्रेयस्कर कहा गया है।

जीभ–रोग व शान्ति

गुरुजनों से कटुभाषण, झूठ बोलकर दूसरों को दुःख देना एवं दूसरों की जिह्वा काटना जिह्वारोग के कारण हैं।

इसके शान्त्यर्थ अन्न एवं औषधियों का दान, कूष्माण्ड होम, राहु के मन्त्रों का जप तथा ऋषियों के द्वारा कथित 'धनान्नदानम्' सूक्त का जप करना चाहिए।

वायु रोग व शान्ति

सभ्यजनों से निन्दा, माता, पिता एवं गुरु से द्वेष, अनाज की चोरी प्रभंजन रोग के कारण हैं।

उसकी शान्ति के लिए ताँबे का मृग, वस्त्र एवं अन्न का दान, अष्टापदसूक्त या शान्तिकारक वायु की ऋचाओं का जप करना चाहिए।

एक विशेष रोग जिसे, जानना चाहिए। इस विशेष रोग के होने का कारण कहा जा रहा है—कन्या, पशु, विधवा एवं दासी के साथ सम्भोग, अपथ्य भोजन, विश्वस्त व्यक्ति को जहर देकर या शूल से मारना इस रोग के कारण होते हैं। इसकी शान्ति के लिए तिल एवं कमल दान तथा यथाशक्ति शूल अर्पण करना चाहिए।

गुल्म रोग व शान्ति

गुरु से अधिक शत्रुता या उनको बन्धन में डालना, ईर्ष्या करना तथा अनाज की चोरी गुल्म रोग के कारण हैं।

उसकी शान्ति के लिए इन्द्राग्नि सूक्त से हवन, रुद्र एवं मरुत सूक्त का जप, त्र्यक्षर मंत्र का जप या गायत्री मन्त्र का जप करना तथा गणपति का दान करना श्रेष्ठ है।

प्रमेह रोग व शान्ति विचार

तापसी, पशु, कन्या, गुरुपत्नी एवं विधवा के साथ सम्भोग, गुरुजनों से द्वेष, ब्राह्मण की चोरी, सोने की चोरी तथा दूसरों के हृदय को चोट पहुँचाना आदि सब कारण प्रमेह उत्पन्न करने के कारण हैं।

इन कारणों के साथ माता, सास, भौजाई के साथ सम्भोग करने से मधुमेह आदि रोग होते हैं। इसके शान्त्यर्थ सर्वरोग नाशक हवन तथा सुवर्ण, गौ और जल का दान करना चाहिए।

पकवान का दान अनेक प्रकार के मेह रोगों को शांत करता है। इसी प्रकार वरुण की ऋचाओं का जप भी मेह रोगों को शान्त करता है।

उदर रोग व शान्ति

महोदर रोग का कारण गुरुपत्नी से सम्भोग एवं गर्भपात कराना है। इसकी शान्ति के लिए रुद्र एवं वरुण सूक्त का जप तथा जलदान एवं मकरदान करना चाहिए।

पथरी-मूत्रकृच्छ्र रोग शान्ति

कन्या, पशु एवं विधवा आदि के साथ सम्भोग करने से शर्करा संज्ञक अश्मरी (पथरी) होती है, उक्त कारणों के साथ ब्राह्मणों को पीड़ा देने और अपमान करने से 'मूत्रकृच्छ्र' रोग होता है। मूत्र त्याग में पथरी या किसी अन्य कारण से कष्ट होना मूत्रकृच्छ्र कहलाता है।

इसके शान्त्यर्थ तिल एवं पद्मदान, अग्नि में होम तथा तद्-तद् देवतओं की शान्तिकर ऋचाओं का जप करना श्रेयस्कर कहा गया है।

भगन्दर रोग शान्ति

अपने बड़ों की एवं स्वामी आदि की आज्ञा का उल्लंघन और गुरु पत्नी के साथ सम्भोग भगन्दर का कारण होता है।

इसके शान्त्यर्थ रत्न एवं चाँदी या सोने का हाथी और सोना दान करना श्रेयस्कर है। गायत्री मन्त्र, सूर्य के वैदिक मन्त्र एवं रुद्र सूक्त का जप करना चाहिए।

विद्रधि (कैंसर या ट्यूमर) रोग-कारण एवं शान्ति

रोगी जनों को विद्रधि रोग होने का कारण फलों का अपहरण करना कहा गया है।

उसकी शान्ति के लिए स्मृति ग्रन्थों में बताया गया 'आम्रदान' प्रयोग विशेष करना श्रेष्ठ है।

कण्ठ रोग शान्ति

सार्वजनिक सम्पत्ति का अपहरण कण्ठरोग का कारण कहा गया है।

इसके शान्त्यर्थ ग्रहशान्ति एवं रत्नदान करना उचित बताया गया है।

शिरो रोग शान्ति

ब्रह्मद्वेष शिरोरोग का कारण है; इस प्रकार से मुनियों ने कहा है।

इसके शान्त्यर्थ यज्ञोपवीतदान एवं प्रायश्चित्त करना चाहिए।

रक्त कैंसर-कारण एवं शान्ति विचार

पीपल आदि उत्तम वृक्षों को काटना या व्यर्थ में गौ हत्या करना असृग्दर का हेतु होता है।

इसके शान्त्यर्थ रत्नमयी गौ का दान करना चाहिए। यहाँ असृग् का अर्थ गाढ़ा खून या मज्जा है। इसका सड़ जाना उक्त रोग का लक्षण है।

अपस्मार (मिर्गी) रोग शान्ति

गुरु की हत्या एवं स्वामी की हत्या करने वाले जनों को अपस्मार रोग होता है।

इसके शान्त्यर्थ ऋषियों के स्मृतिग्रन्थों में प्रतिपादित सर्वरोगनाशक जप, दान एवं होम करना चाहिए।

उन्माद रोग शान्ति

बुद्धि की जड़ता, गुरुजनों की हत्या, भोगों के प्रति वितृष्णा, परायी स्त्रियों की इच्छा, जान बूझ कर कहने से मुकरना आदि उन्माद रोग के कारण बतलाये गये हैं।

उन्माद की शान्ति के लिए शास्त्रों में कहा गया प्रायश्चित्त एवं गज समर्पण करना चाहिए। ज्वर का कारण सर्प की हत्या, द्वेष एवं गुरुपत्नी से सम्भोग हैं।

इनके शान्त्यर्थ दुर्गा के मन्त्रों से हवन करना चाहिए।

चातुर्थिक (चौथैया) बुखार शान्ति

सर्दी एवं गर्मी से आने वाले चातुर्थिक ज्वर का हेतु सभी जीवों को कुत्तों से भयभीत करना कहा गया है।

इसके शान्त्यर्थ विष्णु एवं भगवान् शंकर का अभिषेक तथा दुर्गा का नवार्ण मन्त्र या रुद्रमंत्र का जप करना चाहिए।

दाहरोग शान्ति

दाहरोग का कारण गुरुपत्नी से सम्भोग आदि पापकर्म है।

उसकी शान्ति के लिए प्रायश्चित्त एवं जलदान करना चाहिए।

व्रणरोग शान्ति

शाक सब्जी आदि की चोरी, दूसरों के साथ विश्वासघात, दूसरों की हत्या, नीच स्त्री का संग और वृक्षों को काटना व्रण रोग के हेतु हैं।

इसके शान्त्यर्थ मणि का दान करना चाहिए।

हस्त-पाद व्रण शान्ति

हाथ में होने वाले व्रणों का कारण भ्रूणहत्या और पैर में होने वाले व्रणों का कारण गुरु पत्नी के साथ सम्भोग करना है।

इसके शान्त्यर्थ ब्राह्मणों को यथाशक्ति रत्नदान करना चाहिए।

सन्तानाभाव शान्ति

बच्चों की हत्या, अण्डा खाना, गुरुद्वेष, दूसरों के उत्तराधिकारितावश से द्वेष करना, प्राणियों से या किसी की माता से उसके बच्चों को अलग करना, मृगशावक की हत्या एवं पार्वण आदि श्राद्ध न करना आदि सब सन्तान न होने के कारण हैं।

इसकी शान्ति के लिए सोने की गौ का दान करना चाहिए।

अरुचि एवं छर्दि (उल्टियाँ) शान्ति

अरुचि एवं छर्दि का कारण विद्वानों ने विश्वासघात करने को कहा है। इसके लिए श्रद्धापूर्वक दान करना ही प्रायश्चित कहा गया है।

मूकता आदि स्वर सम्बन्धी रोगों का कारण वचन भङ्ग करना अर्थात् अपनी बातों से मुकर जाना, को कहा गया है।

इसकी शान्ति के लिए चाँदी की सरस्वती की प्रतिमा दान करना चाहिए।

कामिला रोग व शान्ति

पैरों एवं पात्रों को धोये बिना भोजन करना अन्धा होने का और अन्न का अपहरण करना कामिला रोग का कारण है।

इसके शान्त्यर्थ गरुड़ का दान करना चाहिए।

आँतों का बढ़ना (हार्निया) शान्ति

दूसरों के द्वारा समायोजित यज्ञ को भङ्ग करना आँतें बढ़ने का कारण है।

इसके लिए भगवान् विष्णु की प्रतिमा देनी चाहिए।

गुल्मादि रोग व वस्तु दान

गुल्म रोग के शान्त्यर्थ लोहे का दान, कुष्ठ की शान्ति के लिए चाँदी का दान, वात रोग होने पर दुग्ध दान तथा नेत्र रोग होने पर सोना डालकर घी दान करना चाहिए।

सम्पूर्ण शरीर में सूजन हो जाने के समय शय्या रूप चारपाई आदि का दान करना कहा गया है।

उदर अथवा आँत रोग की स्थिति में उसकी शान्ति हेतु भूमि का दान करना श्रेयस्कर होता है।

सर्वरोगशमनोपाय

अर्श, भगन्दर आदि रोग होने पर मणि या स्वर्ण का दान करना चाहिए या शिव सहस्रनाम का पाठ या शतरुद्री या रुद्रसूक्त का जाप करना चाहिए।

वैसे रुद्रसूक्त का जप सभी रोगों को शान्त करने वाला है। उसका अधिकाधिक जप करना चाहिए।

प्रत्येक प्रकार का रोग होने व आरोग्य एवं सम्पत्ति प्राप्ति के लिए यह जप करना ही चाहिए।

एवं राजा आदि सम्पन्न व्यक्ति को चिकित्सालय बनवाकर रोगियों को स्वस्थ करने का प्रयास करना चाहिए।

इनके अलावा अन्य लोग अन्न एवं औषधि आदि की व्यवस्था का प्रयत्न करें। यह कार्य महान् फलदायक कहा गया है।

सभी प्रकार के दानों में आरोग्य दान श्रेष्ठ है। अपने सुख के इच्छुक व्यक्तियों को इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए अर्थात् रोगियों की निःस्वार्थ सेवा निश्चय ही परम पुण्यकारी होता है।



देव-राजादि प्रश्न निरूपण

देवप्रश्न, राजप्रश्न, युद्धप्रश्न और तदनन्तर मृगयाप्रश्न आदि चारों प्रकार के प्रश्नों का अब विवेचन किया जा रहा है।

प्रथम देवप्रतिष्ठा

पवित्र स्थान (मण्डप) में बैठकर सकलीकरण आदि विधियों से हृदयस्थित ईश्वर की अर्चना कर और अपने गुरु एवं भगवान् गणपति को प्रणाम कर, तापस जीवन में परमोपयोगी गौ आदि का दान देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर उत्तम मुहूर्त्त एवं विशिष्ट लग्न में देवप्रतिष्ठा करना, कहा गया है।

प्रतिष्ठा एवं महाभिषेक के बाद प्रत्येक पर्व के दिन उत्सव मानना चाहिए। इसके बाद प्रतिवर्ष प्रतिष्ठा के दिन भी समस्त सम्पदा प्राप्ति करने हेतु उत्सव करना चाहिए।

यदि पूजा आदि काल में किसी प्रकार से पूजा में कमी रह गया हो अथवा देव स्थान किसी प्रकार से दूषित हो गया हो, प्रायश्चित्त द्वारा पुनः पहली की सी पवित्रता लायी जानी चाहिए।

देव दोष का कारण

देवस्थान में मृत्यु, जन्म, देवालय के आँगन एवं मण्डप आदि में मूत्र एवं रक्त आदि गिरना, पतितजनों का निवास तथा उल्लू, गिद्ध, करट, स्वान, गधा, ऊँट, कोल, सियार आदि जानवरों का प्रवेश, शोरगुल, रुदन, हँसी एवं अग्निकाण्ड, मूर्ति का गिरना, रथ आदि वाहनों का टूटना एवं पूजा का लोप या अन्य दृष्ट दोष होना, अन्य क्षुद्र देवताओं के मन्त्रों से यजन, निषिद्ध एवं दोषयुक्त पुष्प आदि से पूजा, मिर्च आदि निषिद्ध पदार्थों का अंगलेप आदि सब तन्त्र ग्रन्थों में प्रतिपादित छोटे एवं बड़े कारण देव दोष के निमित्त कहे गये हैं।

जहाँ भगवान् का मन्दिर और पूजा ये दोनों उनके स्वरूप के स्थूल और सूक्ष्म भेद हैं, अतः इन दोनों में आधार और आधेय भाव या इतर-इतर भाव मान कर दोष की कल्पना करनी चाहिए।

इन दोनों (मन्दिर एवं पूजा) में किसी एक में दोष उत्पन्न होने पर इन दोनों का शोधन करना चाहिए। देव स्थान में दोष हो, तो यदि वह दोष दूसरों के द्वारा न किया गया हो, तो स्थान का संशोधन एवं शुद्धोदक से प्रक्षालन आदि करना श्रेयस्कर कहा गया है।

जीर्णोद्धार और उसका महत्त्व

जिस मन्दिर में देव प्रतिमा स्थापित की गई है उस देवगृह अर्थात् मन्दिर के जीर्ण होने पर शीघ्र ही उसका जीर्णोद्धार करना चाहिए।

दु:स्थान में स्थापित देवमूर्ति विपत्तिदायक और अच्छे स्थान में स्थापित सम्पत्तिदायक कही गई है।

दोष उत्पन्न होने या पूर्वोक्त निमित्त दिखलाई देने या जीर्ण होने पर मन्दिर एवं प्रतिमा का शीघ्र जीर्णोद्धार करवाना सान्निध्य एवं सम्पत्ति को देने वाला होता है।

लग्न में सूर्य की स्थिति, लग्न पर उसकी दृष्टि एवं केन्द्र में सूर्य की स्थिति होना तथा लग्न में सिंह राशि का होना ये सब भगवान् शंकर के सान्निध्य प्राप्ति के सूचक होते हैं।

चन्द्रमा की लग्न में स्थिति, दृष्टि एवं केन्द्र में स्थिति तथा लग्न में कर्क राशि का होना माँ दुर्गा के सान्निध्य के सूचक होते हैं।

मंगल की उक्त स्थिति एवं लग्न में वृश्चिक राशि का होना भगवान स्कन्ध के सान्निध्य का सूचक होता है और इस प्रकार शनि की स्थिति माँ काली का, बुध की स्थिति भगवान् विष्णु का और बृहस्पति की स्थिति अन्य देवताओं का सूचक होता है।

देव प्रश्न विचार

देव क्षेत्र में मृत्यु, किसी निषिद्ध जीव का आगमन, पूजा एवं उत्सव आदि में कोई त्रुटि, निषिद्ध चूर्ण आदि का लेप, शीघ्र अर्थ लाभ एवं हानि आदि समस्त बातों को जानने के लिए देव प्रश्न विचार करने की पद्धति को कहते हैं। इस प्रश्न में अधोलिखितानुसार तद्-तद् भावों से फल का विचार करना चाहिए।

देवप्रश्न में भावों से वस्तु विचार

लग्न आदि द्वादश भाव क्रमशः सान्निध्य, देवस्व, सेवक, वाहन, मूर्ति, देवकोप, आभूषण, समर्पित विविध पदार्थ, क्षेत्राधिपति, विहित कर्म, धनागम एवं धननाश के परिचायक होते हैं।

अन्य प्रकार से विचार

लग्न से बिम्ब (प्रतिमा), अष्टमभाव से अर्चक या सेवक आदि, पञ्चम भाव से धर्म एवं अनुयायी, तृतीय भाव से सान्निध्य, षष्ठभाव से समर्पित वस्तु एवं द्वितीय भाव से भाव शुद्धि का विचार करने के लिए कहा गया है।

दशम भाव से पुजारी, एकादश भाव से माहात्म्य, चतुर्थ भाव से क्षेत्र, व्यय

भाव से आचार्य एवं सप्तम भाव से सुख तथा जनपद का विचार देवप्रश्न के प्रसङ्ग में करना चाहिए।

लग्न से बिम्ब, अष्टम से सेवक, सान्निध्य एवं पूजा, चतुर्थ भाव से मन्दिर एवं गर्भोपगृह, नवम भाव से पुण्य, द्वितीय भाव से धन लाभ एवं षष्ठभाव से चोर आदि का शुभ एवं पापग्रहों की युति और दृष्टि के अनुसार ठीक तरह से विचार कर फल कहना चाहिए।

देव प्रश्न में भावों के विचारणीय वस्तु के निर्धारण करने में अनेक मत हैं। अब सभी मतों के अनुसार निर्धारण बतलाते हैं।

अर्थात् सान्निध्य, क्षेत्र एवं बिम्ब इन तीनों का लग्न से तथा निधि, कोष, धन, वाहन एवं रक्षकों का विचार द्वितीय भाव से करना चाहिए।

तृतीय भाव से निवेद्य एवं परिचारकों का विचार करना चाहिए। चतुर्थ भाव से प्रासाद मण्डप आदि एवं उपगृह, वाहन, क्षेत्र एवं प्रदेश आदि का विचार करना चाहिए। पञ्चम भाव से सान्निध्य एवं बिम्ब का विचार करना चाहिए।

अशुद्धि, शत्रु एवं चोरों का विचार षष्ठभाव से करना चाहिए और जनपद एवं आभूषणों का विचार सप्तम भाव से करना चाहिए।

सान्निध्य, निवेद्य एवं परिजन का तथा गुण-दोष का निरूपण अष्टम भाव से करना श्रेष्ठ कहा गया है।

नवम भाव से पुण्य क्षेत्र तथा क्षेत्रेश का तथा दशम भाव से नित्यकर्म, उत्सव एवं पुजारियों का विचार किया जाता है।

पुण्य एवं धन लाभ का विचार एकादश भाव से तथा धननाश, व्यय एवं आचार्य का विचार व्यय भाव से करने को कहा गया है।

भावफल ज्ञान पद्धति

लग्न आदि द्वादश भावों में से जिन भावों में शुभग्रह हों उनके पूर्वोक्त सान्निध्य आदि विचारणीय वस्तुओं की अभिवृद्धि होती है तथा जिन भावों में पापग्रह हों उनसे सम्बन्धित विचारणीय वस्तुओं की हानि या अधिक दोष बतलाना चाहिए।

लग्न भाव में स्थित मंगल से बिम्ब छिन्न-भिन्न होता है। इस भाव में स्थित शनि से जीर्णता तथा राहु एवं गुलिक होने पर डुण्डुभ आदि बिम्ब का स्पर्श करते हैं।

वहाँ केतु होने से निषिद्ध चूर्ण का प्रयोग, खरसंज्ञक अंश होने पर मिर्च का लेपन और व्यय स्थान में यदि कोई पापग्रह हो, तो अंग में विकलता जाननी चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ भाव में शनि हो, तो प्रासादगत मण्डप के द्वार में एक

शिखर में जीर्णता बतलानी चाहिए। वहाँ सूर्य और मंगल हों, तो दाह (अग्नि से जलना), गुलिक हो, तो पापी मनुष्यों का आगमन तथा दो पापग्रह हों, तो पतित एवं अन्त्यजों का आगमन कहना चाहिए।

तृतीय या अष्टम भाव पापयुक्त हो, तो नैवेद्य को दोषपूर्ण जानना चाहिए। उपरोक्त भावों में शनि होने से नैवेद्य हीन (निर्धारित मात्रा से कम), मंगल होने से रखा हुआ तथा राहु, गुलिक एवं केतु होने से शव आदि के स्पर्श से दोषयुक्त समझना चाहिए।

नवम भाव यदि पापयुक्त हो और क्षेत्राधिपति एकाधिक हों, तो उनके नक्षत्रानुसार उपरोक्त दोष कहना चाहिए।

उक्त विधि से आचार्य पुजारी एवं उनके सेवक आदि को दोष की सम्बन्धी अनुभव के बारे में कहना चाहिए।

लग्न से पञ्चम, प्रथम एवं अष्टम स्थान में ही उनके ही स्वामी अर्थात् पञ्चमेश, लग्नेश एवं अष्टमेश परस्पर सम्बन्धी हों, तो अत्यन्त तेजस्वी बिम्ब का प्रतिदिन पूर्ण सान्निध्य होता है।

सप्तम राशि में शुभ ग्रह शुभ फलदायक होते हैं। इस राशि में नीच या शत्रु राशिगत ग्रह अथवा पापग्रह हो, तो दीप एवं आभूषणों की हानि कहनी चाहिए। दशम स्थान में उपरोक्त प्रकार की स्थिति होने पर पूजा, पूजा के साधन या उत्सव आदि में त्रुटि की कल्पना कर फल कहनी चाहिए।

लग्न भाव से और उसके गुणों से ही अष्टबन्ध का विचार करना चाहिए। कुछ आचार्यों का मत है कि चतुर्थ भाव एवं उसमें स्थित चर-स्थिर आदि राशियों के द्वारा उसका विचार चाहिए।

जिससे बिम्ब का विचार करते हैं वह भाव चरराशिगत हों, तो बिम्ब हिलती बतलानी चाहिए। यदि वह अधोमुख राशि में हो, तो बिम्ब का पतन होता है। शुभग्रहों का उदय हो और यदि अभीष्ट तथा अभिमत भाव गुरु से दृष्ट हो, तो देव का अनुग्रह कहना चाहिए।

पापग्रहों से दृष्ट अथवा युक्त एवं अनिष्ट स्थान में स्थित सभी ग्रह देवकोप के उद्बोधक होते हैं। वह कोप अशुभ भाव के कारण अथवा उस भाव के प्रति अशुभ प्रभाववश कहना चाहिए।

प्रश्न के समय पूर्वोक्त जो फल मनुष्यों को कहा गया है वह सब फल यहाँ भी कहना चाहिए।

भाव में क्रूर ग्रह होने से उपरोक्त फल मृत्यु आदि निमित्त जन्य क्षेत्राधिपति आदि में अशुभत्व तथा सरोवर आदि में गौ आदि की मृत्यु कहनी चाहिए।

दैव की अनुकूलता के लिए पूर्व प्रसङ्ग में बताये गये उपाय यहाँ भी जानने चाहिए। यहाँ अर्थनाश होने से सम्पत्तिदायक और अशुद्धि होने पर शुद्धिकारक कार्य करने चाहिए।

गणनाथ होम भाग्यवृद्धि के लिए, वैदिक सूक्तों का जप आपत्तियों से मुक्ति और धन-धान्य की वृद्धि के लिए करना चाहिए तथा शुद्धि के लिए गव्यपदार्थों अर्थात् गौ का दूध, दही, घी, गोबर एवं गोमूत्र से अभिषेक करना चाहिए।

राजप्रश्न में भावों से वस्तु

यहाँ लग्न आदि बारह भाव क्रमशः मूर्ति (स्वरूप), कोष, योद्धा, वाहन, मन्त्र, शत्रु, मार्ग, आयु, अन्तरंग, व्यापार, प्राप्ति एवं अप्राप्ति के परिचायक या उद्बोधक होते हैं।

यौध (तृतीय) और प्राप्ति (एकादश) भावों को छोड़कर अन्य भावों को पापग्रह नष्ट करते हैं।

वस्तुतः मंगल और सूर्य दशम भाव को न ही चन्द्रमा लग्न और अष्टम को छोड़कर और शुक्र सप्तम को छोड़कर और सब शुभ ग्रह छठे भाव को छोड़कर शेष भाव की अभिवृद्धि करते हैं।

ज्योतिष शास्त्र के अन्यान्य ग्रन्थों में कहा गया है कि राजा का शुभ या अशुभ निरूपण ही अनिवार्य रूप से प्रजा में भी घटित होता है।

इस प्रकार स्वयं, उनके पुत्र, कोष, वाहन, नगर, पत्नी, पुरोहित एवं प्रजा पर फल का प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार राजा के भाग्य का प्रभाव आठ प्रकार से विचार किया गया है।

शुभाशुभ योग

शुभ अथवा अशुभ योगों के विचार क्रम में बलवान् सूर्य और चन्द्रमा केन्द्र में हों या इनकी राशि आरूढ़ लग्न या प्रश्न लग्न हो, तो राजा को अच्छा राज्य सुख की प्राप्ति कहना चाहिए।

यदि ये दोनों उपरोक्त से विपरीत स्थिति में स्थित हों, तो राजा राज-सुख का अनुभव नहीं कर पाता, ऐसा भली-भाँति कहना चाहिए तथा इस प्रश्न विचार के क्रम में राजयोगों का भी विचार करना चाहिए।

ग्रहवश युवराज आदि विचार

बुध से युवराज का विचार, मंगल से सेनापति का तथा गुरु एवं शुक्र से मन्त्रियों के गुण दोषों का विचार करना चाहिए।

यदि ये ग्रह अपनी उच्चराशि में स्थित, शुभ स्थान में स्थित एवं शुभ ग्रहों से युक्त हों, तो उक्त व्यक्तियों या राजा के लिए सम्पत्तिकारक होते हैं, इसके विपरीत हों, तो सभी के लिए अनिष्टकारक होते हैं।

पदोन्नति योग

आरूढ़ लग्न का ऊर्ध्वमुख होना, उसके स्वामी का उच्चाभिलाषी होना तथा बलवान् ग्रहों का उपरोक्त भावों में बैठना इन व्यक्तियों के स्थान (पद) का उत्कर्ष करता है।

यहाँ प्रश्न लग्न में शुभ ग्रहों का षड्वर्ग हो या लग्न में शुभ ग्रह हों, तो प्रश्नकर्ता की अभीष्ट सिद्धि और उसे अच्छे स्थान की प्राप्ति होती है।

दशम और सप्तम स्थान में स्थित शुभ ग्रह अच्छा स्थान (पद) प्रदान करते हैं। द्वितीय, पञ्चम एवं लग्न में स्थित शुभ ग्रह सम्मान एवं धनदायक होते हैं।

एकादश एवं द्वादश स्थानों के साथ स्थित पापग्रह शुभ फलदायक नहीं होते। लग्न में चन्द्रमा शुभ नहीं होता, किन्तु दशम में शुभ फलदायक होता है।

परमशुभ योग

यदि लग्न में स्थित बुध को चन्द्रमा देखता हो, तो परम शुभ होता है। विजय, भूमि एवं धन का लाभ होता है। इस योग में अशुभ फल कुछ भी नहीं होता है।

प्रसङ्ग गत विशेष विचार

गज लाभ आदि विषयक जो-जो लक्षण पहले कही जा चुकी हैं, उन सब राज्य के उपयोग की वस्तुओं के योगानुसार यहाँ भी बतलानी चाहिए।

बलवान् एवं अभीष्ट भाव में स्थित ग्रहों से, विशेष रूप से लाभ स्थान में स्थित ग्रहों से, उन-उन ग्रहों की पूर्व कथित राजा के उपयोग योग्य धातु आदि का लाभ बतलाना चाहिए।

यदि लग्न में जलचर राशि और उसका नवांश हो, तो जलयान (जहाज) का आगमन बतलाना चाहिए।

उन दोनों पर पाप ग्रहों की दृष्टि, उनके स्वामी की अनिष्ट स्थान में स्थिति या अस्त हो तथा लग्न में मकर राशि हो, तो जलयान नष्ट हो जाता है।

युद्ध प्रश्न

युद्ध के लिए आए हुए इन व्यक्तियों में से किसकी-किसकी मृत्यु एवं किसकी जीत होगी; इस प्रकार के प्रश्न करने पर सर्वप्रथम फलादेश योग्य कुछ तथ्य प्रस्तुत करते हैं।

शनि, राहु, केतु एवं गुलिक के आश्रित जन्म राशि वाले व्यक्तियों तथा जिनका जन्म राशि स्वामी प्रश्न लग्न से सप्तम स्थान में स्थित हो ऐसे व्यक्तियों की निश्चित रूप से हार तथा शीर्षोदय एवं ऊर्ध्वमुख लग्न में प्रश्न पूछने वाले और ऊँचे स्थान पर खड़े हुए या दाहिने हाथ और शिर स्पर्श करते हुए प्रश्न पूछने वाले व्यक्तियों की जीत होती है।

अनुष्ठान पद्धति के अनुसार–

दक्षिण एवं अग्नि कोण में स्थित तथा जानु स्पर्श करने वाले प्रश्नकर्ता जिस समय शस्त्र चलाते हैं उसी समय उनकी मृत्यु हो जाती है।

यदि उपरोक्त दिशा में स्थित प्रश्नकर्ता के प्रश्न करते समय विजय के अन्य लक्षण (शकुन) दीख जाय तथा शत्रु की आवाज एवं आयुध सून और दीख जाय, तो दोनों पक्षों का वध कहना चाहिए।

बायें अंगों का स्पर्श करते हुए और नीचे स्थान पर स्थित होकर प्रश्न पूछने वाले व्यक्तियों की प्रायः हार होती है। इस प्रकार लक्षणों की अधिकता से पराजय तथा शस्त्रों की चोट से मृत्यु होती है।

वक्षस्थल, शिर तथा दाहिने हाथ का स्पर्श करते हुए प्रश्न करने वालों की जीत होती है।

किसी वस्तु को तोड़ते हुए या छिन्न-भिन्न करते हुए प्रश्न करने वालों को भी विजय की प्राप्ति कहनी चाहिए।

शत्रु आक्रमण विचार

जो मनोयोग से सूनता हो, उसके शत्रु का आक्रमण होगा या नहीं? ऐसे प्रश्न में फलादेश की योग्य बातें अब कहते हैं।

आर्यासप्तति के अनुसार–

यदि स्थिर राशि में चन्द्रमा तथा चर राशि में लग्न और उसका नवांश भी हो, तो शत्रु सेना सहित शीघ्र आक्रमण करता है।

यदि इसके विपरीत योग हो, तो शत्रु आक्रमण नहीं करता। यह विचार आर्यासप्तति में व्यक्त किया गया है।

यदि द्विस्वभाव राशि में चन्द्रमा और स्थिर राशि में लग्न हो तथा षष्ठ भाव गुरु, बुध या शुक्र से युक्त हो, तो सेना के साथ आया हुआ शत्रु शीघ्र नष्ट होगा, कहना चाहिए।

वृष्टि निरूपण

सूर्य की मिथुन संक्रान्ति के समय यदि चन्द्रमा जलचर राशियों के नवांश में हो और शुक्र सूर्य से द्वितीय या द्वादश स्थान में हो, तो बहुत अधिक वर्षा होती है।

जब राहु, मंगल, शनि, चन्द्रमा एवं सूर्य जल राशियों में हों और शुक्र एवं बुध स्थिर-राशियों में हो, तो भी उस समय अत्यधिक वर्षा होती है।

यदि सूर्य और शुक्र एक राशिगत होकर एक ही जलचर नवांश में हों तथा बुध भी साथ हों, तो निःसन्देह भूमि जल में आप्लावित होती है।

यदि एक नवांश में स्थित शुक्र और बुध अस्तंगत हों तथा शुक्र से नीचे अथवा पीछे मंगल स्थित हो, तो अधिक वर्षा होती है।

यदि स्थल राशि में सूर्य और जलराशियों के वर्ग में चन्द्रमा, बुध एवं शुक्र हो और इस स्थिति में पश्चिम में इन्द्रधनुष दीख जाय, तो अच्छी वर्षा होती है।

यदि जलराशियों के वर्ग में चन्द्रमा और स्थल राशियों के वर्ग में शनि एवं मंगल हों तथा यदि इस स्थिति में पूर्व में इन्द्रधनुष दीख जाय, तो बहुत वर्षा होती है।

पूर्व में इन्द्रधनुष अवृष्टि के समय वर्षा करता है तथा वर्षा के समय वर्षा को बाधित करता है। इन्द्रधनुष पश्चिम में दीखने के बाद सदैव वर्षा होती है।

सूर्योदय से एक प्रहर बाद सूर्य की रश्मियों से आच्छादित मेघ का खण्ड सूर्य की किरणों से चमकता हुआ दूसरे सूर्य की तरह दिखता है, उसी को प्रतिसूर्य कहते हैं।

यदि सूर्य से उत्तर दिशा में प्रतिसूर्य दिख जाय, तो वर्षा होती है, दक्षिण में प्रतिसूर्य दिख जाय, तो आँधी आती है, दोनों ओर दिख जाय तो जलमय, ऊपर दिख जाय तो राजा का और नीचे दिख जाय तो जनता का नाश होता है।

यदि अमावस्या एवं कृष्णपक्ष में भी वर्षा हो, तो उस पक्ष की पूर्णिमा एवं शुक्ल पक्ष को पुनः वर्षा होने का योग समझना चाहिए।

यदि उस पक्ष में वर्षा न हो, तो दोनों पक्षों में, पक्षति के अन्तिम पाद या दो पक्षतियों में वर्षा नहीं होती।

अथवा उसके प्रथम चरण में वर्षाकाल में वर्षा हो, तो उस पक्ष में अल्प वर्षा होने पर आगे अल्प वर्षा और न होने पर वृष्टि नहीं होती।

यदि आषाढ़ की पूर्णमासी को सूर्यास्त के समय ईशान कोण की हवा चल जाय, तो अगली फसल अच्छी होती है।

यदि आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में वर्षा हो, तो उस वर्ष में अच्छी वर्षा होती है और यदि उस दिन वर्षा न हो, तो उस वर्ष वर्षा नहीं होती।

आषाढ़ शुक्ल पञ्चमी यदि रविवार के दिन हो, तो स्वल्प वर्षा होती है। यदि सोमवार को पड़े तो अधिक वर्षा होती है। यदि मंगलवार को पड़े तो विशेषत: अधिक वर्षा होती है। यदि बुधवार को पड़े तो आँधी के साथ वर्षा होती है। यदि बृहस्पतिवार को पंचमी हो, तो अच्छी फसल हो। यदि शुक्रवार को हो, तो बाढ़ लाती है। यदि शनिवार को पड़े तो कष्टप्रद होती है।

जब सूर्य कुम्भ राशि में और चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में हो, तो शुक्ल पक्ष को षष्ठी आदि पाँच तिथि वर्गों में क्रमश: अत्यल्प, अत्यल्प, मध्यम, अधिक और अत्यधिक वर्षा होती है।

सूर्य पूर्वाषाढा के जिस चरण में स्थित हो उस वर्ष के प्रारम्भिक मध्यम भाग तथा अन्तिम भाग में वर्षा द्वारा प्रजा का हित होता है।

यदि सूर्य प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ अथवा अन्तिम नक्षत्र में हो, तो वर्षा नहीं होती, एवं सूर्य मेघों से आच्छादित नहीं होता।

उस नक्षत्र में भी वर्षा का होना कह सकते हैं, सूर्य राशि से उदित होकर जिस नक्षत्र में शुक्र एवं बृहस्पति स्थित हों। इस सम्बन्ध में मुहूर्त रत्न के कुछ महत्त्वपूर्ण स्थल उद्धृत किए गए हैं।

मुहूर्तरत्न के अनुसार

इस प्रकार यहाँ भरणी से ४, ४, ५, ३, ५ एवं ६ नक्षत्रों के क्रम से ६ मण्डल कहे गये हैं।

शुक्र का उदय और अस्त ५, ५ नक्षत्रों के मण्डल में हो, तो कष्टप्रद; ४, ४ नक्षत्रों वाले मण्डल में हो, तो मध्यम और ३, ६ नक्षत्रों के मण्डल में होने पर उस वर्ष सुवृष्टि होती है।

इस तरह भरणी आदि ४, ४, ५, ३, ५ एवं ६ नक्षत्रों के छ: मण्डल और जिनमें से यदि अन्तिम एवं चतुर्थ मण्डल के नक्षत्रों में स्थित शुक्र अस्त होकर उदित हो, तो देश में पूर्ण समृद्धिप्रद होता है।

यदि वह प्रथम एवं द्वितीय मण्डल के नक्षत्रों में हो, तो अल्प वर्षा एवं दुर्भिक्ष होता है।

वर्षा ऋतु में शुक्र से सातवीं राशि में शुभ ग्रहों से दृष्ट चन्द्रमा हो या वह शनि से नवीं, पाँचवीं अथवा सातवीं राशि में हो, तो वर्षा कहनी चाहिए।

प्राय: ग्रहों के उदय एवं अस्तकाल में, ग्रह समागम के समय, मण्डल अतिक्रमण के समय, पक्षक्षय के समय, सूर्य के अयन परिवर्तन के समय और आर्द्रा नक्षत्र में सूर्य के पहुँचने पर वर्षा होती है।

इस प्रकार बुध एवं शुक्र, गुरु एवं बुध तथा गुरु एवं शुक्र के समागम के समय वर्षा होती है।

शनि एवं मंगल के समागम के समय यदि ये शुभ ग्रहों से दृष्ट या युक्त न हों, तो आँधी एवं अग्नि भय कहना चाहिए।

तत्काल वृष्टियोग

यदि चारों ओर सफेद वर्ण का या चन्द्रमा के समान श्वेत, मध्य में कज्जल या भ्रमर के समान काले निर्मल, ऊपर-ऊपर स्थित, जलबिन्दु छोड़ते हुए और सोपान अर्थात् सीढ़ी की तरह आकृत्रि वाले बादल पूर्व दिशा में उत्पन्न होकर पश्चिम की ओर अथवा पश्चिम से उत्पन्न होकर पूर्व की ओर जाते हों, तो वह पृथ्वी पर शीघ्र वर्षा करते हैं।

सूर्यस्वरूपवश वर्षा ज्ञान

वृष्टिकाल में उदयाचल पर स्थित अति तीखी किरणों वाला कठिनाई (चकाचौंध) से देखने योग्य, पिघले सोने के समान चिकने, वैदूर्य के समान कान्ति वाला सूर्य जिस दिन दिखलाई दे, उसी दिन वर्षा होती है। जिस दिन मध्याह्न में तेज या प्रखर किरणों वाला सूर्य हो उस दिन भी वर्षा होती है।

चींटी-साँप-गाय आदि चेष्टावश वर्षा ज्ञान

यदि बिना कारण चींटियाँ अपने अण्डों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाएं, सर्पों का मैथुन दीखने लगे, सर्प पेड़ पर चढ़े य गाय बिना कारण उछले तो शीघ्र वर्षा कहनी चाहिए।

बिल्ली चेष्टा और चन्द्र परिवेषवश वर्षा ज्ञान

जिस समय वृष्टिकाल में बिल्ली बार-बार अपने नाखूनों से जमीन खोदे और रास्ते में बच्चे पुल बनायों तो शीघ्र वर्षा होती है। यदि काजल के समान पर्वत, वाष्प से भरी गुफा तथा जलमुर्गे के नेत्र के समान लाल-लाल परिवेष और चन्द्रमा हो, तो शीघ्र वर्षा होगी समझनी चाहिए।

कृकलास-गाय की चेष्टावश वर्षा ज्ञान

यदि वृक्ष की चोटी पर चढ़कर गिरगिट आकाश की ओर देखता हो और गायें ऊपर की ओर दृष्टि करके देखती हों, तो शीघ्र वर्षा होती है।

मुर्गों की चेष्टावश वर्षा ज्ञान

वर्षा काल में जब घर के छप्पर पर चढ़कर मुर्गा आकाश की ओर देखता हुआ बाँग दे तथा दिन में ईशान कोण में बिजली कड़के तो पृथ्वी जलमग्न हो जाती है।

चन्द्रवर्णवश वर्षा ज्ञान

वर्षा काल में जब तोता या कबूतर के नेत्र के समान या शहद के वर्ण जैसा चन्द्रमा दिखता हो अथवा दूसरा चन्द्रमा दिखा जाय तो शीघ्र वर्षा होती है।

वर्षा काल में यदि रात्रि में बादल गरजे, दिन में खून जैसे रंग की दण्डाकार बिजली चमके तथा पुरबिया ठंडी हवा चले तो शीघ्र वर्षा होगी, जानना चाहिए।

वर्षा काल में यदि लताओं के नवपल्लव ऊर्ध्वमुख हों, पक्षी जल या धूल में नहायें या सरीसृप तृणों के अग्रभाग पर दिखलाई दें तो शीघ्र वर्षा होती है।

वर्षा काल में यदि सन्ध्या के बादल मोर, तोता, नीलकण्ठ, जपाकुसुम या कमल के समान कान्ति एवं वर्ण वाले हों तथा वे भँवर, पर्वत, नाक, कछुआ या सूअर जैसी आकृति वाले हों, तो शीघ्र वृष्टि करते हैं।

यदि सूर्योदय या सूर्यास्त के समय इन्द्र धनुष, परिघ, प्रतिसूर्य, रोहित, तडित् या परिवेष दिखलाई दे तो शीघ्र जबरदस्त वर्षा होती है।

यदि अमोघ, सहस्र किरण एवं अस्ताचल के हस्त के समान ऊँची सूर्य की किरणें दिखलाई दें और बादल पृथ्वी के समीप में आकर गरजें तो इसे अच्छी वर्षा का योग कहना चाहिए।

जल जन्तुचेष्टा आदिवश वर्षा ज्ञान

स्वाद रहित जल, गौ के नेत्र या काक के अण्ड के समान आकाश, निर्मल दिशा, नमक में (पसीजना) विकार, वायु का निरोध, उछल-उछल कर जल से सूखे जमीन पर मछलियों का आना और बार-बार मेढ़कों का टर्रटर्राना आदि सब वर्षा का सूचक है।

सती के पूछने पर स्कन्द ने जिस प्रकार वर्षा के लक्षण बतलाए उस प्रकार का संकलन कर उन्हें यहाँ लिखते हैं।

वार से वर्षा ज्ञान

चैत्रमास के आरम्भ में यदि दिन रविवार हो, तो उस संवत्सर में प्रारम्भ में वर्षा होती है तत्पश्चात् समान वर्षा, किन्तु सभी समय या सभी जगह वर्षा नहीं होती।

यदि उस समय सोमवार हो, तो वर्षा में कुछ देरी और मंगलवार हो, तो पर्वतों पर वर्षा होती है।

उस दिन बुधवार होने पर अच्छी वर्षा, गुरुवार होने पर जोरदार वर्षा परन्तु अनर्थ नहीं होता।

शुक्रवार होने पर वर्षा न होते हुए विपत्ति एवं सुभिक्ष तथा शनिवार होने पर रोगोत्पत्ति, जन एवं धान्य का नाश होता है।

वैशाख-माघप्रथम नक्षत्र से वर्षा ज्ञान

इस प्रकार वारों के अनुसार वर्षा का विचार प्रस्तुत किया गया है, अब वैशाख एवं माघ के प्रथम दिन के नक्षत्र के आधार पर वर्षा का विचार किया जा रहा है।

मेष एवं मकर की संक्रान्ति के दिन अश्विनी नक्षत्र होने पर समय पर वर्षा और सुभिक्ष होता है।

भरणी नक्षत्र राजाओं में उपद्रव, गर्मी एवं अल्पवर्षा करने वाला होता है तथा कृत्तिका ब्राह्मणों को विपत्तिप्रद होती है।

रोहिणी में प्रारम्भ होने वाले वर्ष में वर्षा और बाद में पशुनाश और मृगशिरा में अल्पवृष्टि, तत्पश्चात् वर्षा तथा आर्द्रा में धान्यों की हानि हो जाया करती है।

पुनर्वसु में वर्षारम्भ होने पर प्रारम्भ में वर्षा पश्चात् पशुओं को रोग तथा मनुष्यों में भी कठिन रोग हो जाता है। पुष्य में प्रजाओं मे उद्धता और अन्न भी अधिक वर्षा होने से नहीं उपजते।

आश्लेषा में जोरदार वर्षा, तस्करों का भय और बाद में भयंकर युद्ध होता है। मघा में मूसलाधार वर्षा, राजभय और फसल को कुछ नुकसान होता है।

पूर्वाफाल्गुनी एवं उत्तराफाल्गुनी में शूद्रों का नाश, ब्राह्मणों का क्षय, परन्तु पृथ्वी पर सुभिक्ष होता है।

हस्त में क्षेम, आरोग्य एवं सुभिक्ष होता है, चित्रा में तो अनेक अनर्थ तथा स्वाति में अल्पवृष्टि एवं आरोग्य करता है।

विशाखा में अच्छा सुभिक्ष, ब्राह्मणों की वृद्धि, शूद्रों को विपत्ति, मनुष्यों में रोग और सभी जगह वर्षा नहीं होती।

अनुराधा एवं ज्येष्ठा में धान्य की हानि और अतिवृष्टि होती है तथा मूल नक्षत्र में गौ एवं जनता को रोग, ब्राह्मणों के कर्म में विघ्न तथा अतिवृष्टि होती हैं।

पूर्वाषाढ़ में अच्छी फसल, अतिवृष्टि और प्रान्तों का विनाश तथा उत्तराषाढ़ में अल्पवृष्टि और पश्चात् अतिवृष्टि और अच्छी फसल होती है।

धनिष्ठा में प्रारम्भ में वर्षा, बेमौसम में फसल और क्षय, शतभिषा में अतिवृष्टि और कुधान्य की वृद्धि तथा पूर्वाभाद्रपद में वर्ष के प्रारम्भ में वर्षा होती है।

उत्तराभाद्रपद में अल्पवृष्टि, पुण्य कर्मों में कमी और मनुष्यों का स्वास्थ्य की हानि होती है। रेवती नक्षत्र में उचित समय पर अच्छी वर्षा और सुभिक्ष होता है।

विषुवत् तिथि से वर्षा ज्ञान

यदि विषुवत् दिन में प्रतिपदा या द्वितीया तिथि होने पर पृथ्वी पर वर्षा नहीं होती। यदि उस दिन तृतीया हो, तो उचित समय पर वर्षा होती है, किन्तु फसल हल्की होती है। यह जान लेना चाहिए कि सायन मेष, तुला संक्रान्ति को विषुवत दिन कहते हैं।

विषुवद् दिन की चतुर्थी तिथि में अल्पवृष्टि और आर्थिक गतिविधियों में अनेक बाधायें जाननी चाहिए। पञ्चमी में अतिवृष्टि एवं भारी फसल तथा षष्ठी में भीषण युद्ध होता है।

सप्तमी में अधिक वर्षा नहीं होती और फसल को कुछ नुकसान होता है। प्रारम्भ में वर्षा का अभाव, राजा का उपद्रव, पश्चात् ठीक-ठीक वर्षा होती है।

यदि अयन या विषुवत् दिन को अष्टमी हो, तो अच्छी फसल और समयोचित वर्षा होती है। उस दिन नवमी हो, तो भारी फसल एवं अनेक अनर्थ भी होते हैं।

विषुवद् दिन दशमी हो, तो अनेक अनर्थ, शोक एवं अधिक वर्षा होती है। एकादशी में अतिवृष्टि कुधान्यों में वृद्धि और जनता विपत्ति में फँस जाती है।

विषवद् दिन द्वादशी तिथि होने पर अल्प वर्षा, युद्ध और तस्करों का उपद्रव होता है। उसी तरह त्रयोदशी तिथि में भी समझना चाहिए।

पर्व (अमावस्या या पूर्णिमा) तिथि में प्रारम्भ में अपने मण्डल में अतिवृष्टि, किन्तु समय पर वर्षा नहीं होती। युद्ध की सम्भावना, अतिवृष्टि और अच्छी फसल होती है।

करणवश वर्षा ज्ञान

विषुवत् दिन में भव करण होने पर धान्य, सम्पत्ति और अनर्थ तथा व्याघ्र योग होने पर समुचित वर्षा, पशुनाश एवं दुर्भिक्ष भी होता है।

विषुव दिन कौलवकरण होने पर न तो प्रारम्भ में और न ही अन्त में वर्षा होती है और सभी जगह बड़ी विपत्तिप्रद स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। खरकरण में गौ, धन एवं धान्य की वृद्धि तथा पशुमण्डलस्थ वर्षा होती है।

गज करण होने पर प्रारम्भ में भारी वर्षा और बाद में वर्षा का अभाव, गौ नामकरण में अत्यधिक सम्पत्ति और फसल के साथ अनेक रोग भी होते हैं। भद्रा में गायों में रोग, अच्छी फसल, समयोचित वर्षा और अनेक अनर्थ भी होते हैं।

जैसा भद्राकरण का फल है शकुनि में उसी प्रकार का फल होता है, पर

विशेषकर अनेक अनर्थ होते हैं। चतुष्पद में प्रारम्भ में वर्षा और गर्मी की कमी तथा फसल भी कम होती है।

नाग में अतिवृष्टि और अच्छी फसल, किंस्तुघ्न में वर्षा, परन्तु फसल को कुछ नुकसान, अन्त में समयोचित वर्षा और फसल वृद्धि होती है।

मेष संक्रान्तिलग्नवश वृष्टि

मेष की संक्रान्ति मेष, तुला एवं मकर लग्न में होने पर अल्पवृष्टि होती है। सिंह लग्न में होने पर मध्यम वर्षा, कर्क एवं शेष लग्नों में अतिवृष्टि होती है।

शेष लग्नों में फसल अच्छी होती है; किन्तु कन्या में उतनी अच्छी नहीं होती। उसमें फसल कुछ कम और वर्षा भी छः तरह की होती है।

मतान्तर वृष्टिज्ञान

सूर्य की मेष संक्रान्ति अपने अर्थात् सिंह लग्न में होने पर उस साल समयोचित वर्षा किन्तु प्रारम्भ में कुछ देरी होती है।

चन्द्रमा की कर्क लग्न में होने पर अच्छी वर्षा और भारी फसल तथा मंगल की लग्न में होने पर वर्षा एवं फसल में कमी होती है। उस साल प्रारम्भ और अन्त में वर्षा नहीं होती।

यदि बुध की लग्न कन्या राशि में यह संक्रान्ति हो, तो अच्छी वर्षा और मिथुन में होने पर अल्पवृष्टि तथा गुरु की लग्न में होने पर साल के प्रारम्भ में वर्षा नहीं होती और फसल को कुछ नुकसान होता है।

यदि शुक्र की लग्न में हो, तो उस साल भारी वर्षा और भीषण नुकसान होता है। राजाओं में उपद्रव, गायों में रोग, अच्छी फलस और सुभिक्ष जानना चाहिए।

यदि शनि की मकर या कुम्भ राशि के लग्न में हो, तो अल्पवृष्टि, चोर एवं अनर्थों में वृद्धि और कुछ सुभिक्ष होता है। यहाँ कुम्भ में अच्छी वर्षा और मकर में अल्पवृष्टि समझनी चाहिए।

विषुवत् या सायन मेष की संक्रान्ति काल में गुलिक आदि नौ प्रकार के योग या नित्य अशुभ योग के होने पर उस काल में दुर्भिक्ष होता है।

जलचर राशियों में स्थित जलीय ग्रहों की दृष्टि या युति संक्रमण काल में होने पर अच्छी वर्षा होती है और यदि संक्रमण के समय अग्नि तत्त्व वाले ग्रहों की दृष्टि या युति हो, तो वर्षा नहीं होती है।

संक्रान्ति के समय सूर्य शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो तथा वृद्धि योग हो, तो उस वर्ष या मास अच्छी वर्षा और सुभिक्ष होता है।

धनु में स्थित ग्रह सूर्य से दृष्ट या युक्त हो, तो जल की कमी, दुर्भिक्ष, अल्पवृष्टि एवं निश्चित रूप से युद्ध होता है।

धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा, कृत्तिका, रोहिणी एवं अभिजित् नक्षत्र में यदि चन्द्रमा हो, तो सूर्य की संक्रान्ति होने पर यह पृथ्वी मण्डल कहलाता है तथा यह सुभिक्षदायक होता है।

मूल, कृत्तिका, मघा, पूर्व-उत्तराफाल्गुनी एवं भाद्रपद में चन्द्रमा हो, तो सूर्य की संक्रान्तिवश यह अग्नि मण्डल कहलाता है तथा वह दुर्भिक्ष एवं शत्रु को भयदायक होता है।

मेष संक्रान्तिदिन चन्द्रराशिवश वर्षा

यदि हस्त, अनुराधा, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी, पुनर्वसु एवं अश्विनी में चन्द्रमा हो, तो सूर्य की मेष संक्रान्तिवश यह वायुमण्डल कहलाता है तथा वह वायु भय एवं अल्पवृष्टि करता है।

यदि आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, शतभिषा, भरणी, उत्तराभाद्रपद एवं पूर्वाषाढ़ा में चन्द्रमा हो, तो सूर्य की विषुवसंक्रान्तिवश यह आकशमण्डल कहलाता है तथा यह जगत् का कल्याण एवं अच्छी वर्षा करता है।

सूर्यवश तेजी मन्दी

किंस्तुघ्न, कोल एवं शकुनिकरण में सूर्य स्थित हुआ होता है; नाग, गज, गर्दभ एवं चतुष्पद में बैठा हुआ तथा सिंह, विष्टि, कपि, गो एवं वृष में वह सोता हुआ होता है। उपरोक्त अवस्था का सूर्य क्रम-से मूल्य वृद्धि, मूल्य स्थिरता एवं मूल्यों का ह्रास करता है।

वर्षा सूचक शकुन

यदि वर्षा के बारे में प्रश्न पूछते समय प्रश्नकर्ता गीली वस्तु, जल या जलसंज्ञक अन्य वस्तु का स्पर्श करता हो, जल के समीप में स्थित हो, जल सम्बन्धी किसी कार्य में लगा हो या किसी अन्य के द्वारा जल शब्द सुनाई दे जाय, तो निस्संदेह शीघ्र ही वर्षा होगी, कहना चाहिए।

प्रश्नकाल में नासपुट में आवाज हो, छींक आ जाय, कफ घरघराता हो पर और शीतल छाया में प्रविष्ट हो, तो भारी वर्षा होती है।

बादलों से तिरस्कृत आकाश में अंक एवं परिवेष दिखाई पड़ने पर जिस भाग में आर्द्रता हो उस ओर वर्षा कहनी चाहिए।

प्रश्न के समय गर्भिणी द्वारा जल पात्र लाने, भैंसा, हाथी या ब्राह्मण दिखलाई देने पर वर्षा कहनी चाहिए।

मुख, नेत्र एवं लिङ्ग को छूता हुआ पृच्छक प्रश्न कर रहा हो अथवा वह मूत्रत्याग करता हो, तो भारी वर्षा कहनी चाहिए।

वर्षा सम्बन्धी प्रश्न

मीन, कर्क, मकर, कुम्भ, वृष, तुला और वृश्चिक ये सजल राशियाँ हैं।

शुक्र एवं चन्द्रमा जलीय ग्रह हैं तथा जल राशि में स्थित होकर गुरु और बुध भी जलदायक हो जाते हैं।

इन राशियों में भी प्रथम पाद में अधिक जल और अगले-अगले पादों में क्रमश: न्यून जल होता है। शेष राशियाँ तथा ग्रह निर्जल या शुष्क कहे गए हैं।

वर्षा प्रश्न में सूर्य और मंगल अनावृष्टि कारक, गुरु और बुध अल्प वर्षा कारक तथा चन्द्रमा और शुक्र शीघ्र ही अतिवृष्टिकारक होते हैं।

प्रश्न के वाक्य का प्रथम अक्षर, वर्ग का चतुर्थ अक्षर या दीर्घ स्वर वाला अक्षर हो, तो वर्षा नहीं होती। वर्ग का प्रथम, पञ्चम या द्वितीय अक्षर होने पर वर्षा होती है।

भूमिगत जल स्तर

शुष्क ग्रहों के वर्ग में जलीय ग्रह हो, तो ऊपर जल होता है। दो जलीय ग्रह होने पर अधिक जल बतलाना चाहिए। भूगर्भीय जल की जानकारी के लिये इसका उपयोग करना चाहिए।

वर्षा का योग

प्रश्नकुण्डली में शुक्लपक्ष में शुभ ग्रह जलचर राशियों में तृतीय, द्वितीय एवं केन्द्र स्थानों में स्थित हों तथा लग्न में जलचर राशि में चन्द्रमा भी हो, तो वर्षा कहनी चाहिए।

वर्षा सम्बन्धी प्रश्न के समय द्वितीय एवं दुश्चिक्य भाव में जलसंज्ञक राशि हो, तो बीसवें दिन बादलों का साम्राज्य और वर्षा होती है।

प्रश्नाङ्ग में चन्द्रमा और सूर्य से शुक्र और शनि सातवें हों अथवा प्रश्न लग्न से चौथे, अष्ट, दूसरे या तीसरे हों, तो बहुत वर्षा कहनी चाहिए।

वर्षा के प्रश्न में चन्द्रमा लग्नस्थ जलचर राशि में हो अथवा वह शुक्लपक्ष रहने पर शुभ ग्रहों से दृष्ट होकर केन्द्र में हो, तो वर्षाऋतु में भारी वर्षा होती है।

यदि वह पाप ग्रहों से दृष्ट हो, तो शीघ्र हल्की वर्षा होती है। चन्द्रमा की तरह शुक्र से भी वर्षा का विचार करना चाहिए।

जल के प्रश्न में ज़लीय राशि के लग्न में या उससे विशेष केन्द्रों में गुरु,

धनु में स्थित ग्रह सूर्य से दृष्ट या युक्त हो, तो जल की कमी, दुर्भिक्ष, अल्पवृष्टि एवं निश्चित रूप से युद्ध होता है।

धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा, कृत्तिका, रोहिणी एवं अभिजित् नक्षत्र में यदि चन्द्रमा हो, तो सूर्य की संक्रान्ति होने पर यह पृथ्वी मण्डल कहलाता है तथा यह सुभिक्षदायक होता है।

मूल, कृत्तिका, मघा, पूर्व-उत्तराफाल्गुनी एवं भाद्रपद में चन्द्रमा हो, तो सूर्य की संक्रान्तिवश यह अग्नि मण्डल कहलाता है तथा वह दुर्भिक्ष एवं शत्रु को भयदायक होता है।

मेष संक्रान्तिदिन चन्द्रराशिवश वर्षा

यदि हस्त, अनुराधा, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी, पुनर्वसु एवं अश्विनी में चन्द्रमा हो, तो सूर्य की मेष संक्रान्तिवश यह वायुमण्डल कहलाता है तथा वह वायु भय एवं अल्पवृष्टि करता है।

यदि आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, शतभिषा, भरणी, उत्तराभाद्रपद एवं पूर्वाषाढ़ा में चन्द्रमा हो, तो सूर्य की विषुवसंक्रान्तिवश यह आकशमण्डल कहलाता है तथा यह जगत् का कल्याण एवं अच्छी वर्षा करता है।

सूर्यवश तेजी मन्दी

किंस्तुघ्न, कोल एवं शकुनिकरण में सूर्य स्थित हुआ होता है; नाग, गज, गर्दभ एवं चतुष्पद में बैठा हुआ तथा सिंह, विष्टि, कपि, गो एवं वृष में वह सोता हुआ होता है। उपरोक्त अवस्था का सूर्य क्रम-से मूल्य वृद्धि, मूल्य स्थिरता एवं मूल्यों का ह्रास करता है।

वर्षा सूचक शकुन

यदि वर्षा के बारे में प्रश्न पूछते समय प्रश्नकर्ता गीली वस्तु, जल या जलसंज्ञक अन्य वस्तु का स्पर्श करता हो, जल के समीप में स्थित हो, जल सम्बन्धी किसी कार्य में लगा हो या किसी अन्य के द्वारा जल शब्द सुनाई दे जाय, तो निस्संदेह शीघ्र ही वर्षा होगी, कहना चाहिए।

प्रश्नकाल में नासपुट में आवाज हो, छींक आ जाय, कफ घरघराता हो पर और शीतल छाया में प्रविष्ट हो, तो भारी वर्षा होती है।

बादलों से तिरस्कृत आकाश में अंक एवं परिवेष दिखाई पड़ने पर जिस भाग में आर्द्रता हो उस ओर वर्षा कहनी चाहिए।

प्रश्न के समय गर्भिणी द्वारा जल पात्र लाने, भैंसा, हाथी या ब्राह्मण दिखलाई देने पर वर्षा कहनी चाहिए।

मुख, नेत्र एवं लिङ्ग को छूता हुआ पृच्छक प्रश्न कर रहा हो अथवा वह मूत्रत्याग करता हो, तो भारी वर्षा कहनी चाहिए।

वर्षा सम्बन्धी प्रश्न

मीन, कर्क, मकर, कुम्भ, वृष, तुला और वृश्चिक ये सजल राशियाँ हैं।

शुक्र एवं चन्द्रमा जलीय ग्रह हैं तथा जल राशि में स्थित होकर गुरु और बुध भी जलदायक हो जाते हैं।

इन राशियों में भी प्रथम पाद में अधिक जल और अगले-अगले पादों में क्रमशः न्यून जल होता है। शेष राशियाँ तथा ग्रह निर्जल या शुष्क कहे गए हैं।

वर्षा प्रश्न में सूर्य और मंगल अनावृष्टि कारक, गुरु और बुध अल्प वर्षा कारक तथा चन्द्रमा और शुक्र शीघ्र ही अतिवृष्टिकारक होते हैं।

प्रश्न के वाक्य का प्रथम अक्षर, वर्ग का चतुर्थ अक्षर या दीर्घ स्वर वाला अक्षर हो, तो वर्षा नहीं होती। वर्ग का प्रथम, पञ्चम या द्वितीय अक्षर होने पर वर्षा होती है।

भूमिगत जल स्तर

शुष्क ग्रहों के वर्ग में जलीय ग्रह हो, तो ऊपर जल होता है। दो जलीय ग्रह होने पर अधिक जल बतलाना चाहिए। भूगर्भीय जल की जानकारी के लिये इसका उपयोग करना चाहिए।

वर्षा का योग

प्रश्नकुण्डली में शुक्लपक्ष में शुभ ग्रह जलचर राशियों में तृतीय, द्वितीय एवं केन्द्र स्थानों में स्थित हों तथा लग्न में जलचर राशि में चन्द्रमा भी हो, तो वर्षा कहनी चाहिए।

वर्षा सम्बन्धी प्रश्न के समय द्वितीय एवं दुश्चिक्य भाव में जलसंज्ञक राशि हो, तो बीसवें दिन बादलों का साम्राज्य और वर्षा होती है।

प्रश्नाङ्ग में चन्द्रमा और सूर्य से शुक्र और शनि सातवें हों अथवा प्रश्न लग्न से चौथे, अष्ट, दूसरे या तीसरे हों, तो बहुत वर्षा कहनी चाहिए।

वर्षा के प्रश्न में चन्द्रमा लग्नस्थ जलचर राशि में हो अथवा वह शुक्लपक्ष रहने पर शुभ ग्रहों से दृष्ट होकर केन्द्र में हो, तो वर्षाऋतु में भारी वर्षा होती है।

यदि वह पाप ग्रहों से दृष्ट हो, तो शीघ्र हल्की वर्षा होती है। चन्द्रमा की तरह शुक्र से भी वर्षा का विचार करना चाहिए।

जल के प्रश्न में ज़लीय राशि के लग्न में या उससे विशेष केन्द्रों में गुरु,

बुध, शुक्र एवं चन्द्रमा शुभ ग्रहों से दृष्ट होकर स्थित हो, तो पर्याप्त जल वर्षा समझनी चाहिए।

यदि उपरोक्त ग्रह पापग्रहों से दृष्ट या युक्त हो, तो अल्पवृष्टि होती है। आरूढ़ या क्षत में जलीय राशि में जलीय ग्रह हो, तो भारी वर्षा होती है।

चतुर्थ स्थान से भूगर्भीय जल, सप्तम से नदी का जल, दशम से वर्षा का जल इस प्रकार लग्न के अलावा अन्य 'विशेष' केन्द्र जो जल के सम्बन्ध में पूर्व में कहें हैं,वे इस प्रकार से ही कहे गये हैं।

इस प्रकार वर्षा के लक्षण हो, तो भी यदि केवल बुध का योग या उसकी दृष्टि उक्त ग्रहों पर हो अथवा उसका द्रेष्काण या नवांश लग्न में हो, तो वर्षा (हवा के वेग से) जल्दी बन्द हो जाती है।

यदि केन्द्र स्थानों में मंगल, शनि, राहु एवं बुध हो, तो तेज हवा से वर्षा उड़ जाती है।

यदि लग्न आदि केन्द्रों में जलीय राशियों में शुक्र एवं चन्द्रमा तथा आरूढ़ राशि पर उनकी दृष्टि न हो, तो भी पृच्छक को वर्षा होगी, इस प्रकार कहा जाना चाहिए।

आरूढ आदि तीनों यदि प्रश्न लग्न से छठे, आठवें तथा बारहवें हों; परन्तु वृष आदि राशि में या अपनी उच्चराशि में चन्द्रमा एवं शुक्र हो, तो निश्चित रूप से वर्षा होगी; कहनी चाहिए।

यदि केन्द्र स्थानों में मंगल, शनि, राहु एवं बुध हो, तो तेज हवा के कारण वर्षा नहीं होती है। यदि ये शुभग्रहों के साथ हों, तो हल्की वर्षा होती है।

जलीय राशि में स्थित शनि और राहु वर्षाकारक कहे गए हैं। यदि वे शुक्र और चन्द्रमा से दृष्ट हों, तो भारी वर्षा होती है।

मीन, कर्क, मकर का उत्तरार्द्ध, वृष, तुला, वृश्चिक, कन्या एवं कुम्भ आदि जलीय राशियाँ हैं तथा ग्रहों में चन्द्रमा एवं शुक्र जलीय ग्रह हैं।

जलीय ग्रहों के साथ तथा जलीय राशि में स्थित बुध एवं गुरु जलात्मक कहे गये हैं।

अन्य राशियों में स्थित होने पर निर्जल होते हैं। शनि, सूर्य एवं मंगल शुष्क ग्रह होते हैं। उपरोक्त ग्रह एवं राहु जलीय राशि में अल्प जलीय प्रभाव वाले भी कहे गये हैं।



भूमिगत या कुआँ आदि का जलस्तर-प्रश्न

अब यहाँ कूप विषयक प्रश्न सम्बन्धी विचार तथा कुएँ में जल का परीक्षण का काल विचार भी किया जा रहा है।

मकरादि चार महीनों में और कहीं-कहीं मीनादि चार महीनों में विद्वानों को कुंए में जल की परीक्षा करनी चाहिए अर्थात् माघ, फाल्गुन, चैत्र एवं वैशाख में मुख्यतः परीक्षा करनी चाहिए।

भूमिगत जल परीक्षण विधि

वल्मीक, वृक्ष, तृण आदि और प्रश्नकुण्डली के द्वारा भी सदा इस विषय की परीक्षा होती है। यदि यहाँ जल के अभाव का कोई स्पष्ट कारण न दिखलाई दे तो उस वर्ष में उत्पातजन्य कोई विकार मानना चाहिए।

पृच्छक के द्वारा सावधानी पूर्वक बोले गये वाक्य के अक्षर, लग्न, आरूढ लग्न एवं ग्रहों का बल तथा शकुनों के आधार पर जल के बारे में कहा जाना चाहिए।

कूप प्रश्न के शुभ शकुन विचार

यदि प्रश्न के समय शीघ्रता से माण्डलिक और वेश्या आते हुए दिख जाय या लुटा हुआ धनिक, ब्राह्मण या किरात आ जाय तो शीघ्र कुआँ का निर्माण होता है।

यदि प्रश्न के समय इन्द्रधनुष दिख जाय दे या पृच्छक अपने कण्ठ अथवा मुख का स्पर्श करता हो, तो तुरन्त कुंआ बनता है।

कान का स्पर्श करने पर शान्ति करानी चाहिए। शान्ति न करने पर कुआँ बनवाने वाले की मृत्यु होती है।

जल–अस्तित्व परीक्षण

अब जल विषयक कुंए के अन्यान्य लक्षण कहते हैं। तदनन्तर प्रश्न कुण्डली में जलयोगों के आधार पर समीप एवं दूरी पर जल प्राप्ति कहेंगे अर्थात् प्रश्नकर्ता ने जहाँ कूप निर्माण का विचार किया है वहाँ पर पानी है या नहीं, इस विषय को कहते हैं।

चर अर्थात् मेष, कर्क, तुला या मकर राशि में लग्न में राहु के साथ चन्द्रमा हो, तो जल कहना चाहिए। यदि दशम स्थान में सूर्य और चतुर्थ में गुरु हो, तो भी जल कहना चाहिए।

प्रश्न लग्नगत जलराशि में चन्द्रमा तथा प्रश्नलग्नेश यदि जल राशि में हो

अथवा चतुर्थ स्थान में लग्नेश एवं चन्द्रमा पाप ग्रह के साथ हो, तो भी दोनों स्थितियों में जल का योग होता है।

आरूढ़ लग्न वश कूप ज्ञान

यदि प्रश्न समय में कन्या राशि आरूढ़ लग्न हो और मीन राशि में स्थित चन्द्रमा पर चन्द्र या शुक्र की दृष्टि हो अथवा आरूढ़ लग्न की राशि कन्या हो और उसके दोनों ओर शुक्र एवं चन्द्रमा स्थित हों।

यदि प्रश्न लग्न में मकर राशि हो तथा तुला, मीन या कर्क राशि में उसके स्वामी हों अथवा राहु के साथ बुध हो और मिथुन में चन्द्रमा हो, तो पर्याप्त जल कहना चाहिए।

यदि अपनी उच्च राशि में स्थित शुक्र और चन्द्रमा नीच राशि में स्थित ग्रह से दृष्ट हों अथवा लग्नगत वृष राशि में चन्द्रमा हो और आरूढ़ लग्न राशि में स्थिर राशि हो, तो कुंए में जल होता है।

यदि लग्नगात स्थिर राशि में शुक्र और शनि हों, तो जल की कमी होती है। उसी तरह यदि सिंह राशि में चन्द्रमा हो और आरूढ़ राशि जलीय हो, तो भी जल की कमी होती है।

आरूढलग्नस्थ मीन, कन्या या मिथुन राशि में चन्द्रमा एवं गुरु हों, तो भी उपरोक्त फल होता है।

इस प्रकार उपरोक्त दो जलयोगों को तन्त्र ग्रन्थ में से कहे गये हैं तथा वृष राशि में चन्द्रमा और सप्तम स्थान में राहु होने पर जल नहीं होता।

जल-स्थिति दिशा ज्ञान

अब योग आदि के आधार पर उपरोक्त विधि से जल की स्थिति का विचार करते हुए अन्यान्य भाववश विशेष लक्षणों को कहा जा रहा है।

यदि पृच्छक बांये अंगों का स्पर्श करता हो, तो नैर्ऋत्य कोण में, गले से ऊपर के अंगों का स्पर्श करता हो, तो ईशान कोण में, और शेष अंगों का स्पर्श करने पर अग्नि कोण में जल होता है।

यदि गले से नीचे दाई तरफ स्पर्श हो, तो पश्चिमोत्तर दिशा में जल होता है और स्वैच्छिक अस्थि युक्त घुटना आदि अंगों का स्पर्श से नेष्ट अर्थात् अस्वैच्छिक अस्थियुक्त अंगों के स्पर्श से शुभफल अर्थात् जल होता है तथा मांसल अंगों के स्पर्श से कीचड़ युक्त तथा ललाट के स्पर्श से पत्थर मिलने के अनन्तर जल मिलता है।

चन्द्रगुप्ति चक्र ज्ञान

प्रश्नशास्त्रोक्त पद्धति के आधार पर प्रश्नकर्ता की चेष्टा आदि से, सामान्य रूप से जल का स्थान जान लेने के पश्चात् चन्द्रगुप्तिचक्र के अनुसार दैवज्ञ को उसके देश विशेष के बारे में अर्थात् जल का निश्चित स्थान बतलाना चाहिए।

यहाँ मध्याह्न, सूर्यास्त, सूर्योदय एवं सूर्योदय के पूर्व से क्रमशः पूर्वदिशा, दक्षिण दिशा, पश्चिम एवं उत्तर दिशा के स्थान क्रमश: अपने सामने से याम्योत्तर पाँच रेखाएं तथा ऊर्ध्वाधर आठ रेखाएँ बनानी चाहिए। इस प्रकार अट्ठाईस कोष्ठक वाला चक्र बनता है।

अब पहली पंक्ति के प्रथम कोष्ठक से प्रारम्भ कर ५ तक, उसके नीचे प्रतिलोम क्रम से ४ तक, उसके नीचे अनुलोम क्रम से ५ तथा उसके ऊपर ३, इस प्रकार प्रदक्षिणक्रम से गणना करनी चाहिए। प्रत्येक जगह नक्षत्र न्यास की यही विधि अपनानी चाहिए।

यहाँ पर उदयकालीन अश्विन्यादि साभिजित् अट्ठाईस नक्षत्रों को दिन और रात में बाँट कर दिन नक्षत्र का ज्ञान करना चाहिए।

पूर्वाचल के मस्तक पर जो नक्षत्र उदित होता है, तात्कालिक रूप से श्रेष्ठ दैवज्ञों ने उसे ही उदयनक्षत्र कहा है।

दिन नक्षत्र जानने का प्रकार आगे बतलाया गया है—

प्रथम कोष्ठक में उदय नक्षत्र और अन्य कोष्ठकों में अन्य नक्षत्र को स्थापित करते हुए उदय नक्षत्र के साथ चन्द्रनक्षत्र को अन्य कोष्ठकों में न्यास करना चाहिए।

जिस-किसी कोष्ठक में चन्द्रमा होता है, उसमें काफी जल कहना चाहिए। यहाँ चन्द्रमा तो मात्र उदाहरण है, इसी की तरह सब ग्रहों में जो जलीय प्रभाव को लेकर बलवान् हो, उससे जल बतलाया जाना चाहिए, अन्य से नहीं।

कूपजल ज्ञानार्थ प्रथम प्रकार

इस प्रकार चन्द्रगुप्ति पद्धति के अनुसार उपरोक्त चक्र कहा गया है। अन्य बड़े आचार्यों ने दिन नक्षत्र के साथ इस चक्र को दूसरे-दूसरे प्रकार से कहा है, अब उसे भी कहते हैं—

द्वितीय प्रकार

यहाँ प्रथम कोष्ठक में पूर्वोक्त की तरह अश्विनी नक्षत्र या उदय नक्षत्र को रखकर आगे चार होता है, दिन नक्षत्र को चार नहीं होता। यहाँ इतना ही भेद है, शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए।

तृतीय प्रकार

यहाँ आदि से तृतीय कोष्ठक में सदैव उदय नक्षत्र का ही न्यास करते हुए जिस कोष्ठक में वक्री ग्रह हों वहाँ जल कहना चाहिए। अन्यत्र कुछ नहीं होता।

चतुर्थ प्रकार

इस विषय में अन्य तीन प्रकारों को विद्वानों द्वारा कहा गया है। कुछ अन्य विद्वानों ने चौथा प्रकार भी कहा है, उसे भी यहाँ लिखते हैं।

यहाँ पूर्व आदि के कोष्ठक में अश्विनी से चन्द्र युक्त नक्षत्र तक गणना करना चाहिए, इस प्रकार जो नक्षत्र आता हो उसे उदय स्थान पर रखना चाहिए और उस नक्षत्र से आगे वह संख्या जोड़ते हुए जो नक्षत्र आता हो उससे भी चन्द्रमा के नक्षत्र तक की गणना कर जोड़ते हुए तीसरी बार का नक्षत्र जहाँ हो वहाँ निश्चित रूप से पानी होता है। विशेषकर शुक्र जहाँ होता है, वहाँ काफी जल जानना चाहिए।

यहाँ मध्याह्न से पहले पूर्व दिशा की पंक्ति में तीसरा नक्षत्र कृत्तिका होता है। मध्याह्न के बाद दक्षिण दिशा की पंक्ति में तीसरा नक्षत्र आग्नेय मघा होता है।

रात्रि के पूर्वभाग की पंक्ति में आग्नेय अनुराधा तथा रात्रि के उत्तरार्द्ध उतरपंक्ति में पश्चिम की आग्नेय कोण में धनिष्ठा तृतीय नक्षत्र होता है।

यदि प्रश्नलग्न में चर राशि हो, तो जल की एक शिरा, स्थिर राशि हो, तो अनेक शिराएं तथा द्विस्वभाव राशि होने पर जल की दो शिराएं होती हैं।

कहाँ पर क्या है? ऐसे पुराने या प्रसिद्ध प्रश्न का उत्तर ज्ञान कराने वाले अन्य ग्रंथों में कहे गये योग बतलाये जाते हैं।

अब यहाँ प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थों में प्रतिपादित कूप योगों को बतलाये जा रहे हैं—

(क) आरूढ़ लग्न स्थिर राशि हो और वृषलग्न में चन्द्रमा स्थित हो।

(ख) वृश्चिक राशि में चन्द्रमा और वृष राशि में शुक्र स्थित हो।

(ग) दशम स्थान में गुरु तथा शुक्र चन्द्रमा और बुध चतुर्थ में स्थित हों।

(घ) चन्द्रमा और शुक्र उच्च राशियों में हों अथवा ये दोनों नीच राशिगत चतुर्थ भाव में स्थित हों।

(ङ) सप्तम में सूर्य के साथ स्थित चन्द्रमा भी वहाँ अस्त हो।

(च) लग्न में चन्द्रमा राहु के साथ स्थित हो।

(छ) आरूढ लग्न में कुम्भ राशि और लग्न में चन्द्रमा स्थित हो।

(ज) गुरु के साथ शुक्र चतुर्थ में स्थित हो।

(झ) दशम में चन्द्रमा और सप्तम भाव में गुरु स्थित हो।

(ञ) सप्तम में शुक्र और चतुर्थ में चन्द्रमा स्थित हो।

कूप विषयक साधारण प्रश्न के उत्तर जानने योग्य इन कूप योग को कहा गया है। इन योगों में कुआँ बनवाना चाहिए।

उपरोक्त योगों के अतिरिक्त कूप निमित्तक कुछ और योग भी बतलाये जाते हैं। छत्र में जलचर राशि तथा लग्न में चन्द्रमा होने पर भी कूप बनता है। यदि द्विस्वभाव राशि में गुरु, राहु एवं शनि हो, तो भी पूर्वोक्त योग होता है।

यदि सूर्य और चन्द्र प्रश्नलग्न से चतुर्थ स्थान में स्थित हों, तो कूप बनवाने चाहिए अथवा प्रश्न के समय सूर्य परिविष्ट हो, तो उस समय निश्चित रूप से कूप बनवाने चाहिए।

यदि उदय, आरूढ एवं छत्र में जल राशि और प्रश्न लग्न में स्थिर राशि हो, तो भी कूप बनवाने चाहिए।

पूर्व कथितानुसार यदि प्रश्न के समय अकस्मात् चाण्डाल अथवा वेश्या का आगमन हो अथवा लुटा हुआ धनिक, ब्राह्मण या किरात अर्थात् शिकारी जाता हुआ या उस समय इन्द्रधनुष में से कोई एक भी दिख जाय, तो शीघ्र कूप बनता है।

जल स्वाद ज्ञान

इस प्रकार चतुर्थ स्थान पर जल राशि तथा जलीय ग्रहों के प्रभाव से कूप का विचार करना चाहिए। लग्न के नवांशेश के साथ ग्रहों की युति एवं दृष्टि के आधार पर कुआँ के जल का स्वाद जानना चाहिए।

यहाँ सूर्य आदि ग्रहों के कड़वा, नमकीन, तीखा, मिश्रित, मधुर, खट्टा एवं कषैला ये रस कहे गए हैं।

वर्णमाला में वर्गों की संख्या आठ होने से आगे कथित इस रस निर्णय के प्रसंग में राहु को आठवाँ ग्रह स्वीकार कर लेना चाहिए। इस विषय में अन्य ग्रन्थों का मत इस प्रकार है।

ग्रह रस ज्ञान

सूर्य आदि आठ ग्रहों के रस क्रम-से कड़वा, नमकीन, तीखा, मिश्रित, मधुर, खट्टा, कषैला एवं रसहीन कहने चाहिए।

कूप प्रश्नगत अन्य तथ्य

यहाँ कूप प्रश्न में पृच्छक की चेष्टा और चन्द्रचार के अनुसार जल का स्थान, क्षेत्र विशेष एवं मान योग बतलाया जाना चाहिए।

वहाँ क्षेत्र में आयुर्वेद के अनुसार आग्नेय दिशा को छोड़कर वास्तु पुरुष के नाड़ी एवं मुख-स्थान का खनन करना चाहिए; लेकिन उसके नेत्र स्थान को कथमपि नहीं खोदना चाहिए।

यहाँ कुम्भ के सूर्य में कुआं बनाना श्रेष्ठ होता है, मीन के सूर्य में मध्यम और मकर के सूर्य में अधम कहा गया है। कन्या के सूर्य में जो कुंआ खुदवाया जाता है, वह नष्ट हो जाता है।

लग्नस्थ ग्रहवश जल ज्ञान

यदि लग्न में सूर्य हो, तो अति दूर एवं मंगल हो, तो पत्थरों के बीच जल होता है।

यहाँ लग्न में राहु एवं शनि ये दोनों जलदायक नहीं होते। वहाँ शुक्र एवं चन्द्रमा होने पर पूरा जल, बुध एवं गुरु होने पर अधम जल, बुध एवं चन्द्रमा होने पर रेतयुक्त जल तथा मंगल और सूर्य लग्न में होने पर पथरीला जल होता है।

लग्न में शुक्र होने पर सुरम्य, गुरु होने पर मध्यम, शनि होने पर अल्पजल होता है और राहु होने पर ऊषर भूमि में जल प्राप्त होता है।

कुआँ की गहराई

कुआँ की गहराई का मान आगे कही गई वर्ण संख्या, ग्रहों की रश्मि संख्या या राशि संख्या के समान बतलाया जाना चाहिए।

ऊसर, जंगल एवं पर्वत से सम्बन्धित क्षेत्र पर चतुर्थ लग्न में स्थित ग्रहों की किरण या रश्मि संख्या के अनुसार कुआँ की गहराई का मान बतलाया जाना चाहिए। यह संख्या कम से कम क्रमशः २, ४ तथा ८ होनी चाहिए।

ग्रहों की रश्मि संख्या

यहाँ पर जलविषयक प्रश्न में सूर्य आदि ग्रहों की रश्मि संख्या यथाक्रम-से १६, ४, १०, ९, ७, ५ एवं २१ कही गई है।

राशियों की रश्मि संख्या

मेष आदि द्वादश राशियों की रश्मि संख्या क्रमशः ७, ८, १२, ११, १२, ६, ७, १३, ७, ८, ३ एवं ७ विद्वानों ने कही हैं।

इन रश्मि संख्याओं से नष्ट पदार्थ, द्रव्यात्मक एवं अन्य वस्तुओं की संख्या तथा उन द्रव्यों के लाभालाभ के समय वर्ष, मास, दिन आदि का विचार अर्थात् निश्चय करना चाहिए।

ध्यान देने योग्य बातें

उपरोक्त जिन योगों में आरूढ राशि या लग्न का उल्लेख नहीं किया गया, उनमें यहाँ योगकारक ग्रह की स्थिति को आरूढ या लग्न मान लेना चाहिए।

कूप बनाने के गत कथन में उपरोक्त योगों से प्रश्नकर्ता की जमीन में पुराना कुंआ बतलाया जाना चाहिए तथा परिवेष एवं सूर्य के योगों से भी उपरोक्त फल कहना चाहिए।

इस प्रकार वर्षा और कूप के प्रश्न में जलीय राशि में जलीय ग्रह होना प्रथम योग के रूप में आचार्यों ने कहा है।

लग्न एवं चन्द्रमा दोनों जलराशि में हों तथा इनके साथ शुष्क ग्रह हों, जल एवं कूप में पहले जल था, वर्षा प्रश्न में पहले वर्षा हुई; ऐसा कहना चाहिए।

ये दोनों बातें न हों, तो जल नहीं होता। यदि ये बातें हों और जलीय ग्रह हों, तो दोनों प्रश्नों में जल कहना चाहिए, अन्यथा नहीं।

यहाँ वर्षा प्रश्न में पहले कहे गए वर्गादि योगों के द्वारा जो लक्षण कहे गए हैं उनका कूप प्रश्न में भी विचार करना चाहिए।

दिन नक्षत्र ज्ञान विधि

सूर्योदय बाद की ग़तघटी अर्थात् इष्टकाल को ५८ से गुणा कर नत का भाग देना चाहिए। यहाँ लब्धि अश्विन्यादि ग़त नक्षत्र और शेष दिन नक्षत्र होता है।



भोजन-प्रश्न निरूपण

लग्न से भोजनकर्ता के शरीर का विचार करना चाहिए, उसमें अशुभ एवं शुभ ग्रहों के योग से बुरा एवं अच्छा स्वास्थ्य कहना चाहिए।

लग्नेश से अभिमुखता और भूमि का विचार करना चाहिए, धनस्थान में शनि होने पर भोजन का पात्र टूटा हुआ, सूर्य और मंगल होने पर मैला, चन्द्रमा होने पर गोल पत्तल या थाली कहना चाहिए।

धन स्थान में स्थिर राशि और उसमें शुभ ग्रह होने पर पात्र अच्छे होते हैं।

भोज्य पदार्थ ज्ञान

यहाँ पर तृतीयेश से भक्ष्य अर्थात् भोजन वस्तु बतलाया जाना चाहिए। इस स्थान में यदि सूर्य और शुक्र हो, तो मूल, फल, कन्द एवं सूरण; गुरु हो, तो पका हुआ भोजन उचित समय पर तथा गुरु की राशि में शुक्र और चन्द्रमा हो, तो मालपुआ आदि बतलाया जाना चाहिए।

चतुर्थ भाव से पानी अर्थात् पेय पदार्थों का विचार करना चाहिए। इसमें शनि या गुलिक हो, तो वह स्वाद रहित या कीड़े वाला होता है।

अन्य आचार्यों के मतानुसार चतुर्थ भाव, उसकी राशि उस पर ग्रहों की युति एवं दृष्टि से भोजन करने वाले की जाति का भी विचार किया जा सकता है।

पञ्चम भाव से भोजन करने वाले के गुणों का विचार करना चाहिए। इस स्थान में मंगल होने पर उसे क्रोधपूर्वक एवं राहु होने पर खाद्यान्न को गीध की भाँति अर्थात् चौर भाव से खाया गया, कहना चाहिए।

यदि पञ्चम स्थान में कन्या एवं मिथुन राशि हो, तो खाद्य पदार्थों से सन्तोष और अपनापन कहना चाहिए। इस स्थान में विषम राशि और शुभ ग्रहों की युति दृष्टि हो, तो मनुष्य में उत्तमता आदि गुण होते हैं।

षष्ठ भाव से चटनी, आचार आदि का विचार करना चाहिए। वहाँ सूर्य होने पर ज्यादा मिर्च होने के कारण शीत्कार करते हुए तथा चन्द्रमा होने पर अधिकांशतया नमकीन भोजन किया गया कहना चाहिए।

यहाँ मंगल होने पर कन्द या अधिक मिर्च युक्त चीजें, बुध होने पर अनेक रसवाला भोजन, गुरु होने पर भी प्रथम ग्रास में पूर्वोक्त चीजें तथा शुक्र होने पर खट्टे शाक, फल आदि वाला भोजन किया गया, कहना चाहिए।

इस प्रकार शनि, राहु, गुलिक एवं केतु; इस स्थान में माँस का भोजन करने को दर्शाता है।

मीन, मेष या मकर में गुलिक, राहु और केतु स्थित हों, तो उपरोक्तानुसार मांस का भोजन विचार कर बतलाना चाहिए।

यहाँ सप्तम स्थान से सेक अर्थात् पेय पदार्थों का विचार करना चाहिए। यदि इस स्थान में सूर्य और मंगल हों, तो मिर्च मिला जल अर्थात् जल जीरा जैसा पदार्थ; यदि वहाँ चन्द्रमा हो, तो दूध,शुक्र और मंगल हों, तो मट्ठा, शनि हो, तो यवागू, जलीय राशि हो, तो सभी कुछ जलीय और वहाँ बुध हो, तो साँभर जैसा पेय होता है। इस विषय में कुछ और भी सम्भव पक्ष कहे गये हैं।

शनि, मंगल एवं सूर्य का तैल, चन्द्रमा का यवागू, गुरु का घृत और इस प्रश्न में शुक्र का मक्खन भोज्य पदार्थ कहा गया है।

यहाँ पर अष्टम स्थान से अन्न का गुण विचारना चाहिए। यदि अष्टम स्थान में सूर्य हो, तो पाक अधूरा होता है। यदि चन्द्रमा हो, तो अधिक पौष्टिक और मंगल हो, तो अन्न विकृत होता है। वहाँ राहु होने पर देखने-सूंघने आदि से विषैला, शनि होने पर नीरस, गुलिक होने पर कृमि, अंगार एवं बाल मिला हुआ अन्न कहा जाना चाहिए।

सहभोजियों का विचार

साथ-साथ भोजन करने वालों का वर्ण एवं संख्या आदि नवम स्थान पर ग्रहों की दृष्टि, युति एवं किरण अर्थात् रश्मि संख्या के आधार पर निर्णय करना चाहिए। वहाँ गुलिक हो, तो भोजन के समय स्नान करना समझना चाहिए।

भोजन से सन्तुष्टि

भोजन संतुष्टि का विचार करते समय दशम स्थान से पूर्ति अर्थात् संतुष्टि बतलानी चाहिए। यदि वहाँ पाप ग्रह हों, तो पूर्ति नहीं होती; परन्तु वहाँ शुभ ग्रह होने पर पूर्ति होती है। दशम स्थान में अधोमुख राशि होने पर भी पूर्ति नहीं होती। ऊर्ध्व मुख राशि होने पर पूर्ति होती है। वहाँ तिर्यङ् मुख राशि होने पर अर्धपूर्ति होती है। ऐसा अन्य आचार्यों का कहना है। कुछ वृद्ध आचार्य चन्द्रमा के भाव से अधिक जलीय होने से पूर्ति कहाते हैं।

भोजन कालिक वार्त्ता ज्ञान

भोजन के समय की बातचीत एकादश स्थान से विचार करना चाहिए। वहाँ सूर्य हो, तो राजा; चन्द्रमा हो, तो स्त्री; मंगल हो, तो शूर; गुरु हो, तो भगवत् चर्चा या ब्राह्मण और विद्वानों; शनि हो, तो चोरों; राहु हो, तो विष वैद्यों और गुलिक हो, तो मृतात्माओं से सम्बन्धित वार्त्तालाप कहनी चाहिए।

भोजनोपरान्त विश्राम ज्ञान

भोजन के बाद शयन या विश्राम करना व्यय स्थान से कहना चाहिए। वहाँ यदि शुभ ग्रह हो, तो सुखपूर्वक विश्राम और मंगल होने पर सुखरहित कम्बल पर विश्राम करना पड़ा, समझना चाहिए।

द्वादश स्थान में सूर्य और बुध हो, तो चटाई पर; सूर्य हो, तो काष्ठ पर, चन्द्रमा हो, तो अत्युत्तम वस्त्रों पर विश्राम होता है।

व्यय स्थान में उच्च राशि में शुक्र एवं गुरु होने पर पलंग पर शयन होता है और यदि नीच राशि में व्ययेश हो, तो भोजन के बाद खाली जमीन पर शयन हुआ, समझ लेना चाहिए।

अन्य प्रकार से विचार

इस प्रकार के प्रश्नोत्तर के समय लग्नादि द्वादश भावों से व्यक्ति, पात्र, भक्ष्य, पेय, भोजनकर्ता का भाव, उपदंश, सेचन, अन्न, साथ खाने वाले, पूर्ति, खाने के समय की बातचीत एवं विश्राम का विचार करना चाहिए।

कृष्णीयम ग्रन्थ के अनुसार

शुक्र मधुर और चिकना, चन्द्रमा ठण्डा, गुरु और बुध रूखा, सूर्य नमकीन और कषैला; शनि कड़वा तथा मंगल चटपटा भोजन के कारक हैं।

दूसरे आचार्य के कथनानुसार गुरु मीठा, सूर्य तीखा (चटपटा), शनि तीखे जैसा, बुध तीखा एवं कषैला, शुक्र खट्टा, मंगल कड़वा तथा चन्द्रमा नमकीन पदार्थ के कारक होते हैं।

यदि लग्न में शुभ ग्रह या शुभ ग्रह की राशि हो, तो भोजन मीठा खाया गया, कहना चाहिए। वहाँ यदि विषम राशि हो, तो रूखा अन्न और सम या जलीय राशि हो, तो पेय पदार्थ की प्राप्ति होती है।

लग्न में यदि निर्जल राशि हो अथवा मंगल और शनि ये दोनों ग्रह कहीं भी निर्जल राशि में हों, तो सूखा व गरम भोजन किया है, ऐसा विचार करना चाहिए।

यदि शनि व मंगल सजल राशि में हो, तो रसदार, पतला भोजन किया गया, ऐसा कहना चाहिए। यदि शनि व राहु एकत्र हों, तो भोजन ठंडा व सूखा समझा जाना चाहिए।

खाद्यवस्तु के कारक ग्रह

यहाँ शुक्र का ठण्डा पेय, चन्द्रमा का खट्टा पेय तथा निर्जल राशि में गुरु एवं बुध के होने से भोजन व्यंजन युक्त होते हैं।

सूर्य और मंगल का हिरण मांस, चन्द्रमा का कछुआ, मछली; गुरु का द्वैपार्श्व और शनि का भैंसा तथा सूअर का मांस भोजन में कहना चाहिए।

इस प्रकार शनि की राशि में पक्षियों का, शुक्र की राशि में भैंस, गाय का और अन्य राशियों में अपनी योनि के अनुसार शाक, मूल या अन्य भक्ष्य कहने चाहिए।

जलीय राशि में जल, ग्रामचर राशि में ग्रामीण, धान्य तथा वनचर राशियों से जंगली धान्य बतलानी चाहिए, पापग्रहों से विलेपक आदि और शुभ ग्रहों से उनके धान्यों से बना भोजन बतलाया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त चन्द्रमा से जल और दलिया का हलवा; बुध से मसालेदार दलिया, उत्तपम, उपमा आदि; गुरु से घी में बनी चीजें; शेष ग्रहों से तेल की चीजें और शुक्र से मक्खन में बनी चीजें कहनी चाहिए।

सूर्य और मंगल का घी तथा गुरु और शुक्र का भैंस का दूध होता है। अन्य स्थानों में चतुष्पद राशियों की स्थिति वशानुसार कल्पना करनी चाहिए।

यदि सप्तम में मंगल हो, तो मांस के व्यंजन तथा बुध के होने पर हरे रंग का पेय होता है। इस स्थान में शुक्र अनेक व्यंजन तथा बुध विचित्र भोजन सुलभ कराता है।

इसके बांद शनि प्राय: व्यञ्जन युक्त परान्न और श्राद्र कर्म प्रयुक्त अन्न, डण्ठल युक्त शाक आदि देने वाला तथा सूर्य पत्नि नाश करने वाला होता है।

पाप ग्रह मांस खाते हैं। शुक्र तृण तथा बुध उक्त दोनों चीजों को खाता है। गुरु तृण और धान्य तथा चन्द्रमा कृमि एवं मछली खाता है।

इस प्रकार भोजन के समय साथ खाने वालों की जाति एवं आकृति आदि का निश्चय ग्रहों से करना चाहिए तथा पूर्वोक्त पात्र आदि को भी ग्रहों के अनुसार ही बतलाया जाना चाहिए।

ज्ञानदीपिका के अनुसार–

मेष राशि में शाक और वृष में गव्य होता है। धनु, मिथुन एवं सिंह में मछली एवं मांस आदि का भोजन होता है। मकर, वृश्चिक, कर्क एवं मीन में पके फल आदि तथा तुला, कन्या एवं कुम्भ में शुद्ध अन्न का भोजन किया गया, कहना चाहिए।

घी के साथ खीर या दूध से बने पदार्थ गुरु का भोजन कहे गये हैं। मालपुआ एवं दूध से बने व्यंजन शुक्र का भोजन बतलाया गया है।

भोजन की मात्रा व भूख मिटने का ज्ञान

यदि आरूढ लग्न में चर राशि हो, तो अनेक बार तथा द्विस्वभाव राशि हो, तो दो बार, स्थिर राशि हो, तो एक बार भोजन होता है।

पुरुष राशि में शुभ ग्रहों की दृष्टि या युति होने पर भूख लगते ही भोजन मिल जाता है।

लग्न में समराशि आदि पापग्रहों से दृष्ट या युत होने पर पूरी भूख नहीं मिटती। पृच्छक की चेष्टा आदि से भी भोजन मिला या नहीं? इस प्रकार बतलाया जाना चाहिए।

भोजन कालिक चेष्टाओं का ज्ञान

जीभ से होठ चाटने वाला, प्रसन्न नेत्र वाला, हंसी प्रसन्नता से ऊर्ध्व मुख तथा आगे हाथ किए हुए व्यक्ति ने भोजन किया है, ऐसा बतलाया जाना चाहिए।

प्रश्न के समय चंचल मन वाले को शीघ्र भोजन प्राप्त होता है। यदि शिथिल मन हो, तो रात्रि को भोजन नहीं मिलता और यदि मिलता भी है तो रूचि के प्रतिकूल एवं देरी से मिलता है।

नीचा मुँह करने वाले को कष्ट से तथा आँखों में नींद वाले को निश्चित रूप से भोजन नहीं मिलता। निश्चल तथा ढके हाथ वाले पृच्छक को भोजन नहीं मिलता।

इस प्रकार शुभ ग्रहों की राशि में, लग्न में, शुभ ग्रह होने पर मिष्ठान्न खाने को मिलता है।

यदि लग्न में मांसभक्षी ग्रह का द्रेष्काण हो, तो मांस आदि के साथ अरुचिकर भोजन मिलता है।

सूर्य आदि ग्रहों के अनुसार पशु, कन्या, चोर, विवाद, धन, स्त्री एवं मृतात्मा का विचार करना चाहिए तथा इन ग्रहों की दृष्टि तथा युति का युक्तिपूर्वक विचार कर भोजन के प्रश्न में उसका उपयोग करना चाहिए।

सूर्य आदि ग्रहों के प्रभाववश प्राप्त भोजन की स्थिति क्रम से इस प्रकार समझनी चाहिए—

सूर्य से गोशाला में; चन्द्र से अपनी कन्या के द्वारा लाया गया; मंगल से चोरों के साथ; बुध से विवाद करते हुए; गुरु से उचित समय पर प्राप्त; शुक्र से पत्नी के द्वारा प्रेमपूर्वक परोसा गया और शनि से श्राद्धान्न का भोजन किया प्राप्त होता है।

लाभ हानि का प्रश्न

अर्थ लाभ निम्नलिखित योगों से कहना चाहिए—

(१) आरूढ राशि शुभ ग्रह की हो।

(२) आरूढ में मिथुन, कुम्भ, तुला ऊर्ध्वमुख राशि हों।

(३) शुभ ग्रह केन्द्र और त्रिकोण में हों।

(४) व्ययेश एवं लग्नेश एक साथ या द्वितीय भाव में हों, एक-दूसरे की राशि में हों या अपनी-अपनी राशि में हों।

(५) उन दोनों से लग्नेश दृष्ट या युत हो तथा (६) गुरु एवं भाग्येश अभीष्ट स्थान में हों।

प्रवासी आगमन

यदि आरूढ लग्न में चर राशि तथा चतुर्थ एवं अष्टम भाव में शुभ ग्रह हो, तो प्रवासी का आगमन होता है।

धन एवं तृतीय भाव में शुभ ग्रह हो, तो यात्रा के बीच से लौटना होता है।

कर्मेश वक्री होकर नवम स्थान हो, तो भी लौटने का योग बनता है। यदि लग्नेश शत्रु भाव में हो, तो प्रवासी रास्ते में है, बतलाया जाना चाहिए।

यदि लग्नेश चतुर्थ भाव से आगे हो, तो प्रवासी नहीं आता। इसी प्रकार केन्द्र में पापग्रह होने पर प्रवासी नहीं लौटता। यही यदि शुभ युत हो, तो लौटने में सन्देह नहीं करना चाहिए। दशमेश और लग्नेश एकादश आदि पाँच स्थानों में हों, तो पृच्छक यात्रा नहीं करता।

यदि लग्नेश अपनी मूलत्रिकोण राशि या उच्च राशि में हो, वक्री या सप्तम स्थान में हो, तो प्रवासी अपने घर आ जाता है। लग्नेश वक्री होकर जिस किसी भाव में हो और गुरु बलवान् होकर केन्द्र में हो, तो भी आगमन होता है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में कथित योगों का विचार करते हुए फलादेश करना उचित है।

प्रवासी आगमन गति व प्रकार

यहाँ लग्नेश या आगमन कारक अन्य ग्रह की जैसी मन्दा, मध्या या शीघ्रा गति हों प्रवासी के लौटने की गति भी वैसी ही कल्पना करनी चाहिए।

ग्रह पशु संज्ञक राशि अथवा नवांश में हो, तो वह हाथी, बैल या भैंसा पर बैठ कर, परिसंज्ञक द्रेष्काण में हो, तो विमान में बैठकर, जनसंज्ञक द्रेष्काण में हो, तो नाव में बैठकर और स्थलीय द्रेष्काण हो, तो स्थल के रास्ते से प्रवासी लौटता है।

यदि शकट संज्ञक द्रेष्काण हो, तो यात्री गाड़ी या रथ में बैठकर और आकाश संज्ञक राशि का नवांश हो, तो पालकी में बैठकर प्रवासी आता है।

जिस ग्रह से आगमन कहना हो और जो ग्रह आगमन कारक हो यदि वह निर्बल हो, तो लौटने की चर्चा ही सुनाई देती है; किन्तु प्रवासी नहीं आता है।

इस प्रकार नवम स्थान में स्थित शुभ ग्रहों से यात्राकालीन शुभ एवं अशुभ फल बतलाया जाना चाहिए तथा अष्टम और सप्तम स्थान में स्थित ग्रहों से घर से सम्बन्धित शुभाशुभ फल कहा जाना चाहिए।

स्त्री संसर्ग-सम्बन्धी प्रश्न

यदि लग्न या सप्तम में सूर्य हो अथवा लग्नेश या सप्तमेश के साथ सूर्य हो या इन दोनों पर सूर्य की दृष्टि हो, तो प्रश्नकर्त्ता को उस दिन संभोग का अवसर नहीं मिलता। यदि सूर्य द्वारा ऊपर कहा गया रति अभाव का योग बनता हो, परन्तु सप्तम स्थान शुभ ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो, तो रतिकाल में रोष बतलाना चाहिए।

सुरत सुख योग

सप्तम स्थान पर शुक्र एवं चन्द्रमा की युति अथवा दृष्टि न हो; परन्तु वहाँ पापग्रह हो तथा स्वामी पापग्रह की युति या दृष्टि हो, तो आचार्य कृष्ण के मत से सुरत सुख मिलता है। लग्न में शुभ ग्रह के साथ सूर्य तथा शुक्र से दृष्ट चन्द्रमा हो, तो स्त्री अनुरागिणी होती है। शुक्र एवं चन्द्रमा पाप ग्रहों से युक्त हों, तो स्त्री अनुरक्त नहीं होती।

इस प्रकार लग्न पर शुभ एवं पाप ग्रहों की दृष्टि से स्त्री का अनुराग एवं विराग जान लेना चाहिए। चन्द्रमा पापग्रहों के साथ हो, तो बलात् सम्भोग और सूर्य पाप ग्रहों के साथ हो, तो परायी स्त्री के साथ सम्भोग कहा जाना चाहिए।

चन्द्रमा सूर्य के वर्ग में हो, उससे दृष्ट अथवा युत हो, तो सुन्दर तथा सौभाग्यवान् व्यक्ति का साथ मिलता है। इसके साथ शुभ ग्रह हों, तो स्त्री का सौभाग्य समझना चाहिए।

सप्तम स्थान में जो वर्ग हो, वह उस ग्रह का हो जो लग्न को देखता हो, तो अपनी स्त्री के साथ अपने घर में और यदि दूसरे किसी ग्रह के वर्ग का हो, तो किसी दूसरे के घर में दूसरे की स्त्री के साथ संभोग होता है।

वह उच्च में हो, तो स्वामिनी के साथ, शत्रु एवं मित्र के वर्ग में हो, तो उनकी स्त्री के साथ, नीच राशि में हो, तो निकृष्ट स्त्री के साथ सम्भोग जानना चाहिए। स्त्री की जाति भी ग्रहों के आधार पर बतलायी जानी चाहिए।

षट्पञ्चाशिका ग्रन्थ के अनुसार—

सप्तम स्थान में सूर्य, शुक्र एवं मंगल हों, तो परस्त्री, गुरु हो, तो परिणीता पत्नी, बुध हो, तो वेश्या, चन्द्रमा हो, तो वेश्या और शनि हो, तो अन्त्यज आदि नीच जाति की स्त्री कहनी चाहिए।

यहाँ स्त्रियों की आयु का निर्णय चन्द्रमा की कलाओं से करना चाहिए।

स्त्री की आयु ज्ञान

यहाँ बाल्यावस्था के प्रति चन्द्रमा और बुध कुमारी के प्रति, शनि वृद्धा के प्रति, सूर्य एवं गुरु प्रौढ़ा के प्रति तथा मंगल एवं शुक्र कर्कशा स्त्री के प्रति लगाव उत्पन्न करते हैं। पुरुष की अवस्था का विचार स्त्री की कुण्डली से भी इसी प्रकार किया जाना चाहिए।

कृष्णीयम् ग्रन्थ के अनुसार–

उपरोक्त ग्रहों के सप्तम स्थान को देखने पर तथा अन्य ग्रहों की दृष्टि रहने पर उक्त स्थान में सूर्य हो, तो राजघराने की स्त्री से; चन्द्रमा हो, तो ब्राह्मणी से; मंगल हो, तो शूद्रा से; गुरु हो, तो पोषण युक्त नारी से तथा राहु, बुध एवं शनि हो, तो पाखण्डी स्त्री से लगाव उत्पन्न होता है, इस प्रकार आचार्य कृष्ण ने कहा है। प्रश्नकाल में देखने वाले ग्रह के द्रेष्काणवश स्त्री का स्वभाव एवं आकृति जाननी चाहिए।

छत्रराशिवश स्त्री ज्ञान

आरूढ लग्न का स्वामी स्वराशि में या छत्र राशि में हो, तो अपनी पत्नी; मित्र राशि में हो या वह इसका मित्र हो, तो मित्र की स्त्री; आरूढेश, उसका शत्रु हो या शत्रु राशि में हो, तो शत्रु की स्त्री समझनी चाहिए।

लग्न में विषम राशि पर विषम राशि में स्थित ग्रह की दृष्टि हो, तो मित्र के साथ तथा समराशि पर समराशि में स्थित ग्रह की दृष्टि हो, तो वात्स्यायनन के अनुसार शत्रु के साथ समागम कहना चाहिए।

सूर्य, शुक्र एवं मंगल के वर्ग में दिन में तथा चन्द्रमा के वर्ग में रात्रि में मिलन कहना चाहिए। लग्न से ही मिलन की स्थिति के भेद तथा ग्रामादि स्थान का विचार करना चाहिए।

यदि चन्द्रमा से नवम, पञ्चम, प्रथम और सातवें स्थान में मंगल हो, तो क्रोध के कारण रात्रि पर्यन्त जागरण जागरण कहना चाहिए।

चन्द्रमा से उपरोक्त स्थानों में शनि हो, तो सुन्दर नेत्र वाले व्यक्ति के साथ स्वप्न में संभोग कहना चाहिए।

चन्द्रमा से उपरोक्त स्थानों में सूर्य हो, तो अङ्ग स्पर्श मात्र होता है और यदि चन्द्रमा से उपरोक्त स्थानों में शुक्र हो, तो गुप्त भाषण होना बतलाना चाहिए।

यदि चन्द्रमा से उपरोक्त स्थानों में गुरु हो, तो यह योग गर्भ का कारण होता है।

यदि चन्द्रमा से उपरोक्त स्थान में बुध हो, तो अन्य स्त्री से मिलन होता है, अपनी स्त्री से नहीं।

मंगल एवं शनि में से लग्न में कोई एक तथा सप्तम में कोई दूसरा हो या

ये दोनों एक दूसरे के स्थान में हों, तो भी योग के कारण अग्नि आदि के भय से रात्रिपर्यन्त जागरण करना पड़ता है।

सुरति के कारण कलह

इस योग में चन्द्रमा किसी एक के साथ हो, तो रतिकाल में झगड़ा होता है। चन्द्रमा सप्तम में हो, तो स्त्री के कारण और चन्द्रमा लग्न में हो, तो पुरुष के कारण झगड़ा होता है।

इन दोनों (शनि, मंगल) में से किसी एक के साथ शुक्र हो, तो कलह के कारण अलग-अलग शयन करना होता है।

तृतीय स्थान में मंगल या सप्तम स्थान में चन्द्रमा होने पर झगड़े के कारण भूमि पर शयन होता है।

वस्त्रच्छेद योग

यदि लग्न , तृतीय, सप्तम एवं चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा एवं शुक्र हो, तो कलह के कारण स्त्रियों के कपड़े फटे कहना चाहिए।

संसर्ग स्थान

यदि लग्न या सप्तम स्थान में शनि हो, तो पुराना एवं मरम्मत किया हुआ, मंगल हो, तो जला हुआ, चन्द्रमा हो, तो नवीन, सूर्य हो, तो काष्ठ का बना और कच्चा, बुध हो, तो अनेक कक्षों वाला, शुक्र हो, तो रमणीक, विचित्र एवं नवीन तथा गुरु होने पर मजबूत मकान में स्त्री संभोग आदि सम्पन्न होना, कहा जाना चाहिए।

इस प्रकार जल राशि में स्थित सूर्य का स्थान स्नानागार और अन्य राशि में स्थित उसका भण्डार या कीचड़ युक्त भूमि कहा गया है।

मंगल का स्थान रसोई घर एवं बुध का क्रीड़ागृह, शनि का स्थान गौशाला, शूद्रों का निवास एवं आयताकार स्थान, राहु का स्थान चाण्डाल एवं अन्त्यजों का निवास, चन्द्रमा का स्थान सरकारी शराबखाना तथा निर्बल शुक्र का स्थान टूटा-फूटा मकान बतलाया गया है।

प्रथम स्थान पर ग्रहों का योग एवं दृष्टि नहीं हो, तो रति, भोजन और शयन आदि प्रश्नों में लग्न की राशि के अनुसार स्थान का विचार करना चाहिए। इस प्रसङ्ग में आगे कहा जा रहा है—

राशियों के वश स्थान

इस प्रकार तुला एवं मेष का उनके स्वामी की तरह का स्थान, वृष एवं मिथुन का बुध की तरह का स्थान, सिंह का गोष्ठी भवन, वृश्चिक का चन्द्रमा जैसा, कर्क का गुरु के समतुल्य स्थान, मकर का वृत्ताकार, धनु का राहु जैसा और कन्या, कुम्भ एवं मीन राशि का स्थान धान्य, ऊखल एवं खाना बनाने की जगह होती है।

संसर्गकाल में प्रकाशादि का ज्ञान

यदि शनि की राशि में, शनि के नवांश में उससे दृष्ट, उससे युक्त चतुर्थ स्थान में एवं जलराशि में चन्द्रमा हो तथा चन्द्रमा सूर्य से दृष्ट युक्त न हो, तो अन्धकार में रतिक्रिया होती है, जानना चाहिए।

दीपक लक्षण ज्ञान

दिन में मंगल के लिए, रात्रि में प्रकाश के लिए और भोजनादि के समय शुभता के लिए दीपक स्थापित किया करते हैं। अब इनके लक्षण बतलाये जाते हैं।

यहाँ पर सूर्य की राशि के भावात्मक क्षेत्र को द्वादश भागों में बांट कर पूर्व आदि दिशाओं के उदयक्रम से सूर्य जहाँ हो वहाँ दीपक बतलाया जाना चाहिए। अथवा पूर्व आदि दिशाओं में उदित सूर्य की राशि एवं बलवान् राशि में जहाँ सूर्य भ्रमण क्रम से स्थित हो, मकान की उस दिशा में दीपक होता है।

सूर्य स्थिर राशि में हो, तो दीवट पर जला हुआ या भूमि में रखा हुआ दीपक कहना चाहिए।

चर राशि में सूर्य के स्थित होने पर दीपक किसी व्यक्ति के हाथ में तथा द्विस्वभाव राशि में सूर्य के स्थित होने पर दीपक ऊपर लटका हुआ होता है।

सूर्य के बलवान् होने पर दीपक की ज्योति तेज होती है तथा उसके निर्बल होने पर ज्योति मलिन होती है। सूर्य के बली होने से तेल निर्मल और दुर्बल होने से तेल मैला होता है।

दीपक स्नेह व बत्ती का ज्ञान

वे अपनी होरा में न होकर चन्द्रमा की होरा में हों, तो गाय, भैंस आदि का घी कहना चाहिए। बलवान् अग्नि तत्त्व की राशि व नवांश के अन्त में हो, तो दीपक क्षीण कहना चाहिए—

बत्ती के गुणों का विचार लग्न से तथा दग्धादग्ध भाग, उसका रंग एवं एक या दो बत्ती होना आदि विचार इस प्रकार से करना चाहिए।

यदि लग्न में कोई ग्रह हो, तो उससे, यदि न हो, तो लग्न में जाने वाले गृह से बत्ती की रचना का विचार करना चाहिए। लग्न में द्विस्वभाव राशि या दो ग्रह हो, तो दो बत्तियाँ होती हैं। बत्ती के जले हुए एवं बचे हुए हिस्से का विचार लग्न के भुक्त एवं भोग्य नवांशों से करना चाहिए।



मूक प्रश्न निरूपण

अपने अभिप्राय को न कहकर जब पृच्छक प्रश्न करता है, वह प्रश्न नष्टसंज्ञक होता है।

अब यहाँ आचार्य कृष्ण एवं माधव के मतानुसार इस प्रकार के प्रश्न के बारे में लिखते हैं—

यदि लग्न में गुरु एवं चन्द्रमा में से कोई एक भी ग्रह हो, तो आयु विषयक प्रश्न होता है।

यदि शनि अष्टम, द्वादश या सप्तम स्थान में हो, तो चोरी के बारे में प्रश्न समझना चाहिए।

यदि गुरु धनस्थान में, शुक्र लग्न या लाभ स्थान में और बुध दशम स्थान में हो, तो किसी कार्य विशेष के बारे में प्रश्न होता है।

इस प्रकार मन में सोचे और बिना बतलाए गए प्रश्न के बारे में बतलाया जाना चाहिए।

यदि लग्न, आरूढ और चन्द्रमा से केन्द्र एवं षष्ठ स्थान में या मीन, वृश्चिक और कर्क के नवांश में अथवा दशम स्थान में किसी भी राशि में क्रूर ग्रह हो, तो धन चुराए जाने अथवा नष्ट हो जाने का प्रश्न है।

उपरोक्त समय में गया हुआ चोर संज्ञक ग्रह कई प्रकार से बलवान् होना चाहिए।

इस प्रकार नवमांश से द्रव्य, द्रेष्काण से चोर, राशि से समय, दिशा और स्थान तथा लग्नेश से चोर की आयु एवं जाति का विचार करते हुए निर्णय करना चाहिए।

सुन्दर बुद्धि वाले दैवज्ञों को नवांश से द्रव्य, द्रेष्काणों से चोर बतलाया जाना चाहिए तथा राशियों से दिशा, स्थान एवं समय तथा लग्नेश से चोर की आयु एवं जाति कहना चाहिए।

द्रेष्काण से चोर स्वरूप

लग्न में द्रेष्काण आदि का जिस प्रकार का स्वरूप हो और उसका स्वामी ग्रह भी जिस प्रकार का हो, उसी प्रकार के रंग, वेषभूषा, चेष्टा एवं आकृति वाला चोर बतलाया जाना चाहिए।

आर्यासप्तति व माधवीयम् के अनुसार

आर्यासप्तति और माधवीयम् का कथन है कि लग्नेश का स्वरूप और जाति के समान चोर का रूप-रंग और जाति बतलानी चाहिए। एवं भावों में षष्ठ भाव चोर है। उस भाव के स्वामी तथा उस भाव में स्थित आदि ग्रहों से चोर की आकृति, जाति और नाम आदि बतलाने का निर्देश आचार्य माधव देते हैं।

चोरी गई वस्तु कहाँ हैं?

यदि अपने नवांश में स्थित ग्रह लग्न को देखता हो, तो धन का अपहरण नहीं हुआ और वह जहाँ रखा था वहीं है।

यदि वह शत्रु राशि में हो, तो शत्रु के घर में तथा मित्र राशि में हो, तो मित्र के घर में चोरी के धन के बारे में कहा जाना चाहिए।

यदि वह ग्रह उच्च राशि में हो, तो किसी प्रभावशाली व्यक्ति के यहाँ और यदि वह नीच राशि में हो, तो किसी नीच आदमी के यहाँ बतलाना चाहिए।

आरूढ एवं लग्न के नवांश में भी राशि भेद से इसी प्रकार चोरी गई चीजों का स्थान कहना चाहिए।

आरूढ राशि की दिशा में अथवा आरूढ में कोई ग्रह स्थित हो, तो उस ग्रह की दिशा में चुराया गया धन कहना चाहिए। ग्रहों की दिशायें पूर्वोक्त प्रकार बतलायी जा चुकी है।

आरूढ में चर राशि हो, तो दूर तथा स्थिर राशि हो, तो अपने घर में ग्रहोक्त दिशा में धन होता है।

आरूढ में द्विस्वभाव राशि होने पर न तो दूर और न ही प्रश्नकर्त्ता के घर में अथवा प्रश्नकर्त्ता के घर के आस-पास में कहना चाहिए।

माधवीयम ग्रन्थ के अनुसार–

लग्न के बलवान् होने पर उसकी पूर्वोक्त अर्थात् राशि प्रोक्त दिशा में चुराया गया धन होता है। उसके निर्बल होने पर लग्न देखने वाले ग्रह की दिशा में धन कहना चाहिए।

यदि लग्न चर हो, तो चुराया गया धन चलता-फिरता और यदि स्थिर हो, तो रखा हुआ कहना चाहिए। यदि लग्न द्विस्वभाव हो, तो घर के बाहर गाँव या घर के परिसर में होता है।

कृष्णीयम ग्रन्थ के अनुसार–

यदि लग्न में स्थिर राशि, उसका नवांश या वर्गोत्तम नवांश हो, तो अपने

लोगों, लग्न में चरराशि हो, तो दूसरे लोगों और द्विस्वभाव राशि हो, तो पड़ोसियों ने धन चुराया है, कहना चाहिए।

चोरी का समय

यदि आरूढ़ राशि दिवाबली हो, तो चोर ने दिन में चोरी की है। यह रात्रि बली हो, तो रात में चोरी कहनी चाहिए।

लग्न राशिवश चुरायी वस्तु का स्थान

यदि लग्न में मेष राशि हो, तो भेड़-बकरियों के चरने की जगह, लग्न में वृष राशि हो, तो पशुओं के चरने की जगह और निर्जन वन तथा मिथुन राशि हो, तो शयनागार या घर में चुराया गया धन बतलाया जाना चाहिए।

यदि कर्क राशि हो, तो उस जगह जहाँ केकड़े हों, सिंह राशि हो, तो वन एवं गुफा में, कन्या राशि हो, तो अनाज के समीप तथा तुला राशि हो, तो चुराया गया धन बाजार में होता है।

आरूढ लग्न में वृश्चिक राशि हो, तो अपना धन कन्दरा एवं वृक्षों से व्याप्त भूमि में, धनु होने पर जमीन या नगरी में तथा मकर राशि हो, तो वन एवं नदी के समीप निषाद के घर में कहना चाहिए।

आरूढ लग्न में कुम्भ राशि होने पर कुम्हार के घर एवं रसोई घर में तथा मीन राशि होने पर नदी, समुद्र, तीर्थ, पवित्र स्थान या मन्दिर में धन होना, कहना चाहिए।

ग्रहवश चुराए धन का स्थान

यदि लग्न में गुरु हो या उसकी दृष्टि अथवा युति हो, तो गोष्ठी, गृह, पुरोहित के घर, मन्दिर या सती नारी के घर में धन रखा गया है, कहना चाहिए।

शुक्र हो, तो शयनागार, उद्यान, जलाशय, सुन्दर स्त्री के घर में या शृंगार करने वाले कमरे में धन रखा है, कहना चाहिए।

मंगल हो, तो रसोई घर या कर्मशाला में; सूर्य हो, तो कलहप्रिय एवं प्रौढ़ा स्त्री के घर में; चन्द्रमा हो, तो जल या जल के समीप या वैश्य के घर में; बुध हो, तो युवती और आकर्षण वेषभूषा वाली स्त्री के घर में और शनि हो, तो वृद्धा स्त्री के घर में, मांस पकाने की जगह या कीचड़ में चुराया गया धन होता है।

लग्न स्थान में समान कृष्णोक्त पद्धति से स्थान का विभाजन कर चोरी की जगह कही जानी चाहिए।

अपहृत वस्तु की संख्या

मेष आदि राशियों की ७, ५, १२, ६, ८, ६, ४, ७, १३, १०, ५ और ५ की संख्या होती है।

गत राशि की संख्या में उसके अंक जोड़ने चाहिए, जिससे चुराई गई वस्तुओं की संख्या ज्ञात होती है।

आरूढ़ राशि के समान वर्ण कहा गया है, राशियों के वर्ण ज्योतिष शास्त्र में पृथक कहे गए हैं। लग्न में राशियों के वर्ण बतलाने के समान अन्यान्य विचार भी प्रचलित हैं।

राशि के वर्ण

यहाँ कन्या का विचित्र और तुला का शुक्ल वर्ण, मीन का काला रंग, धनु का सुनहरा, मकर का पिङ्गल, कुम्भ-वृश्चिक का काला तथा शेष राशियों का निर्विकल्प रूप से सिंह के समान वर्ण होता है।

चोर की संख्या

यहाँ पर सूर्य और चन्द्रमा की रश्मि ३० होती है। मंगल की ८, गुरु की ९, शुक्र की ७, बुध की ६, शनि की १३, राहु तथा केतु की संख्या २ होती है।

सूर्य या चन्द्रमा की रश्मि संख्या में लग्न में स्थित एवं द्रष्टा ग्रहों की संख्या घटा कर शेष संख्या नष्ट पदार्थ या चोरों की बतलायी जानी चाहिए।

यदि चन्द्रमा को बुध, मंगल और सूर्य देखते हों, तो चुराया धन जमीन में होता है। उसको गुरु देखता हो, तो धन ऊपर लटका हुआ होता है।

शुक्र और शनि देखते हों, तो वह जल के आसपास का स्थान होता है।

धातुमूलादि विभाग

चरराशि धातु, स्थिरराशि मूल एवं द्विस्वभाव राशि जीवसंज्ञक कही गई है। इस प्रकार मेष आदि राशियाँ धात्वादि संज्ञक कही गई हैं।

पुनः उदय लग्न यदि मेष हो, तो कर्मसंज्ञक, वृष हो, तो भोग संज्ञक, मिथुन एवं कर्क हो, तो नाशसंज्ञक, सिंह कर्मसंज्ञक, कन्या एवं तुला भोगनिरत, वृश्चिक नाश संज्ञक कही गई है।

इसी तरह धनु कर्म; मकर विनाश; कुम्भ उचित कर्म और मीन नाश संज्ञक होती है।

३-३ नवांश धात्वादि संज्ञक कही गई है तथा अश्विनी आदि ३-३ नक्षत्र धात्वादि-संज्ञक होते हैं तथा चन्द्रमा, मंगल, राहु एवं शनि को धातुसंज्ञक, सूर्य एवं शुक्र को मूल संज्ञक तथा गुरु एवं बुध को जीवसंज्ञक जानना चाहिए।

धातु, मूल एवं जीव अपने प्रथम तृतीयांश में कर्मकारक, बीच के तृतीयांश में भोगकारक और अन्तिम तृतीयांश में विनाशकारक होते हैं—ऐसा महान् आचार्यों का विचार है।

सम राशियों के चर आदि नवांशों में जीव, मूल, धातु इस क्रम से तथा विषम राशियों के नवांशों में धातु, मूल एवं जीव इस क्रम से गणना करनी चाहिए।

धातु, मूल एवं जीव वश से पदार्थ वर्गीकरण

यहाँ राशि के नवांश आदि क्रम से धातु संज्ञक होने पर भूगर्भस्थ पाषाण, मिट्टी, ताँबा, काँसा, चाँदी एवं सीसा आदि समस्त धातुएँ (खनिज पदार्थ) इस वर्ग में आते हैं।

धातु एवं मूल के योग में कन्द आदि जमीन के अन्दर पैदा होने वाली चीजें मानी गई हैं तथा जीव एवं धातु के योग में धातु से बनी स्त्री एवं धनुषधारी मूर्त्तियाँ मानी गई हैं।

मूल राशि के मूल नवांश में वृक्षों के फल और लता आदि समस्त वस्तुऐं (वनस्पति) मूल वर्ग की हैं।

धातु एवं मूल के योग में गुड़, वस्त्र, सूखी लकड़ी, समस्त क्वाथ एवं जली चीजें तथा मूल और जीव के योग में आकाश के नीचे, वृक्षों के खोखलों में, घोंसलों तथा छप्परों में रहने वाले समस्त जीव आते हैं।

जीव राशि के जीव नवांश में गज आदि पशु, बालक आदि जीव और गर्भिणी मानी जाती हैं।

जीव एवं धातु में प्लुष्ट, शव एवं हड्डी आदि सब चीजें तथा जीव और मूल में नाखून, खाल, रोम, बाल, कम्बल, दाँत एवं हिरण आदि के सींग कहे गए हैं।

इस प्रकार धातु आदि पदार्थ विभिन्न नौ प्रकार के वर्गों में परिगणित होते हैं।

मेषादि राशिवाचक पदार्थ

मेष राशि में सोना, पैसा, चाँदी, सीसा, ताँबा आदि धातु; दीपक, पात्रों के रूप में धातुएं तथा भूगर्भस्थ मूल आते हैं।

वृष में वस्त्र, कवच, चन्दन, टोपी, सूती वस्त्र तन्तुओं से बनी समस्त चीजें, शय्या और अन्य उपस्कर आता है।

मिथुन में सर्प, हिसंक पशु-पक्षी, डंक मारने वाले जीव, मधुमक्खी, चूहा और नेवला आदि जीव आते हैं।

कर्क में फरसा, भाला, बाण आदि शस्त्रसमुदाय, आरी आदि औजार माने गए हैं। मकर राशि में भी कर्क के पदार्थ कहे गए हैं।

सिंह में सवाँ, कन्द, धांन, श्यामाक, पान, उड़द, मूँग, केला एवं आम आदि सब फल कहे गए हैं। तुला में मद्य, दूध, दही आदि भक्ष्य पदार्थ, त्वचा एवं कम्बल आदि तथा धातुएं कही गयी हैं।

वृश्चिक में मद्य, जल, विंभिन्न प्रकार के ज्ञान, मूल फल अथवा किसी मिट्टी; जो पृथ्वी से प्राप्त होने वाले मरिच आदि और मूल उन्माद आदि कहे गए हैं।

धनु में जंगली हाथी, घोड़ा एवं सर्प बने हुए शस्त्रास्त्र तथा सिंह आदि बलवान् जीव कहे गए हैं। कुम्भ में भोग करने योग्य मूल कहा गया है।

मीन में मनुष्यों का जोड़ा, सर्प और मछली आदि जीव माने गये हैं।

इस प्रकार आरूढ़ राशि एवं लग्न के नवांश से नष्ट वस्तु विषयक उपरोक्त विधि से विचार कर फलादेश में सम्मिलित करना चाहिए।

प्रत्येक राशि में एक-एक चतुर्थांश के क्रम से धातु, मूल जीव एवं मृत इस विधि से विचार करना चाहिए।

माधव का विचार

आचार्य माधव के अनुसार प्रथम तृतीयांश में स्थित ग्रह धातु कारक, बीच के तृतीयांश में स्थित मूलकारक और अन्तिम तृतीयांश में स्थित ग्रह जीवकारक मानना चाहिए।

यदि मनुष्य राशियों में धातु प्राप्त हो, तो शलाका, गले के आभूषण एवं करधनी आदि तथा जलराशि में धातु की प्राप्ति हो, तो कमण्डलु या भोजन बनाने का बर्तन कहना चाहिए।

चोर का स्वभाव

यहाँ पर यदि उदित द्रेष्काण बलवान् हो, तो उसके समान आकृति के तथा लग्न बलवान् हो, तो उसके समान आकृति के चोर होते हैं।

यदि ये दोनों बलवान् न हों, तो सप्तम स्थान में स्थित ग्रहों की आकृति या केन्द्र में स्थित ग्रहों में से बलवान् ग्रह की आकृति वाला और यदि अनेक ग्रह बलवान् हों, तो अनेक चोर होते हैं।

वक्री आदि ग्रहों से उनके गुण अर्थात् स्वभाव का विचार करना चाहिए।

यहाँ चोर संज्ञक ग्रह लग्न, कुटुम्ब, भ्राता, माता एवं पुत्र आदि भावों में से जिस भाव में स्थित हो वह चोर होता है।

यदि वह अपने वर्ग में हो, तो वह स्वयं चोर होता है और अन्य वर्ग में हो, तो उनके सम्बन्धी चोर होते हैं।

अष्टम तथा षष्ठ स्थान के वर्ग में हो, तो सम्बन्धी चोर नहीं होता; परन्तु शत्रु को चोर कहना चाहिए।

चोर निवास स्थान विचार

इस प्रकार बुध का ग्राम में, चन्द्र का जल में और अन्य का जंगल में निवास होता है।

कन्या, तुला एवं धनु का नगर में तथा मिथुन एवं कुम्भ का ग्राम में निवास होता है। मेष एवं सूर्य का तथा मकर के पूर्वार्द्ध का वन में तथा मकर के उत्तरार्ध, कर्क, कुम्भ एवं मीन राशियों का निवास जल में बतलाया जाना चाहिए।

इस तरह पूर्वोक्त ग्राम, नगर आदि में जन्म, निवास आदि को ग्रह एवं राशियों के अनुसार कहना चाहिए।

राशि एवं ग्रह दोनों में एकता हो, तो पूर्वोक्त स्थान पर उसका जन्म और निवास बतलाया जाना चाहिए।

चन्द्र गाँव से जंगल में और शुक्र वन से गाँव में जाता है। चन्द्र चरराशि में हो, तो पिछिले जल में और फिर अगाध जल में जाता है।

राहु वल्मीक, जंगल, गुफा एवं तलैय्या के पास घूमता है। सूर्य पर्वत पर, शनि श्मशान, दुर्ग एवं जंगल में तथा मंगल पर्वत पर विचरण करता है। इस प्रकार ग्रह के अनुसार चोर के विचरण का स्थान कहा गया है।

प्रथम द्रेष्काण में अपने स्थान पर सामान्य कार्य करता हुआ तथा द्वितीय द्रेष्काण में सोता हुआ समझना चाहिए। इस प्रकार चोर एवं अन्य सभी कार्यों में व्यक्ति की स्थिति का ज्ञान करना चाहिए।

द्रेष्काणवश चोर

यदि लग्न में मनुष्य संज्ञक द्रेष्काण हो, तो अच्छे लोग चोर होते हैं, अन्य द्रेष्काणों में क्रमशः बन्दर, घोड़ा, श्वान एवं सूअर जैसा मुँह वाले सपेरे, नीच, कमर में लाल कपड़ा पहिनने वाले, परम क्रूर, घुंघराले बाल वाले, हाथी, सूई आदि से भूषित तथा पत्ती, फूल एवं स्त्री से युक्त चोर समझने चाहिए।

मेष के प्रथम द्रेष्काण से मीन के अन्तिम द्रेष्काण तक द्रेष्काणों का जिस प्रकार का स्वरूप है उसी प्रकार के वस्त्र, शस्त्र एवं आभूषण धारण करने वाले चोर कहने चाहिए।

चोर का नाम निकालने की विधि

सूर्य के अवर्गस्थ स्वर; चन्द्रमा के य, र, ल, व; मंगल के कवर्गाक्षर; शुक्र का चवर्ग, बुध का टवर्ग, गुरु का तवर्ग, शनि का पवर्ग एवं राहु का शवर्ग के अक्षर होते हैं।

मेषादि ६ राशियों, ३३ व्यञ्जनों में से क्रमशः ४, ३, ३, १०, ५ एवं व्यञ्जनों की स्वामित्व कही गई है।

इस प्रकार आरूढ़ राशि, उसका स्वामी एवं उसकी नवांश राशि में से जो बलवान् हो उसका अक्षर और देखने वाले तथा युक्त ग्रह का अक्षर इनमें से नाम के पहले अक्षर कहने चाहिए।

मुष्टि प्रश्न एवं मूक प्रश्न में पदार्थों एवं चोर का नाम उपरोक्त विधि से बतलाना चाहिए।

षष्ठ स्थान पर दृष्टि या युति होने पर, शनि की राशि, उसका नवांश एवं उससे ६ राशि अन्तर इन सबके अंशों को लेकर क्रमश: ३, ८ एवं ११ का भाग देकर फल में अपने स्वामी के अक्षर जोड़ने चाहिए।

अपने वर्ग में ग्रह के अपने अक्षर तथा अन्य के वर्ग में स्थित ग्रह होने पर उसके नवांशेश के अक्षर जोड़ने चाहिए।

इस प्रकार चोर के नाम के अक्षर का ज्ञान किये जा सकते हैं। स्थिर राशि में ४ या ३ अक्षर का नाम तथा चर राशि में २-२ अक्षरों का नाम चोर आदि का कहना चाहिए

अन्य प्रकार

इस प्रकार प्रश्नकर्ता के मुख से नष्ट प्रश्न सूनने के पश्चात् गुलिक एवं चन्द्रमा का स्पष्टीकरण कर आरूढ़ राशि के वशत: पूर्वोक्त विधि से नष्ट पदार्थ की स्थिति कहनी चाहिए।

उपरोक्त स्थिर, चर एवं द्विस्वभाव राशिवश से धन के सामीप्य एवं दूरी आदि का विचार कर तृतीयेश से घरेलू चोर तथा षष्ठेश से बाहर का चोर विचार करना चाहिए।

चोर ग्रह तथा धनेश में युति या दृष्टि होने पर अथवा लाभ स्थान में चोर ग्रह के होने पर धन मिलता है, अन्यथा चोरी गया धन गायब हो जाता है।

यदि लग्न में क्रूर ग्रह की राशि में स्थित पापग्रह को कोई अन्य पापग्रह देखता हो, तो नष्ट पदार्थ का लाभ नहीं कहना चाहिए।

यदि उस पर शुभग्रह की दृष्टि हो, तो विलम्ब से लाभ अथवा नष्ट प्रतिनिधि ग्रह के लग्नेश न होने पर लाभ होता है। यदि उस पर क्रूर ग्रह की दृष्टि हो, तो पदार्थ नहीं मिलता और दृष्टि न हो, तो मिल जाता है।

यदि लग्न में पूर्ण किरणों वाला चन्द्रमा हो तथा उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि हो, तो नष्ट पदार्थ शीघ्र मिल जाता है। लाभ स्थान में स्थित बलवान् शुभ ग्रह भी नष्ट पदार्थ का शीघ्र लाभ कराता है।

नष्ट प्रश्न के बारे में दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। अत: जो लोग नष्ट प्रश्न का फलादेश करने में रुचि उत्पन्न करना चाहते हैं, उन्हें सर्वप्रथम 'कृष्णीयम्' ग्रन्थ का अच्छी तरह अध्ययन करना चाहिए।



नष्टजातक निरूपण

पृच्छक के अन्य प्रश्नों के समान अर्थात् उसके जन्मकालीन नक्षत्र आदि चार पदार्थों का विचार पूर्वोक्त से भी करना चाहिए, अब उसे भी यहाँ कहते हैं।

जन्म नक्षत्र साधन विचार

यहाँ पर प्रश्न में मेष आदि राशियाँ यदि आरूढ़ हो, तो ४९ में से क्रम-से १२, २, ५, १०, ७, ८, १, ११, ४, ७, ९ एवं ७ को घटाकर शेष को ७ से गुणा कर २७ से भाग देना चाहिए। नष्ट जातक पद्धति में यहाँ शेष तुल्य अश्विनी आदि नक्षत्र पृच्छक का जन्म नक्षत्र होता है।

बृहस्पति का नक्षत्र विचार

यहाँ उपरोक्त संख्या ४९ अर्थात् सात का वर्ग ७ × ७ कूटस्थ अर्थात् आधारभूत उपकरण है। पूर्व कथित मेषादि राशियों की संख्या कही गई है। अब यदि बृहस्पति का जन्मकालिक नक्षत्र जानने के लिए ४९–७ = ४२ में से उपरोक्त १२ आदि राशि संख्या को आरूढ़ लग्नानुसार प्राप्त करके, घटा लें। इस अन्तर फल को ७ से गुणा कर २७ का भाग देने पर शेष बृहस्पति का नक्षत्र होता है।

इसी विधि से सूर्य साधनार्थ ४९–१४ = ३५ में से, लग्न साधनार्थ ४९ – २ = ४७ में से पूर्वोक्त संख्या घटाकर क्रिया करने से सूर्य व लग्न ज्ञात हो जाते हैं।

जन्म नक्षत्र जानना

तात्कालिक चन्द्र नवांश में चन्द्र के भुक्त घटी आदि को ९ से गुणाकर २७ से भाग देने से शेष तुल्य अश्विनी आदि नक्षत्र की गणना करनी चाहिए।

दैवज्ञ को यहाँ कही गई पद्धति के अनुसार पृच्छक का जन्म नक्षत्र बतलाना चाहिए। नष्टजातक के प्रसंग में लग्न के नवांश से भी इस प्रकार जन्म नक्षत्र जाना जा सकता है।

शकुनवश जन्म चन्द्र साधन

होराशास्त्र के नष्टजातकाध्याय में जिस प्रकार भक्ष्य आदि पदार्थों के आधार पर जन्मकालीन चन्द्रमा का साधन करना बताया गया है, उसे भी अब कहा जा रहा है।

यहाँ होराशास्त्र का अपर नाम बृहज्जातक से ही दक्षिण भारत में प्रसिद्धि है। वराहमिहिर ने स्वयं भी उसका होराशास्त्र नाम कहा है; किन्तु वहाँ स्पष्टतया यह विषय नष्टजातकाध्याय में नहीं है। लेकिन वराहमिहिर ने इस पद्धति से जन्मराशि निर्णय श्लोक ६ में कहा है, लेकिन वहाँ शकुन वस्तुओं का उल्लेख नहीं किया है।

इस प्रकार छाता, भेड़, भेड़ की आवाज, उस जैसी आकृति एवं कम्बल आदि मेष राशि के सूचक हैं।

बैल, गाय उसका चमड़ा, शब्द, आकृति, घी, हल आदि गाय और बैल के वाचक शब्द, तृण एवं मांस आदि वृष राशि के सूचक हैं।

वीणा, स्त्री और पुरुष, गदा, शयन और पान मिथुन राशि के सूचक हैं तथा मिट्टी, केंकड़ा, जीर्णपत्ता एवं जल कर्क राशि के सूचक हैं।

शेर, व्याघ्र, उनकी चर्चा, आकृति, हाथी, मृग आदि सिंह राशि के तथा लड़की, नौका, दीपक, कमल, लाभ आदि कन्या राशि के सूचक हैं।

बेचने की चीजें, मापना-तौलना या लाना ले जाना आदि कार्यकर्त्ता, और क्रय विक्रय आदि सब बातें तुलाराशि की सूचक है। भ्रमर, सर्प, विषवैद्य एवं बिन्दु राशि वृश्चिक राशि के तथा धनुषधारी, धनुष-बाण एवं घोड़ा आदि धनुराशि के सूचक होते हैं।

हिरण, उसके सींग एवं चर्म तथा मगरमच्छ, मकर आदि में घड़ा, कुम्हार एवं पानी रखने के बर्तन कुम्भ राशि में तथा मछली, मछली पकड़ने के उपकरण एवं जल आदि मीन राशि में स्थित में चन्द्र सूचक होते हैं। प्रश्न के समय इनका देखना या इनके बारे में सूनने से भी उपरोक्त राशियों का ग्रहण किया जाता है।

अन्य प्रकार से विचार

'लग्नत्रिकोण०' इत्यादि श्लोकार्ध में बृहज्जातक नष्टजाताध्याय श्लोक २ में उपरोक्त विधि से जिस प्रकार जन्म चन्द्र का साधन किया गया है, उसे भी अब यहाँ कहते हैं।

बृहज्जातक में यह श्लोक बृहस्पति की जन्म कालीन स्थिति जानने के प्रसङ्ग में कहा गया है। यहाँ जन्मचन्द्र ज्ञान में इसका उपयोग करते हैं।

(क) तत्कालीन प्रश्न लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो, तो लग्नराशि, द्वितीय द्रेष्काण हो, तो पञ्चमराशि और तृतीय द्रेष्काण हो, तो राशि में चन्द्र को जानना चाहिए, लेकिन कहा जाता है कि पञ्चम व नवम में जो बली है, उसी में जन्म चन्द्र को समझना चाहिए।

(ख) ग्रहबलों का निर्णय न होने पर पृच्छक द्वारा स्पष्ट अंग के अनुसार जन्मराशि जानना चाहिए।

(ग) अथवा भूमिचक्र में आरूढ़ राशि को जन्म राशि जानना चाहिए।

(घ) अथवा प्रश्न के समय उच्चारित प्रथमाक्षर के अनुसार जन्म राशि समझनी चाहिए।

यहाँ मेषादि राशियों के आद्यक्षर क्रम-से उसका इस प्रकार ग्रहण करना चाहिए—ग, गा, रु, द्र, र, मा, (ण—इ), भ, म, वि, ष आदि।

कृष्णीयम् ग्रन्थोक्त विचार

आरूढ़ लग्न को देखने वाले ग्रहों में से जो ग्रह बलवान् हो उसकी अधिक बल वाली ओज या युग्म राशि के अनुसार जन्मराशि कहनी चाहिए।

चूँकि सूर्य और चन्द्र की एक-एक ही राशि होती है। अत: उनकी वही राशि ग्रहण करनी चाहिए।

इसके सम्बन्ध में सम व विषम राशि चुनने की आवश्यकता नहीं है और यदि आरूढ लग्न को कोई भी ग्रह न देखता हो, तो प्रश्न कुण्डली के केन्द्र में जो केन्द्र बलवान् हो उसकी राशि जन्म राशि होती है।

जन्म लग्न का निर्णय केन्द्र के बलानुसार तथा केन्द्रों को देखने वाले ग्रहों की राशि के अनुसार करना चाहिए।

मेषादि राशि के प्रश्न लग्न से अथवा आरूढ़ राशि से इन पर प्रभाव डालने वाले ग्रहों का निश्चय कर तदनन्तर उनकी सम अथवा विषम राशि का निश्चय (लग्न अथवा चन्द्र लग्न के निर्णय के लिए) करना चाहिए।

यदि प्रश्न लग्न तथा आरूढ़ राशि से भिन्न परिणाम निकलता हो, तो फिर द्रष्टा ग्रह की आरूढ़ राशि से इस बात का निर्णय करना चाहए।

यदि देखने वाले ग्रह सभी पुरुष भाव में स्थित हों अथवा देखने वाले ग्रह संख्या में बहुत हों, तो आरूढ़ राशि पर प्रभाव द्वारा निश्चय करना चाहिए।

प्रभाव डालने वाले ग्रहों की सम राशि जन्म लग्न होता है अथवा विषम राशि, इस बात का निर्णय प्रश्नकालीन चन्द्र पर पड़ने वाले ग्रहों के प्रभाव द्वारा भी जान लेना चाहिए।

पुनः जन्म नक्षत्र साधन

आरूढ राशि से लग्न पर्यन्त गणना करने से प्राप्त संख्या को २ से गुणा कर उसमें से उस दिन की संख्या घटाकर शेष में दिन नक्षत्र की संख्या जोड़नी चाहिए।

२७ से अधिक होने पर २७ का भाग देने से शेष तुल्य अश्विनी आदि जन्म नक्षत्रा होता है।

अन्य प्रकार से विचार

प्रश्न के समय प्रश्नकर्त्ता के साथ जितने लोग हों उनमें पूछने वाले और ज्योतिषी मिलाकर उस संख्या को ३ से गुणाकर २७ का भाग दें।

चर राशि यदि लग्न में हो, तो मघा से और द्विस्वभाव राशि हो, तो मूल से शेष संख्या तक गणना करने से प्रश्नकर्त्ता का जन्म नक्षत्र प्राप्त हो जाता है।

जन्ममास ज्ञान

लग्न आदि षड् राशियों में सूर्य हो, तो उत्तरायण तथा सप्तम आदि षड् राशियों में सूर्य हो, तो दक्षिणायन होता है।

यदि सूर्य आरूढ़ में हो, तो मिथुन (आषाढ़) मास कहना चाहिए। इस प्रकार द्वादश आदि भावों में व्युत्क्रम गणना से अग्रिम मासों में सूर्य की स्थितिवश प्रश्नकर्ता का जन्म मास ज्ञात हो जाता है।

जन्म नक्षत्रज्ञानार्थ तीसरा प्रकार

लग्न के पूर्वार्द्ध में उत्तरायण एवं उत्तरार्द्ध में दक्षिणायन समझना चाहिए। आरूढ़ राशि को २ से गुणा कर २७ का भाग देने से शेष तुल्य जन्म नक्षत्र हो जाता है।

जन्म लग्न

यदि प्रश्न लग्न में विषम राशि हो, तो मेषादि राशियों के लग्न में जन्म होता है।

प्रश्न के समय लग्न का पूर्वार्द्ध हो, तो मेष, वृष एवं मिथुन में तथा उत्तरार्ध हो, तो अन्य ३ राशियों को लग्न में ग्रहण करना चाहिए।

इन ३-३ राशियों में लग्न में प्रथम तृतीयांश होने पर प्रथम राशि, द्वितीय राशि तथा तृतीयांश होने पर तृतीय राशि को लग्न में जानना चाहिए।

प्रश्न लग्न में सम राशि होने पर तुला आदि षड् राशियों में से कोई राशि जन्म लग्न होती है।

यहाँ भी पूर्वोक्त रीति से पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्ध में ३-३ राशियाँ तथा लग्न के अर्ध के तृतीयांश के अनुसार उनमें से लग्न गत राशि का विचार करना चाहिए।

प्रथम द्रेष्काण में द्वितीय राशि, द्वितीय द्रेष्काण में अन्तिम राशि तथा अन्तिम द्रेष्काण में प्रथम राशि पृच्छक की जन्मकालीन लग्न राशि समझनी चाहिए।

अष्टमंगलविधि से नष्ट कुण्डली

अष्टमंगल विधि से कुछ आचार्यों ने नष्टजातक के विषय में नक्षत्रादि चारों पदार्थों का साधन किया है। यहाँ उसकी विधि भी लिखते हैं।

ग्रंथ के प्रारम्भ में कथित पद्धति से अष्टमंगलार्थ १०८ वराटिकाओं की स्थापना उत्तर, मध्य व दक्षिण में राशि चक्र में करना चाहिए।

विधिवत् पूर्वोक्त प्रकार से पूजनविधान सम्पन्न कर तीनों स्थानों से ८-८ वराटिकायें निकाल लेना चाहिए।

अब तीनों स्थानों की शेष वराटिकाओं की संख्या को गिनकर प्राप्त संख्या अर्थात् तीनों ढेरियों की वराट्रिकाओं व अलग निकाली २४ वराटिकाओं से नष्ट जातक का यहाँ विचार किया जाता है।

(क) प्रथम स्थान पर १२ से भाग देकर लब्धि राशि को तत्कालीन चन्द्र स्पष्ट में जोड़ने से नष्ट जन्म चन्द्र होता है।

(ख) द्वितीय स्थान पर ४ से भाग देकर लब्धि राशि को तत्कालीन सूर्य में जोड़ने पर नष्टकालीन सूर्य होता है।

(ग) चतुर्थ स्थान पर २४ वराटिकाओं को १२ से भाग देने पर पूर्ववत् प्रश्न लग्न स्पष्ट में जोड़ने से 'जन्म लग्न' प्राप्त होता है।

यदि आरूढ लग्न सिंह या कर्क हो, तो लब्धि को प्रश्न लग्न स्पष्ट की कलाओं में से घटाना चाहिए। अन्यथा पूर्ववत् क्रिया करनी चाहिए।

अब जन्म चन्द्र साधन का अन्य प्रकार कहते हैं—प्रश्नकालीन चन्द्रमा में से प्रश्न लग्न हो घटाने पर जितना शेष बचे उसे प्रश्नकालीन चन्द्रमा में जोड़ने पर पृच्छक के जन्म समय का चन्द्रमा हो जाता है।

यदि प्रश्न लग्न में मीन राशि हो, तो लग्नराशि ही चन्द्रराशि समझनी चाहिए। इस प्रकार से कुछ आचार्य नष्टजातक में जन्म चन्द्र साधन करने को उचित कहते हैं।

प्रकारान्तर से पक्ष एवं मास ज्ञान

यहाँ पर प्रश्न लग्न में मेष आदि राशियाँ हो, तो वैशाख आदि महीनों में जन्म कहना चाहिए।

विषम राशि लग्न में हो तथा पुरुष ग्रह की दृष्टि हो, तो पहला अर्थात् कृष्ण पक्ष और समराशि लग्न में तथा स्त्री ग्रह की दृष्टि होने पर अन्य अर्थात् शुक्ल पक्ष में जन्म होता है।

अर्थात् प्रश्न लग्न की राशि में ही जन्म सूर्य समझना चाहिए। मो लग्न में वैशाख, वृष में ज्येष्ठ इत्यादि क्रम से मास ज्ञान करें।

द्रेष्काण से जन्म सूर्य विचार

प्रश्न के समय यदृच्छया जिस द्रेष्काण से सम्बन्धित आयुध एवं अन्य चीजें दिखलाई या सूनाई दें, उस द्रेष्काण की राशि में सूर्य होता है; ऐसा आचार्गें ने कहा है। द्रेष्काणों के आयुधादि का विचार बृहज्जातक के अध्याय २७ में किय गया है।

प्रश्नकर्ता के आरूढ़ लग्न के स्वामी ग्रह की उच्चराशि का स्वमी किस

राशि में है? उस राशि के स्वामी ग्रह का उच्चेश जिस राशि में हो, वही राशि जन्म चन्द्र राशि होती है। आरूढ लग्नेश यदि नीच में नहीं हो, तो उसकी उच्चराशि जन्म लग्न राशि होती है।

यदि प्रश्नकर्त्ता बैठकर प्रश्न किया हो, तो प्रश्न लग्न से सप्तम राशि, यदि बैठकर उठ गया हो और फिर प्रश्न किया हो, तो दसवीं राशि, यदि खड़े-खड़े प्रश्न किया हो, तो प्रश्न लग्न राशि, यदि लेटकर प्रश्न किया हो, तो चतुर्थ राशि नष्ट जन्म लग्न कहना चाहिए।

वराहमिहिरोक्त प्रकार

बृहज्जातक में 'होरानवांश प्रतिम०' इत्यादि श्लोक में आचार्य वराहमिहिर ने नष्टजातक का लग्न जिस प्रकार बतलाया है, अब उस प्रकार को कहते हैं—

यहाँ प्रश्न लग्न में मेष आदि जिस राशि का नवांश हो उस राशि के लग्न में जन्म होता है अथवा लग्न के द्रेष्काण में जितनी संख्या आगे के द्रेष्काण में सूर्य हो, सूर्य से उतनी संख्या आगे वाली राशि पृच्छक की जन्म लग्न होती है।

यहाँ दूसरा प्रकार त्याज्य है, क्योंकि यदि द्रेष्काण संख्या अधिक हो, तो उससे द्वादशाधिक राशि लग्न में सम्भावित होती है।

गुरु का साधन

प्रश्न लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो, तो गुरु की लग्न राशि में, द्वितीय द्रेष्काण हो, तो लग्न से पञ्चम राशि में और तृतीय द्रेष्काण हो, तो लग्न से नवम राशि में जन्मकालीन गुरु होता है अथवा तात्कालिक प्रश्न से प्रथम, पञ्चम एवं नवम स्थानों से द्रेष्काणवश उन-उन स्थानों की राशि में गुरु बतलाया जाना चाहिए अथवा लग्न के द्वादशांश की राशि में पृच्छक का जन्मकालीन गुरु होता है।

निसर्गायु के क्रम से गुरु का पूर्व आदि परिवर्तन कर उसकी आयु कहनी चाहिए अथवा पृच्छक की आकृति को देखकर उसकी आयु का विचार करना चाहिए।

यहाँ पर कुछ आचार्य उपरोक्त मत अर्थात् 'गुरु की जन्मकालीन स्थिति को लग्न की नवांश राशि से अथवा उसके त्रिकोण में स्थित राशि से निकालना चाहिए' इस बात को कहने के साथ-साथ यह भी कहते हैं कि सूर्य जब दशम स्थान में स्थित हो, तो गुरु की जन्मकालीन स्थिति प्रश्नकालीन चन्द्र की नवांश राशि में होती है।

माधवीयम के अनुसार–

प्रश्नकर्ता के सिर आदि अंगों का स्पर्श करने से आचार्य माधव ने उस के जन्मनक्षत्र का विचार किया है। अब उसे भी कहते हैं।

इस प्रकार सिर का स्पर्श करने पर कृत्तिका, ललाट का स्पर्श करने पर रोहिणी, भौंहों का स्पर्श करने पर मृगशिर, कान का स्पर्श करने पर आर्द्रा, कपोल स्पर्श करने पर पुनर्वसु, ठोड़ी स्पर्श करने पर पुष्य, दाँत स्पर्श करने पर आश्लेषा, गला स्पर्श करने पर मघा, हाथ की अंगुलि स्पर्श करने पर चित्रा, नाखून स्पर्श करने पर स्वाति, वक्षस्थल स्पर्श करने पर विशाखा और हृदय का स्पर्श करने पर अनुराधा जन्म नक्षत्र होता है।

स्तनों का स्पर्श करने पर ज्येष्ठा, पेट स्पर्श करने पर मूल, दाहिनी पसली स्पर्श करने पर पूर्वाषाढ़ा, बाँयी पसली स्पर्श करने पर उत्तराषाढ़ा, नाभि स्पर्श करने पर श्रवण, कमर स्पर्श करने पर धनिष्ठा, गुप्ताङ्ग स्पर्श करने पर शतभिषा, दोनों ऊरु स्पर्श करने पर पूर्वा एवं उत्तरा भाद्रपद, दोनों जानु स्पर्श करने पर रेवती, जंघा स्पर्श करने पर अश्विनी एवं दोनों पैरों को स्पर्श करने पर भरणी जन्मनक्षत्र होता है अथवा तात्कालिक नक्षत्र से २६वाँ नक्षत्र होता है।

स्पष्ट रूप से स्पर्श होने पर स्पृष्टाङ्ग से तथा स्पष्ट न होने पर अन्य रीति से जन्मनक्षत्र का विचार करना चाहिए।

अंग स्पर्शवश जन्म नक्षत्र ज्ञानार्थ चक्र

स्पृष्टांग	जन्म नक्षत्र	स्पृष्टाङ्गजन्म	नक्षत्र	स्पृष्टाङ्ग	जन्मनक्षत्र
सिर	कृत्तिका	बाजू	उ.फा.	बाँया फेफड़ा	उ.षा.
ललाट	रोहिणी	हाथ	हस्त	नाभि	श्रवण
भौंहें	मृगशिरा	अंगुली	चित्रा	कमर	धनिष्ठा
कान	आर्द्रा	नाखून	स्वाती	गुप्तांगशता	भषा
कपोल	पुनर्वसु	हृदयस्थल	विशाखा	जाँघ	पू.भा.
ठोड़ी	पुष्य	हृदय	अनुराधा	जाँघ	उ.भा.
दाँत	आश्लेषा	स्तन	ज्येष्ठा	घुटने	रेवती
गला	मघा	पेट	मूल	पिंडली	अश्विनी
कन्धा	पू.फा.	दायाँ फेफड़ा	पू.षा.	पैर	भरणी



स्वप्न का सम्पूर्ण ज्ञान

यदि लग्न में स्थित सूर्य पर चन्द्रमा की दृष्टि हो अथवा लग्न से सप्तम स्थान में सूर्य की राशि को चन्द्रमा देखता हो, तो स्वप्न देखा गया है, इस प्रकार से विचार करना चाहिए। यहाँ लग्न के भुक्तांशों से समय का ज्ञान भी कर लेना चाहिए।

स्वप्न विषय स्वरूप

यदि लग्न में सूर्य हो, तो स्वप्न में जलती हुई अग्नि एवं लाल वस्त्र आदि, चन्द्रमा हो, तो स्त्री, सफेद फूल एवं श्वेतवस्त्रादि, मंगल हो, तो स्वर्ण, मूंगा, लाल कपड़ा एवं ताजा मांस आदि, बुध हो, तो आकाश यात्रा, गुरु हो, तो बन्धुओं से मिलन, शुक्र हो, तो जल में तैरना तथा लग्न में शनि हो, तो ऊँची चोटी चढ़ना स्वप्न में देखा गया है।

लग्न में कई ग्रह हो, तो उन-उन ग्रहों से मिश्रित स्वप्न का स्वरूप निर्धारित करने चाहिए।

दुःस्वप्न विचार

यदि लग्न में शत्रु एवं नीच राशि में ग्रह हो, तो दुःस्वप्न देखा गया है, कहना चाहिए। सूर्य के साथ अस्तंगत ग्रह हो, तो स्वप्न बीच में टूट गया ऐसा समझना चाहिए।

लग्न राशिवश स्वप्न विचार

लग्न में मेष राशि होने पर मन्दिर के दर्शन, वृष होने पर देवदर्शन, मिथुन होने पर ब्राह्मण एवं तपस्वियों के दर्शन तथा कर्क राशि होने पर दृष्टा स्वयं को तथा अपनी खेती की उपज को स्वप्न में देखा है।

लग्न में सिंह राशि होने पर खेत से घास लाना, भील देखना या भैंसा देखना; कन्या होने पर स्त्रियों से समागम; तुला राशि लग्न में होने पर व्यापारी एवं राजा तथा वृश्चिक लग्न में होने पर स्वप्न में सोना दिखाई देता है।

लग्न में धनु राशि होने पर भ्रमर देखना या जहर देना, त्वचा या फल पुष्प; मकर होने पर स्त्री-पुरुष; कुम्भ होने पर मुकुर तथा लग्न में मीन राशि होनेपर समुद्र या सोना देखा जाता है।

इस प्रकार छत्र, आरूढ़ लग्न एवं चतुर्थ स्थान में स्थित ग्रहों से भी स्वप्न का विचार करना चाहिए।

स्वप्नवश रोग

यहाँ स्वप्न में प्रेतों अर्थात् मृत व्यक्तियों के साथ शराब पीता हुआ या कुत्तों से खिंचता हुआ अनुभव हो, तो वह व्यक्ति शीघ्र ही ज्वरग्रस्त होकर काल का ग्रास बन जाता है। ऐसा अष्टाङ्गहृदय (आयुर्वेद) में बतलाया गया है।

स्वप्नावस्था में जो व्यक्ति शरीर में लाल फूलों की माला और लाल वस्त्र धारण किये हँसता हुआ स्त्रियों से लज्जित होता है वह पित्तप्रकोप से मृत्यु प्राप्त करता है।

स्वप्न में जो व्यक्ति भैंसा, श्वान, सूअर, ऊँट या गधे पर बैठकर दक्षिण की ओर जाता है वह तपेदिक से मर जाता है। काँटे या बाँस में उलझने से हृदयरोग होता है।

गुल्म या शूल रोग का स्वप्न

घृत युक्त पदार्थों से स्वप्न में होम करने वाले या अपमानित होने वाले व्यक्ति के पेट में गुल्म रोग कहना चाहिए।

कुष्ठ व प्रमेह सूचक स्वप्न

जो व्यक्ति स्वप्न में चाण्डालों के साथ मद्यपान करता है वह कुष्ठ रोग से मर जाता है तथा जो स्वप्न में अनेक प्रकार का तेल या पेय पीता है वह प्रमेह रोग से मृत्यु को प्राप्त करता है।

मृत्युसूचक स्वप्न

जो गदहा, ऊँट, बिल्ली, वानर, सिंह, सूअर, मृतात्मा या सियार की सवारी करता है वह शीघ्र ही काल का ग्रास बन जाता है।

नेत्ररोगसूचक स्वप्न

स्वप्न में मालपुआ एवं पूड़ी खाकर उठने के बाद उनकी उल्टी करने वाला व्यक्ति जिन्दा नहीं रहता। स्वप्न में सूर्य एवं चन्द्रग्रहण देखने वाला व्यक्ति नेत्ररोगी हो जाता है।

अपस्मार रोग सूचक स्वप्न

जो व्यक्ति स्वप्न में राक्षसों के साथ नाचता है वह पागलपन के कारण जल में डूब जाता है। जो व्यक्ति मृतकों के साथ नाचता है वह मिर्गी रोग से मर जाता है।

सूर्य और चन्द्र के पात का दर्शन नेत्र विनाशक कहा गया है तथा सिर पर बांस एवं लताएँ रखी होने से आयु नष्ट होती है।

पुनः मृत्युसूचक स्वप्न

इस प्रकार गृह में सिर मुंडवाना, कौआ एवं गृध्र का बैठना, प्रेत, पिशाचिनी,

उल्लू और गौ के साथ भोजन करना, वृक्ष-लता, बाँस, फूँस एवं काँटों के साथ रहना, श्मशान में सोना, जल और भस्म में गिरना, जल एवं कीचड़ में डूबना, जल्दी-जल्दी नदी में नहाना, जल्दी-जल्दी नाचना, बजाना एवं गाना, लाल माला एवं लाल वस्त्र पहिनना, अंग का बढ़ना, उबटन करना, विवाह होना, दाढ़ी बनाना, पकवान, चिकनी चीजें एवं शराब सेवन करना उल्टी होना, सोना या लोहा मिलना, कलह, बन्धन एवं पराजय होना, जूतों का विनाश या गिरना, हर्षित या कुपित पितृश्वरों की भर्त्सना, दीपक, ग्रह, नक्षत्र, दाँत एवं दैवज्ञ का गिरना या विनाश, पर्वत में छेद होना; फूलों के वन, पाप कर्मों की भूमि, चिन्ता एवं अन्धकारमय स्थान में प्रवेश करना, महल या पर्वत से गिना, मछली के द्वारा पकड़ा जाना, गेरुआँ वस्त्रधारी, क्रूर, नंगे, दण्डी, ला आँख वाले एवं काले रंग के व्यक्तियों को देखना, काली, दुराचारिणी, बड़े बाल एवं नाखून वाली, बड़े स्तनों वाली, मैले वस्त्रों वाली स्त्री का स्वप्न में देखा जाना; ये सब मृत्यु की कालरात्रि के सूचक कहे गये हैं।

स्वप्नों का कारण व भेद

धमनियों या स्नायुओं में अधिक मल आकर जमा हो जाने के कारण दारुण स्वप्न दिखते हैं, जिनके फलस्वरूप रोगी मर जाता है तथा कोई-कोई ही स्वस्थ व्यक्ति संशय ग्रस्त होने के बावजूद भी इसके प्रभाव से बच जाते हैं।

दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भावित एवं दोषज; इस प्रकार स्वप्न सात प्रकार का कहा गया है।

इनमें से प्रथम आदि पाँच निष्फल होते हैं तथा दिन में दिखने वाले स्वप्न प्राकृतिक रूप से निष्फल ही माने जाते हैं।

स्वप्न फलप्राप्ति काल

विस्मृत, लम्बा, छोटा और रात की शुरुआत में दिखने वाला स्वप्न विलम्ब से फलप्रद होता है तथा वह अल्पमात्रा में अशुभ फल करने वाला होता है। प्रातःकाल दिखने वाला स्वप्न उसी दिन फल देने वाला होता है।

नींद तथा अपवचन के उपरान्त भी जो स्वप्न आता रहे उसका दोष दान, होम एवं जप आदि से कम किया जाता है।

यदि अशुभ स्वप्न को देखकर उसके तुरन्त बाद सौम्य एवं शुभ फल दिखने लगे, तो शुभ फल ही होता है।

स्वास्थ्य व धनवर्धक स्वप्न

देव, ब्राह्मण, गौ, वृषभ, जीवित मित्र, राजा, साधु, यशस्वी, प्रज्वलित

अग्नि, स्वच्छ जलाशय, कन्या, गौरवर्ण किशोर और श्वेतवस्त्र धारण किए हुए लोग, तेजस्वी एवं चारों ओर फैला खून स्वप्न में दिखना शुभदायक होता है।

छत्र, दर्पण, विष, श्वेत एवं सुन्दर वस्त्र, प्रासाद, चन्दन एवं फल को स्वप्न में देखना या लेना, पर्वत, महल, फलवालावृक्ष, सिंह, राजा, वाहन पर चढ़ना, पैरों से समुद्र लाँघना, पूर्व एवं उत्तर की यात्रा, अगम्या स्त्री का सम्भोग, मृत्यु, देवताओं से सम्बन्ध, पितरों से अभिनन्दन, रोना, गिरकर उठना, शत्रुओं का मर्दन; ये सभी स्वप्न जिस व्यक्ति को दिखते हैं, वह आयु, आरोग्य एवं पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त कर उनका उपभोग करता है।

स्वप्न के कारण

धातु प्रकोप, ग्रहदशा, चिन्ता, अभिचार, गुह्यकों का प्रभाव तथा स्वप्न में भूत या भविष्य में अन्य जाति के प्राणी का संग-साथ; ये सब नित्य दीख जाने वाले गतिशील स्वप्न के निश्चित कारण कहे गए हैं।

वात-पित्त-कफ सम्बन्धित स्वप्न

त्रिधातुओं में से वायु यदि कुपित हो, तो ऊँचाई पर चढ़ना, आकाश में उड़ना, गिरना आदि; पित्त प्रकोप से स्वर्ण, लाल माला, सूर्य एवं अग्नि का दिख जाना तथा कफ की अधिकता से श्वेत पुष्प, नदी एवं जल का उल्लंघन आदि जैसी घटनायें स्वप्न में दिखती हैं।

वायु, पित्त एवं कफ के प्रकोप से दिख जाने वाले स्वप्नों का उसी समय साधारण फल होता है।

ग्रहों की दशा के कारण दिख जाने वाले स्वप्नों का फल दशाजन्य होता है तथा चिन्ता के कारण उत्पन्न स्वप्न जिस प्रकार का दिखता है, वैसा-ही फल भी देता है।

वीभत्स जीवों द्वारा किये गये अभिचार से उत्पन्न पित्तप्रकोप जैसे स्वप्नों को गुह्यकजन्य स्वप्न कहते हैं। अपनी चिन्ता, ग्रहदोषजन्य आदि स्वप्न निष्फल होते हैं।

निश्चित फलदायक स्वप्न

इस प्रकार के स्वप्न की जो घटनायें अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जाये या प्रत्यक्ष जैसी प्रतीत होने लगे उस स्वप्न का निश्चित रूप से शुभ या अशुभ फल मिलता है।

इस तरह स्वप्नों के शुभ अथवा अशुभ फल मनुष्यों को लक्ष्य कर यहाँ बतलाया गया है।

इस तरह प्रथम प्रहर में दिखने वाले स्वप्न का फल वर्ष के भीतर, द्वितीय प्रहर में दिखने वाले का फल षड् मास के भीतर तथा तृतीय प्रहर के स्वप्न का फल चार मास के भीतर मिलता है।

रात्रि के अन्त में दिखने वाले स्वप्न का फल एक मास में तथा उष:काल के स्वप्नों का तुरन्त फल प्राप्त होता है।

वाल्मीकीय रामायणोक्त अशुभ स्वप्न

वाल्मीकि रामायण के अनुसार भरत ने स्वप्न में मलिन आकृति वाले, खुले केश वाले, पर्वत की चोटी से लुढ़कते हुए और गोबर के गड्ढे में गिरे हुए अपने पिता को देखा।

उस ने स्वप्न में सूखा समुद्र, पृथ्वी पर गिरा चन्द्रमा, अन्धकार से ढँका जगत्, नाग का विषाण, सहसा जलती अग्नि का बुझना तथा लोहे के सिंहासन पर काला वस्त्र पहिने स्वयं को बैठा हुआ देखा।

राजा को स्त्रियों के साथ हँसते हुए और जल्दी-जल्दी लाल रंग की माला और चन्दन लगाये हुये धर्मात्मा दशरथ को गधों के रथ से दक्षिण की ओर जाते हुए देखा।

भरत कहता कि मैंने बड़े जोर से हँसते हुए राजा दशरथ को अट्टहास लगाते, लाल कपड़े धारण किये हुए स्त्री को तथा विकृत मुखाकृति वाली राक्षसी को देखा है।

मेरा कण्ठ सूखा जा रहा है। मेरा मन स्वस्थ नहीं है। इस प्रकार मेरी, राम की या राजा दशरथ अथवा लक्ष्मण की मृत्यु अनिश्चित जान पड़ती है।

मेरे पिता राजा दशरथ कुशल तो है? महात्मा राम और लक्ष्मण स्वस्थ तो हैं? धर्मतत्परा, धर्मज्ञा, धर्मदर्शिनी बुद्धिमान राम की माता आर्या कौशल्या प्रसन्न तो हैं, लक्ष्मण की माता या वीर शत्रुघ्न की माता धर्मज्ञा सुमित्रा सकुशल तो हैं? आत्मकामा, चण्डी के समान क्रोध करने वाली, मानिनी मेरी माता कैकेयी स्वस्थ तो हैं?

भरत ने इन सब दोषदायक स्वप्नों को इस तरह देखा और इनके प्रभाववश अपने पिता आदि पर किसी विपत्ति की शंका का निश्चय किया।

ग्रन्थान्तर से स्वप्न फल

यदि स्वप्न में रक्त और मद्य पीना दिख जाय तो ब्राह्मण को विद्या प्राप्ति तथा अन्य लोगों को धन लाभ होता है।

जो व्यक्ति स्वप्न में राजा, हाथी, घोड़ा, सोना एवं शुभाङ्गों वाले व्यक्ति को या हाथी आदि पर सवार पुरुष को देखता है, उसकी समस्त मनोकामनायें पूरी होती हैं।

यदि वह राजवंश का हो, तो शीघ्र ही उसे राज्यलाभ होता है।

इस प्रकार से स्वप्न में चामर, चन्दन, शंख, मोती, पान के समान पत्ते, फूल और बहुमूल्य चीजों का मिलना शुभ कहा गया है।

स्वप्न में जिसे जूँ या मधुमक्खी काटता हो, तो उसे पुत्र एवं धन प्राप्त होता है, यह स्वप्न नीच कुल में उत्पन्न व्यक्ति को भी राज्यदायक होता है।

मलिन कमल के पत्ते के दोने में घी और खीर रखकर जो मनुष्य खाता है, वह महर्षियों द्वारा मान्य महान विद्या प्राप्त क़रने वाला होता है।

स्वप्न में जो व्यक्ति क्रौंची (चकवी) को पकड़े हुए मुर्गा या सारस को देखता है वह प्रिय भाषिणी स्त्री या कन्या प्राप्त करने वाला होता है।

स्वप्न में आसन, शय्या और घर या अपना वाहन या अपना शरीर जलता हुआ दीख जाय, तो वह व्यक्ति शीघ्र ही धन प्राप्त करने वाला होता है।

स्वप्न में सूर्य एवं चन्द्रमा के मण्डल का दर्शन, नक्षत्रों से सुशोभित आभापूर्ण चन्द्र और प्रज्वलित अग्नि का दर्शन रोगी को स्वास्थ्य तथा स्वस्थ व्यक्ति को धन-लाभ कराने वाला होता है।

जो व्यक्ति स्वप्न में फल, फूल, दर्पण, रत्न, दही, कलश, चावल और दूध आदि को देखता है, उसके पास महालक्ष्मी का आगमन होता है, समझना चाहिए।

रात्रि के प्रथम आदि यामों अर्थात् प्रहरों के स्वप्न का फल क्रमशः एक वर्ष, आठ मास, तीन और दस दिन में मिलता है; विद्वानों का इस प्रकार का कथन समझना चाहिए।



अष्टक वर्ग निरूपण

सन्तति आदि प्रश्नों का विचार करने के समय पहले ही अष्टक वर्ग के प्रसङ्ग में बतलाया जा चुका है। अब उसके न्यास की विधि को कहते हैं।

सूर्याष्टक वर्ग

अष्टकवर्ग में सूर्य अपने स्थान से १, २, ४, ७, ८, ९, १० एवं ११वें स्थान में, चन्द्रमा से ३, ६, १० एवं ११वें स्थान में, मंगल से १, २, ४, ७, ८, १० और ११वें स्थान में, बुध से ३, ५, ६, ९, १० एवं ११वें स्थान में, गुरु से ५, ६, ९ एवं ११वें स्थान में, शुक्र से ६, ७ एवं १२वें स्थान में तथा शनि से १, २, ३, ४, ६, १० एवं ११वें स्थान में शुभ होता है।

यहाँ से श्लोक ११ तक जातकादेश मार्ग से लिए गए हैं। इन श्लोकों में शब्दों का अर्थ कटपयादि पद्धति से बतलाया गया है।

दक्षिण भारतीय आचार्यों ने इस पद्धति को खूब अपनाया है। इस पद्धति का व्यापक व सटीक उपयोग महर्षि जैमिनी के सूत्रों में उपलब्ध है।

चन्द्राष्टकवर्ग

अपने अष्टक वर्ग में चन्द्रमा सूर्य से ३, ६, ७, ८, १० एवं ११वें स्थान में; अपने स्थान से १, ३, ६, ७ एवं ११वें स्थान में; मंगल से २, ३, ६, ९, १० एवं ११वें स्थान में; बुध से १, ३, ४, ५, ८ एवं १०वें स्थान में; गुरु से १, ४, ७, ८, १०, ११ एवं १२वें स्थान में; शुक्र से ३, ४, ५, ७, ९, १० एवं ११वें स्थान में तथा शनि से ३, ५, ६ एवं ११वें स्थान में शुभ कहा गया है।

भौमाष्टक वर्ग

अपने अष्टक वर्ग में मंगल सूर्य से ३, ५, ६ एवं ११वें स्थान में; चन्द्रमा से ३, ६ एवं ११वें स्थान में; अपने स्थान से १, २, ४, ७, ८, १० एवं ११वें स्थान में; शुक्र से ६, ८, ११ एवं १२वें स्थान में तथा शनि से १, ४, ७, ८, ९, १० एवं ११वें स्थान में शुभ माना गया है।

बुधाष्टक वर्ग

बुध के अष्टक वर्ग में वह सूर्य से ५, ६, ९, ११ एवं १२वें स्थान में; चन्द्रमा से २, ४, ६, ८, १० एवं ११वें स्थान में; मंगल से १, २, ४, ७, ८, १० एवं ११वें स्थान में; अपने स्थान से १, ३, ५, ६, ९, १०, ११ एवं १२वें स्थान में; गुरु से ६, ८, ११ एवं १२वें स्थान में; शुक्र से १, २, ३, ४, ५, ८ एवं ११वें स्थान में; शनि से वह १, २, ४, ७, ८, १० एवं ११वें स्थान में शुभ होता है।

गुर्वष्टक वर्ग

गुरु के अष्टक वर्ग में वह सूर्य से १, २, ३, ४, ७, ८, ९, १० एवं ११वें स्थान में; चन्द्रमा से २, ५, ७, ९ एवं ११वें स्थान में; मंगल से १, २, ४, ७, ८, १० एवं ११वें स्थान में; बुध से १, २, ४, ५, ६, ९, १० एवं ११वें स्थान में; अपने स्थान से १, २, ३, ४, ७, ८, १० एवं ११वें स्थान में, शुक्र से २, ५, ६, ९, १० एवं ११वें स्थान में तथा शनि से ३, ५, ६ एवं १२वें स्थान में शुभ होता है।

शुक्राष्टक वर्ग

शुक्र के अष्टक वर्ग में वह सूर्य से ८, ११ एवं १२ स्थान में; चन्द्रमा से १, २, ३, ४, ५, ८, ९, ११ एवं १२वें स्थान में; मंगल से ३, ५, ६, ९, ११ एवं १२वें स्थान में; बुध से ३, ५, ६, ९ एवं ११वें स्थान में; गुरु से ५, ८, ९, १० एवं ११वें स्थान में; अपने स्थान से १, २, ३, ४, ५, ८, ९, १० एवं ११वें स्थान में; शनि से वह ३, ४, ५, ९, १० एवं ११वें स्थान में तथा लग्न से १, २, ३, ४, ५, ८, ९ एवं ११वें स्थान में शुभ बतलाया गया है।

शनि अष्टकवर्ग

शनि के अष्टक वर्ग में वह सूर्य से १, २, ४, ७, ८, १० एवं ११वें स्थान में; चन्द्रमा से ३, ६ एवं ११वें स्थान में; मंगल से ३, ५, ६, १०, ११ एवं १२वें स्थान में; बुध से ६, ८, ९, १०, ११ एवं १२ स्थान में; गुरु से ५, ६, ११ एवं १२वें स्थान में; शुक्र से ६, ११ एवं १२वें स्थान में; अपने स्थान से ३, ५, ६ एवं ११वें स्थान में शुभ होता है।

उपरोक्त अकेले अक्षरों के क्रम-से संख्यायें कही हैं। जन्मकुण्डली में अपनी-अपनी अधिष्ठित राशि या स्थान से इन-इन संख्याओं के स्थान में रेखाओं का न्यास करना चाहिए।

यहाँ शून्य बोधक वर्ण से दश तथा यवर्ग, पवर्ग आदि से संख्या १० से बढ़ जाने पर एक, दो, तीन आदि के क्रम से ११ एवं १२ तक आवृत्ति क्रमेण संख्यायें कही गई हैं।

'बृहज्जातक के अष्टकवर्गाध्याय, श्लोक १ में "स्वादर्कः प्राथमायबन्धु" इत्यादि क्रम से अष्टकवर्ग में रेखाओं का न्यास करने पर, जिसे पहले लिखते हैं उसका पहले शोधन तथा फिर लिखने के क्रम से अन्यों का शोधन करते हैं।

अष्टक वर्ग में ३, २, १ रेखाओं वाली राशि तथा रेखा रहित राशि उत्तरोत्तर अधम मानी गयी है।

चार रेखाओं वाली राशि मध्यम तथा ५, ६ आदि रेखाओं वाली राशि उत्तरोत्तर शुभ मानी गई है।

विभिन्न रेखाओं का फल

अष्टकवर्ग में सूर्य को जिस राशि में ८ रेखायें मिलें उसमें गोचर होने पर राजा को विभूति एवं धन मिलता है।

वहाँ ७ रेखायें होने पर अद्भुत कान्ति, सुख एवं वैभव, ६ रेखायें होने पर प्रतापवृद्धि एवं उन्नति तथा ५ रेखायें होने पर अर्थलाभ होता है।

वहाँ ४ रेखायें होने पर शुभ एवं अशुभ फल में समानता, ३ रेखायें होने पर मार्ग में थकान, २ रेखायें होने पर रोगभय तथा १ एवं शून्य रेखा होने पर मृत्यु होती है।

इस श्लोक १५ में विभिन्न रेखाओं के फल को सूर्य के उदाहरण द्वारा समझा दिया है।

शेष ग्रहों के गोचर का भी इसी आधार पर रेखानुसार फल विवेक से कर लेना चाहिए।

३, २, १, ० रेखाएँ क्रम-से अधिकाधिक अशुभ व ४, ५, ६, ७, ८ रेखा एवं क्रमशः अधिक शुभ होती हैं।

सूर्याष्टक वर्ग फल

सूर्याष्टकवर्ग में जिस राशि में अधिक रेखायें हों, उस मास में शुभाप्ति की कामना वाले लोगों को विवाह आदि सभी शुभ कर्म तथा व्यवसाय आदि कार्यों का प्रारम्भ करना चाहिए।

उस मास में दूर देश की यात्रा शीघ्र फलदायक होती है। अन्य धार्मिक कार्य करने चाहिए।

शुभ फल चाहने वालों को अल्प रेखा वाली राशि में सूर्य होने पर ये सब नहीं करने चाहिए। यहाँ से श्लोक ३१ तक 'जातकादेशमार्ग' से उद्धृत किये गए हैं।

अधिक रेखा वाली राशि की दिशा में स्थित होकर विभूति-प्राप्ति के लिए शिव एवं क्षेत्रपाल की उपासना अथवा सेवा करनी चाहिए।

अपने घर में उसी दिशा में देवार्चन करना चाहिए तथा शिव, प्रदीप एवं भूपति का उसी दिशा में दर्शन करना चाहिए।

सूर्याष्टक से दिन का फल

सूर्याधिष्ठित, उससे पञ्चम एवं नवम इन तीनों से आगे ४-४ राशियों की रेखाओं को पृथक्-पृथक् जोड़कर अधिक संख्या ज्ञात कर लेनी चाहिए।

सूर्याधिष्ठित राशि से ४ राशियों में अधिक रेखायें होने पर दिन का प्रथम भाग, पञ्चमादि राशियों में अधिक रेखायें होने पर दिन का मध्य भाग तथा नवमादि ४ राशियों में अधिक रेखायें होने पर दिन का अन्तिम भाग शुभ होता है।

चन्द्राष्टक वर्ग फल

चन्द्राष्टक वर्ग के अधिक रेखाओं की राशि में चन्द्रमा हो, तो चौल (मुण्डन) आदि कर्म तथा अन्य सभी अभीष्ट कार्य करने चाहिए।

पूर्ण रेखाओं वाली राशि में चन्द्रमा के रहते जिस स्त्री, पुरुष, राजा, सेवक, नौकर, छात्र, गुरु या मित्र का जन्म हुआ हो, वह सम्पत्तिदायक होता है।

पूर्ण रेखावाली अर्थात् ८ रेखाओं वाली राशि में चन्द्रमा हो, तो उत्पन्न व्यक्तियों का प्रातःकाल दर्शन करना उत्तम होता है तथा उनको वस्त्र आदि का दान करना भी निश्चित रूप से समृद्धिकारक होता है।

रेखारहित राशि में चन्द्रमा हो, तो उस समय शुभ कर्म नहीं करना चाहिए। उस समय प्रारम्भ किये गये सभी काम विफल होते हैं।

कम रेखा में चन्द्रमा होने पर जन्मे व्यक्ति के साथ रहना और प्रातःकाल उन्हें देखना तक महान् विपत्तिदायक होता है।

अधिक रेखाओं की राशि में स्नान एवं पान करना तथा तालाब एवं कुँआ खोदने से उसका जल शुभ होता है। उसी तरह दुर्गा की दिशा में ये उपरोक्त हों, तो अशुभ होता है।

भौमाष्टकवर्ग में अधिक रेखाओं वाली राशि में मंगल हो, तो जमीन एवं स्वर्ण लेना आदि सभी कार्य समृद्धिदायक होते हैं।

पूर्ण रेखाओं वाली राशि की दिशा में सेनापति, राजा एवं देवताओं का दर्शन तथा भूमिकार्य विभूतिदायक होता है।

अपने घर में उसी दिशा में खाना बनाना एवं हवन करना शुभ होता है। पूर्ण रेखा वाली राशि की दिशा में शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। कम रेखा एवं शून्य रेखा वाली राशि की दिशा में उक्त कार्य नेष्ट होते हैं।

गूँगा-वक्ता योग

यदि बुधाष्टक वर्ग में बुध की अधिष्ठित राशि (जन्म लग्न कुण्डली वाली) से द्वितीय राशि में यदि रेखा न हो, तो व्यक्ति गूँगा होता है।

यदि वहाँ एक रेखा हो, तो भी व्यक्ति गूँगा होता है।

वहाँ दो या तीन रेखाएँ हो, तो व्यक्ति स्पष्ट भाषण नहीं कर सकता है।

उसकी जीभ मोटी होती है। वह तुतलाकर बोलता है।

यदि वहाँ ४ रेखाएँ हो, तो व्यक्ति वक्ता अर्थात् वक्तृत्व शक्ति से युक्त होता है। यदि ५, ६ रेखाएँ हों, तो व्यक्ति दूसरे की बात को स्पष्टतया व शीघ्र समझ कर सार ग्रहण कर लेता है।

यदि सात रेखाएँ हों, तो व्यक्ति की वाणी को विद्वान् लोग भी बड़े ध्यान से सूनते हैं और उसके वचनों को उचित मानते हैं। साथ ही वह काव्य करने की शक्ति भी रखता है।

जिसके बुधाष्टवर्ग में लग्न से द्वितीय स्थान में एक भी रेखा न हो उसकी वाणी किसी बात का एक भी उत्तर देने में समर्थ नहीं होती।

उक्त द्वितीय स्थान में पापग्रहों की रेखा होने पर अर्थात् पापग्रहों द्वारा प्रदत्त रेखाएँ होने पर, दम्भ एवं धृष्टता युक्त वाणी तथा शुभ ग्रहों की रेखा होने पर माधुर्य आदि गुणयुक्तवाणी होती है।

यहाँ सूर्य की रेखा हो, तो ज्ञानोपदेशात्मक बातें तथा मंगल की हो, तो झगड़े-झंझट की बातें होती हैं।

बुध की हो, तो मनोरंजक बातें, गुरु की हो, तो स्पष्ट एवं युक्ति-युक्त, शुक्र की हो, तो पुराण एवं काव्यार्थ पूर्ण बातें तथा शनि की हो, तो छलपूर्ण बातें होती हैं।

बुध से द्वितीय स्थान में नीच या शत्रु राशि में चन्द्रमा हो, तो मूर्खतापूर्ण एवं संशयात्मक बातें करने वाला होता है।

यदि वहाँ केतु, गुलिक या राहु हों, तो अत्यन्त दुष्टता पूर्ण बातें कहनी चाहिए।

बुध से द्वितीय भाव में इन तीनों ग्रहों के प्रभाव हों, तो वह व्यक्ति सभा में असभ्य बातें, चोरी एवं शाप की बातें तथा दुर्वृत्तान्तों को कहने वाला होता है।

बुद्धिहीन योग

बुधाष्टक वर्ग में बुधाश्रित राशि में एक भी रेखा न होने पर बुद्धि का उन्मेष नहीं होता। इसी प्रकार शून्य स्थान (रेखाहीन स्थान) में बुध होने पर भी बुद्धि का उन्मेष नहीं होता।

अष्टकवर्ग में त्रिकोण शोधन करने के बाद बुध की शून्य राशि में शनि हो, तो बन्धुजन एवं बड़े भतीजे का नाश बतलाया जाना चाहिए।

जन्मलग्न से ६, ७ एवं ११वें स्थान में स्थित शनि अति दोषदायक होता है। जब शून्य राशि में शनि जाता है तब भाव का नाश होता है।

जब अष्टम, द्वादश भावों में शून्य राशि में शनि जाता है तब (जहाँ बुध को कोई शुभ रेखा नहीं मिलती) अपनी स्मरण शक्ति का नाश या मृत्यु कहनी चाहिए।

अपने अष्टवर्ग में अधिक रेखा वाली राशि में बुध गोचर करता हो, तो विद्याभ्यास सफल होता है तथा विवाद में विजय मिलती है।

बुधाष्टक वर्ग का न्यास कर अधिक रेखाा वाली राशि की दिशा में विद्याभ्यास शीघ्र ही फलदायक होता है।

अत: उसी दिशा में अभ्यास करना चाहिए। पूर्ण या अधिक रेखा वाली राशि में क्रीड़ा स्थल का निर्माण, युवराज से सम्बन्ध बढ़ाना तथा व्यापारिक कार्य करने चाहिए।

जातकादेशमार्ग के अनुसार अपने अष्टक वर्ग में अधिक रेखा वाली राशि में गुरु के स्थित होने पर मन्त्र ग्रहण, पुरश्चरण, अग्न्याधान, यज्ञ, वेदाभ्यास, ब्राह्मण भोजन, पुत्र-प्राप्ति के लिए सभी प्रयोग, धनोपार्जन एवं संग्रह करना सफल होता है तथा अल्परेखा वाली राशि में होने पर उक्त कार्य निष्फल होते हैं।

जातकादेशमार्ग के अनुसार अपने घर में अधिक रेखा वाली अपनी अथवा अन्य राशि में गुरु के जाने पर राजा एवं देवों को मिलना, भोजन कराना, मन्त्रजप स्वर्णादि का स्थापन, गुरु, ब्राह्मण एवं मन्त्री से मिलना हितकर होता है। अधिक रेखा वाली राशि में यात्रा से धन-लाभ होता है।

जातकादेशमार्ग के अनुसार जब शुक्र अपने अष्टक वर्ग में अधिक रेखा वाली राशि में जाय तो शय्या आदि समस्त उपकरण (फर्नीचर) बनवाना, संगीताभ्यास, विवाह करना, भोग विलास के समस्त कार्य करने चाहिए।

शुक्राष्टक वर्ग में राशियाँ शोधन करने से पहले अधिक रेखा वाली ही रहती हैं (अर्थात् ४ से अधिक) उनकी दिशा में विवाह करना शुभ होता है।

अपने घर में उनकी पूर्ण रेखा वाली राशि की दिशा में शयन करना शुभ होता है तथा जिस दिशा की राशि में शुक्र की अधिक रेखाएं हों उस दिशा में विवाह करना शुभ होता है।

जातकादेशमार्ग के अनुसार अपने अष्टकवर्ग में अधिक रेखा वाली राशि में शनि के जाने पर दास आदि लेना तथा खेती की जमीन लेना आदि भूमि संबंधित कार्य फलदायक होता है।

अधिक रेखा वाली राशि की दिशा में खेती करना अपने घर में उस दिशा में चाण्डाल एवं सेवकों को रखना, जूठन, कूड़ा आदि फैंकना तथा शौचालय बनाना हितकर होता है।

मेषादि त्रिकोण राशि में अष्टक वर्ग का न्यास कर तथा रेखाओं को जोड़कर उनकी अधिकता एवं अल्पता से पूर्व आदि दिशाओं का फल कहना चाहिए।

भूचक्र में स्थित मेष आदि राशियों में अष्टकवर्ग का न्यास कर जहाँ अधिक रेखाएँ हों वहाँ अशुभ को भी शुभ मानना चाहिए।

उक्त दोनों रीतियों से दिशाओं में अधिक रेखा होने पर शुभ कहना चाहिए तथा अल्प रेखा की दिशा में अशुभ कहना चाहिए।

भिन्नाष्टक वर्ग का अर्थात् प्रत्येक ग्रह को भिन्न-भिन्न रूप में कितनी रेखाएँ मिलती हं, उल्लेख कर चुके हैं।

अब हम समुदायाष्टक वर्ग का अर्थात् कुल मिलाकर सब ग्रह प्रत्येक भाव में कितनी शुभ रेखाएँ देते हैं और उनका क्या फल है इस बात का उल्लेख करते हैं।

इस बात का पहले उल्लेख हो चुका है कि प्रत्येक ग्रह को अन्य ग्रह आदि द्वारा कितनी शुभ रेखायें प्राप्त होती हैं।

अब यहाँ इस बात का उल्लेख करते हैं कि किस-किस ग्रह ने इस पद्धति में कितनी-कितनी शुभ रेखायें दीं। सूर्य तथा अन्य ६ ग्रहों ने जो रेखायें दीं उन प्रत्येक के बारह-बारह अंक बन जाते हैं। अंक बारह इसलिए कि ग्रहों की बारह भावों में अधिकतम स्थितियाँ होती हैं, पहले बारह अंक सूर्य के हैं और उनमें पहला अंक उस द्वारा अधिष्ठित भाव के लिए, दूसरा उससे द्वितीय के लिए, तीसरा तृतीय भाव के लिए है।

इसी प्रकार अगले बारह अंक चन्द्रमा के बारह भावों के लिए तथा उससे आगे के बारह-बारह अंक मंगल आदि ग्रहों के लिए दिए गये हैं।

अन्त में बारह अंक लग्न प्रदत्त हैं। अब ग्रहों को प्राप्त अंकों का स्वरूप नीचे दिया जा रहा है।

१. सूर्य ३, ३, ३, ३, २, ३, ४, ५, ३, ५, ७, २ = ४३
२. चन्द्र २, ३, ५, २, २, ५, २, २, २, ३, ७, १ = ३६
३. मंगल ४, ५, ३, ५, २, ३, ४, ४, ४, ६, ७, २ = ४९
४. बुध ३, १, ५, २, ६, ६, १, २, ५, ५, ७, ३ = ४६
५. गुरु २, २, १, २, ३, ४, ४, २, ४, ७, ३ = ३६
६. शुक्र २, ३, ३, ३, ४, ४, २, ३, ४, ३, ६, ३ = ४०
७. शनि ३, २, ४, ४, ४, ३, ३, ४, ४, ४, ६, १ = ४२
८. लग्न ५, ३, ५, ५, २, ६, १, २, २, ६, ७, १ = ४५

योग = ३३७

सूर्य आदि ७ ग्रह एवं लग्न इनकी राशि से इन अक्षरों की संख्या वाली राशि अथवा भाव में रेखाओं का न्यास करना चाहिए। इस एक राशि में शुभ प्रभावों के समुदाय को समुदाय अष्टकवर्ग कहते हैं।

समुदाय अष्टक वर्ग में जिन राशियों में ३० से अधिक, २५ से अधिक एवं २५ से कम रेखायें हों उन्हें क्रमश: श्रेष्ठ-मध्य एवं कष्ट कहते हैं। समस्त अभीष्ट कार्यों में श्रेष्ठ राशियों में गोचरवश भ्रमण स्त्री-पुरुषों को सम्पत्तिदायक तथा कष्ट राशियों में विपत्तिदायक होता है।

धन, लग्न चतुर्थ, नवम, दशम एवं एकादश भाव में अधिक (२८ से ऊपर) रेखायें होने पर व्यक्ति धनवान् होता है।

धन एवं लाभ स्थान की रेखाओं से व्ययस्थान की रेखायें अधिक होने पर व्यय की अधिकता, कम होने पर व्यय की कमी तथा रेखायें समान होने पर आय एवं व्यय में समानता होती है।

व्यय, मृत्यु एवं षष्ठ स्थान की रेखाओं का योग ७६ से कम हो, तो व्यथा होती है। व्यय भाव की रेखाओं से आय भाव की रेखा अधिक होने पर अधिक लाभ तथा विपरीत होने पर व्यय अधिक होता है।

२५, २२, ९, १२, २५, ३४, २१, ४, २९, ३६, ५४, १६ इनसे कम रेखायें क्रम-से लग्न आदि बारह भावों में हों, तो उनकी हानि तथा अधिक रेखायें हों, तो उनकी पुष्टि कहनी चाहिए।

पैतृक सम्पत्ति लाभ

चतुर्थ भाव पर पापग्रहों की दृष्टि या युति न हो तथा कथित रेखाओं से अधिक रेखायें हों अथवा यही बात व्यये भाव में घटित हो, तो अपने पूर्वजों का संचित धन मिलता है, अन्यथा नहीं।

यदि दशम भाव में पूर्वोक्त नियम घटता हो, तो व्यक्ति अपने द्वारा अर्जित धन से भोग आदि प्राप्त करता है। लाभ भाव में उक्त नियम घटने पर बिना प्रयास के धन-लाभ होता है।

भाग्य या धन स्थान में उक्त नियम घटने पर निश्चित रूप से निधि मिलती है। यह निधि लग्न की रेखा संख्या के तुल्य वर्ष की आयु में मिलती है।

अपनी-अपनी पूर्वोक्त न्यूनतम रेखाओं से युक्त तथा अपने शुभ स्वामियों से युत अथवा दृष्ट तथा पापग्रहों की दृष्टि या युति से रहित भाव पुष्टतम होते हैं तथा इसके विपरीत स्थिति में पुष्ट नहीं होते।

जातकादेशमार्गोक्त

पुनः जातकादेशमार्ग के अनुसार लग्न, पञ्चम एवं नवम को बन्धु, द्वितीय, षष्ठ एवं दशम को सेवक, तृतीय, सप्तम एवं एकादश को पोषक तथा चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादश भाव को घातक कहते हैं।

इनकी रेखाओं का योग कर लेना चाहिए। यदि घातक से पोषक की रेखायें अधिक हों, तो व्यक्ति धनवान् होता है। यदि पोषक से घातक रेखायें अधिक हों, तो वह दरिद्री होता है।

मीन, कर्क एवं वृश्चिक से ४-४ राशियों के तीन खंडों की कल्पना कर लेनी चाहिए।

यदि प्रथम खण्ड से रेखायें अधिक हों, तो आयु के प्रथम तृतीयांश में सुख मिलता है।

मध्य खण्ड में अधिक रेखा होने पर आयु के तृतीयांश में तथा अन्तिम तृतीयांश में सुख मिलता है।

जिस खण्ड में रेखायें कम हों आयु के उस भाग में व्याधि एवं दु:ख मिलता है।

केन्द्र, पणफर एवं आपोक्लिम स्थानों को जोड़कर उनकी अधिकता एवं अल्पता से भी आयु के प्रथम आदि भागों में शुभ एवं अशुभ फल कहना चाहिए।

इस प्रकार १, ४, ७, १०, ५, ९ भावों की सर्वाष्टक रेखाओं का योग मनुष्य की अन्तः वृत्ति का द्योतक होगा।

शेष भावों २, ३, ६, ८, ११, १२ की रेखाओं का योग बाह्य भाग का द्योतक होगा

यदि अन्तः भाग में अधिक रेखायें हों, तो व्यक्ति को मन में सन्तोष, इसके विपरीत यदि बाह्यभाग में अधिक रेखायें हों, तो मनुष्य को असन्तोष, ग्लानि, मानसिक पीड़ा, पाखण्ड, घमण्ड आदि की वृद्धि होगी।

रोगशोकादि काल

लग्न से प्रारम्भ कर शनि से आश्रित राशि तक समस्त राशियों की रेखाओं के योग को ७ से गुणाकर २७ से भाग देकर लब्धि तुल्य वर्ष की आयु के वर्ष में रोग एवं शोक होता है।

इसी प्रकार शनि से लग्न की राशि तक उक्त क्रिया करके फल कहना चाहिए। भौम से आश्रित राशि से लग्न तक और लग्न से मंगल की राशि तक उक्त रीति से वर्ष ज्ञान कर उस वर्ष में दुर्बुद्धि का उदय बतलाना चाहिए।

जिस राशि में राहु हो उसके फल की संख्या के समान वर्ष में मनुष्यों को सर्प काटता है।

राहु से आश्रित राशि का स्वामी ग्रह अनिष्ट स्थान में हो, तो राहु आश्रित राशि में शुभ प्रभावों की संख्या तुल्य होने पर विष भक्षण बतलाना चाहिए।

मंगल से आश्रित राशि के फल के समान वर्ष में शस्त्र से चोट और शनि से आश्रित राशि की फलसंख्या के समान वर्ष में रोग एवं शोक कहना चाहिए।

गुरु की आश्रित राशि की फलसंख्या के समान वर्ष में पुत्र, धन एवं सुख की प्राप्ति, शुक्राश्रित राशि की फलसंख्या के समान वर्ष में विवाह एवं स्त्रीसुख, बुधाश्रित राशि के वर्ष में विद्याभ्यास, बौद्धिक विकास एवं विद्वानों से आदर तथा ग्रहों से अन्य जो-जो बातें विचारणीय होती हैं, उन की उपलब्धि बतलानी चाहिए।

समुदायाष्टक वर्ग

अपने-अपने अष्टक वर्ग में स्वाश्रित राशि से रेखाओं को न्यस्त कर द्वादश राशियों में रेखाओं का ज्ञान प्राप्त कर अपनी दशा का फल जान कर फिर वर्ष संख्या में १२ से भाग देकर आयु वर्ष का भाव निश्चित कर वर्ष के समान मासों का भी साधन करना चाहिए।

इस प्रकार अल्प रेखा वाली राशि के वर्ष, मास अशुभ तथा पूर्ण रेखा वाली राशि के शुभ होते हैं।

शून्य राशि में एवं चार से कम रेखा वाले भाव में स्थित दशापति धन, धान्य एवं गौ आदि उपयोगी जीवों का नाश करता है तथा पाँच एवं इससे अधिक रेखा वाले भाव में स्थित ग्रह समृद्धि करता है।

कम रेखायें अपने भाव का नाश तथा अधिक रेखायें भाव की वृद्धि करती हैं।

त्रिकोण शोधनार्थ

भूचक्र में स्थित राशियों में अष्टकवर्ग का न्यास कर परस्पर त्रिकोण में स्थित राशियों में से जिसमें न्यूनतम रेखायें हों, उन न्यूनतम रेखाओं को तीनों राशियों में से घटाना चाहिए। इस प्रकार एक स्थान पर रेखा नहीं रहती।

यदि किसी एक में शून्य हो, तो वहाँ कोई साधन नहीं होगा। रेखा संख्या यथावत् रहेगी।

यदि तीनों स्थानों पर समान रेखाएँ हों, तो तीनों स्थानों पर शून्य रेखाएँ रखी जाएँगी। यह त्रिकोण शोधन कहलाता है।

एकाधिपत्य शोधन

यहाँ एकाधिपत्य शोधन बताया जा रहा है। भौमादि पाँच ग्रहों की राशियों में यह शोधन होगा। इसके नियम इस प्रकार हैं—

(क) त्रिकोण शोधन के बाद एक राशि में (जैसे मेष, वृश्चिक) ० हो, तो यथावत् रहेगा।

(ख) एक संग्रह व अधिक रेखा वाली राशि हो, तो दूसरी की समस्त रेखाएँ हटेंगी।

(ग) समान रेखा होने पर अग्रह राशि की रेखाएँ हटेंगी।

(घ) दोनों ग्रहहीन हों, तो कम रेखा वाली राशि के समान ही दूसरी भी रेखा होंगी।

(ङ) यदि सग्रह राशि में कम रेखा हों और अग्रह में अधिक हों, तो भी अग्रह राशि में संग्रह तुल्य रेखा होंगी। एक ग्रह की दोनों राशियों में यह नियम लगेगा।

राशि पिण्ड व ग्रह पिण्ड ज्ञान

अब राशिगुणक बताए जा रहे हैं। त्रिकोण शोधन व एकाधिपत्य शोधन के बाद शीर्ष रेखाओं को अपने-अपने गुणक से गुणा करने पर राशिपिण्ड होता है।

दोनों शोधनों के अनन्तर वृष एवं सिंह की, मिथुन और वृश्चिक की तुला एवं मेष की तथा कन्या एवं मकर की अवशिष्ट (शेष) रेखाओं को क्रमशः १०, ८, ७ एवं ५ से गुणा करना चाहिए।

कुल योग को राशि पिण्ड क़हते हैं। शेष राशियों के गुणक ये हैं कर्क—४, धनु—९, कुम्भ—११ व मीन—१२।

तत्पश्चात् गुरु, मंगल, शुक्र एवं शनि युत राशि की रेखाओं को क्रमशः १०, ८, ७ एवं ५ से गुणा कर इन सबका योग करने पर 'ग्रह पिण्ड' कहलाता है। सूर्य, चन्द्र, बुध का गुणक भी ५ है। ये ग्रह गुणक हैं।

पिता का अरिष्ट विचार

दोनों शोधनों से पूर्व सूर्य के शुभ बिन्दु, जो जन्मकुण्डली के नवम स्थान में हों, उनको सूर्य के 'शुद्ध पिण्ड' की संख्या से गुणा करो।

गुणन फल को २७ से विभक्त करो। शेष को अश्विनी नक्षत्र से गिन कर जो नक्षत्र निकले उस पर शनि जब चार वश आये तो पिता की मृत्यु होती है।

अथवा उसी संख्या से अश्विनी से न गिन कर जन्मकालीन शनि अधिष्ठित नक्षत्र से गिनना चाहिए।

शनि जब चार वश उस नक्षत्र पर से गुजरे तो पिता की मृत्यु होती है।

शोधन के बाद भूचक्र अवशिष्ट फल का सूर्य से नवम स्थान के अवशिष्ट

फल से गुणा कर २७ का भाग देने पर शेष तुल्य नक्षत्र में शनि हो, तो पिता की मृत्यु होती है।

इस प्रकार सूर्याष्टक वर्ग से पिता की मृत्युदायक शनि की स्थिति बतलाई गई है। अब उसी प्रकार गुरु और सूर्य की स्थिति बतलाते हैं—

सूर्य के ही अष्टकवर्ग में सूर्य की रेखाओं को क्रमशः गुरु और सूर्य के सप्तम स्थान की रेखाओं से पृथक्-पृथक् गुणा कर दोनों स्थानों पर २७ का भाग देने से शेष तुल्य नक्षत्रों में गुरु एवं सूर्य का संचार पिता की मृत्यु करता है।

स्वमृत्यु ज्ञान

सूर्य के अष्टक वर्ग से अपनी मृत्यु का समय बतलाते हैं तथा चन्द्रमा के अष्टकवर्ग से माता के मृत्युदायक शनि, गुरु एवं सूर्य का चार बतलाते हैं।

सूर्य के शोध्य पिण्ड में सूर्य से अष्टम का फल जोड़कर २७ का भाग देने पर अश्विनी आदि क्रम से गणना करके शेष तुल्य नक्षत्र का ज्ञान करें। उस नक्षत्र में सूर्य के आने पर अपनी मृत्यु होती है।

मातृ अनिष्ट

चन्द्रमा के शोध्य पिण्ड को उसके चतुर्थ स्थान के फल से गुणाकर २७ का भाग देकर अश्विनी आदि गणना से शेषतुल्य नक्षत्र में शनि होने पर माता की मृत्यु होती है।

भ्रातृ अनिष्ट

मंगल के शुद्ध पिण्ड को मंगल से तृतीय भाव के फल से गुणा कर १२ का भाग देने से शेष मेषादि राशियाँ होती हैं।

इनमें अन्तिम राशि को दशास्वामी की राशि मानना चाहिए। उस क्षण स्वामी के स्वामित्व द्वारा तथा उस राशि में स्थित ग्रहों द्वारा जिन बातों का परिचय मिलता हो जैसे छोटे भाई का जन्म गुरु के चार का समय इन बातों का अनुभव लाभदायक होता है।

भौमाष्टक वर्ग में सहज स्थान की रेखाओं के बराबर सहोदर होते हैं। इनमें पुरुष-स्त्री का विचार रेखादायक ग्रह के अनुसार करना चाहिए। गुरु के अष्टकवर्ग में शोधन के बाद शून्य रेखा की राशि में मंगल का चार नाश करता है।

बुध के शोध्य पिण्ड को उससे आश्रित राशि से दूसरी राशियों की रेखाओं से गुणाकर १२ से भाग देकर शेष मेषादि राशियाँ होती हैं। उनमें से अन्तिम राशि के स्वामी ग्रह की दशा एवं अन्तर्दशा तथा उस राशि में गुरु का चार विद्यादायक होता है।

सूर्याष्टक वर्ग से जिस प्रकार पिता की मृत्युकारक गुरु एवं सूर्य की स्थिति बतलाई गई है उसी प्रकार चन्द्राष्टक वर्ग से गुरु एवं सूर्य की स्थितिवश माता की मृत्यु बतलानी चाहिए।

सन्तान विचार

पुरुषों की सन्तान का विचार गुरु के अष्टक वर्ग से करते हैं। गुरु से पञ्चम स्थान का स्वामी ग्रह जिस राशि में हो, उससे शोधन के बाद जितनी रेखाएं बची हों उतनी सन्तान होती है। उसके समान आकृति वाले पुत्र होते हैं।

राशिचक्र में उच्च राशि, स्वनवांश, स्वद्रेष्काण एवं वर्गोत्तम राशि में स्थित ग्रहों द्वारा प्रदत्त रेखाओं को द्विगुणित कर पुत्रसंख्या बतलानी चाहिए।

नीच एवं शत्रु राशि वाले ग्रहों से प्रदत्त रेखाओं के प्रभाववश उत्पन्न हुए पुत्र मर जाते हैं।

विषम राशिगत पुरुष ग्रह पुत्र तथा सम राशि स्त्री ग्रह कन्या को जन्म देते हैं।

इसी प्रकार गुरु से नवम भाव से, लग्न और चन्द्रमा से पञ्चम स्थान के स्वामियों से आश्रित राशि में शोधन के बाद शेष रेखा संख्या से पुत्र संख्या का विचार करना चाहिए।

बृहज्जातक की चन्द्रिका संज्ञक टीका में ऐसा कहा गया है, इस विषय पर और भी बहुसम्मत पक्ष हैं, अब उन्हें कहते हैं।

गुरु से पञ्चम स्थान में गुरु के अष्टक वर्ग में जो शुभ रेखा संख्या हो वह पुरुष की पुत्र संख्या होती है; परन्तु उस संख्या में से निम्नलिखित ग्रहों द्वारा प्रदत्त शुभ रेखा को घटा देना चाहिए।

(१) गुरु के शत्रु ग्रहों द्वारा प्रदत्त।

(२) गुरु की नीच राशि के स्वामी अर्थात् शनि द्वारा प्रदत्त।

(३) गुरु से पञ्चम भाव के स्वामी के शत्रुओं द्वारा प्रदत्त।

(४) गुरु से पञ्चम स्थान के स्वामी की नीच राशि के स्वामी से प्रदत्त।

(५) उन ग्रहों द्वारा प्रदत्त जो स्वयं नीच राशि में स्थित हैं।

(६) उन ग्रहों द्वारा प्रदत्त जो स्वयं शत्रु राशि में स्थित हैं।

(६) उन ग्रहों द्वारा प्रदत्त जो सूर्य द्वारा अस्त हों।

गुरु के अष्टक वर्ग में शोधन के बाद राशियों में जितनी रेखायें शेष हों, उनमें से पापाश्रित ग्रहों की संख्या घटाने के बाद अवशिष्ट रेखाओं के बराबर पुत्र होते हैं।

इस प्रकार लग्न, चन्द्र और गुरु की द्वादश राशि से पञ्चम राशि में बलवान् ग्रहों की शुभ रेखाओं से पुत्र की संख्या जाननी चाहिए।

गुरु के शुद्ध पिण्ड को गुरु से पञ्चम भाव में स्थित रेखाओं से गुणा कर २७ का भाग देने पर शेष तुल्य अश्विनी आदि नक्षत्र में गुरु के जाने पर पुत्र का जन्म होता है।

गुरु के शुद्ध पिण्ड को ७ से गुणाकर २७ का भाग देने पर शेष नक्षत्र की धनिष्ठादि क्रम से गणना करनी चाहिए, न कि अश्विनी आदि क्रम-से।

गुरु के शोध्य पिण्ड को ४ से गुणाकर १२ का भाग देने से मेष आदि राशियाँ शेष रहती हैं। उनमें से अन्तिम राशि में जब सूर्य जाता है, उस मास में पुरुषों को पुत्र की प्राप्ति होती है।

गुरु के पिण्ड को ७ से गुणा कर २७ का भाग देकर शेष की गुरु से आश्रित नक्षत्र से गणना करनी चाहिए। इनमें से अन्तिम नक्षत्र में निश्चित रूप से पुत्र का जन्म होता है।

गुरु के शोध्य पिण्ड को ९ से गुणा कर १२ का भाग देने से शेष तुल्य मेषादि राशि के लग्न में पुत्र होता है।

यदि स्त्री की जन्म कुण्डली में गुरु के अष्टम वर्ग में किसी ऐसे ग्रह द्वारा शुभ रेखा दी जाती है जो ग्रह किसी पुरुष की कुण्डली में गुरु अधिष्ठित कक्षा का स्वामी हो, तो स्त्री की जन्म कुण्डली में उस शुभ रेखा की कक्षा में गुरु चार के समय सन्तान होती है।

पुरुष की जन्म कुण्डली में ग्रह की नवांश राशि ज्ञात करते हैं, जिसकी कक्षा में गुरु स्थित हो। उक्त नवांशराशि अथवा उससे पञ्चम अथवा नवम राशि में सूर्य के चार के मास में, स्त्री की कुण्डली में मान्दि स्थित राशि पर चन्द्र के संचार के दिनों में और स्त्री की कुण्डली में गुलिक की नवांश राशि अथवा उस राशि से त्रिकोण की किसी राशि में सन्तान की जन्म राशि होती है।

गुरु से पञ्चम स्थान में शोधन के बाद अवशिष्ट रेखाओं में २७ जोड़कर उन्हीं अवशिष्ट रेखाओं से गुणाकर १२ का भाग देने से मेष आदि के महीने में पुत्र जन्म होता है।

इष्ट स्थान में स्थित होने के कारण, गुरु से पञ्चम आदि स्थान में रेखादायक होने के कारण या पुत्र योग होने के कारण जो ग्रह पुत्रदायक माना गया है, उसकी राशि एवं नवांश इन दोनों में जहाँ वह बलवान् हो, उस स्थान में या उससे त्रिकोण में चन्द्रमा के जाने पर पुत्र जन्म बतलाना चाहिए।

स्त्रियों की कुण्डली में गुरु से पञ्चम स्थान की रेखाओं से पुत्री तथा नवम स्थान की रेखाओं से पुत्र बतलाने चाहिए। पुरुष की कुण्डली में गुरु से नवम स्थान की रेखाओं से कन्या तथा पञ्चम स्थान की रेखाओं से पुत्र कहने चाहिए।

इसी प्रकार स्त्रियों की कुण्डली में लग्न एवं चन्द्रमा से नवम तथा पञ्चम स्थान की रेखाओं से पुत्र एवं कन्या का तथा पुरुषों की कुण्डली में उपरोक्त विधि से कन्या एवं पुत्र का विचार करना चाहिए।

उनकी रेखाओं से पुत्र, कन्या, उनके जन्म का समय एवं स्थान, उनकी संख्या और शुभाशुभत्व का ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु के शोध्य पिण्ड को गुणा करते समय उपरोक्त स्थानों की शुभ रेखायें लेनी चाहिए।

विवाह विचार

शुक्र से सप्तमेश एवं भाग्येश, चन्द्रमा एवं लग्न से भाग्येश; ये सब ग्रह जिन राशियों में हों उनका शोधन करने के बाद अवशिष्ट रेखा संख्या के बराबर विवाह होते हैं।

अथवा सप्तमेश की उच्च एवं नीच राशियों में शोधन के बाद अवशिष्ट रेखा संख्या के बराबर विवाह होते हैं। सप्तमेश निर्बल हो, तो अल्प संख्या में, बलवान् हो, तो अधिक संख्या में विवाह होते हैं।

शुक्र के मध्य पिण्ड को शुक्र से सप्तम भाव की रेखा संख्या से गुणा करके २७ का भाग देने के बाद अवशिष्ट अश्विनी आदि नक्षत्र में गुरु के जाने पर विवाह होता है।

पुनः गुणन फल में १२ का भाग देने पर शेष मेषादि राशि के स्वामी ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में विवाह होता है या उपरोक्त राशि में गुरु का चार होने पर विवाह होता है।

दुःख आदि प्राप्ति काल विचार

लग्नादि जिस भाव में शनि हो उसकी रेखा संख्या के समान वर्ष की आयु में व्याधि एवं दुःख मिलता है तथा अशुभ समय में मृत्यु होती है।

शनि के पिण्ड को उसके अष्टम स्थान की राशि की रेखा संख्या से गुणाकर २७ का भाग देने के बाद अवशिष्ट अश्विनी आदि नक्षत्र में शनि के जाने पर अथवा इसके त्रिकोण में शनि के होने पर मृत्यु होती है।

शनि के शुद्ध पिण्ड को गुरु एवं सूर्य से आश्रित राशि की रेखा संख्या से गुणाकर १२ का भाग देने पर शेष राशि में क्रमशः सूर्य तथा गुरु के जाने पर उस वर्ष तथा उस मास में मृत्यु होती है।

शनि के अष्टक वर्ग में जो राशि अल्परेखा से कम संख्या वाली हो प्रतिदिन उसके उदय होने के समय तथा उस राशि में सूर्य होने पर विपत्तिदायक स्थिति उत्पन्न होती है।

शनि अधिष्ठित राशि के अष्टकवर्ग की शुभ रेखाओं में उससे सप्तम राशि की रेखायें घटाने के बाद शून्य होने पर शून्य प्रदेश में अपमृत्यु होती है।

उपरोक्त दोनों राशियों में ऐसी स्थिति में मित्र ग्रह की रेखा होने पर मृत्यु शुभेच्छुओं के मध्य होती है।

शनि के पिण्ड को ७ से गुणाकर २७ का भाग देने पर अवशिष्ट अश्विनी आदि नक्षत्र में शनि के जाने पर मृत्यु होती है।

अथवा पिण्ड को शनि से अधिष्ठित रेखा संख्या से गुणाकर २७ का भाग देने पर अवशिष्ट नक्षत्र में शनि के जाने पर मृत्यु होती है।

आचार्यों ने अष्टकवर्ग के उपरोक्त कुछ प्रयोग इस प्रकार बतलाए हैं। अष्टकवर्ग से दशानयन की विधि को अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिए।

भगवान् शिव के मत को दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर व्यक्ति जैसे वैष्णवों की निन्दा करता है उसी प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रस्त मेरे ग्रन्थ के निन्दकों से यह 'ज्योतिष प्रश्न कुण्डली विचार' दूर रहे।

अन्य ग्रन्थों में कहे गए अर्थ का स्वयं भली-भाँति विचार किए बिना यहाँ स्वकल्पना मात्र से कोई बात नहीं लिखी गई। अत: विश्व के समस्त जिज्ञासुजन इस मार्ग पर चलें तथा उनकी सभी बातें सत्य हों, ऐसी मेरी कामना है।

।। शिष्यों की प्रार्थना से बनाये गये यह 'ज्योतिष प्रश्न कुण्डली विचार' ग्रन्थ
ज्योतिश्चक्रचूडामणि श्रीमान् सूर्यनारायणात्मज डॉ० सुरकान्त झा
द्वारा वाराणसी में सुसम्पन्न हुआ।।





श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार

कचौड़ीगली, वाराणसी २२१००१

हमारे यहाँ की प्रकाशित पुस्तकें एक बार मँगाकर अवश्य पढ़ें।

प्रकाशक :

रुपेश ठाकुर प्रसाद प्रकाशन

कचौड़ीगली, वाराणसी-1

फोन : 0542-2392543, 2392471